UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182984
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H२० M67 R Accession No. H3233

Author मिश्र, भुवनेश्वरनाथ

Title रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना १९६२

This book should be returned on or before the date last marked below.

रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना

श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव', एम्० ए०

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना – ३

Checked 1968

प्रथम संस्करण, ज्येष्ठ, शकाब्द १८७९ : विक्रमाब्द २०१४, खीष्टाब्द १९५७

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मूल्य—नव रुपये : सजिल्द—दस रुपये पचीस नये पैसे

Checked 1969

मुद्रक
समेम्लन मुद्रणालय
प्रयाग

वक्तव्य

मर्त्यावतारे मनुजाकृतिं हरिं रामाभिधेयं रमणीयदेहिनम्।
धनुर्द्धरं पद्मविशाललोचनं भजामि नित्यं न परान्भजिष्ये॥[1]

'रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना'—हिन्दी में अपने विषय का सर्वथा नवीन एवं अत्यन्त सरस ग्रन्थ है। ग्रन्थकार स्वयं इस उपासना-पद्धति के भावुक साधक हैं। आपकी भूमिका से पाठकों को मालूम होगा कि इसके निर्माण में आपको कितना अध्यवसायशील होकर परिश्रम करना पड़ा है। ग्रन्थानुशीलन से यह भी विदित होगा कि आपको अपने अधिकृत विषय के विवेचन एवं प्रतिपादन में कहाँ तक सफलता मिल सकी है। हमारा अनुमान है कि आपके स्वाध्याय की गहनता और आपकी मननशीलता एवं रसानुभूति की गम्भीरता इसके अनेक स्थलों के निरीक्षण से प्रकट होगी।

कृष्णभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना काफी है। अब इस ग्रन्थ से यह ज्ञात हो जायगा कि रामभक्ति-साहित्य में भी मधुर उपासना का टोटा नहीं है।

हमारे ईश्वरावतारों में राम और कृष्ण ही सबसे सुन्दर हैं। मधुर-उपासना इन्हीं दोनों अवतारों की होती है। पर दोनों की सुन्दरता में कुछ अन्तर है। राम की सुन्दरता पर सौम्य शील का आवरण है। कृष्ण की सुन्दरता में लीला-विलास का बाँकपन है। राम लोकाभिराम हैं—कृष्ण लोक-ललाम। राम की मुखाम्बुजश्री में जो प्रसन्नता की कान्ति है, वह शीतल है। कृष्ण के मनमोहन मुखड़े पर जो आनन्दोल्लास की कमनीय किरणें किलोलती हैं, वे दीप्तिमन्त हैं। राम केवल अधरों और नेत्रों में ही हँसते है, कृष्ण अधरों और आँखों के अतिरिक्त भौहों में भी हँसते हैं, बल्कि उनका अंग-अंग रोम-रोम हँसता रहता है। इसीलिए, उपासक भक्त की मधुर भावना को जितना कृष्ण उकसाते हैं उतना राम नहीं; क्योंकि राम के रमणीय रूप में जो सुहावना भोलापन है उसमें भक्त की मधुर भावना को छेड़ने की शोखी नहीं है; किन्तु कृष्ण की चञ्चल-चटुल और मञ्जुल-मृदुल मूर्त्ति तो उपासक की मधुर भावना को बरबस गलबहियाँ में समेट ले जाती है। अरे, आकर्षण तो भोलापन और बाँकपन दोनों में है, जिसका रहस्योद्घाटन करके यह ग्रन्थ राम-भक्तों की मधुर उपासना को प्रोत्साहन देगा।

---

१. अध्यात्मरामायण, बालकाण्ड, सर्ग ५, श्लोक ४६

घनश्याम राम श्यामसुन्दर हैं। रसराज शृंगार भी श्यामसुन्दर हैं। दोनों का वर्ण समान है। आदिरस के अधिष्ठाता देवता भी रमा-रमण राम हैं। अत शृंगार के आधार राम की भक्ति मे मधुर उपासना की सार्थकता समीचीन है। यह समीचीनता इस ग्रन्थ से समर्थित है।

प्रियदर्शन राम, अपनी आह्लादिनी शक्ति सीता के साथ, मधुर भाव के उपासकों के प्राणाधार हैं। 'गिरा अर्थ जल बीचि सम' अभिन्न दोनों की छवि-छटा मे जो सुषमा-सुधा-माधुरी है, वही भक्तों की मधुर उपासना के लिए सञ्जीवनी है। इस ग्रन्थ का यही शुभ सन्देश है।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र शील-शक्ति-सौन्दर्य-निधान हैं। यद्यपि उनके शील मे भक्तों ने काफी लाभ उठाया है तथापि उसके कारण उनकी ओर भक्त उतनी मात्रा मे आकृष्ट नहीं हुए हैं, जितनी मात्रा मे उनके अविरल सौन्दर्य के कारण। उनकी शक्ति के प्रताप से भक्तो को निर्भयता तो प्राप्त हुई है, पर उसके कारण उनमे भक्तों की आसक्ति-अनुरक्ति नही हुई है। भक्तो के मन मे मधुर भाव की उपासना का स्रोत बहानेवाला उनका अलौकिक सौन्दर्य ही है।

केवल शील और शक्ति के लिए मधुर भाव की उपासना हो भी नही सकती। मधुर भाव की उपासना तो केवल अनुपम सौन्दर्य के निमित्त ही सम्भव है। राम यदि रूपवान न होकर केवल शीलवान और शक्तिमान ही होते, तो अपने दर्शन मात्र से भक्तो को कदापि मुग्ध न कर सकते। शील और शक्ति तो सौन्दर्य के ही शोभावर्द्धक है।

सौन्दर्य के अतिरिक्त उपास्य के अन्यान्य गुण उपासक के लिए चित्ताकर्षक भले ही बन जायँ, चितचोर नही बन सकते। चितचोर तो केवल अनवद्य सौन्दर्य ही हो सकता है। वास्तव मे चितचोर सौन्दर्य ही दूसरों से अपनी उपासना करा सकता है। वह भी मधुर भाव की उपासना तो एकमात्र सर्वाङ्गसुन्दर की ही हो सकती है। इसीलिए, भगवदैश्वर्य मे भी सौन्दर्य ही सर्वोपरि है।

भक्तजन प्राय: कहा भी करते हैं—किशोर राम का चितचोर रूप जनकपुर की युवतियों के नयन-मन मे घर कर गया था, इसीलिए वे व्रजमण्डल की गोपियाँ होकर अवतरी और उनका मनोरथ सफल करने के लिए राम स्वय ही गोपिकावल्लभ कृष्ण हुए। यह रहस्य तो तत्त्वज्ञ ही जानें; पर इसमे रञ्चमात्र सन्देह नही कि राम के अनिन्द्य-अमन्द रूप ने जड-चेतन पर जादू डालने मे विस्मयविवर्धक सफलता पाई। जहाँ कही राम गये, चराचर पर मोहिनी डाल दी।

जनकपुर मे तो राम सर्वालङ्कारभूषित दुल्लह बने थे। अत: वहाँ राजर्षि जनक-जैसे विदेह योगी का भी मन मुट्ठी मे कर लिया था, फिर औरो की तो बात ही क्या। उसके बाद तो जंगल के रास्ते मे ग्रामीण नर-नारियों पर, तपोवनों मे ऋषि-मुनियों पर, चित्रकूट में कोल-भिल्लों पर, रणभूमि मे शत्रु राक्षसों पर; यहाँ तक कि जंगली और समुद्री जन्तुओं पर भी राम के रुचिर रूप का जादू चल गया। उनके 'निज इच्छा निर्मित तनु' मे कैसा अद्भुत सौन्दर्य भरा था, यह सीता-सखी की उक्ति से ही ज्ञातव्य है—'गिरा अनयन नयन बिनु बानी।'[1] ऐसे अनिर्वचनीय दिव्य

१. प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना, कहि नहिं सकहिं तिनहिं नहिं बयना। –(तुलसी)

रूप का रस पीने के लिए निर्विकार दृष्टि चाहिए। वैसी निष्कलंक दृष्टि भक्तों अथवा सन्तों की ही हो सकती है। इस ग्रन्थ में उस कोटि के सन्त भक्तों की उपासना-प्रणाली का वर्णन अतिशय हृदयग्राहिणी शैली में किया गया है। जहाँ-कहीं उपासना-परक ग्रन्थों की चर्चा है, वहाँ ऐसा अनुभव होता है कि मधुर भाव का असली भक्ति-साहित्य जब प्रकाशित हो जायगा, तब भगवान् राम का सौन्दर्य-माधुर्य उन मर्यादादर्शवादी भक्तों को भी लुभावेगा, जो 'जटिलस्तपस्वी' रण-रंगधीर महारथी राम के उपासक हैं।

ग्रन्थकर्त्ता इस समय बिहार-राज्य के शिक्षा-विभाग में उपनिर्देशक हैं। आप इस परिषद् के और हिन्दू विश्वविद्यालय-कोर्ट के भी सदस्य हैं। पहले आप औरंगाबाद (गया) के सच्चिदानन्दसिंह-डिग्री कालेज के प्रिन्सिपल थे। उससे भी पहले आप प्रयाग के प्रसिद्ध मासिक 'चाँद' और साप्ताहिक 'भविष्य' तथा काशी के साप्ताहिक 'सनातनधर्म' के प्रधान सम्पादक रह चुके थे। आप दस वर्षों (सन् १९३२-४२ ई०) तक गीता प्रेस (गोरखपुर) के हिन्दी मासिक 'कल्याण' और अँगरेजी-मासिक 'कल्याण-कल्पतरु' के संयुक्त सम्पादक रह चुके हैं। आप शाहाबाद जिले के निवासी हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय (काशी) से आपने सन् १९३० ई० में हिन्दी और अँगरेजी में एम्० ए० पास किया। हिन्दी के आध्यात्मिक साहित्य को आपकी देन उल्लेखनीय है। भक्ति-साहित्य की रचना में ही आपकी विशेष अभिरुचि एवं प्रवृत्ति है। आपकी प्रकाशित पुस्तकों से आपकी परिष्कृत रुचि का परिचय मिलता है—'मीरा की प्रेम-साधना', 'धूपदीप', 'सन्त-साहित्य', 'मेरे जीवन-मरण के साथी'। प्रथम और अन्तिम पुस्तक में सहृदय लेखक के जो मनोभाव व्यक्त हुए हैं, उनका विकसित रूप इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होगा।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से विशेषतः साहित्यिक शोध के योग्य ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं। आशा है कि इस ग्रन्थ के अध्ययन से शोधकर्त्ता सज्जनों को इस दिशा में अग्रसर होने की पर्याप्त प्रेरणा मिलेगी।

चैत्र पूर्णिमा, शकाब्द १८७९
विक्रमाब्द २०१४, ख्रीष्टाब्द १९५७

शिवपूजन सहाय
(सञ्चालक)

'रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना'

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

परम गुरुदेव

पुण्यश्लोक

महामहोपाध्याय पंडित श्री गोपीनाथ जी कविराज

की

पुनीत सेवा

में

सादर सभक्ति सप्रीति

समर्पित

'माधव'

'रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना'

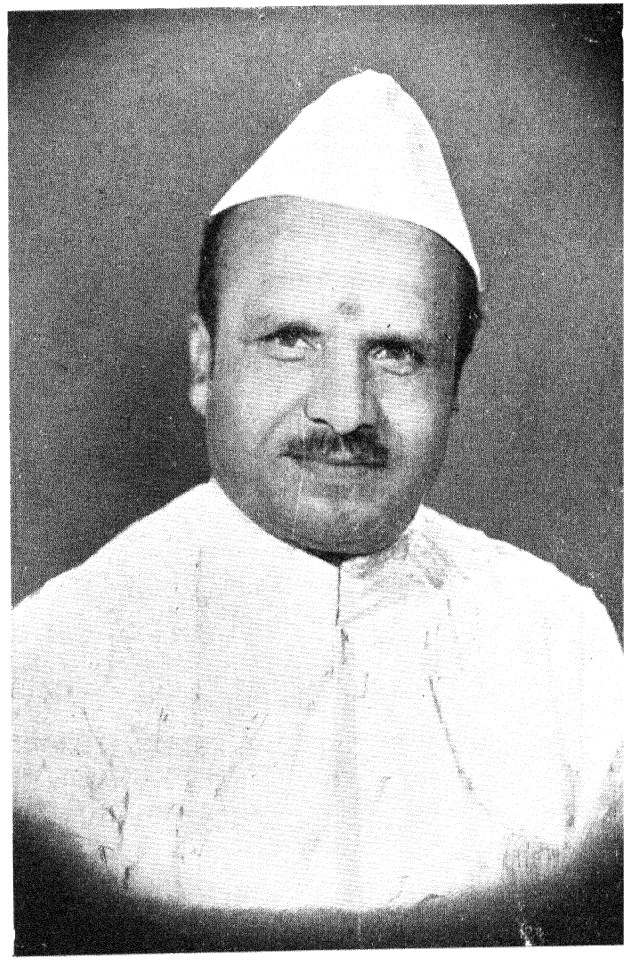

ग्रंथकार

निवेदन

भगवान् की कृपा और सन्त-महात्माओं के आशीर्वाद से यह ग्रन्थ पूरा हुआ और इसे आज पाठकों के हाथ में देते हुए मुझे अपूर्व प्रसाद की अनुभूति हो रही है। अवश्य ही इस ग्रन्थ में सन्त-महात्माओं का अनुभव है और मैंने यथासम्भव उसे एक ढंग से सजाकर प्रस्तुत कर दिया है। सन्त तुकाराम के शब्दों में मैं कह सकता हूँ—"सन्तों की उच्छिष्ट उक्ति है मेरी बाणी। जा उसका भेद भला मैं क्या अज्ञानी।"

रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना-सम्बन्धी जो कुछ भी काव्य है, वह अब तक प्रायः उपेक्षित रहा है। इसके कई कारण हो सकते हैं। परन्तु, मेरी दृष्टि में इसका मुख्य कारण यह है कि रामभक्ति-साहित्य की धारा मर्यादावादिनी रही है और इसलिए प्रायः ऐसा मान लिया जाता रहा है कि उसमें शृंगारोपासना के विकास के लिए कम अवकाश है या है ही नहीं। विद्वानों ने इस रसिकोपासना के साहित्य को बड़ी ही उपेक्षा की दृष्टि से देखा। इस साहित्य के सम्बन्ध में आचार्य शुक्लजी ने अपने इतिहास में जो कुछ लिख दिया, उससे भी बहुत भ्रम फैला है। आचार्य शुक्लजी स्वयं विशुद्ध मर्यादावादी थे। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि वे रामभक्ति के रसिकोपासना-सम्बन्धी साहित्य को देखने का अवसर न पा सके। यहाँ तक कि गोस्वामी तुलसीदास जी की गीतावली के उत्तरकाण्ड में आये हुए कुछ शृंगारिक पदों में शुक्ल जी ने सूरदासजी की शृंगारिक रचना का अनुकरण माना और इस प्रकार लगभग चार सौ वर्ष के इस सुविकसित साहित्य के सम्बन्ध में अपने स्वच्छन्द दृष्टिकोण का परिचय दिया। इस सम्पूर्ण साहित्य को अमर्यादित बताकर अलग कर देना साहित्य के अध्येता के लिए शोभा नहीं देता। भगवान् राम के दिव्य पुनीत चरित को और उनकी दिव्य लीलाओं को एक सीमा में बाँधना उचित नहीं प्रतीत होता। निश्चय ही यदि शुक्ल जी यह सारा साहित्य देखने का अवसर पा सके होते, तो इसके सम्बन्ध में उन्होंने जो विचार व्यक्त किये हैं, उन्हें सम्भवतः बदलना पड़ता।

स्वामी मधुराचार्य से लेकर श्री रूपकला जी तक अनेक सन्त-महात्माओं और अनुभवी साधकों ने रसिकोपासना में अपने अनुभव को बड़ी ही भव्य सुन्दर शैली में व्यक्त किया है और हजारों ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनमें यह उपासना-साहित्य विद्यमान है और जिसका अध्येता कभी घाटे में नहीं रहेगा। साहित्य के अध्ययन के लिए अपनी मान्यताओं और निजी राग-द्वेष से मुक्त हो जाना अनिवार्यतः आवश्यक है। साहित्य का इतिहास लिखने के लिए तो तटस्थता और राग-

द्वेषशून्यता एक अत्यन्त आवश्यक गुण माना जाना चाहिए। अपनी निजी मान्यताओं की दृष्टि से देखने पर साहित्य का स्वस्थ और स्वच्छ रूप हमारे सामने नही आ सकता। अस्तु;

लगभग बीस-बाईस वर्ष पूर्व मुझे एक हस्तलिखित पोथी अपने प्रिय सुहृद् डा० राजबली पाण्डेय (प्रिन्सिपल, कालेज ऑव इण्डालॉजी, काशी-हिन्दूविश्वविद्यालय) से मिली, जिसका नाम है 'भक्तिरसामृतार्णव'। वह पत्राकार लगभग छः सौ पृष्ठो मे है और जो १७ वी शती के अन्तिम भाग मे लिखी गई है। उसमे रामभक्ति और कृष्णभक्ति की अष्टयाम-उपासना पर अलग-अलग पदों का संकलन किसी भक्त ने किया है, जिसने अपना नाम देना उचित नही समझा। इस पोथी को लिपि की कठिनाई से पढे जाने मे लगभग छ महीने लगे। परन्तु, यह परिश्रम व्यर्थ नहीं गया। क्योंकि, एक बात बहुत स्पष्ट रूप से सामने आई कि कृष्णभक्ति की तरह रामभक्ति की भी अष्टयाम-उपासना का एक सुव्यवस्थित रूप रखा जा सकता है। परन्तु, काल-प्रवाह में वह विचार जैसे खो-सा गया और इस सम्बन्ध मे कुछ आगे करने की रुचि न रही। परन्तु, भक्तिरसामृतार्णव मेरे पीछे पड़ी रही। मैंने उसका साथ छोड़ दिया, परन्तु वह मेरे साथ लगी रही। और जहाँ भी जाता था, मेरी पेटी मे मेरे साथ-साथ घूमती रही।

लगभग चार वर्ष पूर्व काशी मे स्वनामधन्य महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ जी कविराज के दर्शनो के लिए गया। पूज्य श्री कविराज जी महोदय से कुछ लिखने का आदेश मांगा, परन्तु क्या विषय हो, इसका निर्णय न हो सका। बात वही समाप्त हो गई होती, यदि उसी दिन मेरे बाल्यबन्धु और हिन्दी-साहित्य के गौरवस्तम्भ प० हजारीप्रसाद द्विवेदी के दर्शन न हुए होते। आचार्य द्विवेदीजी ने यह राय दी कि रामभक्ति साहित्य की मधुर उपासना पर अभी तक ठीक से विचार नही किया गया है और यह साहित्य बहुत कुछ तिरस्कृत और उपेक्षित पड़ा है। इसीलिए, इसी पर कुछ लिखा जाना चाहिए। हम दोनो महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज जी के यहाँ गये। उन्होंने कृपापूर्वक स्वीकृति प्रदान कर दी।

आरम्भ मे तो इस कार्य को बहुत सुगम और सरल समझा था, पर जैसे-जैसे मैं गहराई मे उतरता गया, मेरी कठिनाइयाँ बढती गई। इसमे सन्देह नही कि श्री कविराज जी का वरद हस्त मेरे मस्तक पर था, और भाई हजारीप्रसाद जी का हाथ मेरी पीठ पर था। जहाँ कही भी भटक या भरम गया, वही उन दोनों की सहायता सदा मेरे साथ रही। यह निस्संकोच स्वीकार करना चाहिए कि जो कुछ विचार इस ग्रन्थ मे किये गये है, उन पर यहाँ से वहाँ तक श्री कविराज जी की छाप है। उन्ही से सुनी बातो का आधार लेकर यथाश्रुत और यथागृहीत मैंने अपने विचार प्रकट किये है। इस ग्रन्थ के प्रणयन मे आदि से अन्त तक श्री कविराज जी और श्री द्विवेदीजी का हाथ रहा है। परन्तु, मेरा काम बहुत कठिन हो गया होता और शायद मैं इसे बीच में ही छोड़कर भाग गया होता, यदि श्री हनुमत्-निवास के महात्मा रामकिशोर शरण जी और श्री प्रमोद रहस्यवन (अयोध्या) के स्वामी परमानन्द जी का सहारा न मिला होता। इन दोनो कृपालु महात्माओं ने उन्मुक्त

रूप से इस कार्य मे मेरी सहायता की। और, इनके यहाँ प्राचीन हस्तलिखित अत्यन्त दुर्लभ ग्रन्थों का जो संग्रह है, उसे देखने और नोट लेने की स्वतन्त्रता प्रदान कर मेरा अनन्त उपकार इन दोनों ने किया है। अयोध्या मे मणिपर्वत पर श्री रामकुमार दास जी के पास ऐसे ग्रन्थों का एक खासा अच्छा संग्रह है। उनके पुस्तकालय से भी मुझे लाभ हुआ। परन्तु, स्वामी परमानन्द जी और महात्मा रामकिशोरशरण जी की सहायता के बिना मेरा काम कभी पूरा नही हो पाता। आरम्भ मे श्री रूपकलाकुञ्ज के श्री जनकदुलारीशरण जी ने भी इस कार्य मे मेरी बड़ी सहायता की थी। मुझे दु ख है कि इस ग्रन्थ के पूरा होने के पहले ही उनका साकेतवास हो गया। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे गालवाश्रम (जयपुर), चित्रकूट, काशी, अयोध्या, जनकपुर (मिथिला) आदि कई स्थानों मे भ्रमण करने का अवसर मिला। अनेक महात्माओं ने अनेक प्रकार से मेरी इसमे सहायता की। काशी के सकटमोचन के महात्मा इस रस के उपासक है। और, उनसे इस उपासना की परम्परा को प्राप्त करने मे बडी सहायता मिली। निश्चय ही सबके मूल मे भगवान् की कृपा रही है जिसके कारण ही अत्यन्त गुप्त और दुर्लभ हस्तलिखित साहित्य के अवलोकन-अनुशीलन का अवसर मिला। श्रावणकुञ्ज (अयोध्या) से भुशुण्डी रामायण की मूल हस्तलिखित प्रति, जिसमे ६०००० अनुष्टुप् श्लोक के छन्द है, प्राप्त करने मे बड़ी कठिनाई हुई। उस समय यदि 'कल्याण'-सम्पादक स्वनामधन्य पूज्य श्री भाई जी श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार ने मेरी सहायता नही की होती, तो इस ग्रन्थ के देखने से मै वञ्चित रह जाता। अन्त मे गीता प्रेस ने इस पूरी पोथी का फोटो-स्क्रिप्ट तैयार कर लिया और अब सम्भवतः वह अनमोल ग्रन्थ सबके लिए उपलभ्य हो सकेगा। सैकड़ों ऐसी पुस्तके, जो सैकड़ों वर्षो से बेठन मे बँधी चली आ रही है और जिनका एक मात्र उपयोग धूप, दीप और आरती दिखलाकर पूजन के सिवा और कुछ नही है मैने देखी, पढी और नोट लिये। पूजा की पुस्तको से नोट लेना साधु-महात्माओं की दृष्टि मे एक बडी अटपटी-सी बात थी। परन्तु, भगवान् की कृपा-शक्ति से यह कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। अवश्य ही, चित्रकूट और अयोध्या मे, गलतागद्दी (जयपुर) और जनकपुर में अभी ऐसे अनेक ग्रन्थ होगे जो रसिकोपासना साहित्य के हृदयंगम के लिए अनिवार्यतः आवश्यक होंगे। जिज्ञासुओ को इनका पता लगाना चाहिए।

रामभक्ति के रसिकोपासना के संतों का एक विशेष अभिज्ञान यह है कि वे तिलक मे श्री के नीचे बिन्दी लगाते है। प्रायः रामरज मे रँगे वस्त्र धारण करते है, गले मे नाना प्रकार के तुलसी के आभूषण पहनते है। हल्दी का तिलक लगाते है और मस्तक को श्री युगलनाम से अंकित करते है। लीला-विहार मे मिथिला भाव, अवध भाव और चित्रकूट भाव मुख्य है और इसीके आधार पर 'स्वसुखी', 'तत्सुखी' और 'चित्सुखी' उपासना का क्रम चलता है। जैसे भक्तों ने भगवान् श्री-कृष्ण को मथुरा मे पूर्ण, द्वारिका में पूर्णतर और वृन्दावन में पूर्णतम माना है उसी प्रकार यहाँ भी भगवान् राम को अवध में पूर्ण, मिथिला में पूर्णतर और चित्रकूट में पूर्णतम माना गया है।

रसिकोपासना के अधिकाश उपासक चित्रकूट भाव से अष्टयाम भजन करते है, जहाँ परकीया रति की पराकाष्ठा है अवश्य ही यह स्वीकार करना होगा कि इस उपासना के साहित्य मे कुछ अनधिकारियो द्वारा विकृति आई है, पर उससे बिचक कर यदि हम आगे खड़े हुए और इसके स्वस्थ साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन से वचित रह गये तो यह हमारा दुर्भाग्य होगा। प्राय. इसी कारण इस साहित्य के प्रति घोर अन्याय हुआ है। परन्तु देखता हूँ, अब इधर इस ओर विद्वानो का ध्यान जाने लगा है और इस साहित्य का अनुशीलन अपेक्षाकृत विशेष अभिरुचि और सहानुभूति के साथ होने लगा है। यह शुभ लक्षण है।

लगभग डेढ वर्ष सामग्री-सकलन करने मे लग गये। जिसमे हजारो मील की यात्रा और हजारो रुपयो का व्यय हुआ। परन्तु, मै हरि-कृपा मे सकल्प बाँधे हुए था कि इस कार्य को पूरा करके ही दम लूँगा। भगवान् भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु है और मेरी चाह को उन्होने अपनी प्रीति से अभिसिचित कर दिया। लगभग डेढ़ वर्ष तक काशी मे रहकर, गगाजल का सेवन कर, इस ग्रन्थ को मैंने पूरा किया। जैसे-जैसे अध्याय लिखकर टाइप होते गये, वैसे-वैसे श्री कविराज जी और श्री द्विवेदी जी को इसे दिखाता गया। दोनो महानुभावो ने बड़े स्नेह और सहानुभूति से इसमे मेरा पथ-प्रदर्शन किया। प्रेस-कॉपी तैयार होने के पूर्व मै इसे कुछ और अनुभवी सन्तो तथा रसिकोपासको को दिखला लेना चाहता था। मेरे सामने स्वामी श्री शरणानन्द जी महाराज, श्री अखण्डानन्द जी महाराज और स्वामी श्री चक्रधर जी थे। पाण्डुलिपि की एक प्रति श्री कविराज जी के पास देखने को भेजी। स्वामी चक्रधर जी महाराज ने बडे प्रेम से आरम्भ के दो अध्याय देखे और उनके आदेश के अनुसार उसमे आवश्यक सशोधन के साथ आवश्यक परिवर्त्तन और परिवर्द्धन भी किये। श्री कविराज जी तो आदि से अन्त तक सूत्रधार ही रहे। अत्यन्त समयाभाव होने पर भी भाई श्री द्विवेदीजी समय-समय पर अपने अमूल्य सुझावो से मेरा पथ प्रकाशित करते रहे। इस तीन वर्ष की अवधि को जब मै पीछे मुड कर देखता हूँ, तब पग-पग पर भगवान् की कृपा और सन्तो के आशीर्वाद के चमत्कारिक प्रभाव के दर्शन होते है। ऐसा लगता है कि प्रभु ने मुझ जैसे अपात्र और अज्ञ को निमित्त बनाकर अपना कार्य स्वय अपने ही सम्पन्न किया।

इस ग्रन्थ को लेकर कई बाते मन की मन मे ही रह गईं। मै चाहता था कि इस सम्पूर्ण साहित्य का रस, छन्द, अलकार आदि की दृष्टि से एक विधिवत् साहित्यिक मूल्याकन किया जाता। मैंने यह भी सोचा था कि कृष्णभक्ति की मधुर उपासना के साथ-साथ सूफी मधुरोपासना और ईसाई मधुरोपासना की एक तुलनात्मक समीक्षा रामभक्ति की मधुर उपासना के साथ की जाय। मेरे मन मे एक यह भी वासना थी कि इस सम्पूर्ण साहित्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय। परन्तु, समय के सकोच से और जीवन की घोर कार्य-व्यस्तता के कारण ये अरमान मेरे मन मे ही रह गये। भगवान् की इच्छा हुई, तो दूसरे सस्करण मे इन प्रसंगों का सन्निवेश हो सकेगा। लगभग तीन वर्ष तक ग्रीष्मावकाश और पूजावकाश मे, डा० बी० एल्० आत्रेय (काशी) के 'आत्रेय-निवास'

में बिल्ववृक्ष के नीचे उस एकान्त कमरे में रहकर इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। डा० आत्रेय ने जिस स्नेह के साथ मुझे अपने सत्संग का लाभ दिया, वह आजीवन चिरस्मरणीय रहेगा। बन्धुवर डा० राजबली पाण्डेय और डा० रामअवध द्विवेदी ये दोनों ही मेरे सतीर्थ हैं और इन दोनों का स्नेह और सहयोग सदा मुझे प्राप्त रहा।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने जिस स्नेह और सौहार्द का परिचय दिया है, उसे मैं कभी भूल नही सकूँगा। यह ग्रन्थ इतना शीघ्र और इतनी सुन्दरता से प्रकाशित हो सका, इसका सारा श्रेय परिषद् को है। गीता प्रेस (गोरखपुर) ने चित्र छापकर बहुत ही थोड़े समय में दे दिया, यह उसकी कृपा और मेरे प्रति अपनापन है।

इस ग्रन्थ को पूरा कर चुकने पर मुझे गंगा-स्नान का आनन्द मिला है। मुझे इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि 'कल्याण'-सम्पादक पूज्य भाई जी श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार की दृष्टि से यह ग्रन्थ पूत हो चुका है और परमगुरुदेव ऋषिकल्प महामहोपाध्याय पं० श्री गोपीनाथ कविराज जी ने इसका समर्पण स्वीकार किया है। मेरा इतना समय भगवान् की लीलाओं के रसास्वादन में, सन्तों के सत्संग में, और उनके अनुभवपूर्ण ग्रन्थों के अनुशीलन मे बीता, इसे मैं अपना परम-सौभाग्य मानता हूँ। सन्त महात्माओं से मैं यह भीख माँगता हूँ कि भगवान् के चरणों मे सदा मेरी प्रीति बढ़ती रहे।

रसिक सम्प्रदाय की उपासना तथा उसके साहित्य पर हिन्दी में यह प्रथम प्रयास है। निश्चय ही, अनजान में इसमें अनेक भूलें रह गई होंगी। सन्त महात्माओं, विद्वान् समालोचकों तथा साहित्यिक बंधुओं से मेरा नम्र निवेदन है कि मेरी भूलों को बतलाने की कृपा करें, ताकि मैं अगले संस्करण में उनका परिमार्जन कर सकूँ।

हरिः ओं तत्सत् श्रीकृष्णार्पणमस्तु

सचिवालय
पटना, जानकी-नवमी
संवत् २०१४ वि०

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

विषय-विवरण

पहला अध्याय

रागमयी भक्ति और उसकी वैष्णव-परम्परा

सच्चिदानन्द स्वरूप; उपास्य के दो गुण : परत्व, सौलभ्य; विधिभक्ति, रागमयीभक्ति; रागमयी भक्ति गोपनीय क्यों? रागानुगाभक्ति साधन नहीं, अपितु साध्य; रागानुगा के प्रकार-भेद; रागानुगा के अवान्तर भेद—प्रेमा, परा, प्रौढ़ा; शृंगार का रसराजत्व; आत्मरति, आत्ममिथुन; सखी-भाव : जीव का स्वरूप; रागमयी भक्ति का क्रम विकास : 'आलवार'; प्रणय का मधुर आत्मसमर्पण; रसिक भक्तों की परम्परा; रागमयी भक्ति की विवृति; भक्ति के लक्षण गौड़ीय मत में; रागात्मिका और रागानुगा; रागानुगा का मूलकारण; रागानुगा पुष्टिमार्ग में; रागानुगा श्री निम्बार्क मत में; रागानुगा में स्मरण की मुख्यता; साधना का क्रम; साधक देह, सिद्ध देह; मंजरी देह; मानसी सेवा; अजात रति, जात रति; अष्टयाम सेवा; सिद्ध देह एक उदाहरण; भाव देह; उपर्युक्त पुष्टि भक्ति की कुछ ज्ञातव्य बातें; यहाँ असाधना ही साधन है; भक्ति भी भगवान् की एक लीला ही है; लीला ही प्रयोजन; ब्रह्म संबंध तथा ताप; श्री हरिदासजी का 'पुष्टिमार्ग लक्षणानि'; शुद्ध भक्ति का लक्षण; 'नारद पाञ्चरात्र' का मत; श्रीमद्भागवत का मत; रागानुगा का मूलस्वरूप उत्तमा भक्ति; उत्तमा भक्ति—क्लेशघ्नी, शुभ-दायिनी, मोक्ष लघुताकृत, सुदुर्लभा, सान्द्रानन्द विशेषात्मा, भगवदाकर्षिणी; रागानुगा के भेद-कामरूपा, संबंध रूपा; संबंधरूपा भक्ति का स्वरूप; कामानुगा के भेद; भाव अथवा रति; जातरति भक्त के लक्षण—क्षान्ति, अव्यर्थ कालत्व, विरक्ति, मानशून्यता; आशाबन्ध, समुत्कण्ठा, नाम-गान में सदारुचि, भगवान् के गुण-कथन में आसक्ति भगवान्; के निवासस्थान में प्रीति; प्रेम; प्रेम का प्रकार-भेद; प्रणय अनुराग महाभाव; रति के प्रकार; अनुभाव; सात्त्विक भाव के प्रकार-भेद,—स्निग्ध, दिग्ध, रूक्ष; सात्त्विक भावों के पुनः चार भेद; सात्त्विकाभास; व्यभिचारी या संचारी भाव; स्थायीभाव; प्रीति; मधुरा; भक्ति और शक्ति।

(पृ० सं० १—२१)

दूसरा अध्याय

मधुर रस का स्वरूप और उसकी व्यापकता

जड जगत् चिज्जगत् का प्रतिफलन; चिज्जगत् के रस और जड जगत् के व्यापार; मधुर रस के आश्रय और विषय, मधुर रस की आत्मा, स्वकीया, परकीया, परकीयाभाव की रसात्मक उत्कृष्टता, नित्यगोलोक और नित्यचिन्मयी लीला, ज्योतिर्मय ब्रह्मधाम, व्रज-सुन्दरियों के प्रकार-भेद, सखी-भेद, व्रजरस, नायक भेद, सहायक भेद, परकीया मे रस की उत्कृष्टता क्यों? कृष्ण रति के उद्दीपन विभाव, व्रजवासी भाव, प्रसाधन, अन्यान्य, रति के अनुभाव, स्थायीभाव, ३३ व्यभिचारी भाव, मुख्य भक्ति रस के रग आदि, गौण भक्ति-रस, उद्दीपन-विभाव की विशेषता, अनुभावो की विशेषता, मधुरा रति के भेद (नायिका की दृष्टि से), मधुरा रति के भेद (भावो के अनुसार), घृतस्नेह और मधुस्नेह, मान, प्रणय, प्रणय के भेद तथा विकासक्रम, राग और उसके भेद, भाव या महाभाव, अधिरूढ, पुनर्मादन, समंजस पूर्वराग की दस दशाएँ, साधारण पूर्वराग की छह दशाएँ, नित्य लीला मे नित्यसंयोग, संयोग शृगार के दो भेद, सयोग शृगार के भेद-उपभेद, लीला के भेद, मूल मे एक आनन्द के लिए दो, मधुररस की उपासना की व्यापकता, सहजसाधनाओ की पृष्ठभूमि, समरस की अवस्था, गुह्य साधना की मान्यताएँ, पुरुषतत्व, नारीतत्त्व, सुषुम्ना-साधना, शिवतत्त्व, शक्तितत्त्व, बौद्धो का 'सहज' वैष्णव सहजिया मे राधाकृष्ण-तत्त्व, नाथपंथ की उपासना सूर्यचन्द्रतत्त्व।

(पृ० सं० २२–३७)

तीसरा अध्याय

भारतीय अंतरंग (एसाटरिक) धर्मसाधनाओं में मधुर भाव

(क) बौद्धसहजिया

बौद्धधर्म की लोकप्रियता, बौद्धयोगाचार मे अवलोकितेश्वर मैत्रेय और मजुश्री, दो शाखाएँ. हीनयान तथा वज्रयान 'सगीति', भगवान् बुद्ध का 'मानुसीतनु', गुह्य साधना का प्रवेश क्यो और कैसे? महायान, मत्रयान, वज्रयान, मनोवैज्ञानिक कारण, आदि बुद्ध के धर्मकाय, सभोगकाय, निर्माणकाय, सहजकाय, असग और नागार्जुन, तत्र की प्राचीनता, तीन भाव और सात आचार,—पशुभाव, वीरभाव और दिव्य भाव—वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार तथा कौलाचार, 'धारिणी' और उसके भेद, बौद्ध साधना मे मिथुन योग का प्रवेश क्यो और कैसे? पचमकार का रहस्य; सहजावस्था ही महा-सुख, सुखराज-महामुद्रा की अवस्था है, गुरु कृपा का स्वरूप-वैशिष्ट्य, 'धर्ममेघ' की स्थिति;

शून्यता और करुणा, प्रज्ञा और उपाय; अवधूतिका; युगनद्धतत्त्व; शून्यता और करुणा; 'समरस' का वास्तविक अर्थ, 'सुखावती', सहज विलास की स्थिति।

(ख) सिद्ध-सम्प्रदाय और रसेश्वर-दर्शन मे मधुर भाव

रसायन, सूर्य-चन्द्र सिद्धान्त, गीता का मत, बृहज्जाबालोपनिषद् मे सूर्यचंद्र तत्त्व; शिव-शक्ति सामरस्य, अमृतरसपान, खेचरी मुद्रा, सूर्यचन्द्र—स्त्री-पुरुष भाव, नाथ सिद्ध और बौद्ध सिद्धाचार्य, सिद्ध देह-दिव्य देह, वैदव देह–शाक्त देह।

(ग) कापालिक, नाथ तथा संत-साधना मे मधुर भाव

'सहज' की परम्परा, 'सहज' का सर्वमान्य अर्थ, पिण्ड ही ब्रह्माण्ड है, कौलमत मे सहज साधना, बौद्ध सिद्ध और कौलाचार, कुल और अकुल, शिवशक्ति अविच्छेद्य, योग और मोक्ष, जीव के पाँच बन्धन, कुण्डलिनी योग की साधना, चक्र-भेदन की प्रक्रिया, पशुभाव, वीरभाव, दिव्यभाव, सात प्रकार के आचार, कापालिक मत मे सहज साधना, वज्रयान मे और कापालिक मत मे सहजानद या महासुख, बौद्धमत मे सहज साधना का प्रवेश; कामोपभोग का साधना-क्षेत्र मे प्रवेश, ललना-रसना-अवधूती, उष्णीष-कमल, सहजानन्द, सहज साधनाओ का मूल अर्थ, श्री सुन्दरी साधना, कबीर का 'सहज', भक्त और पतिव्रता सती, दादू की मधुर साधना; नीलाम्बर-सम्प्रदाय।

(घ) वैष्णव सहजिया

प्रेम की परकीया रति, 'आनन्द भैरव' मे सहज-साधना का उल्लेख; परकीयारति मे सहज उपासना, रस और रति मदन और मादन, ब्रह्म, परमात्मा, भगवान्, सत् चित् आनन्द, सधिनी, संवित्, ह्लादिनी, भोक्ता भोग्या, लीला के तीन प्रकार, वन वृन्दावन, मन-वृन्दावन, नित्य वृन्दावन, स्वरूप लीला और रूपलीला, 'सहज', आरोप-साधना, आरोप-तत्त्व, रति और रस; रति के तीन भेद समर्था, समञ्जसा, साधारणी, प्रेम-सिद्धि, साधक की तीन कोटियाँ—प्रवर्त्त, साधक, सिद्ध, प्रेम साधना की आनन्दमयी स्थिति।

(पृ० सं० ३८–७७)

चौथा अध्याय

सिद्धदेह और लीला-प्रवेश

रागानुगाभक्ति मे प्रवेशाधिकार, लीलाविलास का आस्वादन; भावभक्ति; प्रेमाभक्ति; प्रेम ही परम पुरुषार्थ; सखी भाव मे प्रवेश, सबध-भाव, वयस, नाम, रूप; वास, सेवा;

सिद्ध देह क्या है ? अष्ट सखी अष्टमंजरी के नाम, वर्ण, वस्त्र, वय, दिशा, सेवा; साधक-देह और सिद्ध-देह अथवा भाव-देह और सिद्ध-देह; प्राकृत देह और उसके भेद : स्थूलदेह; सूक्ष्म देह; कारण देह : महाकारण देह; 'स्वभाव'; भाव-देह, स्वभाव-देह; स्वरूप-देह; 'स्वभाव' भाव और प्रेम; रस और ज्योति, भावदेह, प्रेमदेह, सिद्धदेह, नित्यलीला; चिन्मय राज्य।
(पृ० सं० ७८–८८)

पाँचवाँ अध्याय

अवतारतत्त्व तथा रामोपासना

सभी धर्म साधनाओं मे अवतार-तत्त्व, भगवत्स्वरूप के तीन प्रकार; अवतार के भेद. पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार; मन्वन्तरावतार, युगावतार, स्वयरूप, तदेकात्म रूप; आवेश; अवतार के सामान्य और विशेष हेतु; अवतारो के भेद-प्रभेद, प्रथम पुरुष, द्वितीय पुरुष, तृतीय पुरुष, गुणावतार, लीलावतार, मन्वन्तर अवतार, युगावतार; पूर्णावतार, अवतार-तत्त्व का मूल सिद्धात, मानवीय रस; अवतारवाद मे वैज्ञानिक विकासवाद; भागवत-धर्म का क्रम-विकास, रामभक्ति की ऐतिहासिकता, रामोपासना का क्रम विकास, हंस परम-हंस, उपासना-तत्त्व का आदिहेतु, ऋग्वेद का विराट् पुरुप, महाभारत का नारायणीय उपा-ख्यान, भागवतधर्म, सात्वत धर्म, रामोपासना के आदि प्रवर्त्तक शिव, रामोपासना . वैदिकीया तांत्रिकी ? 'सहस्रगीति' मे मधुरभाव, भगवान् राम की मधुरमूर्त्ति, रामभक्ति धारा मे मर्यादा की मुख्यता शरणागति . एकमात्र साधन; वैष्णवो का पचकाल; दास्यभाव और शरणागति; दास्य और मधुर का सन्निवेश, भागवत पुराण का प्रभाव।

(१) शिवसंहिता : एक विहंगम दृष्टि—ऐश्वर्य और माधुर्य, माधुर्य अधिकार; भाव-प्रकाशन, भगवान् का सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य, रस के मूर्त्तिमान् विग्रह, स्वरूप-प्रकाशन; 'रसो वै स ', शृंगार-साधना का स्वरूप-प्रकाश, भगवान् की प्रेमपिपासा, 'राम' शब्द का अर्थ, पारमार्थिक तत्त्व, अयोध्या . नित्य रासस्थली।

(२) लोमश-संहिता की दृष्टि में—शृगार-राज्य मे प्रवेश; चार मुख्य सखियाँ; चन्द्रकला रासरस की आचार्या।

(३) श्री हनुमत्संहिता : एक विहंगम दृष्टि—प्रेमामृत रसावेश, रास-रचना, अर्थ-पंचक; उज्ज्वल भक्ति-रस, उज्ज्वलभक्ति-रस का आश्रय, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, सात्त्विकभाव, स्थायीभाव, लीलाविलास, शृंगारी रामभक्ति का आधार ग्रथ . बृहत् कौशल खण्ड; गोस्वामी जी मे माधुर्य भाव की झलक, गीतावली मे केलिगृह का वर्णन, गीतावली मे केलिगृह का दर्शन; 'लता, प्रिया, अलि, सखी'– मर्यादा मे शृगार, शृगार मे मर्यादा।
(पृ० सं० ८९–११८)

छठा अध्याय

रामोपासना की रसिक-परम्परा

श्रीप्रेमलता जी की जीवनी मे रसिक-परम्परा, रसिक-साधना का नाम; निजगुरु की परम्परा, ग्रियर्सन की सूची, तपसीजी की छावनी मे हस्तलिखित ग्रंथ मे प्राप्त परम्परा, 'रहस्य-मय' मे प्राप्त रसिक-परम्परा; 'वैष्णव धर्म रत्नाकर' मे प्राप्त परपरा, 'मत्रराज-परपरा' मे प्राप्त परम्परा, मौलाना रशीद की तजकी रतुलफ्क्रा; श्रीसम्प्रदाय की दो शाखाएँ, 'महा रामायण' मे प्राप्त परम्परा, श्री विश्वभरोपनिषद् की टीका मे प्राप्त परपरा, श्री सीतोपनिषद् मे प्राप्त परम्परा, श्री रामनवरत्न सार सग्रह मे प्राप्त परम्परा, 'कल्याण कल्पद्रुम' मे प्राप्त परम्परा, 'प्रपत्ति रहस्य' मे प्राप्त परम्परा, श्रीरूपकला जी के 'भक्ति सुधास्वादतिलक' मे प्राप्त परपरा, जयपुर गालवाश्रम की परम्परा, मधुराचार्य, श्रुतिसुन्दरमणि सन्दर्भ, श्रीमधु-राचार्य जी की परम्परा, रसिक प्रकाश भक्तमाल, श्रीअग्रदास स्वामी, रसिक-सम्प्रदाय के मूल तत्त्व। (पृ० स० ११९–१४०)

सातवाँ अध्याय

रसिक-परम्परा का साहित्य

उपनिषद्-ग्रन्थ संस्कृत में

रसिकोपासना का साहित्य उपेक्षित क्यो? श्रीरामतापनीयोपनिषद्; श्री विश्वम्भ-रोपनिषद्; श्रीसीतोपनिषद्; सीता का स्वरूप एव प्रभाव, सीता की इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति; श्रीमैथिलीमहोपनिषद्, श्री रामरहस्योपनिषद्।

संहिता-ग्रन्थ—श्रीहनुमत्संहिता, श्रीशिवसंहिता, श्री लोमश संहिता, श्रीबृहद्ब्रह्म-सहिता; श्री अगस्त्य-संहिता, श्री वाल्मीकि-सहिता, श्रीशुक-सहिता, दिव्य-चित्रकूट, गोलोक अयोध्या का प्रतिबिम्ब, श्रीवसिष्ठ सहिता, दिव्य अयोध्या, दिव्य अयोध्या के बारह वन चार पर्वत; सदाशिव संहिता, सप्तावरण, श्रीमहाशभु-सहिता; हिरण्यगर्भ-संहिता; महासदाशिव-सहिता, ब्रह्मसंहिता।

स्तवराज और गीति—श्रीरामस्तवराज, श्री जानकीस्तवराज; श्री जानकी गीत; श्रीसहस्रगीति।

रामायण—श्रीवाल्मीकीय रामायण, आनन्दरामायण, महारामायण; आदि रामायण; रामायण-मणिरत्न, मैन्द रामायण; मजुलरामायण, भुशुडी रामायण।

नाटक, उपाख्यान, लीला-चरितकाव्य—महानाटक अथवा हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघवम्; मैथिली-कल्याण, उदार राघव, जानकी हरण, सत्योपाख्यान, बृहत् कौशल-खण्ड, माधुर्य केलिकादम्बिनी, राम लिंगामृत।

प्रमाण अथवा सिद्धान्त-ग्रन्थ—श्रीसुदरमणि सदर्भ; श्रीरामतत्त्व प्रकाश, श्री राम-नवरत्नसार सग्रह, श्रीसीतारामनाम प्रताप-प्रकाश, श्रीरामतत्त्वभास्कर, उपासनात्रय सिद्धान्त, श्रीरामपटल, शृगारिक खण्ड काव्य, मेघदूत-काव्य के अनुकरण पर लिखित छह दूतकाव्य—हंस-संदेश अथवा हंसदूत, भ्रमरदूत, भ्रमर संदेश, कपिदूत, कोकिलसदेश और चन्द्रदूत, गीत-गोविन्द के अनुकरण पर लिखित रामसीता सबधी-काव्य—रामगीतगोविन्द, गीताराघव, जानकी गीता, रामविलास, संगीत रघुनन्दन १८ वी शताब्दी, राघवविलास, रामशतक, समार्या-शतक, आर्यारामायण। (पृ० सं० १४१–१८६)

आठवाँ अध्याय

रसिक-परम्परा का साहित्य

(हिन्दी मे)

अष्टयाम, श्रीअग्रस्वामीकृत 'भगवान् राम के सखा और सखी'—ध्यान, सखियो की सेवा का वर्णन, सोलह शृगार, ध्यान मजरी—(श्री अग्रस्वामी या अग्रदासजी)—श्रीरामका ध्यान, श्रीसीताजी का ध्यान, पार्षदों का ध्यान, रामाष्टयाम (श्रीनाभादासजी)—द्वादश-वन-वर्णन, महल की शोभा, अन्त पुर का वर्णन, अन्तःपुरमे सखियो की सेवा, भोजन के समय नृत्य सगीत, शयन, नेह प्रकाश (महात्मा बाल अली जी)—सखियन की नामावली और सेवा, सखी और दासी मे भेद, श्रीरामजी के वचन सीताजी के प्रति, रस-विलास, प्रेम-विलास, रूप-विलास, सखियो के वचन जानकी के प्रति, सखी-वचन राम के प्रति, सीता की छवि, प्रभाव-वर्णन, ध्यान मजरी (बाल अलीजी), लगन पचीसी (श्रीकृपानिवासजी), अनन्य चिता-मणि (श्रीकृपा निवासजी), रामरसामृत सिन्धु, रासपद्धति (महाराज कृपा निवासजी), भावनापचीसी (कृपानिवासजी)—श्री जानकी जी की सखियाँ और उनकी सेवा, श्रीरामजी की सखियाँ और सेवा; पदावली (श्रीकृपानिवास), श्रीस्वामी जनकराज किशोरी शरण 'श्री रसिक अली'—लिखित—सिद्धान्त मुक्तावली, सिद्धान्तानन्यतरंगिणी, अमररामायण (संस्कृत), रहस्य रत्नमाला, सिद्धान्त चौतीसी, होलिका-विनोद, कवितावली, श्रीजानकी करुणा भरण, अध्यायत्रयी, दोहावली, आन्दोलन रहस्य दीपिका (श्रीरसिकअली), पञ्चशतक (श्रीरामचरणदास 'करुणा सिंधु'), विवेकशतक—रामरसामृतखण्ड—शोभा-वर्णन, रसमालिका

(श्रीरामचरणदास जी)—सिद्धान्त, वन-विहार, वसन्त-विहार, सखियों का नृत्य, शृंगार, नृत्यविहार, जल-क्रीडा, हिंडोला, अष्टयाम पूजाविधि (श्रीरामचरण जी),—सखियो और सीता का शृगार, श्रीरामजी का शृगार, सखियो द्वारा सीता और राम का शृगार, युगल प्रिया पदावली, शृगार रहस्यदीपिका, अष्टयाम (श्री जीवाराम 'जुगलप्रिया' जी), उज्ज्वल उत्कण्ठा-विलास (श्रीयुगलानन्यशरण 'हेमलता' जी), अर्थपञ्चक (श्रीयुगलानन्यशरण जी), श्री-जानकी सनेहहुलास शतक (श्रीयुगलानन्यशरण जी), सतसुख प्रकाशिका पदावली (स्वामी युगलानन्य शरण जी), श्रीसीतारामनाम परत्व पदावली (स्वामी युगलानन्यशरण जी), श्रीप्रेमपरत्वप्रभा दोहावली (श्रीयुगलानन्यशरणजी), श्रीलवकुशशरण लीलाबिहारी जी—विरह-ज्वर, अष्टयाम-भावना, रूप-सुषमा, श्रीयुगलविनोद विलास—युगलविहार, उभय प्रबोधक रामायण (श्री बनादास), श्रीसीताराम झूलाविलास (श्रीरसरगमणि जी), श्रीराम-नामयशविलास, श्रीरामरूपयश विलास, श्रीसरयू रसरंग-लहरी तथा अवधपञ्चक (श्रीरस-रंगमणि), श्रीसीताराम शोभावली प्रेमपदावली (श्रीसीताराम शरण रामरसरग मणि)—अंग-प्रत्यग-वर्णन; वसन-आभूषण वर्णन, ऋतुवर्णन आदि, श्रीरामशतवदना (श्री सीताराम शरण रामरसरंगमणि), श्रीरामरसरंगविलास (श्रीरामरसरगमणि);—श्रीराम का ध्यान वर्णन, श्रीसीताजी का ध्यान-वर्णन, श्रीसीताजी का प्रभाव-वर्णन, कनक भवन मे प्रिया-प्रियतम की झाँकी, रामझाँकी विलास (श्रीरामरसरगमणि), सियबरकेलि-पदावली (श्री ज्ञानाअली सहचरि जी),—आत्म-परिचय, राम-जन्म की बधाई, जानकी जन्म की बधाई, लगन, जानकी नौरत्न माणिक्य (रामसखेविरचित), रामसखेकृत पदावली, नृत्यराघव मिलन (श्रीराम सखेजी),—रसिक लक्षण, नर्म सखा, श्रीसीतायन (श्रीरामप्रियाशरण प्रेमकली), बाल-विहार, अयोध्यावर्णन, श्रीकाष्ठजिह्वास्वामी के कुछ लीथो मे छपे ग्रन्थ—श्रीजानकी मगल, श्रीराममगल, भूषण रहस्य, अश्विनीकुमार बिन्दु, हनुमत बिन्दु, श्यामलगन, श्यामसुधा, जानकी-बिंदु, कृष्णसहस्र परिचर्या, गयाबिन्दु, शिसा-व्याख्या (सस्कृत) साख्यतरग और वैराग्य प्रदीप; बृहद् उपासना रहस्य (श्रीप्रेमलता जी),—नाम प्रसग, रूप प्रसंग, धाम प्रसंग, उपासक प्रसंग—युगलोपासक, उपासना, पञ्चमस्कार प्रसग, अष्टयाम-भावना प्रसग, सबध का महत्त्व, रासकुञ्ज, गुह्य, रघुराजविलास (श्रीरघुराज सिहजी)—महाराज, भजनरत्नावली (श्रीरामनारायण-दास)—भजन रौंनावली, सीता का रूप, राम का रूप, शृगारप्रदीप (श्रीहरिहर प्रसाद); सियारामचरण चन्द्रिका (कविराज लछिमन); श्रीरामचन्द्र विलास (श्रीनवलसिह 'श्री शरण' युगल अलि), भावनामृत कादम्बिनी (श्रीयुगलमञ्जरीजी), समय रस वर्द्धिनी (श्रीसिया अली), नित्य रासलीला (श्रीसियाअली), श्यामसखे की पदावली, श्रीसीताराम शृगाररस (श्रीमहाराजदास जी)—दिव्य अयोध्या; श्रीरामप्रेमामजरी—प्रेममजरी विलास, युगलो-त्कंठ-प्रकाशिका (जयपुर चन्देली के श्रीसीतारामशरण 'शुभलीला' जी) वैष्णवविनोद (श्री-

वैष्णवदास); बृहत् पद विनोद (रसदेव कवि); विनय चालीसी (श्री रूपसरसजी); झूलन विहार संग्रहावली (श्रीकृपानिवास जी); सियाराम पचीसी; भजनरस माल; रामप्रियाविलास; भक्तिप्रमोदिनी; सीताराम नखशिख वर्णन (प्रेमसखी); फूल बँगला (श्री मोदलता जी); सीताराम संयोग पदावली (परमभक्त श्री बैजनाथ कुरमी); श्रीरामविलास-श्रीरामजी का नखशिख-वर्णन, जनकपुर में सखी के साथ हाव विलास, रामका उत्तर; रम्यपदावली; भक्त-मनरंजनी (प्रेमसखी); महारसोत्सव अर्थात् सीताराम-रहस्य,—सखियों के नाम; भावना अष्टयाम अथवा श्रीसीताराम मानसी पूजा (श्रीसीतारामशरण रामरसरंगमणि जी)—ध्यान।

(पृ० सं० १८७–४२१)

परिशिष्ट (क)

महावाणी। (पृ० सं० ४२२–४३२)

रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना

रामभक्तिमें मधुर उपासना

युगल सरकार

गीताप्रेस, गोरखपुर

पहला अध्याय

रागमयी भक्ति और उसकी वैष्णवपरंपरा

एक अनिर्वचनीय सच्चिदानन्द स्वरूप शाश्वत सत्ता विभु रूप में व्याप्त है। उसके दो रूप है––एक निर्गुण निराकार निर्विकार स्वरूप और दूसरा निखिल ऐश्वर्य, माधुर्य, आनन्द, सौन्दर्य, अचिन्त्य अनन्त सद्गुणों का परम धाम स्वरूप। एक के ही ये सगुण स्वरूप अनेक हैं। उनके नित्य चिन्मय दिव्य धाम अनेक है, उनकी नित्य चिन्मय अगजगमोहिनी दिव्य लीला अनन्त है। उन दिव्य धामों में वही व्यापक निर्गुण ब्रह्म सगुण हो कर नाना रूपों में नित्य क्रीड़ा किया करता है। जैसे निर्गुण स्वरूप विभु है वैसे ही सगुण स्वरूप भी सर्वगत है। सभी सगुण स्वरूप, उनकी सभी लीलाएं सदा सर्वत्र व्याप्त है। देश-काल की कल्पना वहां नहीं जाती।

वह पूर्ण वस्तु अनन्त ऐश्वर्य-माधुर्यमय है। कारण कि उपास्य में दो मुख्य गुण होते है–१––परत्व, २––सौलभ्य। परत्व है ऐश्वर्य और माधुर्य है सौलभ्य[1]। कहीं-कहीं ऐश्वर्य के तेज का विशेष प्रकाश है, कहीं-कहीं माधुर्य के सौन्दर्य की कमनीय कान्ति का। ऐश्वर्य में वे अपनी महामहिमा में विराजमान है और जीव अपनी लघुता में घिरा हुआ। वे विभु हैं, जीव अणु। परन्तु दोनों में संबंध है––स्वामी सेवक का। जीव का नित्य कैकर्य, नित्य प्रपत्ति और अखण्ड शरणागति ही है इस सम्बन्ध का मूलाधार। इसमें वैधी भक्ति ही चलती है और वेदशास्त्रादि के निर्देश के आधार पर श्रवण कीर्तनादि से लेकर आत्मनिवेदन तक उसका क्रम-विकास होता है[2]। भाव के उदय होने तक यह 'विधि भक्ति' चलती है।

परन्तु भगवान् का माधुर्य जहां प्रधान है वहां 'रुचि भक्ति' अथवा रागमयी भक्ति का आविर्भाव होता है। रागमूला प्रवृत्ति के साधकों के लिए रागमयी भक्ति है और विधिमूला प्रवृत्ति के साधनों के लिए वैधी भक्ति है। वैधी में विधि निषेध का विशेष ध्यान और षोडशोपचार पूजा की बड़ी महिमा है। वैधी भक्ति का आचरण शास्त्र-निर्देश के अनुसार होता है। इसमें वैदिक क्रियाकलाप, वर्णाश्रमधर्म के नियमादि का पालन करते हुए प्रभु के प्रति कुछ भय, श्रद्धा तथा संभ्रम (Awe) का भाव-विशेष रहता है। यह ऐश्वर्य प्रधान भक्ति है। इसमें कर्म, धर्म पर

---

१ श्री मधुराचार्य का सुन्दरमणि संदर्भ पृ० ६।

२ श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

श्रीमद्भागवत ७. ५. २३।

विशेष आग्रह रखते हुए भजन की ओर भी मन रहता है। रागमयी भक्ति में विधि या विधान का सर्वथा परित्याग हो जाता है। ध्यान रहे रागभक्ति मे विधि निषेध का परित्याग किया नही जाता, अपितु स्वत सहज ही हो जाता है। यहां भक्त अपने आन्तरिक भाव से ही प्रेरित होकर भगवान के साथ अपने सम्बन्ध के अनुसार अपने प्राणसखा परम प्रियतम को लाड लडाता है—कभी उसका सखा होकर, कभी प्राणप्रिया प्रियतमा होकर। वस्तुत यह रागमयी भक्ति हृदय की साधना है। यहा हृदय मे ही हृदय के द्वारा हृदयेश्वर की रागमयी उपासना होती है। स्पष्ट शब्दों मे यो कह सकते है कि भक्त के हृदय मे भगवान् के लिए और भगवान् के हृदय मे भक्त के लिए जो स्वाभाविक गाढ तृष्णा होती है वही है रागमयी भक्ति।

समस्त वैष्णव साहित्य मे इस रागमयी भक्ति का सविशेष महत्ववर्णित है, कही प्रच्छन्न गुह्य रूप मे, कही प्रकट व्यक्त रूप मे। इस रागमयी भक्ति को 'परम गोपनीय' रहस्य कहा गया है[1]। यह गोपनीय क्यो है इसे यहा थोडे मे समझ लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

वह शाश्वत तत्व शक्ति एव शक्तिमान् परस्पर अभिन्न होकर भिन्न और भिन्न होकर भी अभिन्न है। वस्तुत वे अभिन्न ही है। क्रीडा के लिए उनका भेद है। इसी भेद से व्यापक निर्गुण तत्त्व मे सत् चित् आनन्द का भाव है और सगुण के साथ वही शक्ति सधिनी, सवित् और ह्लादिनी शक्ति के त्रिविध रूप मे उपस्थित होती है। सगुण रूप की भाति ही ये शक्तिया भी नित्य, परस्पर अभिन्न तथा शक्तिमान् मे अभिन्न है। नित्य अभेद और नित्य भेद तथा अभेद मे भेद और भेद मे अभेद का यह शास्त्रीय ज्ञान ईश्वरीय वरदान है। अपौरुषेय रूप मे ही यह मनुष्य को प्राप्त हुआ है।

सैकडो जन्मो के जब दान, पूजनादि शुभ कर्मो का जब पुण्य उदय होता है तब विशुद्धान्त-करणवाले मनुष्य के हृदय मे कृपापरवश प्रभु अपनी असीम करुणा मे भक्ति का दान देते है। ध्यान रहे कि भक्ति मे अपने पुरुषार्थ की अपेक्षा उनकी करुणा ही मुख्य कारण है। इसमें वैधी भक्ति तो ज्ञान का साधन है परन्तु रागानुगा भक्ति का उदय ज्ञान तथा विज्ञान के अनन्तर होता है। रागानुगा भक्ति साधन नही अपितु साध्य है। इस महा आनन्दप्रदायिनी स्वरूपा भक्ति का विषयालम्बन है स्वय आत्मास्वरूप भगवान्।

आत्यन्तिक स्नेह ही रागानुगा का स्वरूप है। निर्मल चित्त मे पूर्ण वैराग्य का उदय होने पर तथा शुद्ध विज्ञान के अनन्तर रागानुगा भक्ति का आविर्भाव होता है। पाप रहित शुद्ध अन्तःकरण मे भागवत धर्म के अनुष्ठान से भगवत्कृपा द्वारा सांसारिक सभी वस्तुओं के प्रति तीव्र वैराग्य, सत् असत् पदार्थो का एव निज स्वरूप पर स्वरूपादिक 'अर्थ पचक' का यथार्थ ज्ञान प्रकट होता है, तत्पश्चात् भगवच्चरणारविन्दों मे अनन्य अविचल अनुरागपूर्वक परम स्नेह स्वरूपा भक्ति

---

१ गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं च सर्वदा

—श्री हनुमत्संहिता ७. ५

राजविद्याराजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम। — गीता

का स्वत: अन्त:करण में जो उदय होता है वही भक्ति रागानुगा या प्रेमाभक्ति के नाम से पुकारी जाती है। यह सर्वश्रेष्ठ अथच परम दुर्लभ है।

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृगार भेद से रागानुगा के पाच प्रकार है। भाव का जैसे-जैसे विकास एव प्रगाढता होती जाती है वैसे-वैसे शान्त दास्य मे, दास्य सख्य में, सख्य वात्सल्य मे और वात्सल्य माधुर्य मे परिणत होता जाता है। परन्तु यह ध्यान रहे कि जैसे पृथ्वी जल अग्नि आदि पच तत्त्वो के क्रम विकास मे हम जैसे जैसे आगे बढते है पिछले वाला तत्व भी उसमे सन्निहित रहता है उसी प्रकार भावोके विकास मे जैसे जैसे हम आगे बढते है पिछले वाले भाव या भावो का अश भी सार रूप मे बना रहता है--जैसे दास्य मे दास्य है शान्त भी, वात्सल्य मे वात्सल्य की मुख्यता है परन्तु है उसमे दास्य भाव भी इसी प्रकार शृगार मे दास्य,सख्य, भाव ही है, प्रधानता है माधुर्य की। रस के विशेषज्ञो ने रस की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हुए बतलाया है कि शान्त और दास्य की परस्पर मैत्री है और सख्य वात्सल्य की इनसे तटस्थता है तथा उज्ज्वल रस से शत्रुता है। सख्य और उज्ज्वल की परस्पर मैत्री है। उज्ज्वल का शान्त और वात्सल्य से शत्रुता है सख्य से तटस्थता है। वात्सल्य का उज्ज्वल तथा दास्य रस से शत्रुता है।

रागानुगा भक्ति के और भी तीन अवान्तर भेद है-- प्रेमा, परा, प्रौढा।

प्रेमा--श्रवण कीर्तनादि नवधा भक्ति का सम्यक् प्रकारेण, विधिपूर्वक, सन्त भक्त तथा सद्गुरु के शुभ सान्निध्य मे रह कर सेवन करने से प्रभु के प्रति स्नेह-वृत्ति का उदय होता है जिसे 'प्रेमाभक्ति' कहते है। इसका इतना प्रभाव है कि भक्त के समस्त दोष-विकार और पाप-ताप दग्ध हो जाते है। वर्षा ऋतु मे उमड़ी हुई नदी की तरह जो समुद्र की ओर प्रखर वेग मे भागी जा रही है जब हृदय मे प्रभु के प्रति भाव का प्रवाह उमडे तो उसे 'प्रेमा' कहते है।

परा--भगवान् के साथ किसी संबध विशेष मे दृढतापूर्वक बध जाने पर जब भाव मे पूर्ण परिपक्वता आ जाती है, भावना मे स्थिरता आ जाती है और साधक उसी भावना में सर्वथैवतल्लीन हो जाता है और अन्य समस्त भावो एव व्यापारो का विस्मरण हो जाता है तो इस अनुभवात्मिका भक्ति को 'परा' कहते है। इसमे रति स्थिर हो जाती है।/

प्रौढा--प्रौढ़ा भक्ति परमात्मा की साक्षात्कारात्मक होती है। सबसे पहले रसराज का महामधुर रसास्वादन करने पर जब अपने दिव्य स्वरूप का क्रमश पूर्ण आवेश आ जाता है उसके पश्चात तीव्र विरहानल का उदय होता है। अन्त में सब वृत्तियो का एकान्त निरोध हो जाता है। निरोध के अनन्तर जो परमात्मा का साक्षात्कार होता है वही 'प्रौढा भक्ति' है। प्रेमा और परा भक्ति का दर्शन तो दास्य, सख्य, वात्सल्यादि रसो मे होता है परन्तु प्रौढ़ा भक्ति विशेषत: एकमात्र शृंगार रस मे ही दृष्टिगोचर होती है। यह प्रौढा भक्ति ही वस्तुत: परम पुरुषार्थ स्वरूपा साध्या भक्ति है। 'रस' शब्द का व्यवहार यद्यपि सब रसों में होता है परन्तु वास्तव में शृंगार ही मुख्य रस है। और रसो में रसत्व गौण है। शृंगार ही रसस्वरूप रसराज है[1]।

---

१ शृंगारमेव रसनाद ररमामनाम् श्री मधुराचार्य

दिव्य साकेत धाम मे युगल प्रभु के श्री अगो से कोटि-कोटि सखियो का आविर्भाव होता है। इन सखियो की कृपादृष्टि से ही प्रीतिरूपा भक्ति का उदय होता है तथा रसराज के उपासन मे अधिकार लाभ होता है। साधना अथवा सुकृत तो उनकी शुभ दृष्टि को आकर्षित करने के लिए होता है। यथार्थ लाभ उनकी कृपा से ही होता है। वास्तविक लाभ का अर्थ है रसराज मे प्रवेश का अधिकार, प्रिया प्रियतम का चिद्विलास तथा पुण्य विहार का परात्परतम दर्शन। इसे ही पाकर जीव कृतकृत्य हो जाता है, पूर्णकाम हो जाता है। यही वह स्थिति है जिसे उपनिषदे आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्ममिथुन, आत्मरमण, आत्माराम की स्थिति कहती है। अस्तु

परन्तु यहा प्रश्न उठता है कि जब उस परम प्रियतम के रूपरस या लीलारस या सेवारस का आस्वादन नारी-भाव या सखी-भाव से ही हो सकता है तो बिचारा पुरुष क्या करे ? इस प्रश्न पर विचार कुछ विस्तार से हम अगले अध्याय मे करेगे। यहा इतना सकेत रूप मे कह देना अभीष्ट है कि जीव न तो स्त्री है, न पुरुष, न नपुसक। जो-जो शरीर धारण करता है वह शरीर धर्मानुसार उसका अभिमानी होता है[1]। और इसी प्रकार परमात्मा भी न स्त्री है न पुरुष, न कुमार, न कुमारी। विश्व का सब कुछ वही है[2]। अतएव भक्त और भगवान् के बीच कोई भी और सभी प्रकार का सम्बन्ध सभव है--स्वामी सेवक का, सखा सखा का, पिता पुत्र या पुत्र माता का, पति पत्नी या पत्नी पति का। आगे हम यह दिखायेगे कि जीवमात्र भगवान का भोग्य है, भोक्ता है एकमात्र प्रभु ही। जीव भोक्ता हो नही सकता, भोक्ता होने की उसमे सामर्थ्य नही है। वह प्रभु के कृपा-प्रसाद से ही प्रभु का दिव्य भोग्य है। भोक्ता, भोग्य और प्रेरिता का सम्यक् ज्ञान ही परम ज्ञान है[3]। वास्तव मे भोक्ता भोग्य का विषय बडा ही गभीर एव गोपनीय है। इसकी थोड़ी बहुत चर्चा हम अगले अध्याय मे संकेत रूप से प्रस्तुत करेगे। अस्तु

रागमयी भक्ति के क्रम-विकास के अध्ययन मे हम दक्षिण भारत के सबसे प्राचीन आलवार वैष्णव भक्तो के साहित्य मे स्पष्ट देखते है कि रागमयी भक्ति का स्वर ही मुख्य है। 'आलवार' शब्द का अर्थ है आत्मज्ञानी भक्त जो भगवान् के प्रेम मे सदा डूबा रहता है। आलवारो मे १२ मुख्य है उनमे गोरा अन्दाल ठीक मीरा की तरह प्रेम पुजारिन हुई। ईसवी सन् की सातवी से नवी शती में ये आलवार भक्त हुए। 'आत्मनिवेदन' भक्ति के ये साकार विग्रह थे। वे भागवत के इस वचन को मानते थे कि प्रेमस्वरूप हरि भक्ति से ही प्रसन्न होता है, शेष सब

---

१ नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स रक्ष्यते॥

श्वेताश्वतरोपनिषद् ५।१०

२ त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी त्वं जीर्णो दण्डेन वचयसि त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः।

३ भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म एतत्।

--श्वेताश्वतरोपनिषद् १।१२

विडम्बना है[1]। आलवारों की भक्ति प्रभु मे उतनी ही दृढ है जितनी विषयी पुरुषो की विषयो मे होती है और यह इतनी प्रगाढ है कि उसकी समता का कोई उदाहरण नही । श्री जे०एस० एम०/ हूपर ने आलवारो के पदो का तमिल से अग्रेजी मे अनुवाद किया है जो अपने ढग का अद्वितीय है।[3] अभिप्राय यह कि आलवारो की भक्ति सर्वथा रागमयी, प्रीतिमयी भक्ति है और उसमे प्रेम की ही प्रधानता है। प्रीतिपूर्वक आत्मदान, प्रणय का आत्मसमर्पण ही उनके गीतो का मुख्य स्वर है। गोदा अन्दाल आलवारो मे प्रसिद्ध भक्तिन हुई। उसने कहा है कि मै अब पूर्ण यौवन को प्राप्त हो गई हू और अपना सपूर्ण यौवन मै श्री हरि के चरणो मे समर्पित कर दूगी, उनके सिवा इसका उपभोग करने का अधिकारी और है भी कौन? इन्ही आलवारो की परम्परा मे श्री स्वामी रामानुजाचार्य आते है। इनके प्रपत्तिवाद मे सर्वथा आत्मसमर्पण का स्वर मुख्य है। शरीर से, वाणी से, मन से, इन्द्रियो से, बुद्धि से, आत्मा से या स्वभाव का अनुसरण करते हुए जो कुछ भी कार्य होता है सब कुछ नारायण को समर्पित है[4]। न तो मुझमे धर्म की निष्ठा है, न आत्मविद् हू, न तुम्हारे चरणारविन्द मे भक्ति ही है। हे नाथ, मै सब प्रकार अकिचन हू, तुम्हारे चरणो की शरण मे हू[5]। सहस्र-सहस्र अपराधो से भरा हुआ मै तुम्हारे चरणो मे प्रपन्न हू, नाथ!

---

१ प्रीयतेऽमलया भक्तया हरिरन्यद् विडम्बनम्।

२ या प्रीतिरस्ति विषयेष्वविवेकभाजां सेवाऽच्युते भवति भक्तिपदाभिधेया ।
भक्तिस्तु काम इह तत्कमनीय रूपे, तस्मान् मुनेरजनिकामुकवाक्यभंगी।
--दमिडोपनिषद् संगतिः

३ Day and night she knows not sleep
In floods of tears her eyes do swim
Lotus like eyes, She weeps and reels.
No kinship with the world have I
Which takes for true the life that is not true,
For Thee alone my passion burns,
I cry Rangam, my Lord I !
Hooper–Hymns of the Alwars

४ कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्धात्मना वानुसृतः स्वभावात्।
करोमि यत् यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पये तत्।

५ न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमान्स्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिंचनः नान्यगतिः शरण्य! त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥
--स्तोत्र रत्न २२

मुझे स्वीकार करो'। रामानुज के श्री सप्रदाय मे आत्मनिवेदन की पूर्ण विवृति है और शरणागति या 'प्रपत्ति' ही उसमे एकान्तत· विकसित हुई है। रागमयी भक्ति का विशेष विकास क्रमश मध्व, निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभीय और हितहरिवश मे ही हुआ, जिसका अनुशीलन हम बहुत सक्षेप मे प्रस्तुत कर रहे है।

यहा लक्ष्य करने योग्य एक बात है वह यह कि स्वामी रामानुजाचार्य के पूर्ववर्ती आलवार भक्तो मे रागमयी भक्ति विशेष निष्पन्न हुई है तथा इन्ही स्वामी रामानुज की परपरा मे आगे चलकर स्वामी रामानन्द तथा परवर्ती मत भक्तो मे भी इसी रागमयी भक्ति का विशेष विकास एव शृगार हुआ है। अयोध्या के रसिक भक्तो की परपरा परम प्राचीन होती हुई भी स्वामी रामानन्द मे स्पष्ट रूप मे पकड मे आती है। आलवार भक्तो से लेकर स्वामी रामानन्द तक की रसिक परपरा, लगता है कि योग, सहज और अन्य गुह्य साधनाओ के अंतराल मे गुप्त रूप मे प्रवाहित होने लगी थी, गुप्त गोदावरी की तरह और पुन स्वामी रामानद के परवर्ती भक्तो मे रसिकता की वह बाढ आई, जिससे सतरहवी शती के बाद हमारा अधिकाश रामसाहित्य ओतप्रोत है। मर्यादा के कठोर आवेष्ठन मे शृगार का ऐसा मधुर विन्यास विश्व-साहित्य मे दुर्लभ है। अवश्य ही गोस्वामी जी ने अपने चारो ओर फैले हुए इस साहित्य को देखा था और वे स्वय मर्यादावादी तथा लोकमगल और व्यक्तिगत साधना मे सामंजस्य के प्रबल पोषक होने के कारण भक्ति के शृंगार पक्ष पर बल न दे सके, परन्तु यदा-कदा इतस्तत. उनके अंदर की भावधारा फूट पड़ी है जैसा हम गीतावली के कुछ पदो का उद्धरण देकर आगे बतायेगे। स्वामी रामानन्द से लेकर श्री 'रूपकला' तक रामोपासना मे शृंगार-भावना का जो अखण्ड प्रवाह विद्यमान है और अब भी वह अवध की मुख्य एव परम गुह्य साधना के रूप मे चल रहा है, उसी का विवरण अपना अभीष्ट है। परन्तु यह भूल न जाना होगा कि भक्ति के अन्यान्य सप्रदायो मे भी इस भाव की उपासना विशेष व्यक्त एव उन्मुक्त रूप मे हुई है उनका भी दिग्दर्शन प्रसगत आवश्यक है। अस्तु, यहा हम सक्षेप मे पहले उन भक्ति सप्रदायो का एक सामान्य परिचय प्रस्तुत करना चाहेंगे जहा रागमयी साधना का ही स्वर मुख्य है और तभी यह सभव होगा कि हम तुलनात्मक दृष्टि से यह देख सकेगे कि उनमे और रामोपासना की शृगारी साधना मे क्या और कितना भेद है और यदि है तो क्यो है। रामावत संप्रदाय की मधुर उपासना के अनुशीलन-परिशीलन मे एक बात का ध्यान सदा रखना होगा कि इसमे यहा से वहां तक मर्यादा का भाव अक्षुण्ण रूप मे बना हुआ है। भीतर-भीतर शृगार-उपासना और बाहर-बाहर मर्यादा-भावना। यही कारण है कि रामावत सप्रदाय की मधुर उपासना का विषय अबतक सर्वथा उपेक्षित रहा है और उसे वह महत्त्व न मिल पाया जो कृष्णावत मधुर उपासना को प्राप्त है। फिर भी इस परम

---

१ **अपराध सहस्र भाजनं पतितं भीम भवार्णवोदरे।**
अगतिं शरणागतं हरे! कृपया केवल आत्मसात्कुरु।

—आलवन्दार स्तोत्र ५१

ुद्यतम साधना का साहित्य अपने-आपमे इतना सुपुष्ट, आकर्षक एवं प्रभावशाली है कि इसका अध्येता किसी प्रकार घाटे मे नही रहेगा और हमारे साहित्य के इस उपेक्षित अंग पर प्रकाश डालने के लिए अधिक-से-अधिक विद्वानों को इस ओर प्रवृत्त होना चाहिए। अस्तु

अब हम रागमयी भक्ति की जो विवृत्ति विविध भक्ति सप्रदायो मे हुई है, उसका एक सामान्य परिचय प्रस्तुत करेगे।

इष्टे स्वारसिकोराग. परमाविष्टता भवेत्।
तन्मयी या भवेद्भक्ति साऽत्र रागात्मिकोदिता॥
विराजन्तीमभिव्यक्त व्रजवासिजनादिषु।
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥
——हरिभक्तिरसामृतसिन्धु पूर्व, द्वि. लहरी ६०,६२

भक्ति के लक्षण—— गौड़ीय मत

इष्ट वस्तु मे गाढ तृष्णा——बलवती लालसा। यही है राग का स्वरूप लक्षण और इष्ट मे परम आविष्टता——यह है तटस्थ लक्षण। श्रीजीव गोस्वामी अपने 'भक्ति-सदर्भ' मे इसकी यो व्याख्या करते है——'तत्र विषयिण स्वाभाविको विषयससर्गेच्छामय प्रेमा राग. यथा चक्षुरादीना सौन्दर्यादौ तादृश एवात्र भक्तस्य श्रीभगवत्यपि राग इत्युच्यते।'

अर्थात् जैसे विषयी पुरुषो का स्वभावत ही विषयो के प्रति विषय-ससर्ग की इच्छा से युक्त आकर्षण होता है——जैसे आखो का सौन्दर्य के प्रति एव कानो का मधुर स्वर के प्रति, उसी प्रकार भक्त का जब श्रीभगवान् के प्रति आकर्षण या तृष्णा उत्पन्न हो जाती है, तब उसे 'राग' कहते है।

श्रीकृष्णदास कविराज ने 'श्री चैतन्याचरितामृत' में इसी विषय की व्याख्या की है, जो श्रीरूपगोस्वामी कृत 'हरिभक्तिरसामृतसिन्धु' की व्याख्या से बहुत मिलती-जुलती है——

इष्टे गाढ तृष्णा राग एइ स्वरूप-लक्षण।
इष्ट आविष्टता एइ तटस्थ लक्षण॥——मध्य २२।८६

राग का जो स्वरूप ऊपर बताया गया है,उससे युक्त भक्ति को 'रागात्मिका भक्ति' कहते है और उसी का अनुसरण करती हुई भक्ति की जो धारा प्रसरित होती है, उसे रागानुगा' कहते है।

रागमयी भक्तिर हय रागात्मिका नाम॥ मध्य० २२।८६

मूल कारण

व्रज के भक्तो की प्रेम-सेवा की चर्चा सुनकर किसी भाग्यवान् के चित्त मे जो तदनुरूप सेवा पाने का लोभ उत्पन्न होता है और जिसमे प्रेरित होकर व्रज-वासियो के भावो का आनुगत्य स्वीकार कर के भजन की प्रवृत्ति होती है, वह लोभ ही इस रागानुगा का मूल कारण है। श्री जीव गोस्वामी कहते है——

'यस्य पूर्वोक्तरागविशेषे रुचिरेव जातास्ति न तु रागविशेष एव स्वयं तस्य तादृश राग-सुधाकरकराभाससमुल्लसितहृदयस्फटिकमणे. शास्त्रादिषु तासु तादृश्या रागात्मिकाया भक्ते. परिपाटीष्वपि रुचिर्जायते।'

श्री गोविन्द भाष्य मे श्री बलदेव विद्याभूषण इसी को 'रुचि भक्ति' कहते है—

'रुचिभक्तिर्माधुर्यज्ञानप्रवृत्ता, विधिभक्तिरैश्वर्यज्ञानप्रवृत्ता। रुचिरत्र राग । तदनुगता भक्ति रुचिभक्ति । अथवा रुचिपूर्णा भक्ति रुचिभक्ति इयमेव 'रागानुगा' इति गदिता।'

रागानुगा पुष्टि-मार्ग मे

इसी रागानुगा भक्ति को पुष्टि मार्ग मे पुष्टि-भक्ति या 'अविहिता भक्ति' कहते है—

'माहात्म्यज्ञानयुते वरत्वेन प्रभोर्भक्तिर्विहिता, अन्यत प्राप्तत्वात् कामाद्युपाधिजा त्वविहिता।' —अणुभाष्य

श्री निम्बार्क-सम्प्रदायमें श्री हरिव्यास जी ने अपनी 'सिद्धान्त-रत्नाजलि' टीका मे अविहिता भक्ति का उल्लेख किया है। 'महावाणी' मे उन्होने सखी-भाव से नित्य वृन्दावन मे श्री राधा-गोविन्द की युगल सेवा-प्राप्ति की साधना बताई है।

श्रीनिम्बार्क-मत में

उक्त साधना मे दास्य, सख्य अथवा वात्सल्य के लिए स्थान नही है। इस प्रकार गौडीय वैष्णवों की रागानुगा भक्ति के साथ श्री हरिव्यासजी की साधना का भेद सुस्पष्ट है। क्योंकि महाप्रभु के सम्प्रदाय मे सभी भावो का समावेश हो जाता है —'कुत्रापि तद्रहिता न कल्पनीया।' श्री हरिव्यासजी मे श्रीकृष्ण की देवलीला-परायणता है, परन्तु गौडीय वैष्णव केवल भगवान् की नरलीला मे माधुर्योपासना का पथ अपनाते है।

रागानुगा भक्ति मे स्मरण की प्रधानता है। श्री सनातन गोस्वामी ने बृहद्-भागवतामृत मे इसका विस्तार से वर्णन किया है। इस साधन मे मानसिक सेवा और तदनुकूल सकल्प ही मुख्य है। रघुनाथदास गोस्वामी के 'विलाप-कुसुमाजलि' और श्री जीव गोस्वामी के 'संकल्प-कल्पद्रुम' मे रागानुगा भक्ति अनुकूल सकल्प और मानसी सेवा के क्रम का बहुत सुन्दर वर्णन मिलता है।[२]

स्मरणकी मुख्यता

सेवा साधक रूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारत।।

---

१ गौडीय आचार्य श्री जीव गोस्वामी 'अविहिता' का निर्णय यो करते है—'अविहिता रुचिमात्रप्रवृत्या विधिप्रयुक्तत्वेनाप्रवृत्तत्वात्' रुचिमात्र से प्रवृत्ति होने के कारण ही इस प्रकार की भक्ति को 'अविहिता' कहते है।

२ रागानुगायां स्मरणस्य मुख्यता

अर्थात् व्रजवासी जनो के भाव से लुब्ध हुए व्यक्ति को इस रागानुगामार्ग में साधक रूप से अर्थात् यथावस्थित देह के द्वारा तथा सिद्ध रूप से—अन्तचिन्तित सिद्ध देह से व्रजवासियो के आनुगत्य स्वीकार करते हुए सेवा करनी चाहिए।

साधना का क्रम

माता-पिता से उत्पन्न हुआ मात्र भौतिक शरीर ही साधक-देह है और अन्तर मे अभीष्ट श्री राधा-गोविन्द की साक्षात् सेवा के उपयुक्त अपने जिस देह की भावना की जाती है, वह सिद्ध-देह है। सिद्ध-देह से ही व्रज भाव प्राप्त होता है। माधुर्योपासना के अन्तर्गत सिद्ध देह की भावना के सम्बन्ध मे 'सनत्कुमार-तत्र' मे कहा गया है—

आत्मान चिन्तयेत्तत्र तासा मध्ये मनोहराम्।
रूपयौवनसम्पन्ना किशोरी प्रमदाकृतिम्॥

अर्थात् गोपी भाव मे अपने को रूप यौवन-सम्पन्न परम मनोहर किशोरी के रूप मे सिद्ध देह से भावना करनी चाहिए।

सखी की आज्ञा के अनुसार सदा सेवा के लिए उत्सुक रहते हुए श्री राधाजी के निर्माल्य स्वरूप अलकारो से विभूषित, साधनो की सिद्धि रूप इस मजरी-देह की भावना निरन्तर की जाती है। मजरी स्वरूप मे तनिक भी सभोग के लिए अवकाश नही। इसमे केवल सेवा-वासना है। पद्म पुराण, पाताल खड मे इसी प्रसंग पर कहा गया है—

आत्मान चिन्तयेत् तत्र तासा मध्ये मनोरमाम्।
रूपयौवनसम्पन्ना किशोरी प्रमदाकृतिम्॥
नानाशिल्पकलाभिज्ञा कृष्णभोगानुरूपिणीम्।
प्रार्थितामपि कृष्णेन तत्र भोगपराङ्मुखीम्॥
राधिकानुचरी नित्य तत्सेवनपरायणाम्।
कृष्णादप्यधिक प्रेम राधिकाया प्रकुर्वतीम्॥
प्रीत्यानुदिवस यत्नसेत् तयो सगमकारिणीम्॥
तत्सेवनसुखाह्लादभावेनातिसुनिर्वृताम्॥
इत्यात्मान विचिन्त्यैव तत्र सेवा समाचरेत्।
ब्राह्म मुहूर्तमारभ्य यावत् स्यात् तु महानिशा॥५२।७-११

गोपीभाव की उपासना करनेवाले को चाहिए कि वह अपने-आपको भी प्रिया-प्रियतम की सेवा मे लगी हुई उन सखियो मे ही एक अत्यन्त मनोरम, रूपयौवन-सपन्न किशोर अवस्था की रमणी के रूप मे भावना करे, जो विविध शिल्पो एव कलाओ मे प्रवीण तथा श्रीकृष्ण के द्वारा उपभोग के योग्य हो, किन्तु श्रीकृष्ण के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी जो उनके साथ दिव्य सभोग के प्रतिसर्वथा पराङ्मुख हो, जो श्री राधाकिशोरी की सेवा मे सदा परायण रहने वाली उनकी अनुचरी हो, जो श्रीकृष्ण की अपेक्षा राधाकिशोरी से ही अधिक प्रेम करती हो और प्रति

दिन बड़े ही प्रेम एव तत्परता से उन दोनो का मिलन कराना ही अपना एकमात्र कर्तव्य समझती हो और उन्ही के सेवा-सुख को परम आह्लाद का कारण मान कर अत्यन्त सुखी रहती हो। अपने विषय मे इस प्रकार की भावना कर के ब्राह्म मुहूर्त से ले कर रात्रि के शेष भाग तक दोनो की मानसी-सेवा मे रत रहना चाहिए।

रागानुगा-साधन मे जो 'अजात रति' साधक है––अर्थात् जिन्हे रति की प्राप्ति नही हुई है, उनको अपने लिए गुरुदेव के उपदेशानुसार किसी सखी की सगिनी के भाव से मनोहर वेशभूषा से युक्त किशोरी रमणी के रूप मे भावना करनी चाहिए। जो जात-रति है, अर्थात् जिनको रति प्राप्त हो गई है, उनमे इस सिद्ध स्वरूप की स्फूर्ति अपने-आप हो जाती है। प्राचीन आलवार भक्त शठारि मुनि के साधक देह मे ही सिद्ध देह का भाव उतर आया था। उन्होने अनुभव किया कि श्री भगवान् ही पुरुषोत्तम है और अखिल जगत् स्त्री-स्वभाव है। इस विषय मे उनका 'तिरुविरुत्तम' नामक ग्रन्थ देखना चाहिए। कहते है शठारि मे सचमुच कामिनी भाव का आविर्भाव हो गया था––

जात रति

पुस्त्वं नियम्य पुरुषोत्तमताविशिष्टे
　　स्त्रीप्रायभावैकथनाज्जगतोऽखिलस्य।
पुसा च रञ्जकवपुर्गुणवन्तयापि
　　शौरे शठारियमिनोऽजनि कामिनीत्वम्॥

––वैष्णव धर्म

गौडीय वैष्णव साधकगण 'गोविन्द लीलामृत' और 'कृष्णभावनामृत' आदि ग्रन्थो के क्रमानुसार गुरु गौरागदेव के अनुगत भाव से श्री राधागोविन्द की अष्टकालीन लीला का स्मरण करते है। इस लीला के ध्यान मे ही मानसोपचार से इच्छित सेवा होती रहती है। श्री वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग मे भी अष्टयाम की लीलाओ का स्मरण मुख्य साधना है।

'कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता।'

––आचार्य कृत सिद्धान्त-मुक्तावली

श्री हरिरायजी की 'सहस्रश्लोकी सेवा-भावना' इस विषय का देखने योग्य ग्रन्थ है। इसमे गोपागनाओ की सेवा-भावनाओ का विस्तार से वर्णन है। इसके अतिरिक्त प्रात काल की मगला-आरती से लेकर रात के शयन तक भिन्न-भिन्न समयो की भिन्न-भिन्न लीलाओ के लिए भिन्न-भिन्न राग-रागिनियो मे उसी सम्प्रदाय के महानुभावो द्वारा रचित अनेकानेक पद उपलब्ध है एव भक्तो के द्वारा गाये जाते है। जिनसे सहज ही भगवान् की विविध लीलाओ का स्मरण, चिन्तन एव ध्यान होता है और भक्त शरीर से चाहे जहा हो, भाव-देह से निरन्तर भगवान् की सन्निधि मे रहते हुए अमृतोपम सुख लूटता है।

साधक-देह मे ही सिद्ध-देह की स्फूर्ति किस प्रकार होती है––इसका ज्वलन्त उदाहरण हमे बगाल के वैष्णव-इतिहास मे इस प्रकार मिलता है। बगाल के साधक **श्रीनिवास आचार्य** किसी

समय मंजरी-देह से श्रीराधाकृष्ण का ध्यान कर रहे थे। उन्होने देखा श्री गोपीजनों के साथ श्रीकृष्ण यमुना में जलक्रीडा कर रहे है। श्रीराधाजी के कान का एक कुण्डल जल मे गिर गया। सखिया खोजने लगी। भावना-देह से इस कुण्डल की खोज करने मे श्रीनिवासजी को बाह्य दृष्टि से एक सप्ताह का समय लग गया। साधक देह निस्पन्द आसन पर विराजमान था। रामचन्द्र कविराज आये तो वे भी सिद्ध-देह से श्रीनिवास की सङ्गिनी के रूप मे उनके साथ हो लिये और रामचन्द्र को एक कमलपत्र के नीचे राधाजी का कुण्डल दिखलाई पडा। उसी क्षण उन्होने उसे श्रीनिवासजी के उस भावना-देह के हाथ मे दे दिया। सखी-मजरियो मे आनन्द की तरगे उछलने लगी। श्रीराधारानी ने प्रसन्न होकर अपना चबाया हुआ पान इन्हे पुरस्कार-रूप मे दिया। रामचन्द्र और श्रीनिवास दोनो ही सोकर उठनेवालो की तरह साधक देह मे लौट आये। देखा गया कि सचमुच श्रीराधाजी का दिया हुआ पान-पुरस्कार उनके मुख में था।

भाव-देह

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की तरह एक भावशरीर या सिद्ध-देह भी होता है साधक इसी भाव-देह से भगवान् की लीलाओ का रसास्वादन करता है। भाव-देह और सिद्ध-देह की चर्चा हम विस्तार से यथास्थान करेगे।

उपर्युक्त पुष्टि भक्ति की कुछ ज्ञातव्य बाते

भगवान् के अनुग्रह को ही 'पुष्टि' कहते है—'पोषण तदनुग्रह'। उस अनुग्रहसे जो भक्ति या भगवत्प्रेम होता है, उसे 'पुष्टि भक्ति' कहते है। यह भक्ति स्वरूप से रागमयी है। शाण्डिल्य ने इसकी परिभाषा 'सा परानुरक्ति रीश्वरे' इस प्रकार की है। नारद इसी को 'सा त्वस्मिन्परमप्रेमरूपा' कहते है तथा 'पाञ्चरात्र' मे उसकी परिभाषा इस प्रकार है—

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिक।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा॥

अर्थात् माहात्म्यज्ञानपूर्वक जो भगवान् के प्रति गाढ एव सर्वोपरि स्नेह होता है, उसी को भक्ति कहा गया है और उसी से मुक्ति होती है, अन्य किसी प्रकार नही।

यहाँ असाधना ही साधन है

यह स्नेहमयी रागात्मिका भक्ति भगवान् के अनुग्रह से प्राप्त होती है। भगवान् का अनुग्रह साधन-साध्य नही, वह साधन से प्राप्त होनेवाली वस्तु नही है, वह किसी साधन के परतत्र नही है। भगवान् भक्त-परतत्र है, भक्त-पराधीन है। अत यहा असाधना ही साधन है।

भक्ति भी भगवान की एक लीला ही है

जैसे सर्ग-विसर्ग आदि श्री पुरुषोत्तम की लीलाए है, यह भक्ति, अनुग्रह या पुष्टि भी भगवान् की लीला ही है। वह 'लीला' क्या है, 'सुबोधिनी' भा० ३, स्कन्ध मे वर्णित है—"लीला' नाम विलासेच्छा। कार्यव्यतिरेकेण कृतिमात्रम्। न तया कृत्या बहि कार्य जन्यते। जनितमपि कार्यं नाभिप्रेतम्। नापि कर्तरि प्रयास जनयति। किन्त्वन्त.करणे पूर्णे आनन्दे तदुल्लासेन कार्य जननसदृशी क्रिया क्वाचिदुत्पद्यते।"

अर्थात लीला नाम है विलास की इच्छा का किसी प्रयोजन से रहित क्रिया को ही लीला कहते है। उस क्रिया से बाहर किसी कार्य की सृष्टि नही होती। और उत्पन्न हुआ कार्य भी अभीष्ट नही होता और न वह क्रिया कर्ता मे रचमात्र भी प्रयास की सृष्टि करती है। अपितु अन्त करण मे पूर्ण आनन्द भर जाने से उस आनन्द के उल्लास मे कार्योत्पादन के समान एक क्रिया उत्पन्न होती है, उसी का नाम 'लीला' है।

लीला ही प्रयोजन

भगवान् स्वत परिपूर्ण है, तृप्त है, अतएव विना प्रयोजन के ही, एकमात्र लीला-रस का आस्वादन करने और कराने के लिए ही तत्र नहि किञ्चित् प्रयोजनमस्ति 'लीला—एव प्रयोजनत्वात्' (अणुभाष्य) लीला करते रहते है। भगवान् स्वत तृप्त होते हुए भी चिर अतृप्त है, निष्काम होते हुए भी विलासेच्छु है। अद्वितीय होते हुए भी भक्त के प्रेम-पराधीन है। रसस्वरूप होते हुए भी रस के पिपासु है।

ब्रह्मसंबन्ध तथा ताप

गुरु शिष्य के हृदय मे भगवान् की प्रीति का दान देकर उसका भगवान् से सम्बन्ध करा देता है, जिसे पुष्टि मार्ग मे 'ब्रह्म सम्बन्ध' कहते है। और इसी ब्रह्म-सम्बन्ध के बाद शिष्य के हृदय मे मिलन की लालसा होती है, जिसे 'ताप' कहते है। यह 'ताप' ही पुष्टि मार्ग की साधना का प्राण है। 'पञ्चतापा सदा यत्र'।

---

१ इस सम्बन्ध में श्री हरिदासजी कृत 'पुष्टिमार्गलक्षणानि' उल्लेनीय है—

सर्वसाधनराहित्यं फलाप्तौ यत्र साधनम्।
फलं वा साधनं यत्र पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥१॥
अनुग्रहेणैव सिद्धिर्लौकिकी यत्र वैदिकी।
न यत्नादन्यथा विद्धिः पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥२॥
स्वरूपमात्रपरता तात्पर्यज्ञानपूर्वकम्।
धर्मनिष्ठा यत्र नैव पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥३॥
यत्रांगीकरणे नैव योग्यतादिविचारणम्।
अवलम्बः प्रभुकृतः पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥४॥
यत्र प्रभुकृतं नैव गूढदोषविचारणम्।
तत्कृतावुत्तमज्ञानं पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥५॥
न लोकवेदसापेक्ष्यं सर्वथा यत्र वर्तते।
सापेक्षता स्वामिसुखे पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥६॥
वरणे दृश्यते यत्र हेतुर्नाणुरपि स्वतः।
वरणं च निजेच्छातः पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥७॥

रागानुगा के मूलस्वरूप उत्तमा या शुद्ध भक्ति का लक्षण श्री रूपगोस्वामी ने अपने हरिभक्तिरसामृतसिन्धु नामक ग्रन्थ में इस प्रकार किया है--

अन्याभिलाषिताशून्य ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन भक्तिरुत्तमा ॥पूर्व प्रथम. ११

अर्थात् अन्य अभिलाषा से शून्य, एकमात्र भक्ति की अभिलाषा से युक्त, ज्ञान-कर्म आदि से सर्वथा रहित, भगवान् की प्रीति-सम्पादन के उद्देश्य से की जाने वाली भगवदविषयक सम्पूर्ण चेष्टा का नाम ही उत्तमा भक्ति है।

यत्र स्वतन्त्रता भक्तेराविर्भावानपेक्षणात्।
सानुभावस्वरूपत्वं पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥८॥
लोकवेदभयाभावो यत्र भावातिरेकतः।
सर्वबाधकतास्फूर्तिः पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥९॥
संबंधः साधनं यत्र फलं संबंध एव हि।
सोऽपि कृष्णेच्छया जातः पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥१०॥
तत्संबंधिषु तद्भावस्तद्भिन्नेषु विरोधितः।
उदासीनेषु समता पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥११॥
विद्यमानस्य देहादेर्न स्वीयत्वेन भावनम्।
परोक्षेऽपि तदर्थित्वं पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥१२॥
भजने यत्र सेव्यस्य नोपकारकृतिः क्वचित्।
पोषणं भावमात्रस्य पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥१३॥
भजनस्यापवादो न क्रियते फलदानतः।
प्रभुणा यत्र तद्भावात्पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥१४॥
यत्र वा सुखसम्बंधो वियोगे संगमादपि।
सर्वलीलानुभावेन पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥१५॥
फले च साधने चैव सर्वत्र विपरीतता।
फलभावः साधनस्य पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥१६॥
पश्चात्तापः सदा यत्र तत्संबंधिकृतावपि।
दैन्योद्भावाय सततं पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥१७॥
आविर्भावाय सापेक्षं दैन्यं यत्र हि साधनम्।
फलं वियोगजं दैन्यं पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥१८॥
विषयत्वेन तत्त्यागः स्वस्मिन् विषयतास्मृतेः।
यत्र वै सर्वभावेन पुष्टिमागः स कथ्यते ॥१९॥
एवं विधैर्विशेषेण प्रकारैस्तु सदाश्रितः।
हृदि धृत्वा निजाचार्यान् पुष्टिमार्गोः हि बुध्यताम् ॥२०॥

'नारद पाञ्चरात्र' मे भी यह बात इस रूप मे कही गई है--

सर्वोपाधिविनिर्मुक्त तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेशसेवन भक्तिरुच्यते॥

इन्द्रियों के द्वारा सब प्रकार की उपाधियो से शून्य, एकमात्र सेवा के उद्देश्य से किया जाने वाला जो निर्मल भगवत्सेवन है, उसे भक्ति कहते है।

श्रीमद्भागवत मे उत्तमा भक्ति का वर्णन इस प्रकार है--

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ
लक्षण भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्ति पुरुषोत्तमे॥
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमान न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जना॥
स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृत।
येनातिव्रज्य त्रिगुण मद्भावायोपपद्यते॥

जिस प्रकार गगा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार भगवान् के गुणो के श्रवणमात्र से मन की गति का तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप से भगवान् के प्रति हो जाना तथा उस पुरुषोत्तम मे निष्काम और अनन्य प्रेम हो जाना यह निर्गुण भक्तियोग का लक्षण कहा गया है। ऐसे निष्काम भक्त दिये जाने पर भी भगवान् की सेवा को छोड़ कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्ष तक नही लेते। भगवत्सेवा के लिए मुक्ति का तिरस्कार करनेवाला यह भक्ति योग ही परम पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है। इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणो को लाँघ कर भगवद् भाव को--भगवान् के प्रेम रूप अप्राकृत स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

रागानुगा का मूलस्वरूप-उत्तमा भक्ति

इस भक्ति में दो उपाधियाँ है--१ अन्याभिलाषिता २ ज्ञान, कर्म, योगादि का मिश्रण। अन्याभिलाषिता मे भोग कामना और मोक्ष-कामना दोनो ही सम्मिलित है। सच्चा भक्त भुक्ति और मुक्ति दोनो को हेय समझ कर छोड देता है। ज्ञान, कर्म एवं योग आदि भी उपाधियाँ है, यहा ज्ञान का अर्थ है--अभेद ज्ञान, भगवान् ही भजनीय है--इस अनुसधान मे तात्पर्य नही है। कर्म का अर्थ है--स्मृति-प्रतिपादित नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म, भगवान् की परिचर्या रूप कर्म अभिप्रेत नही है। जिस ज्ञान के द्वारा भगवान् के स्वरूप और भजन का रहस्य जाना जाता है, जिस कर्म के द्वारा भगवान् की सेवा बनती है तथा जिस ध्यानादि योग से चित्त भगवान् के गुण, लीला आदि मे लगता है, वे ज्ञान, कर्म, योग बाधक न बन कर भक्ति के साधक ही होते है।

उत्तमा भक्ति

उत्तमा भक्ति अथवा शुद्धभक्ति के तीन भेद हैं—साधन भक्ति, भाव भक्ति, प्रेमा भक्ति। उत्तमा भक्ति मे निम्नलिखित गुण होते है[1]—१ क्लेशघ्नी, २ शुभदायिनी, ३ मोक्षलघुताकृत्, ४ सुदुर्लभा, ५ सान्द्रानन्द विशेषात्मा और ६ भगवदार्कपिणी।

क्लेशघ्नी—क्लेश तीन प्रकार के है—पाप, वासना, अविद्या। पाप का बीज है वासना, वासना का कारण है अविद्या। इन सब क्लेशो का मूल कारण है भगवद्विमुखता[2]। भक्तो की सगति मे भगवान् की सम्मुखता प्राप्त होती है[3]। फिर उपर्युक्त क्लेशो के सारे कारण अपने-आप नष्ट हो जाते है। इसी से उत्तमा भक्ति मे 'सर्वदु खनाशकत्व' गुण आ जाता है।

शुभदायिनी—'शुभ' शब्द का अर्थ है साधक के द्वारा समस्त जगत् के प्रति प्रीतिविधान और सारे जगत् का साधक के प्रति अनुराग, समस्त सद्गुणो का विकास तथा त्रिविध सुख। सुख के तीन भेद है—विषय-सुख, ऐश्वर्य-सुख, (विविध सिद्धियाँ) एव ब्राह्म सुख (मोक्ष)। ये सभी 'शुभ' उत्तमा भक्ति मे प्राप्त होते है।

'मोक्ष लघुताकृत्'—यह भक्ति धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य इन पाचो प्रकार की मुक्ति) इन सब मे तुच्छ-बुद्धि पैदा कर के सबसे चित्त को हटा देती है।

सुदुर्लभा—अनासक्त पुरुषो के द्वारा अनेकानेक साधनो का चिरकाल तक अनुष्ठान होने पर भी यह भक्ति प्राप्त नही होती, स्वय भगवान् भी साम्राज्य, सिद्धि, स्वर्ग, ज्ञान आदि तो सहज ही दे देते है, पर अपनी उत्तमा भक्ति नही देते।

सान्द्रानन्द विशेषात्मा—ब्रह्मानन्द को परार्द्ध की सख्या से गुणित करने पर भी वह इस भक्ति सुखसागर के एक परमाणु की भी तुलना मे भी नहीं आ सकता।

भगवदार्कपिणी—यह उत्तमा भक्ति भगवान् को भक्त के वश मे कर देती है।

साधन भक्ति के भेद—इस उत्तमा भक्ति के जो तीन भेद ऊपर बताये गये है, उनमे प्रथम साधन-भक्ति के दो भेद है—वैधी और रागानुगा। जहा राग तो हो नही, केवल शास्त्राज्ञा से भजन मे प्रवृत्ति हो, उसे वैधी भक्ति कहते है। रागानुगा की परिभाषा ऊपर की जा चुकी है।

रागात्मिका की तरह ही रागानुगा के भी दो भेद बन जाते है—कामानुगा और सम्बन्धानुगा। रागात्मिका के दो भेद है—कामरूपा और सम्बन्ध रूपा।

---

१ देखिये भक्तिरसामृतसिंधु पूर्व० १—लहरी १३

२ पाप भी दो प्रकार के होते है—अप्रारब्धसंचित और प्रारब्ध

३ देखिये श्रीमद्भागवत ११।२।३७

४ देखिये श्रीमद्भागवत १०।५१।५४

मैं भगवान् का पिता हूँ, माता हूं, सखा हूँ, दास हूं, आदि-आदि भावनाओ से भावित होकर जो यथोचित रूप से रागमयी सेवा करते है, उनकी उस रागमयी भक्ति को सम्बन्ध रूपा रागात्मिका भक्ति कहते है। तथा रागात्मिका कामरूपा भक्ति वह है, जिसमे उपर्युक्त प्रकार का कोई सम्बन्ध नही रहता। केवल मात्र भगवान् की सेवा कर के उन्हे सुखी बनाने की वासना ही समस्त चेष्टाओ को प्रेरित करती है और उस वासना से भावित होकर रागमयी सेवा निरन्तर अनुष्ठित होती रहती है। यहा ध्यान रखने की बात है कि कामरूपा एव सम्बन्ध रूपा दोनो मे ही राग तो अवश्य है, किन्तु सम्बन्ध रूपा भक्ति मे सम्बन्ध-विशेष का अभिमान ही भगवत्सेवा का प्रयोजक है और कामरूपा मे ऐसा कोई अभिमान हेतु नही है, केवल काम-प्रेममयी सेवा के द्वारा भगवान् को सुखी करने की वासना ही प्रवर्तक है। व्रजलीला मे सम्बन्ध रूपा रागात्मिका के पात्र है——श्री नन्द-यशोदादि पितृ-मातृवर्ग, सुबल-मधुमगलादि सखावर्ग एव रक्तक एव पत्रक आदि दासवर्ग, तथा कामरूपा रागात्मिका के पात्र है——मधुर भावभावित श्री व्रज सुन्दरिया। उपर्युक्त व्रज सुन्दरियो मे ऐसा कोई सम्बन्ध नही है, जो उन्हे भगवत्सेवा के लिए प्रेरित करे——जिसके कारण वे सेवा के लिए लालायित हो। भगवान् को अपनी सेवा समर्पित कर उन्हे सुखी बनाने की ऐकान्तिक वासना-प्रेम ही उनकी भक्ति का प्रवर्तक है। इस वासना को ही भक्तिशास्त्र मे 'काम' कहा गया है——'प्रेमैव गोपरामाणा काम इत्यगमत् प्रथाम्' (गौतमीय तन्त्र)। ठीक इसी के अनुगामी रागानुगा के भी दो ऐसे ही उपर्युक्त भेद बन जाते है——कामानुगा एव सम्बन्धानुगा।

सम्बन्ध रूपा भक्ति का स्वरूप

कामानुगा के दो भेद है——सभोगेच्छामयी और तत्तद्भावेच्छामयी। केलि-सम्बन्धी अभिलाषा से युक्त भक्ति का नाम सभोगेच्छामयी और यूथेश्वरी व्रज देवियो के भाव और माधुर्य प्राप्ति विषयक वासनामयी भक्ति का नाम तत्तद्भावाकेच्छामयी है।

'भावभक्ति'——भाव शुद्ध, सत्य, विशेष स्वरूप है——यह भाव का स्वरूप-लक्षण है।

भगवान् की सर्व प्रकाशिका स्वरूपशक्ति के वृत्तिविशेष को शुद्ध सत्व कहते है। भगवत्प्राप्ति की अभिलाषा, भगवद्नुकूलता की अभिलाषा और उनके प्रति सौहार्द आदि की अभिलाषा——इनके द्वारा चित्त की जो स्निग्धता सम्पादित होती है, वह है 'भाव' का तटस्थ लक्षण। भाव का ही दूसरा नाम रति या प्रेमांकुर या प्रीत्यंकुर है। प्रेम की पहली अवस्था को ही भाव कहते है। प्रेम के परिणत हो जाने के अनन्तर वृद्धि-क्रम से यही स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव के रूप मे व्यक्त होता है। साथ ही यही प्रेम की पहली अवस्था 'रति' भक्तो की भावना के भेद से पाँच प्रकार की बन जाती है——शान्तरति, दास्यरति, सख्यरति, वात्सल्यरति और मधुर रति। रति-भेद से भगवद्भक्ति-रस भी पाच प्रकार का बन जाता है——शान्तरस, दास्य-रस, सख्य-रस, वात्सल्य-रस और मधुर-रस।

भाव अथवा रति

जातरति भक्त के लक्षण

१. क्षान्ति--धन, पुत्र, मान आदि का नाश, असफलता निन्दा, व्याधि आदि क्षोभ के कारण उपस्थित होने पर भी चित्त का जरा भी चचल न होना।

२ अव्यर्थकालत्व--क्षणमात्र का भी समय सासारिक कार्यों मे वृथा न बिता कर मन, वाणी, शरीर से निरन्तर भगवत्सेवा-सम्बन्धी कार्यो मे जीवन भर लगे रहना।

३. विरक्ति--इस लोक और परलोक के समस्त भोगो से स्वाभाविक अरुचि।

४ मानशून्यता--स्वय उत्तम आचरण, विचार और स्थिति से सम्पन्न होने पर भी मान-सम्मान से सर्वथा दूर रह कर अधम का भी सम्मान करना।

५. आशाबन्ध--भगवान् के और भगवत्प्रेम के प्राप्त होने की चित्त मे दृढ आशा।

६. समुत्कठा--अपने अभीष्ट भगवान् की प्राप्ति के लिए अत्यन्त प्रबल और अनन्य लालसा।

७. नाम-गान मे सदा रुचि--भगवान् के मधुर और पवित्र नाम का गान करने की ऐसी स्वाभाविक कामना, जिसके कारण नाम-गान कभी रुकता ही नही और एक-एक नाम मे अपार आनन्द का बोध होता है।

८ भगवान् के गुण-कथन मे आसक्ति--दिन-रात भगवान् के गुणगान--भगवान् की प्रेममयी लीलाओ का कथन करते रहना और कदाचित् किसी अनिवार्य कारण से ऐसा न होने पर बेचैन हो जाना।

९ भगवान् के निवास स्थान मे प्रीति--भगवान् ने जहाँ-जहाँ मनोहर लीलाएँ की है, जो भूमि भगवान् के चरण-स्पर्श से पवित्र हो चुकी है--मिथिला, अवध, वृन्दावनादि--उन्ही स्थानो मे रहने की उत्कट इच्छा।

प्रेम

भाव की गाढता का नाम 'प्रेम' है। यह प्रेम-नाश का हेतु उपस्थित हो जाने पर भी सर्वदा और सर्वथा अक्षुण्ण बना रहता है--'सर्वथा ध्वसरहित सत्यपि ध्वसकारणे' (उज्ज्वलनीलमणि, स्थायि० ५७)। यह प्रेम दो प्रकार का होता है।

प्रेम का प्रकार भेद

महिमा-ज्ञान युक्त और केवल विधिमार्ग से चलनेवाले भक्त का प्रेम महिमा ज्ञानयुक्त है और रागमार्ग से चलनेवाले भक्त का प्रेम प्राय केवल अर्थात् ऐश्वर्य ज्ञानशून्य होता है। यही प्रेम क्रमश अपने माधुर्य का प्रकाश करते हुए, सूर्य की भाँति चित-रूपी नवनीत को अपने प्रभाव से द्रवित करते हुए **स्नेह** के रूप मे परिणत होता है। प्रेम की परिणति का नाम ही है स्नेह। यह स्नेह प्रेमविषयक अनुभूति को उसी प्रकार उद्दीप्त कर देता है, जैसे तेल दीपक की ऊष्मा एव प्रकाश को बढा देता है। इस मनोद्रव को कनिष्ठ, मध्यम और श्रेष्ठ--इस तरह तीन प्रकार का माना जाता है। स्नेह को भी स्वरूपत **घृतस्नेह** एव **मधुस्नेह**--दो प्रकार का रसशास्त्रियो ने माना है। स्नेह की उत्कृष्ट परिणति का नाम है **मान**, जिसमे अपने स्वरूप को ढंकने के लिए वाक्य का विकास हो

जाता है। इस मान को भी रसमर्मज्ञोने उदात्त एव ललित—दो रूपो मे वर्णन किया है। इसी मान मे जब विश्रम्भ की—अपने प्राण, मन, देह आदि से प्रेमास्पद के साथ अभेद की भावना जाग्रत हो जाती है, तब उसे **प्रणय** कहते है। यह विश्रम्भ भी मैत्र और सख्य—दो प्रकार का माना गया है। किसी-किसी स्थल-विशेष मे स्नेह से प्रणय का उद्भव होकर उस प्रणय की परिणति मान में होती है और कही-कही स्नेह से मान का आविर्भाव होकर वह मान प्रणय के रूप मे परिणत होता है। प्रणय की उत्कृष्टता के कारण जहाँ बडे दु ख का हेतु भी भगवत्प्राप्ति की सम्भावना से सुख के कारण—जैसा प्रतीत होने लगता है, वहाँ प्रणय का नाम **राग** हो जाता है। इस राग के भी दो विभाग माने गये है—१ नीलिमा और २ रक्तिमा। इनके भी अवान्तर भेद है। विस्तार-भय से उनका उल्लेख नही किया गया है। उन्हे रस-ग्रन्थो मे देखना चाहिए। अपने इष्ट मे अनुभव किये हुए सौन्दर्य, गुण, माधुर्य को जो नित्य नवीन रूप मे आस्वादनीय बनाने लग जाय, और स्वय भी नित्य नवीन बनता चला जाय, वह राग **अनुराग** के नाम से कहा जाता है। इसके आगे **भाव** की अवस्था आती है। अनुराग प्रतिक्षण बढता चला जाता है। जब इसकी सम्पूर्ण परकाष्ठा की दशा आ जाती है और इस प्रकार यह स्वयवेद्य रूप मे परिणत हो जाता है, तब इसे 'भाव' कहते है। जिस प्रकार समुद्र का जल क्रमश तरगो मे बढता हुआ ज्वार के समय तट को प्लावित कर देता है, साथ ही तट पर जितनी वस्तुएँ होती है, वे सभी निमग्न हो जाती है, अब आगे बढने के लिए मानो उसे स्थान नही रह जाता, उसी प्रकार अनुराग भी क्रमश हृदय मे बढता हुआ सम्पूर्ण हृदय को परिपूर्ण कर देता है तथा उसके विकास के समय सिद्ध भक्त या साधक भक्त, जो कोई भी पास मे हो, उन्हे प्रभावित कर देता है और अन्त में अपने-आपमे ही उसकी बाढ केन्द्रित हो जाती है। कई रसशास्त्रकार **भाव एवं महाभाव** को एक ही वस्तु समझते है और कई इनमे कुछ भेद की कल्पना करते है। जो भेद करनेवाले है, उनकी दृष्टि मे भाव एव महाभाव मे उतना ही अन्तर है, जितना अन्तर मिश्री और शुद्ध (उज्ज्वल) मिश्री मे होता है। महाभाव की अवस्था व्यक्त होने पर जिसमे यह भाव व्यक्त होता है और उसके मन मे कोई अन्तर नही रह जाता।

भगवद्रति विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव और व्यभिचारी भाव के साथ मिल कर चमत्कृतिजनक आस्वादन के योग्य बनती है और उस समय उसका नाम भक्ति रस होता है। यो

रति के प्रकार

तो यह रस बारह प्रकार का है, उनमे सात गौण और पाँच मुख्य है। वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, रौद्र और वीभत्स—ये सात गौण है, तथा शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये पाँच मुख्य है। जिसमे, जिसके द्वारा रति आदि का आस्वादन किया जाता है, उसको 'विभाव' कहते है। विभाव दो प्रकार के होते है—इनमे से जिसमे रति विभावित होती है, उसका नाम है 'आलम्बन-विभाव', जिसके द्वारा रति उद्दीपित होती है, उसका नाम है 'उद्दीपन-विभाव'। आलम्बन-विभाव भी दो प्रकार का होता है—विषयालम्बन, आश्रयालम्बन। इस भगवद्रति के विषयालम्बन है भगवान् और आश्रयालम्बन है उनके भक्तगण। जिनके द्वारा रति का उद्दीपन होता है, वे क्रिया, मुद्रा, रूप, वस्त्रालकारादि एव देश-कालादि वस्तुएं है 'उद्दीपन-विभाव।'

नाचना, भूमि पर लोटना, गाना, जोर से पुकारना, अंग मोडना, हुकार करना, जँभाई लेना, लंबे श्वास छोड़ना, लोकानपेक्षता, लालास्रव, अट्टहास, घूर्णा, हिक्का आदि। जिन लक्षणो के द्वारा चित्त के भाव बाहर प्रकाशित होते है, उन्हे अनुभाव कहते है। अनुभाव भी दो प्रकार के होते है—'शीत और क्षेपण'। गाना, जँभाई लेना आदि को 'शीत' और नृत्यादि को 'क्षेपण' कहते है।

अनुभाव

भगवान् मे साक्षात् अथवा व्यवहित सम्बन्ध रखनेवाले भावो से जो आक्रान्त हो जाता है, उस चित् को 'सत्व' कहते है तथा उस 'सत्व' मे उत्पन्न हुए को 'सात्विक' कहते है। सात्विक भाव आठ है—स्तम्भ, स्वेद, रोमाच, स्वरभग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय (मूर्च्छा)। ये सात्विक भाव 'स्निग्ध', 'दिग्ध' और 'रूक्ष'—भेद से तीन प्रकार के होते है। इनमे स्निग्ध सात्विक के दो भेद होते है—मुख्य और गौण। साक्षात् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध मे उत्पन्न होनेवाला स्निग्ध सात्विक भाव मुख्य है और किचित् व्यवधानपूर्वक श्रीकृष्ण के सम्बन्ध मे उत्पन्न होनेवाला स्निग्ध सात्विक भाव गौण है।

सात्विक भाव के प्रकार-भेद

जात-रति भक्तो के सात्विक भाव को 'दिग्ध' भाव कहते है और रति शून्य किन्तु भक्त मे प्रतीत होनेवाले मनुष्य मे कही-कही भगवच्चरित्र के श्रवणादिजन्य आनन्द-विस्मयादि के द्वारा उत्पन्न होने वाले भाव को 'रूक्ष' भाव कहते है।

दिग्ध, रुक्ष

ये सब सात्विक भाव पुन चार प्रकार के होते है—धूमायित, ज्वलित, दीप्त और उद्दीप्त। कही-कही इनके अतिरिक्त सूद्दीप्त नाम का एक पाँचवा भेद भी माना जाता है। जो सात्विक भाव अकेले या अन्य सात्विक भावो के साथ किचित् व्यक्त हो तथा जिनका गोपन सम्भव हो, वे 'धूमायित' कहलाते है। एक ही साथ भलीभाँति व्यक्त हुए और कठिनता से गोपन-योग्य दो तीन भावो का नाम 'ज्वलित' है। बढे हुए और एक ही साथ व्यक्त होनेवाले तीन, चार या पाँच सात्विक भावो को 'दीप्त' कहते है। इन 'दीप्त' भावो को छिपा कर नही रखा जा सकता। परमोत्कर्ष को प्राप्त एव एक ही साथ उदय होनेवाले पाँच, छह या सभी सात्विक भावो का नाम 'उद्दीप्त' है। ये उद्दीप्त भाव ही महाभाव मे सूद्दीप्त हो जाते है। उस समय इन सबकी पराकाष्ठा हो जाती है।

सात्विक भावों के पुनः चार भेद

इसके अतिरिक्त सात्विकाभास भी होते है। उनके चार प्रकार है—रत्याभासज, सत्वाभासज, नि.सत्व और प्रतीप। मुमुक्षु आदि मे उत्पन्न सात्विकाभास का नाम 'रत्याभासज' है। स्वभाव से ही शिथिल हृदय मे आनन्द, विस्मय आदि का आभास जब बढ जाता है, तब उसे सत्वाभास कहते है। और उससे उत्पन्न सात्विकाभास का नाम 'सत्वाभासज' है। जो स्वभावत ऊपर से शिथिल और भीतर से कठिन है, ऐसे चित्त मे तथा भगवद्भजन मे परायण अन्त करण

सात्विकाभास

मे सत्वाभास के विना भी कही-कही जो अश्रु-पुलकादि होते है, उन्हे 'नि सत्व' कहते है। भगवान् से विद्वेष रखनेवाले जीवो मे क्रोध, भय, आदि से उत्पन्न सात्विकभाव को 'प्रतीप' कहते है। यहाँ स्मरण रखने की बात है कि ये सात्विकाभास ऐसे लोगो मे ही प्रकट होते है, जिनका मन स्वभाव से शिथिल अथवा ऊपर से शिथिल, किन्तु भीतर से कठिन होता है।

व्यभिचारी या संचारी भाव

जो भाव विशेष रूप से अभिमुख हो कर स्थायी भाव के प्रति सचरित होते हैं, उन्हे 'व्यभिचारी' कहते है। इनका ज्ञान वाणी, भ्रू-नेत्र आदि अगो तथा सत्व से उत्पन्न अनुभावो के द्वारा होता है। ये व्यभिचारी भाव तैतीस है—निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शका, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मार, व्याधि, मोह, मरण, आलस्य, जाड्य, व्रीडा, अवहित्था (भाव-गोपन), स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, उत्सुकता, उग्रता, अमर्ष, असूया, चपलता, निद्रा, सुप्ति और बोध। इन तैतीस व्यभिचारी भावो को 'संचारी' भी कहते है, क्योकि इन्ही के द्वारा भाव की गति का सचालन होता है।

स्थायी भाव

हासादि अविरुद्ध एव क्रोधादि विरुद्ध भावो को दबा कर जो महाराजा की भाँति प्रतिष्ठित होता है, उसे 'स्थायी भाव' कहते है। इस भक्तिशास्त्र मे भगवद्विषयिणी रति ही 'स्थायी भाव' कहलाती है। इस रति के 'मुख्या' और 'गौणी' दो भेद माने गये है। 'मुख्या' को भी स्वार्था और परार्था—दो प्रकार की माना गया है। पुन यह 'स्वार्था' और 'परार्था'—रूप मुख्या रति पञ्चविध मानी गई है—'शुद्धा', 'प्रीति', 'सख्य', 'वात्सल्य' और 'प्रियता'। 'शुद्धा' के तीन भेद माने गये है—'सामान्या', 'स्वच्छा', और 'शान्ति'। साधारण पुरुषो की जो रति उन-उन प्रीति आदि विशेष अवस्थाओ को नही प्राप्त होती, उसे 'सामान्या' कहते है। साधको की जो रति नानाविध भक्तो के सग से उन-उन साधनो के कारण विविध रूप धारण कर लेती है, वह 'स्वच्छा' कहलाती है। जब जिस प्रकार के भक्त का सग होता है, स्फटिक मणि की भाँति उस समय वैसा ही रूप धारण कर लेने के कारण इसे 'स्वच्छा' कहते है। प्राय जिनमे 'शम' (मन की निर्विकल्पता) का बाहुल्य हो, वैसे व्यक्तियो की भगवान् मे ममता-गन्ध-शून्य तथा परमात्म बुद्धि से उत्पन्न जो रति होती है, वह 'शान्ति' रति कहलाती है।

अपने से जो न्यूनजन है, वे भगवान् के लिए अनुग्रह के पात्र है—इस भावना से भगवान् के प्रति आराध्य-बुद्धि लेकर जिनकी रति प्रसरित होती है, उनकी उस रति को 'प्रीति' कहते है। भगवान् के प्रति यह आसक्ति भगवान् के अतिरिक्त अन्य समस्त वस्तुओ मे लगी हुई प्रीति को नष्ट कर देने वाली होती है।

भगवान् के प्रति तुल्यत्व (समकक्षता) का अभिमान पोषण करनेवाले जो व्यक्ति है, वे भगवान् के सखा कहे जाते है। इस तुल्यता के कारण इन लोगो की विश्रम्भ-रूप जो रति होती है, उसे 'सख्य' कहते है। यह विश्रम्भ परिहास, प्रहास आदि का कारण होता है, फिर भी इस रति मे खेद के लिए अवसर नही होता।

भगवान् के जो गुरुजन है, वे पूज्य कहे जाते हैं। उनकी जो भगवान् के प्रति अनुग्रहमयी रति होती है, उसे 'वात्सल्य' कहते है। यह वात्सल्य लालन, शुभकामना, चिबुकस्पर्श आदि का प्रयोजक होता है।

भगवान् एवं उनकी प्रियतमाओं का परस्पर मिलन आदि करानेवाली जो रति है, उसे 'प्रियता' कहते है। इसी का दूसरा नाम 'मधुरा' है। इसमें कटाक्ष, भ्रूक्षेप, प्रियवाणी, स्मित आदि को स्थान मिलता है।

इनके अतिरिक्त गौणी रति के भी सात प्रकार माने गये है—हास्य, विस्मय, उत्साह, शोक, क्रोध, भय तथा जुगुप्सा। इनका विस्तृत विवरण विभिन्न रसग्रन्थों में देखना चाहिए।

भक्ति और शक्ति

साधना के आरम्भ में भी भक्ति है और अंत में भी भक्ति है। भक्ति ही साधना का प्राण है। जीव की आत्मा शिव-स्वरूप है। मोह और अज्ञान से आच्छन्न होने के कारण वह मूर्च्छित पडी रहती है। यह शिवरूपी आत्मा व्योम-तत्त्व में अर्थात् विशुद्ध चक्र में शवरूप में अवस्थित रहती है। यह बड़ी ही गम्भीर प्रसुप्ति है। इस सुप्त आत्मा को अर्थात् शवरूप शिव को जगाये विना आत्मज्ञान के पथ पर अग्रसर होना कठिन क्या, असम्भव है। परन्तु इस सोयी हुई आत्मा को जगानेवाली है एकमात्र शक्ति। शक्ति के विना शिव को कोई जगा ही नही सकता। अथच, स्वयं शक्ति भी निद्रा से अभिभूत होकर आधार-चक्र में जड़ पिण्ड की भाँति पड़ी रहती है। इसलिए साधक का सर्वप्रधान एवं सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि इस सुप्त शक्ति को जाग्रत कर उसकी सहायता से शवरूपी शिव को प्रबुद्ध करे। मूलाधार से विशुद्ध-चक्र तक पाँच चक्र पाँच भौतिक तत्त्वों के केन्द्र है। शक्ति व्यापक-भाव से सर्वत्र ही सुप्त रहती है। शक्ति है एक और अभिन्न, तथापि चक्र-भेद से उसकी स्थिति पृथक्-पृथक् है। मूलाधार में शक्ति जाग्रत होने से उसके प्रभाव से स्वाधिष्ठान मे स्थित शक्ति भी जाग्रत हो जाती है और इसी प्रकार क्रमशः पाँचों चक्रों में शक्ति जाग्रत हो जाती है। जैसे-जैसे शक्ति जाग्रत हो कर ऊपर की ओर उठती है, वैसे-वैसे उसका जागरण क्रमशः अधिक उज्ज्वल और स्पष्ट होता जाता है और चरमावस्था में जब शक्ति पूर्णतः जाग्रत हो जाती, तब पाँचो चक्र खुल जाते है और तब लेशमात्र को भी जड़त्व का आभास कही रह नही जाता। इस अवस्था में, अर्थात् आकाश-तत्त्व में शक्ति के पूर्ण जागरण का फल यह होता है कि शवरूपी शिव जाग्रत हो जाते है, आत्मा की अनादि निद्रा भंग हो जाती है और तभी सिद्ध होता है शिव-शक्ति-सामरस्य।

दूसरा अध्याय

मधुर रस का स्वरूप और उसकी व्यापकता

मधुर रस के सम्बन्ध में उपनिषदों में यत्र-तत्र संकेत रूप में उल्लेख मिलता है। पुराणों में श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त्त में इसका बड़ा ही भव्य एवं दिव्य वर्णन है। यह निःसंकोच स्वीकार करना होगा कि श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्त्त ही मधुर रस के आकर-ग्रन्थों में मुख्य एवं शिरोमणि है। वृहद् गौतमीय तंत्र, ब्रह्म संहिता, संमोहन तंत्र आदि ग्रन्थों में भी इस तत्त्व की विशद व्याख्या है। कतिपय अन्य संहिताओं में भी मधुर रस की विवृति है, परन्तु भक्ति का जैसा सांगोपांग मार्मिक, वैज्ञानिक, सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन गौडीय वैष्णव-संप्रदाय में हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। गौडीय वैष्णवों ने इसका पुखानुपुंख विचार किया है। अस्तु, यहाँ श्री रूप गोस्वामी के 'भक्ति-रसामृत-सिंधु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' के आधार पर मधुर रस के तात्त्विक स्वरूप एवं रहस्य का आकलन प्रस्तुत किया जा रहा है। तदनन्तर हम दिखायेंगे कि रामावत-सम्प्रदाय की मधुर उपासना पर इसका क्या प्रभाव है।

जड़ जगत् चिज्जगत् का प्रतिफलन

यह जड़ जगत् चिज्जगत् का प्रतिफलन है। इसमें गूढ़ तत्त्व यह है कि प्रतिफलित प्रतीति स्वभावतः विपर्यय धर्म को प्राप्त कर लेती है, अर्थात् आदर्श जहाँ सर्वोत्तम होता है, प्रतिफलन गर्वाधम, आदर्श जहाँ अत्यन्त निम्न कोटि का होता है प्रतिफलन अत्यन्त उच्च कोटि का। दर्पण में का परम दिव्य अपूर्व रस जड़ जैसे प्रतिबिम्ब उलटा पड़ता है वही दशा यहाँ भी है। चिज्जगत् जगत् में विपर्यस्त होकर जड़ जगत् में स्थूल रूप धारण कर लेता है। वस्तुतः परम वस्तु रस-रूप-तत्त्व है। उसकी अद्भुत विचित्रता है। इस जगत् में उसकी जो परछाई पड़ती है उसी का अवलम्बन करके आगे बढ़ा जाय तो उस अतीन्द्रिय रस का अनुभव हो सकता है।[1]

चिज्जगत् के रस और जड़ जगत् के व्यापार

चिज्जगत् के अत्यन्त निम्न भाग में है शान्त रस, उसके ऊपर दास्य रस, उसके ऊपर सख्य रस, उसके ऊपर वात्सल्य रस और सबसे ऊपर मधुर रस। इस जड़ जगत् में विपर्यस्त प्रतिफलन के द्वारा मधुर रस सब से नीचे है। उसके ऊपर है वात्सल्य रस, उसके ऊपर सख्य रस, उसके ऊपर दास्य रस और सबसे ऊपर शान्त रस। दिव्य मधुर रस की जो स्थिति और क्रिया है, वह इस जड़ जगत् में नितान्त तुच्छ और लज्जास्पद है।

---

१ द्रष्टव्य--जैव धर्म, अध्याय ३१।

चिज्जगत् मे पुरुष और प्रकृति का सम्मिलन अत्यन्त पवित्र एव तत्त्वमूलक है। चिज्जगत् मे एक मात्र भगवान् ही भोक्ता है। शेष समस्त चित्सत्त्वगण प्रकृति-रूप मे उसकी भोग्या है। इस जड जगत् मे कोई जीव भोक्ता है और कोई भोग्या--इस प्रकार मूलतत्त्व के विरोध मे यह सारा व्यापार लज्जाजनक एव घृणास्पद हो जाता है। तत्त्वत जीव जीव का भोक्ता हो नही सकता। सकल जीव भोग्या है, एकमात्र श्रीकृष्ण ही भोक्ता है। कहाँ जीव जीव का उपभोग और कहाँ कृष्ण और जीव का उपभोग! परन्तु इस हेय के भीतर से भी एक अत्यन्त उपादेय तत्त्व उपलब्ध हो जाता है। कैसे, इसका विवेचन आगे करेगे।

मधुर रस के आश्रय और विषय

कृष्ण ही मधुर रस के विषय है और उनकी वल्लभाएं इस रस का आश्रय है। दोनो मिल कर रस के आलम्बन है। मधुर रस के विषय श्रीकृष्ण है परम सुन्दर, परम मधुर, नवजलधर वर्ण, सर्व सल्लक्षणयुक्त, बलिष्ठ, नवयौवनशाली, प्रियभाषी, विदग्ध, कृतज्ञ, प्रेमवश्य, रमणीजनमनोहारी, नित्य नूतन, अतुल्य-केलि, सौन्दर्यशाली, प्रियतम, वशीवादनशील। उनके चरणो की नखद्युति कोटि-कोटि कदर्पो का दर्प चूर्ण कर देती है और उनके कटाक्ष से सबका चित्त विमोहित हो जाता है।

नायकचूडामणि श्रीकृष्ण का गोपियो के साथ जो लीला-विलास है वही है मधुर रस की आत्मा। इसका स्थायी भाव है दोनो की प्रियता या मधुरा रति[1] जो दोनो को दोनो मे सयोग की प्रेरणा देती रहती है। युक्त विभावो-अनुभावो के द्वारा जब यह रति भक्तो के हृदय मे रसास्वादन की स्थिति तक पहुँचती है, तब इसे भक्ति-रस-राज 'मधुर रस' कहते है।[2] कृष्ण का कान्तत्वेन स्फुरण ही मुख्यत इस रस का आधार है पर कान्त को दोनो ही भाव मे लिया जा सकता है। पतिरूप मे, उपपति रूप मे। शृगार रस का तो उपपति रूप मे ही परमोत्कर्ष माना जाता है। शृगार का चिद् व्यापार एक रहस्यमणि की माला की तरह है तो उसमे परकीय मधुर रस को उस मणिमाला मे कौस्तुभ विशेष मानना चाहिए। जैसे शान्त से दास्य मे, दास्य से सख्य मे, सख्य से वात्सल्य मे और वात्सल्य से मधुर मे इसका अधिकाधिक उत्कर्ष होता चला जाता है, उसी प्रकार स्वकीय की अपेक्षा परकीय मे रस अपने चरमोत्कर्ष पर आ जाता है।[3]

---

१ मिथो हरेर्मूगाक्ष्यश्च संभोगस्यादिकारणम्।
मधुरापरंपर्या प्रियताख्योदिता रतिः॥--उज्ज्वल नीलमणि

श्रीकृष्ण की द्विविध लीलाओं मे ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य की लीला श्रेष्ठ है।
--दे० जीवगोस्वामी का प्रीति-संदर्भः पृ० ७०४-७१५।

२ स्वाद्यतां हृदि भक्तानां अनीता।--उ० नी० म०

३ अत्रैव परमोत्कर्षः शृंगारस्य प्रतिष्ठितः।--उ० नी० म०

श्रीकृष्ण का अवतार ही रसास्वादन के लिए हुआ।[1] परकीया या तो कल्पका हो सकती है या प्रौढा। लोकदृष्ट्या, यह भाव गर्हित हो सकता है, पर यह परकीया-भाव ही वैष्णवों का परमादर्श हुआ और इसी का आधार लेकर आत्माएँ अपने-आपको सर्वभावेन श्रीकृष्ण को समर्पित करती रही है। श्रीकृष्ण के इसी भाव को लेकर वैष्णव शास्त्रों ने द्वारका मे उन्हे पूर्ण, मथुरा मे पूर्णतर तथा व्रज मे पूर्णतम माना है। नायक नायिका परस्पर अत्यन्त 'पर' होकर जब राग की तीव्रता द्वारा मिलते है, तब एक अद्भुत आनन्द रस का सचार होता है। यही है परकीय रस। गोपियों और श्रीकृष्ण का प्रेम अपनी साधनता, प्रच्छन्न कामना तथा विवाह के अव्यक्तत्व के कारण ही परकीया-भाव की उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त हुआ।

परकीया-भाव की रसात्मक उत्कृष्टता

यह लक्ष करने की बात है कि श्रीकृष्ण की चिन्मयी लीला नित्य है। उस नित्य गोलोक की नित्य चिन्मयी लीला मे कृष्ण-कृपा से दिव्य देह से प्रवेश का विषय आगे यथास्थान आयेगा। यहाँ इतना निवेदन करना अपेक्षित है कि श्रीकृष्ण त्रिपाद विभूति चिज्जगत् मे है और जड जगत् मे एक पाद विभूति है। एक पाद विभूति चौदहो लोकात्मक मायिक विश्व है। मायिक विश्व एव चिज्जगत् के बीच 'विरजा' नदी है और विरजा के पार है

नित्य गोलोक और नित्य चिन्मयी लीला

परकीया-भाव के सम्बन्ध मे विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते है कि 'यन्तः गोकुले स्वीयाऽपि पित्रादिशंकया परकीया इव।' जीव गोस्वामी ने अपने 'प्रीति-संदर्भ (पृ० ६७६-६८६) मे विस्तार से इस विषय पर प्रकाश डाला है। वे कहते है कि श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ विहार 'प्राकृत काम' नहीं है, प्रत्युत् 'शुद्ध प्रेमन्' है और प्रकट लीला मे ही स्वकीय-परकीय का प्रश्न उठता है। 'वस्तुतः परमस्वीयाऽपि प्रकटलीलायां परकीयामानाः श्री व्रजदेव्यः।'

१ रसनिर्यासस्वर्थं अवतारणि ।---उ० नी० म० (पृ० ५४७)

श्रीकृष्ण संदर्भ मे जीव गोस्वामी ने व्रजलीला की रहस्यपरक दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। उनका कहना है कि मथुरा और द्वारका की गोपियाँ श्रीकृष्ण की 'स्वरूपा शक्ति' है। गोपियों का परकीया-भाव वस्तुतः है नहीं, वह प्रकट वृन्दावन लीला मे आभास मात्र है। इतना ही नहीं, उनका कहना है कि व्रजसुन्दरियों का कभी अपने पतियों के साथ संगम हुआ ही नहीं---'न जातु व्रजदेवीनां पतिभिः सह संगमः।'

२ Even if orthodox poetics deprecates love to a married woman she is according to Vaisnav's idea, the highest type of heroine and forms the central theme of the later parakiya doctrine of the school in which the love of the mistress for her lover becomes the universally accepted symbol of the soul's passionate devotion to God.

—S. K. De. Vaisnava Faiths & Movement. P. 54

चिज्जगत्। इस चिज्जगत् को वेष्टन-प्राकार की तरह घेरे हुए है ज्योतिर्मय ब्रह्मधाम। उसे भेद करने पर परव्योन रूप वैकुण्ठ दिखता है। वैकुण्ठ प्रबल है। यहाँ के राजराजेश्वर है अनन्त चिद्विभूतिपरिसेवित नारायण। वैकुण्ठ है भगवान् का स्वकीय रस। श्री, भू आदि शक्तिगण स्वकीय स्त्री रूप मे उनकी सेवा उस लोक मे करती रहती है। वैकुण्ठ के ऊपर है गोलोक। वैकुण्ठ मे स्वकीया पुरवनितागण यथास्थान सेवा मे तत्पर रहती है और गोलोक मे व्रज-वनितागण निज रस मे कृष्ण-सेवा करती रहती है।

व्रज सुन्दरियों के प्रकार-भेद

इन व्रजवनिताओ के कई भेद है और इनका प्रकार-भेद काव्यशास्त्र के अनुसार किया गया है—स्वकीया, और परकीया। इनके तीन भेद—मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा। इसमे 'मान' के आधार पर मध्या और प्रगल्भा के भेद है—धीरा, अधीरा, धीराधीरा। नायक के साथ इनके सम्बन्ध के आधार पर पुन इनके आठ भेद है—१—अभिसारिका, २—वासकसज्जा ३—उत्कंठिता, ४—विप्रलब्धा, ५—खडिता, ६—कलहान्तरिता, ७—प्रोषितभर्तृका, और ८—स्वाधीनभर्तृका। नायक के प्रेम के आधार पर पुन उत्तमा, मध्यमा और कनिष्ठा ये तीन भेद है।

सखी भेद

यह तो हुआ सामान्य शास्त्र के आधार पर किया हुआ विभाजन, परन्तु धर्मशास्त्र के आधार पर किया हुआ विभाजन सर्वथैव नूतन है और भक्ति रसराज मधुर रस मे वही गृहीत है—

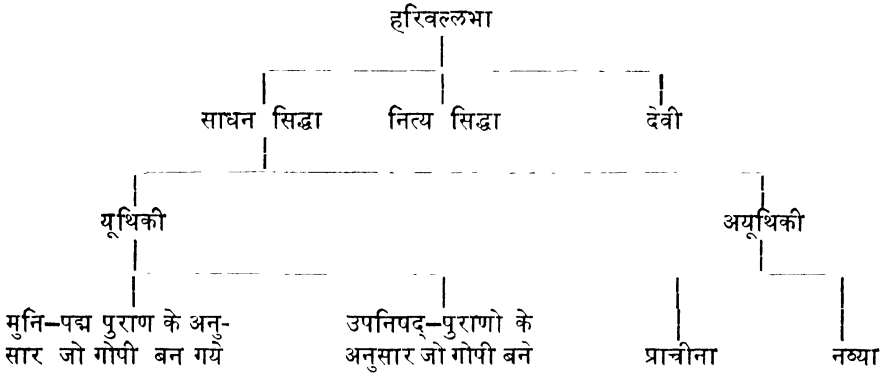

इनमे राधा वृन्दावनेश्वरी, कृष्ण की नित्य सहचरी, परम प्रियतमा ह्लादिनी महाशक्ति है। राधा की सखियाँ पाँच प्रकार की है—सखी, नित्य सखी, प्राण सखी, प्रिया सखी और परम प्रेष्ठा सखी।

यह एक बात ध्यान मे रहे कि कोटि-कोटि मुक्त पुरुषो मे एक भगवद्भक्त दुर्लभ है। जो लोग अष्टाग योग या ब्रह्मज्ञान के द्वारा मुक्ति पा जाते है, वे ब्रह्मधाम मे ही आत्म-विस्मृति का आनन्द लेते रहते है। जो भगवान् के ऐश्वर्यपरायण भक्त है वे लोग भी गोलोक मे नही जाते। वे वैकुण्ठ मे अपने भावानुसार भगवान् की ऐश्वर्य-मूर्त्ति की सेवा करते रहते है। जो लोग ब्रजरस से भगवान् का भजन करते है वे ही गोलोक देख पाते है। गोलोक मे शुद्ध चित्प्रतीति है। गोलोक स्वप्रकाश वस्तु है। भक्तो के हृदय मे गोलोक प्रकाशित होता है।

ब्रजरस

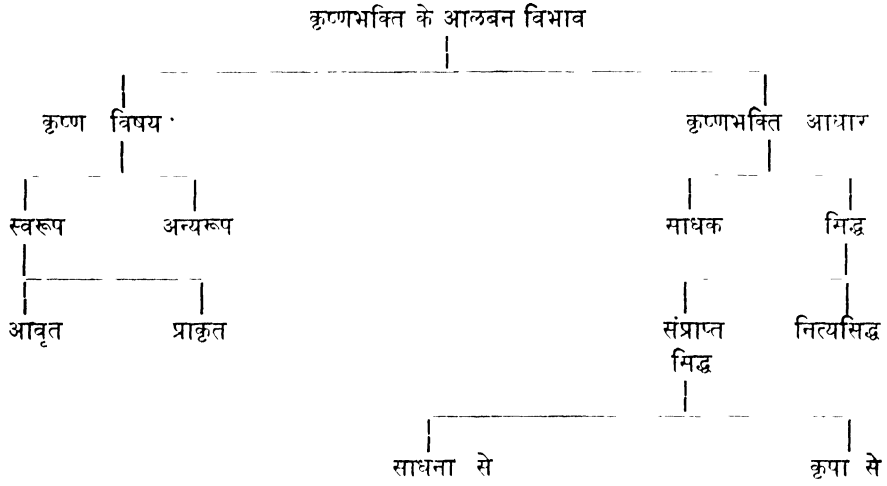

नायक के चार भेद––(१) अनुकूल, (२) दक्षिण, (३) शठ और (४) धृष्ट। इनमे से प्रत्येक के चार-चार भेद––धीरोदात्त, धीर ललित, धीरोद्धत और धीरशात।

नायक भेद

नायक के सहायको के पाँच भेद है––चेट, विट, विदूषक, पीठमर्दक और प्रियनर्मसखा। दूती के दो प्रकार––स्वय और आप्त। विभिन्न चेष्टाओ और सकेतो से, जैसे भ्रूविलास, अधरदशन आदि द्वारा जो नायक को नायिका की ओर आकृष्ट करती है वही स्वय दूती है। आप्त दूती वह है जो नायक का पत्र आदि ले जाती है। उनके तीन भेद है––अमितार्था, विसृष्टार्था और पत्रहारिका। इनमे शिल्पकारी, दैवज्ञ, लिगिनी, परिचारिका, धात्रेयी, सखी, वनदेवी आदि कई भेद है। संकेत वाच्य भी हो सकता है, व्यग्य भी। साक्षात् भी हो सकता है अथवा व्यपदेशन भी।

सहायक भेद

ऊपर कहा जा चुका है कि श्रीकृष्ण द्वारकापुरी मे पति भाव से और व्रजपुरी में उपपत्ति भाव से लीला करते है। सकल व्रजवासिनी ललना व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की परकीया है।

परकीया मे रस की उत्कृष्टता क्यों ?

कारण कि परकीया के अतिरिक्त मधुर रस का अत्यन्त उत्कृष्ट विकास हो नही सकता। थोडा इसे विस्तार से समझना आवश्यक प्रतीत होता है। स्त्रियो मे जो वामता, दुर्लभता, निबन्धन-निवारणादि प्रतिबधकता है, वही है कदर्प का परम आयुध। जहाँ निषेध विशेष है और ललना दुर्लभ है, वही नागर का हृदय अतिशय आसक्त होता है। नन्दनन्दन श्रीकृष्ण गोप है। वे गोपी के सिवा किसी से रमण करते नही। गोपियाँ जिस भाव से श्रीकृष्ण की भजन-सेवा करती थी, शृगार रसाधिकारी साधक भी उसी भाव से कृष्ण का भजन करते है। भावनामार्ग से अपने को व्रजवासी मान कर किसी सौभाग्यवती व्रजवासिनी के परिचारिका-भाव से उसके निर्देश पर राधा-कृष्ण की सेवा करे। अपने को प्रौढा जाने बिना रसोदय होगा नही। यह प्रौढाभिमान ही व्रजगोपीत्व धर्म है।[1]

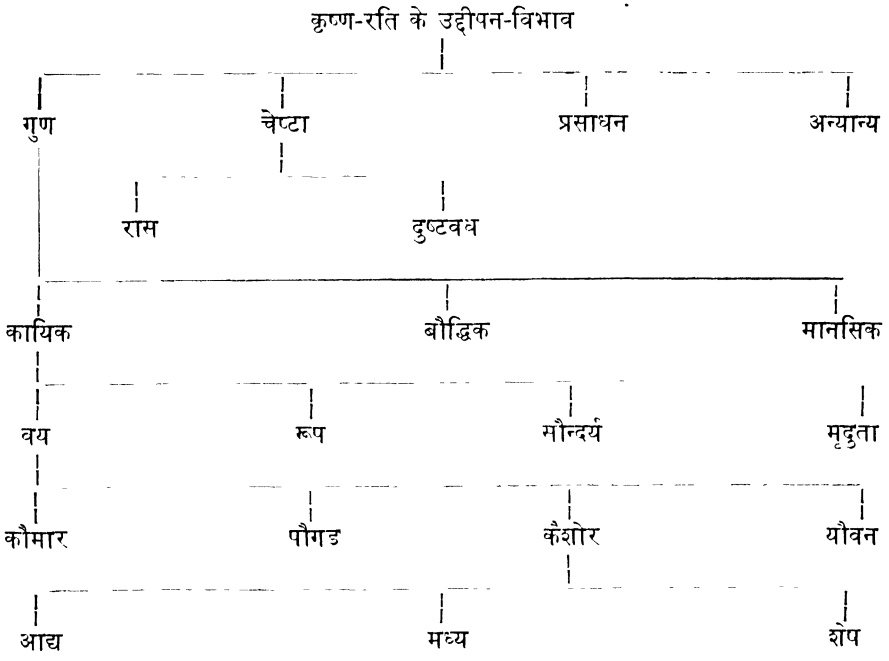

---

१ श्री रूपगोस्वामी लिखते है—

मायाकल्पितता दृक्-स्त्री-शीलनेनानसुयिभिः।
न जातु व्रजदेवीनां पतिभि सह संगमः॥

परन्तु यह प्रश्न उठता है कि पुरुष साधक अपने को 'प्रौढा' किस प्रकार माने? पुरुष इस 'प्रौढाभिमान' को कैसे सिद्ध कर सकेगा? उत्तर यह है कि पुरुष मायिक स्वभाववश ही संसार में अपने को पुरुष समझता है। शुद्ध चित्स्वभाव में कृष्ण के अतिरिक्त यावत्जीवमात्र स्त्री है। चिद्गठन में वस्तुत स्त्री पुरुष चिह्न है नही, इसलिए जो कोई भी व्रजवासिनी होने का अधिकार लाभ कर सकते है। जिन्हे मधुर रस की स्पृहा है उन्हे तो व्रजवासिनी होना ही पडेगा। स्पृहा के अनुरूप साधना करते-करते सिद्धि का उदय होता है।

व्रजवासी भाव

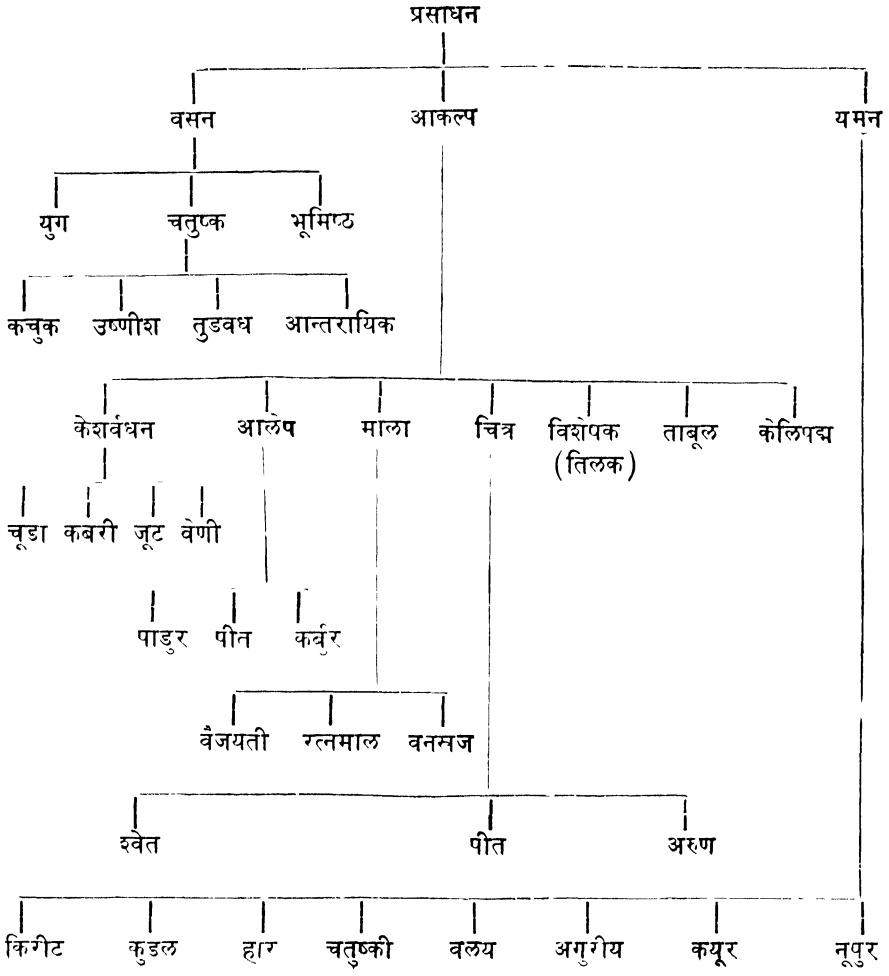

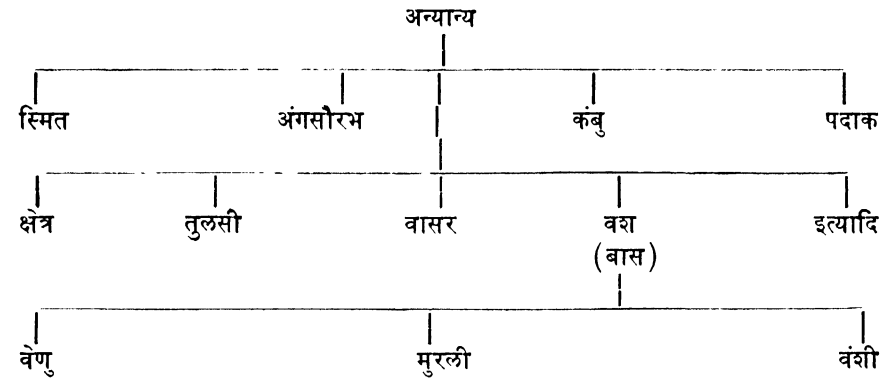

रति के अनुभाव कृष्ण-रति के अनुभाव हैं—नृत्य, विलुठित, गीत, क्रोशन, तनु-मोटन, हुकार, जृ भन, श्वासभूयन, लोकानपेक्षिता, लालास्रव, अट्टहास, घूर्णा, हिक्का।

अष्ट सात्विक भाव स्तभ, स्वेद, रोमाच, स्वरभग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय।

स्थायी भाव काव्य-शास्त्र के अनुसार रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद, परन्तु भक्ति-शास्त्र के अनुसार शृगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त।

व्यभिचारी भाव ३३ निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शंका, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मार, व्याधि, मोह, मृति, आलस्य, जाड्य, व्रीडा, अवहित्था, स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, औत्सुक्य, उग्रता, अमर्ष, असूया, चापल्य, निद्रा, सुप्ति, बोध।

मुख्य भक्ति-रस के रंग आदि

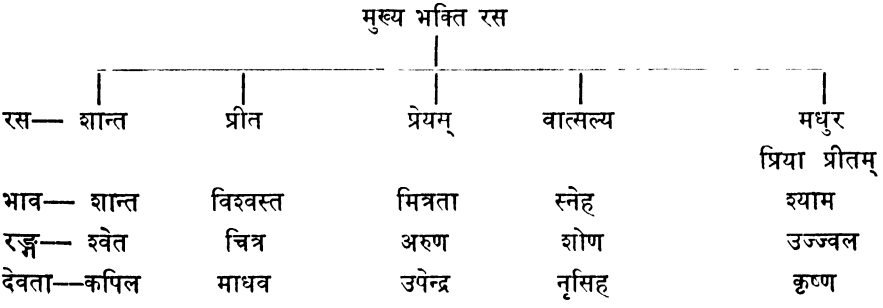

रस—	शान्त	प्रीत	प्रेयस्	वात्सल्य	मधुर प्रिया प्रीतम्
भाव—	शान्त	विश्वस्त	मित्रता	स्नेह	श्याम
रङ्ग—	श्वेत	चित्र	अरुण	शोण	उज्ज्वल
देवता—	कपिल	माधव	उपेन्द्र	नृसिह	कृष्ण

गौण भक्ति-रस

रस—हास्य	अद्भुत	वीर	करुण	रौद्र	भयानक	वीभत्स
रङ्ग—पाण्डुर	पिंगल	गौर	धूसर	रक्त	काला	नील
देवता—बलराम	कर्म	कल्कि	राघव	भार्गव	वाराह	मत्स्य

ऊपर हम उद्दीपन-विभाव का विवरण प्रस्तुत कर चुके है। उद्दीपन मे तटस्थ वस्तुओ मे वसन्तागमन, कोकिल-कजन, मेघमाला का घिर आना, चन्द्रदर्शन आदि मुख्य है। कायिक सौन्दर्य मे रूप, लावण्य, मार्दव आदि मुख्य है। यौवन की तीन अवस्थाएँ है—नव्य, व्यक्त और पूर्ण। श्रीकृष्ण का नाम, चरित, लीला, उदाहरणार्थ वंशीवादन, गोदोहन, गोवर्धनधारण आदि विशेष रूप से उद्दीपन विभाव मे आते है। वृन्दावन, इसकी नदिया, कुञ्ज, वृक्ष-गुल्मलता, पुष्प, पक्षी, पशु आदि भी प्रेम को उद्दीप्त करते है।

उद्दीपन-विभाव की विशेषता

अनुभावो का विवरण भी ऊपर की तालिकाओ मे आ गया है। उसमे बाईस अलकार, सात उद्भास्वर और तीन अङ्गज है। अङ्गज अनुभावो मे भाव, हाव, हेला और स्वभावज मे लीला, विलास, विच्छित्त, मोट्टायित आदि मुख्य है। 'लीला' का अर्थ है प्रियतम के चरित का क्रीडामय अनुकरण, 'विलास' का अर्थ है क्रीडा के सकेत, 'विच्छित्ति' का अर्थ है अलंकरण और 'मोट्टायित' का अर्थ है इच्छा का स्पष्ट उल्लेख। ये सब तो काव्य-शास्त्र की परम्परा मे भी है, पर सात उद्भास्वर सर्वथा नये है—वे है नीवीविस्रंसन, उत्तरीय-स्खलन-,जृभा-जँभाई लेना, केश-सस्रन इत्यादि। ये वस्तुत विलास और मोट्टायित के अन्तर्गत आ जाते है। द्वादश वाचिक अनुभावो मे है आलाप, विलाप, प्रलाप, अनुलाप, अपलाप, सन्देश, अतिदेश, अपदेश, उपदेश, निर्देश और व्यपदेश।

अनुभावो की विशेषता

आष्टसात्विक भाव तो काव्य-शास्त्र की तरह ज्यो-के-त्यो यहाँ भी है। परन्तु उनकी चार अवस्थाएँ है—धूमायित, ज्वलित, दीप्त और उद्दीप्त।

नायिका की दृष्टि से मधुरा रति के तीन भेद है—(१) साधारणी—आत्मतर्पणैकतात्पर्या—जिसमे अपनी ही तृप्ति मुख्य है—जैसे कुब्जा। यह प्रेमावस्था तक जाती है। (२) समञ्जसा—उभयनिष्ठारति—जिसमे अपना सुख और कृष्ण का सुख समान रूप से अपेक्षित है— जैसे रुक्मिणी। यह अनुराग अवस्था तक जाती है। (३) समर्था केवल कृष्णार्थ—जैसे गोपियाँ। यह महाभाव अवस्था तक जाती है। रामभक्ति-साहित्य मे इसी को (१) स्वसुखी (२) चित्सुखी और (३) तत्सुखी नाम से अभिहित किया गया है जो वस्तुत और भावत सर्वथा इससे अभिन्न है।

मधुरा रति के भेद (नायिका की दृष्टि से)

१. प्रेम--प्रेम का अर्थ है भावबन्धन। यही है रति का अमर बीज और उत्कृष्टता की दृष्टि से इसके तीन भेद होते हैं--प्रौढ, मध्य और मन्द। २. स्नेह--यह प्रेम की विकसित एव उन्नीत अवस्था है। शब्द सुनकर, रूप देखकर या स्मृति मे हृदय द्रवित होता है, क्योकि 'हृदय-द्रावण' इसका मुख्य लक्षण है। इसमे भी उत्कृष्टता की दृष्टि से तीन भेद है--श्रेष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ। इस स्नेह के दो मुख्य भेद है--

मधुरा रति के भेद (भावों के अनुसार)

घृत-स्नेह और मधु-स्नेह

(क) घृत-स्नेह--अखण्ड घृतधारावत्, उत्कण्ठा--घृत की तरह तरल भी घनी भी। रति का उदय।

(ख) मधु-स्नेह--अखण्ड और मधुर। रति स्थिर हो जाती है।

३ मान – अर्थात् प्रेमातिरेक की अवस्था मे उपेक्षा का अभिनय। इसके दो भेद--उदात्त (घृतस्नेहवत्) और ललित (मधुस्नेहवत्)।

४ प्रणय--विश्रम्भ--इसके मुख्य दो भेद (१) मैत्र और (२) सख्य। उदात्त और ललित के सम्पर्क मे इन दोनो प्रकार के प्रणय के फिर दो भेद होते है--सुमैत्र और सुसख्य। विकास-क्रम मे इसकी गति होती है--

प्रणय के भेद तथा विकासक्रम

स्नेह प्रणय मान

अथवा--

स्नह मान प्रणय

५ राग--शृङ्गार मे दु ख का सुख मे बदलना। इसके दो रङ्ग माने गये है (१) नीलिमा या (२) रक्तिमा। नीलिमा के फिर दो भेद--(१) नीली राग--जिसका रङ्ग न बदले और जो अव्यक्त हो या श्यामा राग--धीरे-धीरे पूर्णता को प्राप्त होनेवाला और जरा-जरा प्रकाशित। रक्तिमा राग के भी दो भेद--कुसुभ राग--हलके रङ्ग का--जो जल्दी दूसरे राग मे घुल जाय और दूसरे रागो को अभिव्यक्त करे या मञ्जिष्ठ राग--स्थायी और स्वतन्त्र।

राग और उसके भेद

६ अनुराग--नित नूतन प्रेम। इसके कई स्तर है--(१) परवशी भाव--आत्म-समर्पण और (२) प्रेमवैचित्य--विरह की स्नेहमयी आशका (३) अप्राणि-जन्म--प्यारे के स्पर्श पाने के लिए निर्जीव वस्तुओ के रूप मे जन्म लेने की आकाक्षा और (४) विप्रलम्भ विस्फूर्त्ति--विरह में प्रिय की झलक।

७ भाव या महाभाव--(१) रूढ--जहाँ सात्विको की परम उद्दीप्त स्थिति हो गई है। सम्भोग या विप्रलम्भ दोनो ही अवस्थाओ मे (क) निमिष मात्र को भी विरह असह्य हो जाता है, (ख) आसन्न जनता के हृदय को विनोदित करने की शक्ति होती है, (ग) एक क्षण कल्प की तरह और एक कल्प क्षण की भाँति हो जाता है, (घ) प्रियतम की सुखमय अवस्था मे भी

आर्त्ति-शका के कारण खिन्नता और (ङ) मोह, मूर्च्छा आदि के अभाव मे भी पूर्ण आत्म-विस्मरण।[1]

(२) अधिरूढ—उपर्युक्त रूढ भाव की विशेष उत्कर्ष दशा। इसके दो प्रकार—(क) मोदन—सात्विको का अत्यन्त उद्दीप्त सौष्ठव—जो केवल राधा-वर्ग मे मिलता है। इसीका और विकसित रूप है (ख) मादन सात्विको का सूद्दीप्त सौष्ठव—प्रिया के आलिङ्गन मे होते हुए भी प्रिय का मूर्च्छित होना[2]—तथा स्वय असह्य दु ख स्वीकार करके भी प्रिय के सुख की कामना[3]—तथा सारे ससार को दु खी कर डालने की प्रवृत्ति[4]—पशुलोक का रोदन[5]—मृत्यु का वरण करके भी प्रियतम के साथ अङ्ग-सङ्ग की अभिलाषा—और अन्त मे है दिव्योन्माद। दिव्योन्माद की अवस्था मे नाना प्रकार की अवश क्रियाएँ तथा चेष्टाएँ हो सकती है जिसे 'उद्घूर्ण' कहते है। प्रियतम के किसी मित्र से मिलने पर नाना प्रकार की बातचीत हो सकती है जिसे 'चित्रजल्प' कहते है। इस चित्र-जल्प की दस अवस्थाएँ होती है—प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, सजल्प, अवजल्प, अभि-जल्प, आजल्प, प्रतिजल्प और सुजल्प।

पुनः मादन

'मादन' का अर्थ है समस्त भावो का अकुरित हो जाना। यह केवल राधा मे मिलता है। इसका लक्षण यह है—मान के कारण न होने पर भी मान करना और प्रियतम के साथ सम्भोग की अवस्था मे भी विरहाशंका या नायक के सम्बन्ध की विविध बातो का चिन्तन-स्मरण।

मधुरा रति का स्थायी भाव ही मधुर रस या शृङ्गार रस हो जाता है। इसके दो भेद है—सम्भोग और विप्रलम्भ। विप्रलम्भ के अनेक अवान्तर भेद है।[7]

---

१ पंचत्वं तनुरेतु भूतनिवहा स्वांशे विशांतु स्फुटम्।
धातारं प्रणिपत्य हन्त शिरसा तत्रापि याचे वरम्॥
तद्वापीषु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयांगने।
व्योम्नि व्योम तदीयवर्त्मनि धरा तत्तालवन्तेऽनिलाः॥

—श्री जीव गोस्वामी

२ 'कान्ताश्लिष्टेऽपि मूर्छना।'

३ 'असह्यदुःखस्वीकरादपि तत्सुखकामिता।'

४ ब्रह्माण्डक्षोभकारित्वम्।'

५ 'तिरश्चामपि रोदनम्।'

६ 'मृत्युस्वीकारात् स्वभूतैरपि तत्संगतृष्णा।'

७ 'रसार्णव-सुधाकर' में विप्रलंभ के चार प्रकार है—पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुणा।

१. पूर्वराग--प्रसुप्त प्रेम, मिलन के पूर्व का प्रेम। प्रियतम के प्रथम दर्शन, श्रवण, स्वप्नदर्शन, चित्रदर्शन से उद्भूत प्रणय-पिपासा। यह 'प्रौढ', 'समञ्जस' या 'साधारण' भेद से तीन प्रकार का होता है। प्रौढ पूर्वराग की दस दशाएँ हैं--

लालसा, उद्वेग, जागरण, तानव (दुर्बलता), जडिमा (शरीर का सुन्न पड जाना), वैवग्र्य (व्यग्रता), व्याधि (पीला पड जाना), उल्लास, मोह (मूर्च्छा) और मृत्यु।

समंजस पूर्वराग की दस दशाएँ

समञ्जस पूर्वराग की दस दशाएं है--अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण-कीर्त्तन, उद्वेग, विलाप, उन्माद, व्याधि, जडता और मृति।

साधारण पूर्वराग की छह दशाएँ

साधारण पूर्वराग की छह दशाएं है जो समञ्जस पूर्वराग की प्रथम छह के समान ज्यो-की-त्यो अभिलाष से आरम्भ होकर विलाप पर समाप्त हो जाती है।

२ मान[1] --प्रेम की परिणति मे बाधा डालने वाला तथा प्रणयोल्लास को उभारने वाला क्रोधाभास। प्रेमास्पद की कोई चेष्टा या 'हरकत' देखकर, सुनकर या अनुमान कर जो मान होता है वह 'सहेतुक' है। मान का दूसरा भेद है निर्हेतुक या कारणाभाससहित। मधुर शब्द से, उपहार आदि से, आत्म-प्रशसा से अथवा उपेक्षा से मान का उपशमन हो जाता है।

३ प्रेमवैचित्त्य--अर्थात् प्रेमास्पद की उपस्थिति मे भी विरह की आशका।

४ प्रवास--प्रिय के वियोग मे मानसिक क्षोभ। प्रवासजन्य क्लेश की दस दशाएँ है--चिन्ता, जागरण, उद्वेग, तानव, मलिनाङ्गता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु।

नित्य लीला मे नित्य संयोग

नित्य लीला मे कृष्ण का व्रजदेवियो से कथमपि वियोग नही होता, क्योकि इनका मिलन नित्य है। प्रकट लीला मे ही श्रीकृष्ण के मथुरा जाने पर गोपियो को प्रवासजन्य क्लेश होता है। अर्थात् प्रकट लीला मे बाहर-बाहर से देखने भर को ही श्रीकृष्ण का मथुरागमन होता है, वास्तव मे तो सच यह है कि 'वृन्दावन परित्यज्य पादमेक न गच्छति।'

सयोग-शृङ्गार के दो भेद (१) मुख्य और (२) गौण। मुख्य सयोग है साक्षात् प्रकट मिलन और गौण है स्वप्नादि मे मिलन। इन दोनो के पुन चार भेद हैं[2]--(१) सक्षिप्त, (२)

---

१ 'मान' शब्द भी 'रस' की भाँति बड़ा ही व्यापक और गंभीर अर्थ वाला है। हर्ष, विषाद, भय, आशा, अहंकार और क्रोध, प्रेम और वितृष्णा आदि का सम्मिलित रूप 'मान' अपने-आपमें कितना रहस्यमय शब्द है, बाहर-बाहर से उदासीनता और भीतर-भीतर से प्रबल आसक्ति। इसके व्यक्त रूप की कल्पना ही की जा सकती है, चित्रण नहीं।

२ 'रसार्णव-सुधाकर' ने भी संयोग के चार उपर्युक्त भेद माने हैं। जीव गोस्वामी ने पूर्वराग के बाद संभोग के चार भेद माने हैं और उनके नाम हैं--संदर्शन, संस्पर्श, संजल्प, संप्रयोग।

सकीर्ण, (३) सम्पन्न और (४) समृद्धिमत्। इसके अनेक प्रकार है—दर्शन, स्पर्श, मन्द-मन्द वार्तालाप, राह रोकना, रास, जलक्रीडा, वृन्दावन-क्रीडा, यमुना

संयोग-शृंगार के भेद उपभेद जल-केलि, नौका-विहार, चीर-हरण, वशी-चोरी, पुष्पचौर्य, दान-लीला, कुञ्जो मे आँख-मिचौनी, मधुपान, कृष्ण का स्त्रीवेश धारण, कपट-निद्रा, द्यूत-क्रीडा, वस्त्राकर्षण, नखार्पण, बिम्बाधरसुधापान, निधुवनरमणादि सप्रयोग, चुम्बन, आलिङ्गन आदि-आदि और अन्त मे सम्भोग। सम्प्रयोग की अपेक्षा लीला विलास मे अधिक सुख है।

लीला के दो भेद—प्रकट लीला और अप्रकट लीला। वन-वृन्दावन मे प्रकट लीला, मन-वृन्दावन मे अप्रकट लीला और नित्य-वृन्दावन मे नित्य लीला। परन्तु प्रकट व्रज-लीला के भी दो भेद है—नित्य और नैमित्तिक। व्रज मे जो अष्टकालीन

लीला के भेद लीला है वही नित्य है और पूतना-वधादि दूरप्रवासादि नैमित्तिक लीला है। निशान्त, प्रात, पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, साय, प्रदोष और रात्रि-भेद मे अष्टकालीन लीला।[1]

ऊपर बहुत सक्षेप मे हमने गौडीय मतानुसार मधुर रस के स्वरूप की चर्चा प्रस्तुत की है। मधुर रस का द्विविध रूप है—सामान्य रूप मे वह सर्वगत व्यापक है परन्तु विशेष रूप मे वह परिच्छिन्न है। सामान्य रूप मे वह उपनिषदादि मे विद्यमान है। मूल मे एक अद्वय वस्तु, परन्तु आनन्द के लिए दो, स्त्री-पुरुष अथवा प्रकृति-पुरुष। ये दोनो परस्पर पूरक है और एक दूसरे को पाकर पूर्ण होना चाहता है।[2] इसी प्रकार ज्ञाता और ज्ञेय की एकता त्रिपुरी-भङ्ग द्वारा होती है। मिलन की पूर्णता के आधार पर ही भाव का विकास होता है। पूर्ण मिलन—नि सकोच और निरावरण मिलन-मधुर मे ही होता है।

मधुर रस की उपासना ससार की प्राय सभी साधनाओ मे प्रकट या गुप्त रूप मे विद्यमान है। ईसाई सन्तो और सूफी फकीरो की अनुभूतियो मे मधुर रस की ही धारा है। समस्त सगुण उपासना मे मधुर भाव की स्वत स्फूर्त्ति है, क्योकि जीव अपने-आप को पूर्णत देकर अपने प्राणाराम को पूर्णत पा लेना चाहता है। जीव-जीवन की यह एक परम सामान्य, परन्तु साथ ही परम विलक्षण विशेषता है कि वह अपने प्यारे का प्रियतम बनना चाहता है, जिसे प्यार करता है उसके प्यार पर अपना एकाधिकार या इजारा चाहता है।[3] सगुण साधना मे यह चाह सहज

---

१ **निशान्तः प्रातः पूर्वाह्णो मध्याह्न नश्चापराह्णोकः। सायं प्रदोषरात्रिश्च कालाष्टौच यथाक्रमम्॥**

२ One longs for another for perfection. - *M M G N. Kaviraj*
इसी को प्रो० रायस (Royce) 'Man's homing instinct.' **कहते है।**

३ **इश्क अल्लाह महजुब अल्लाह।—अल बस्तामी**

The lover of God is the beloved of God
He who chooses the Divine has been chosen by the Divine.
—*Sri Aurobindo.*

रूप मे बलवती एवं फलवती होती है, परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि जो अत्यन्त गुह्य अर्थात् 'एसाटरिक' साधनाएँ है उनमे भी किसी-न-किसी रूप मे मधुर भाव की उपासना बनी हुई है। ईसाई तथा सूफी साधना मे मधुर भाव का प्रसङ्ग हम यथास्थान कुछ विस्तार से प्रस्तुत करेगे। यहाँ हम इतना ही देखना चाहते है कि भारतीय गुह्य सहज साधनाओ मे मधुर भाव का क्या स्वरूप है और उसकी पूर्ण निष्पत्ति का क्रम क्या है। क्योकि बौद्ध धर्म मे भी प्रज्ञापारमिता तथा आदि बुद्ध के सम्मिलन से 'महासुख' की उपलब्धि होती है। तन्त्रादि मे भी इसकी विशेष व्याख्या है। नाथ, सिद्धो और सन्तो में भी इस उपासना का विशेष उल्लेख है। वैष्णव-सहजिया-सम्प्रदाय मे इसका साङ्गोपाङ्ग विवरण है। इस प्रकार ऐतिहासिक क्रम से देखने पर ही मधुर रस की साधना हमारे देश की परम प्राचीन साधना है, इसमे सन्देह नही किया जा सकता।

सहज साधनाओं की पृष्ठभूमि

भारतवर्ष की समस्त गुह्य (एसाटरिक) धर्म-साधनाओ की पृष्ठभूमि तथा लक्ष्य एक है। वासना के विवर्जन या तिरस्करण के स्थान पर वासना के शोधन एव उन्नयन द्वारा मानव-मन के अन्दर सोये हुए दिव्य आनन्द को उद्बुद्ध एव उल्लसित करना ही इसका लक्ष्य है। इसके लिए शरीर की दृढता, मन की निर्मलता, बुद्धि की तीक्ष्णता एव आत्मा की विजयोत्कण्ठा अनिवार्यत आवश्यक है। समस्त सहज साधनाओ मे वाणी, मन, श्वास, वीर्य और प्राण पर सहज रूप से नियन्त्रण स्थापित कर इनका ऊर्ध्व दिशा मे उन्नयन आवश्यक माना गया है। लक्ष्य इनका है समरस की स्थिति मे प्रवेश करना। यह स्थिति योग से प्राप्त हो या प्रेम से प्राप्त हो—— साधन-भेद या प्रस्थान-भेद जो भी हो——लक्ष्य मे कोई भेद नही है।

समरस की अवस्था

समरस की अवस्था दिव्य आनन्द की वह अवस्था है जिसमे दो का एकीकरण होता है। सहजिया यह मानते है कि मनुष्य समस्त जीवन पर्यन्त सघर्ष झेलकर भी काम को सर्वथा निर्मूल या उच्छिन्न नही कर सकता। अतएव इसका उन्नयन (सब्लीमेशन) कर इसे ही दिव्य प्रेम और दिव्य आनन्द अर्थात् महासुख और महानुभव का निर्मल एव अमोघ साधन बनाया जा सकता है। उनकी मान्यता है कि मनुष्य राग द्वारा ही बँधता और राग द्वारा ही मुक्त होता है—— 'रागेन बध्यते जीवो रागेनैव प्रमुच्यते।'

समस्त गुह्य साधनाओ की एक सामान्य मान्यता यह भी है कि एक मे दो हुआ और दो से अनेक। इसीलिए एक वचन, द्विवचन तब बहुवचन। 'स एकाकी ना रमतएकोऽह बहु स्या प्रजायेम' का भाव यही है। एक मे ही यह अनेक है, परन्तु इस अनेक के प्राण मे पुन. उसी 'एक' मे लौट आने की प्रबल वासना है जिसमे से वह निकला है। इसीलिए इन आन्तर गुह्य साधनाओं का चरम और परम लक्ष्य है द्वैत का सर्वथा निरसन और अद्वय स्थिति की उपलब्धि। इस अद्वय स्थिति मे दो का एकीकरण हो जाता है अथवा एक ही मे दोनो समाविष्ट होते है जिसे उनकी भाषा मे अद्वय, मिथुन, युगनद्ध, यामल, युगल, समरस, सहज आदि नामो से अभिहित किया गया है। हिन्दू-तन्त्रो ने परात्पर तत्त्व के द्विधात्मक रूप को शिव और शक्ति अथवा पुरुष और प्रकृति के

रूप मे स्वीकार किया है। और, इन अन्तरङ्ग गुह्य साधनाओं ने ब्रह्माण्ड और पिण्ड की एकता को स्वीकार करते हुए यह माना है कि मूल तत्त्व मे, जो कुछ भी ब्रह्माण्ड मे है, वह पिण्ड मे भी है। शिवका निवास सहस्रदल कमल –सहस्रार मे है और शक्ति का मूलाधार मे। शक्ति मूलाधार मे सर्प की तरह गेडुर मारे बैठी रहती है। साधना के द्वारा इसे जगाकर मूलाधार से उठाकर सहस्रार मे शिव के साथ इसका सम्मिलन कराया जाता है। शिव शक्ति का यह सम्मिलन ही आनन्द का आदि विलास है।

इसी सन्दर्भ मे यह भी लक्ष्य करने योग्य है कि प्रत्येक पुरुष-शरीर के वाम भाग मे नारी और दक्षिण भाग मे पुरुष तत्त्व विद्यमान रहता है, इसी से सदाशिव के अर्धनारीश्वर रूप मे वामार्ध मे उमा और दक्षिणार्ध मे महेश्वर है। इसी प्रकार वैष्णव सहजिया मे रसिक साधक वामार्ध मे राधा, दक्षिणार्ध मे कृष्ण, बाई आंख मे राधा और दाहिनी आंख मे कृष्ण है––ऐसा मानते है।[1] अस्तु, प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक नारी मे पुरुष तत्त्व और नारी तत्त्व विद्यमान है––पुरुष मे पुरुष-तत्त्व की प्रधानता है नारी मे नारी-तत्त्व की, परन्तु है दोनो मे दोनो ही। ठीक जैसे वाम और दक्षिण का अर्थ है नारी और पुरुष वैसे ही वाम का अर्थ है इडा और दक्षिण का पिङ्गला, वाम का अर्थ है प्राण और दक्षिण का अर्थ है अपान। साधना के द्वारा इन्हे 'गम' करके प्राण-प्रवाह को सुषुम्ना मे प्रवाहित किया जाता है। यही 'सुषुम्ना-साधना' है।

इस दृश्य जगत् मे पुरुष और नारी का जो भेद हम देखते है वह भेद परात्पर तत्त्व मे भी ज्यो-का-त्यो विद्यमान है––शिवशक्तिरूप मे। शिवशक्ति का सामरस्य ही परात्पर सत्य है। अस्तु, प्रत्येक पुरुष और नारी शरीर मे शिव और शक्ति विद्यमान है। अस्तु, परम सत्य के साक्षात्कार के लिए यह अनिवार्यत. आवश्यक है कि प्रत्येक पुरुष अपनेको शिव रूप मे और प्रत्येक स्त्री अपने को शक्ति रूप मे अनुभव करे और तब परस्पर शारीरिक, मानसिक एव आध्यात्मिक सम्मिलन द्वारा परम आनन्द की उपलब्धि करे। समस्त अन्तरङ्ग गुह्य साधनाओ की यही चरम परिणति है। समस्त गुह्य साधनाओ के अन्दर यही है परम रहस्य, जिसका सन्धान साधक और साधिका करते है।

बौद्धों का 'सहज'

बौद्ध सहजिया साधना मे, जिसका हम कुछ विस्तार से विवेचन आगे करेगे, परात्पर तत्त्व 'सहज' है––वह आत्म-अनात्म-निरपेक्ष है। शून्यता और करुणा––दूसरे शब्दो मे 'प्रज्ञा' और 'उपाय' उस सहज के प्रधान लक्षण है। यह 'प्रज्ञा' और 'उपाय' और कुछ नही है बल्कि हिन्दू-तन्त्रो के शिव और शक्ति है। 'प्रज्ञा' (नारी-तत्त्व) और 'उपाय' (पुरुष-तत्त्व) का सम्मिलन ही बौद्ध सहजिया साधना का लक्ष्य है। प्रज्ञा और उपाय का एक और भी अर्थ है और वह है प्रज्ञा इड़ा, उपाय पिङ्गला। इन दोनो का सम करने पर प्राण-प्रवाह सुषुम्ना मे होकर ऊपर

---

१ **वामे राधा दाहिने कृष्ण देखे रसिक जन।**
दुई नेत्रे विराजमान राधा कुंड श्याम कुंड दुई नेत्रे हम।
सजल नयन द्वारे भावप्रेमे आस्वादय।

की ओर उठता है। इस प्रकार प्रज्ञा और उपाय के सम्मिलन से योगी 'अन्तः सम्मिलन' की साधना में प्रवेश पाता है। उपाय ही है वज्रसत्व जिसका सहस्रार में निवास है और प्रज्ञा है शक्ति जो मूलाधार में रहती है। अन्तर्मिलन का अर्थ है नाभिदेश से शक्ति को उद्‌बुद्ध कर सहस्रार में शिव के साथ युगनद्ध करना।

वैष्णव सहजिया मे राधाकृष्ण तत्त्व

वैष्णव सहजिया साधना में चिर भोक्ता और चिर भोग्या के रूप में क्रमशः कृष्ण और राधा की उपासना चलती है और इस साधना विशेष में यह मानकर चलना होता है कि प्रत्येक पुरुष कृष्ण और प्रत्येक स्त्री राधा है। 'आरोप' के द्वारा जब पुरुष अपनेको कृष्ण और स्त्री अपनेको राधा रूप मे अनुभव करने लगती है तब पुरुष और स्त्री का सम्मिलन तत्त्वतः पुरुष स्त्री का सम्मिलन न होकर कृष्ण और राधा का सम्मिलन हो जाता है। बौद्ध सहजिया मे योगसाधना की मुख्यता है, पर वैष्णव सहजिया में प्रेमसाधना या रस-साधना की।

नाथ पंथ की उपासना सूर्य चंद्रतत्त्व

नाथपन्थ मे युगलोपासना एक और ही रूप मे व्यक्त हुई। यहाँ सूर्य और चन्द्र प्रतीक रूप में लिये गये--सूर्य कालाग्नि रूप में और चन्द्र अमृत रूप में। नाथ सिद्धों का लक्ष्य रहा है दिव्य शरीर में अमृतत्व की उपलब्धि। हठयोग की नाना क्रियाओं, बन्ध, मुद्रा आदि द्वारा तथा रसायन द्वारा काया-शोधन और काय-सिद्धि की प्रणाली सिद्धों में विशेष रूप में पाई जाती है। नाथ सिद्धों की काय-सिद्धि और रस-सिद्धि की यह साधना रसायन-सम्प्रदाय से बहुत मिलती-जुलती है, भेद इतना ही है कि रसायनियों में रससिद्धि की ही प्रधानता रही जहाँ नाथ पन्थ में यौगिक क्रियाओ की ।साथ ही वैष्णव सहजियों की भाँति नाथ पन्थियों ने भी अन्तरङ्ग साधना के लिए प्रेम को ही सर्वोपरि मान्यता प्रदान की। सहज उपासना में बौद्ध सहजियो का लक्ष्य 'महासुख' और वैष्णव सहजियों का लक्ष्य 'परम प्रेम' रहा, पर दोनों ही प्रकार के लक्ष्य की सिद्धि के लिए यह अनिवार्यतः स्वीकार किया गया कि सबल और निर्मल शरीर के बिना यह साधना हो नही सकती, इसीलिए सभी प्रकार की अन्तरङ्ग साधनाओं में किसी-न-किसी रूप में हठयोग की प्रधानता बनी रही।

इन साधनाओं की चर्चा कुछ विस्तार मे करके हम यह देखेगे कि प्रकट या अप्रकट रूप में, कियदंश में ही सही, इन्होने रामावत-सम्प्रदाय की मधुर उपासना को प्रभावित किया है।

तीसरा अध्याय

भारतीय अंतरंग (एसाटरिक) धर्म-साधनाओं में मधुर भाव

(क) बौद्ध सहजिया

महाराजा चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय इस देश में चीनी यात्री फाहियान आया था और उसने बौद्ध धर्म के सूत्रों की प्रतिलिपि की। उसके लेखों से प्रकट है कि बौद्ध धर्म जनसाधारण में अतिशय लोकप्रिय हो गया था और स्थान-स्थान पर बौद्ध संघारामों की भरमार थी, जहां बौद्ध साधक रहते थे। फाहियान के बाद हुएनसंग इस देश मे महाराजा हर्षवर्धन के शासनकाल में आया था, ईसवी सन् की सातवी शताब्दी में। उसने भी सैकड़ों संघारामों का विवरण दिया है जिनमे सहस्र-सहस्र बौद्ध साधक निवास करते थे। शीलभद्र के प्रति हुएनसंग की बड़ी श्रद्धा थी। यह शीलभद्र नालन्दा के आचार्य धर्मपाल के शिष्य थे और बाद में उस विश्वविद्यालय में प्राचार्य-पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। शीलभद्र के शिष्य और भतीजे बुद्धभद्र भी नालन्दा के एक प्रख्यात पंडित और अध्यापक थे और बौद्ध योगाचार के मर्मज्ञ थे।

बौद्धधर्म की लोकप्रियता

कहते है, इन्होंने अवलोकितेश्वर मैत्रेय और मंजुश्री से प्रेरणा पाई थी। अस्तु, बौद्ध धर्म की दो प्रधान शाखाएँ है--हीनयान तथा बज्रयान। हीनयान त्रिपितकों के आधार पर व्यवस्थित अपरिवर्त्तनवादी शाखा है। इसमें आचार विचार, संयम का कसाव खूब तगड़ा है। यह बौद्ध धर्म का 'आर्थोडक्स स्कूल' कहा जा सकता है। ये लोग अपने को 'थेरवादी' (स्थविरवादी) कहते हैं।

बौद्ध योगाचार में अवलोकितेश्वर मैत्रेय और मंजुश्री

दूसरी शाखा जिसे 'महायान' कहते है सुधारवादी (रिफार्मर स्कूल) है। हीनयान है अपरिवर्त्तनवादी (नो चेंजर) और महायान है परिवर्त्तनवादी (चेंजर)। हीनयान समय के साथ चलना नहीं चाहता था। वह रूढ़ियों को पकड़े रहा, परन्तु महायान समय के साथ चलनेवाला आवश्यक सुधार,संशोधन और उदारता के भाव को लेकर आगे बढ़ा और यह स्वाभाविक ही था कि इसका अधिक-से-अधिक लोगों पर प्रभाव पड़ना। परिणामतः, इस शाखा के अनुयायियों की संख्या बेतरह बढ़ी।

दो शाखाएँ : हीनयान तथा बज्रयान

भगवान् बुद्ध के निर्वाण के अनन्तर अनुयायियो मे घोर विवाद चला कि तथागत के वचनो का वास्तविक अभिप्राय क्या है। इसी के लिए बौद्ध धर्मानुयायियो के सम्मेलन या 'संगीति' होने लगी पहली। सगीति मगध की राजधानी राजगृह मे हुई, परन्तु लोगो को इससे सतोष नही हुआ, अस्तु पुन कौशाम्बी मे दूसरी सगीति हुई जिसमे बौद्ध सघ मे दो प्रधान भेद हो गये--(१) स्थविरवादी और (२) महासघिक। 'विनय' मे किसी प्रकार का भी परिवर्त्तन स्वीकार न करनेवाले कट्टर अपरिवर्त्तनवादी भिक्षु स्थविरवादी (थेरवादी) हुए और उसमे आवश्यक परिवर्त्तन, संशोधन, सुधार आदि स्वीकार कर चलनेवाले तथा सख्या मे अधिक होने के कारण दूसरा दल 'महासधिक' कहलाया। इस प्रकार शनै-शनै बौद्ध धर्म मे शाखाएँ-प्रशाखाएँ होने लगी और उनके अलग-अलग 'कैप' हो गय।'

'संगीति'

'यान' का अर्थ है रथ, सवारी। साधना के ये मार्ग अपनी-अपनी सवारियो की प्रशसा मे और अन्तिम लक्ष्य की संसिद्धि मे अपनी विशिष्टता एव अजेय अमोघता का डका पीट रहे थे।

महासंघिको ने भगवान् बुद्ध के 'मानुसी तनु' की अवहेलना कर उन्हे मानव-लोक से ऊपर उठाकर दिव्यलोक मे पहुँचा दिया। इतना ही नही, आगे चलकर वेतुल्लवादियो ने यह स्पष्ट स्वीकार किया कि भगवान् बुद्ध कभी इस धराधाम पर आये ही नही और न कभी उपदेश दिया। बात यही रुक जाती तो कोई विशेष अनर्थ न होता। इन्होने यह भी माना कि एकाभिप्रायेण मैथुन का सेवन किया जा सकता है। इसी से तात्रिक बौद्धधर्म या वज्रयान का आविर्भाव हुआ, ऐसा नि सन्देह मानना पडता है।

भगवान् बुद्ध का 'मानुसी तनु'

परन्तु, इस विषय पर थोडा जम कर विचार करना होगा कि बौद्ध धर्म मे गुह्य साधना का प्रवेश क्यो और कैसे हुआ और वज्रयानी शाखा के आविर्भाव तथा विकास का हेतु क्या है, कहाँ है।

त्रिपिटको के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध की मूल शिक्षा मे ही तत्र-मंत्र के बीज सन्निहित थे। स्थविरवादियो ने भी इसे स्वीकार किया है कि तथागत मे अनेक अलौकिक सिद्धियाँ थी। वे यह मानते है कि बौद्ध धर्म मे लौकिक कल्याण तथा पारलौकिक कल्याण का समान रूप से विधान है। इस लोक मे प्रज्ञा, आरोग्य, वैभव आदि की उपलब्धि के लिए स्वय बुद्ध ने 'मत्रधारिणी' आदि तात्रिक विषयो की शिक्षा दी, ऐसा विचार शान्तरक्षित का है।[२] 'गुह्य समाज तत्र' मे भी यह उल्लेख है कि तथागत ने अपने अनुयायियो

गुह्य साधना का प्रवेश क्यों और कैसे ?

---

१ देखिये डा० चन्द्रधर शर्मा : इंडियन फिलॉसफी, पृ० ८६।

२ तदुक्तमन्त्रयोगादिनियमाय विधिवत् कृतात्।
प्रज्ञारोग्यविभुत्वादिदृष्टधर्मोऽपि जायते॥--तत्त्व-संग्रह, श्लोक ३४८६

को शिक्षा देते समय कहा कि जब मै दीपकर बुद्ध और कश्यपबुद्ध के रूप मे प्रकट हुआ था तब मैने तात्रिक शिक्षा इसलिए नही दी कि मेरे श्रोताओ मे उन शिक्षाओ को ग्रहण करने की क्षमता न थी। 'विनय-पिटक' की दो कथाओ मे अलौकिक सिद्धियो का विवरण है। अभिप्राय यह है कि बौद्धधर्म मे तत्र-मत्र का प्रवाह-क्रम स्वय भगवान् बुद्ध से ही चला, परवर्ती क्षेपक नही है।'

महायान उदारतावादी परिवर्त्तनवादी एव क्रान्तिवादी शाखा के रूप मे प्रकट हुआ। इसी का विकास 'मत्रयान' और पुन बज्रयान के रूप मे हुआ। मत्रयान सौम्यावस्था है और उसी का उग्ररूप है बज्रयान। पालवशीय राजा रामपाल ने जगद्दल के महाविहार मे आलोकितेश्वर और महातारा की मूर्तियो की प्रस्थापना की। जगद्दल विहार मे मोक्षकार गुप्त एक सुप्रसिद्ध तर्कशास्त्री थे और उनका लिखा 'तर्कशास्त्र' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ माना जाता है। उन्ही के भाई शुभकर गुप्त ने 'सिद्धैकवीर तत्र' नामक एक तत्र ग्रथ पर भाष्य लिखा और उसी विहार मे रहनेवाले धर्मकर ने कृष्ण की 'मवर व्याख्या' का अनुवाद किया। अभिप्राय यह कि धीरे-धीरे बौद्ध धर्म मे तत्र-साधना की ओर साधको और विद्वानो का ध्यान विशेष रूप मे आकृष्ट होने लगा।

महायान, मंत्रयान वज्रयान

इसका मनोवैज्ञानिक कारण भी ढूंढने के लिए कोई विशेष तूल नही करना होगा। योगाचार मे जनसाधारण की कुतूहल-वृत्ति को कुछ समय तक तो परितोष मिला अवश्य, परन्तु विज्ञानवाद की गूढ गुत्थियो एव गहन सिद्धान्तो ने मानव मन को बेतरह थका दिया और लोग इससे ऊबने लगे और भागने लगे। वे कुछ ऐसी चीज चाह रहे थे जिसके द्वारा सुखोपलब्धि अधिक-से-अधिक मात्रा मे और कम-से-कम समय मे हो सके। इसी प्रवृत्ति विशेष ने बज्रयान को जन्म दिया। इसमे बौद्ध देवो और देवियो की विशेषत बज्र सत्त्व और महातारा की मूर्तियाँ युगनद्ध रूप मे मिलती है। इसे बौद्ध धर्म पर शाक्त प्रभाव भी कहा जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक कारण

ऊपर हम कह आये है कि महायान शाखा मे धर्म का लोकप्रिय रूप खूब खिला। सामान्य जनता धर्म की गूढ गुत्थियो, सिद्धान्त या रहस्य मे रस नही ले सकती। उसे तो एक ठोस आधार चाहिए, धर्माचरण की एक विधि या प्रणाली मिलनी चाहिए, जिसमे वह सहज रूप मे चरितार्थ करती रहे और विकास की ओर उन्मुख रहे। महायान ने धर्म और साधना के 'साधारणीकरण' पर विशेष लक्ष्य रखा और फलस्वरूप असंख्य देवी-देवताओ की परिकल्पना, मत्र, जप, पूजा, अर्चा आदि का सन्निवेश सहज रूप मे हो गया और महायान की एक स्वतन्त्र शाखा मत्रनय अथवा मत्रयान बन गई। इस प्रकार महायान की दो शाखाएँ हुई--(१) पारमितानय और (२) मत्रनय।

---

१ पं० बलदेव उपाध्याय--'बौद्ध दर्शन', पृ० ४२५-३०।

महायान ने भगवान् बुद्ध को मानव से उठाकर दिव्य रूप में प्रतिष्ठित किया। परमतत्व ही हुए आदि बुद्ध और उनके चार काय माने गये –(१) धर्मकाय, (२) संभोग काय, (३) निर्माण काय और (४) सहज काय। इसमे मात्र निर्माण काय ऐतिहासिक है। धर्मकाय, संभोग काय और सहज काय ऐतिहासिक नही है। महायान का लक्ष्य रहा—(क) दु.ख निवृत्ति, (ख) निर्वाण, (ग) बुद्धत्वलाभ। आदि बुद्ध का सहज काय ही परमार्थतः सत्य है। शुचिता के ज्ञान होने से यह विशुद्ध है। वास्तव 'करुणा' का उदय इसी काय मे होता है। अतः यह 'ज्ञानवज्र' है। धर्मकाय निर्विकल्पक चित्त की भूमि होने से इसे 'चित्तवज्र' या 'धर्म योग' कहा जाता है। संभोगकाय मे मंत्र का उदय होता है। इसे 'वाग्वज्र' या मंत्रयोग' कहते है। 'निर्माणकाय' का संबध जाग्रत दशा से है। इसी के द्वारा, भगवान बुद्ध क्लेश का नाश करते हैं। यही कायवज्र तथा 'संस्थान योग' कहलाता है।[1]

आदि बुद्ध के धर्मकाय, संभोग-काय, निर्माणकाय, सहजकाय

'असंग' योगाचार सम्प्रदाय का प्रबल समर्थक था। बौद्ध धर्म मे तंत्रवाद के प्रवेश का कारण भी वही माना जाता है। कहते है मैत्रेय ने उसे इस पथ मे दीक्षित किया था। कुछ लोगो का कहना है कि माध्यमिक सम्प्रदाय के नागार्जुन ने गुह्य साधना की ओर प्रवृत्ति का सूत्रपात किया। नागार्जुन के गुरु बुद्ध वैरोचन और बुद्ध वैरोचन के गुरु दिव्य बोधिसत्व वज्रसत्व थे। कुछ विद्वानो के मत मे असंग के 'महायान सूत्रालंकार' मे बौद्ध धर्म के मिथुन भाग के अभ्यास के स्पष्ट संकेत हैं। उक्त 'सूत्रालंकार' में भगवान् बुद्ध के दिव्य गुणो में 'प्रवृत्ति' का उल्लेख बार-बार आता है। उसमे एक श्लोक है—

असंग और नागार्जुन

मैथुनस्य परावृत्तौ विभुत्वं लभ्यते परम्।
बुद्ध-सौख्यविहारेऽथ दारा-सकेश-दर्शने ।।

इस श्लोक मे आए हुए 'मैथुनस्य परावृत्तौ' का अर्थ भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न ढंग से किया है। सिलवन लेवी का कथन है कि यहा मैथुन का अर्थ है बुद्ध और बोधिसत्व का सम्मिलन। विटरनीज का कथन है कि 'परावृत्ति' का अर्थ है––उपेक्षा, विरति। महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज 'परावृत्ति' का अर्थ रूपान्तर, शोधन (ट्रासफारमेशन) करते हैं। कुछ विद्वानो का मत है कि स्वयं बुद्ध ने मुद्राओ, मण्डलो और तंत्रो का उपदेश अधिकारी विद्वानों को दिया था।

---

१ सेकोदेश टीका––गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, पृ० ५५-५९।

जो हो, पर इतना तो निश्चित है कि तत्र भारतीय साधना की परंपरा मे उतना ही पुरातन है जितना वेद। मनुष्य सदा से ही सिद्धि का सरल मार्ग खोजता आ रहा है। अस्तु तत्र सदा ही ज्ञान-विस्तार का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत करता रहा है। जहा कही भी पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्र का सन्निवेश है, वही 'तत्र' है। बाद मे इसमे पुरश्चरण, वशीकरण, स्तभन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण-मोहन तथा पचमकार का भी प्रवेश हो गया।

तंत्र की प्राचीनता

तत्रो की विशेषता यह रही है कि यहा अधिकार-भेद के अनुसार साधना की शैलिया और विधियो का निर्देश है और इसीलिए यहा पशुभाव, वीर भाव और दिव्य भाग---ये तीन भाव है तथा वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार तथा कौलाचार---ये सात आचार है। इन भावो और आचारो की चर्चा हम कुछ विस्तार मे यथास्थान करेगे। यहा इतना ही अभीष्ट है कि तत्र-साधना भारत की परम प्राचीन साधना है। प्राचीन वैदिक युग मे भी तत्र-मत्र का प्रयोग था, पर परवर्तीकाल मे भ्रष्ट हो गया था। गहराई मे जाकर देखा जाय तो बौद्ध तत्र और हिन्दू तत्र मे मूलत कोई बहुत असामान्य भेद नही है। वे मूलत एक है और परस्पर अविरोधी है। अस्तु।

तीन भाव और सात आचार

मंत्रतत्त्व मे महायानी बौद्धो ने 'धारिणी' पर बहुत बल दिया है। धारिणी का अर्थ है 'धार्यते अनया इति' अर्थात् जो चित्त को सम अवस्था मे धारण कर सके। उसके मुख्यत चार प्रकार है---धर्म धारिणी, अर्थ धारिणी, मत्र धारिणी और धारिणी। धर्म धारिणी की साधना से साधक मे स्मृति, प्रज्ञा और बल का सचार होता है। अर्थ धारिणी से धर्म का आन्तरिक और गुह्य अर्थ खुलता है, मत्र धारिणी से पूर्णता की प्राप्ति होती है और धारिणी से शान्ति की उपलब्धि होती है।

'धारिणी' और उसके चार भेद

बौद्ध साधना का मार्ग जब जन-साधारण के लिए उन्मुक्त और प्रशस्त हो गया तब सहज ही लोग अपने-अपने विश्वास, परम्परा, मान्यताएं एव संस्कार के कारण देवी देवता में आस्था, भूतप्रेत, पिशाच, हाकिनी, डाकिनी की पूजा, जादू-टोना, मोहिनी, मारिणी, उच्चाटनी आदि विद्याओ मे विश्वास आदि लेकर इस पथ मे आ गये और साथ ही साधनाक्रम मे शनै शनै. हठयोग, लययोग, मत्रयोग, राजयोग को भी आदर का स्थान मिलने लगा। आरम्भ मे मत्र, मुद्रा, मण्डल, अभिषेक पर विशेष बल था, पर कालान्तर मे मिथुन योग का भी सन्निवेश होता गया। तत्र मे मुद्रा का अर्थ है---गुह्य साधना के लिए किसी कुमारी का वरण। धीरे-धीरे साधना के अग रूप मे मत्स्य, मास, मुद्रा, मदिरा और मैथुन का प्रवेश हो गया और वज्र यानी शाखा मे 'पंच मकार'की उपासना ही मुख्य बन बैठी। 'पंच मकार' शब्द का व्यवहार

बौद्ध साधना मे मिथुन-योग का प्रवेश क्यों और कैसे ?

तो इस साधना मे नही मिलता, पर प्राय. मदिरा, मास और मत्स्य की चर्चा आती है और मुद्रा तथा मिथुन के प्रयोग की चर्चा एक सामान्य बात हो गई थी।

'पचमकार' की उपासना का रहस्य, यहा सक्षेप मे, प्रस्तुत करना अप्रासगिक न होगा। 'पचमकार' मे, जैसा ऊपर कह आये है, मद्य, मास, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन है। इनका ठीक-ठीक अर्थ न जानने के कारण ही इस सम्बन्ध मे नाना प्रकार की भ्रान्त धारणाएँ फैली हुई है। इन पाचो तत्वो का सम्बन्ध अन्तर्योग से है। ब्रह्मरंध्र मे स्थित सहस्रदल कमल से स्रवित अमृत ही 'मद्य' है।[1] जो साधक ज्ञानरूपी खड्ग से पुण्य और पाप की बलि देता है, वही 'मास' का सेवन करने वाला है अथवा जो वाणी का सयम करता है, वही मासाहारी है। बाई नाडी है इडा और दाहिनी है पिगला--जिसे क्रमश 'गगा'-'जमुना' भी कहते है। इसमे प्रवाहित होने-वाले श्वास-प्रश्वास ही 'मत्स्य' है। श्वास-प्रश्वास कर नियमन का प्राण-वायु को सुषुम्ना मे प्रवाहित करना ही 'मत्स्य सेवन' है।[2] असत् सग का त्याग कर सत्सग सेवन ही 'मुद्रा' है[3]। सुषुम्ना और प्राण का सगम ही मैथुन' है।[4] ये शब्द प्रतीकात्मक थे और इनकी साधना अन्तर्योग की थी, परन्तु आगे चलकर अधिकारी न होने के कारण और मानव प्रकृति निम्नगामिनी होने के कारण लोग इसे वाह्य और स्थूल रूप मे ग्रहण करने लगे।

पंच मकार का रहस्य

---

१ व्योम-पंकज-निस्यन्द-सुधापानरतो नरः।
मधुपायी समः प्रोक्तः इतरे मद्यपायिनः॥ --कुलार्णवतंत्र

कुण्डल्याः मिलनादिन्दोः श्रवते यत् परामृतम्।
पिबेत योगी महेशानि! सत्यं सत्यं वरानने॥ --योगिनी तंत्र

२ पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लव नयेत् चित्तं मांसाशी स निगद्यते॥ --कुलार्णवतंत्र

३ मा शब्दात् रसना ज्ञेया तदंशान् रसनाप्रियान्।
सदा यो भक्षयेत् देवी, स एवं मांस-साधकः॥ --आगमसार

४ गंगायमुनोर्मध्ये मत्स्यो द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेत् यस्तु स भवेत् मत्स्यसाधकः॥ --आगमसार

५ सत्संगेन भवेत् मुक्तिरसत्संगेषु बन्धनम्।
असत्संगमुद्रणं यत्तु तन्मुद्राः परिकीर्तिताः॥ --विजयतंत्र

६ इड़ापिंगलयोः प्राणान् सुषुम्नायो : प्रवर्तयेत्।
सुषुम्ना शक्तिरुद्दिष्टा जीवाऽयन्तु परः शिवः॥
तथोस्तु संगमो देवैः सुरत नाम कीर्तितम्॥ --मेरुतंत्र

वज्रयान का ही दूसरा नाम 'सहजयान' है। इसमे एकमात्र सहजावस्था[1] पर ही अधिक बल है। यह सहजावस्था ही बौद्ध सहजियों की साधना एवं सिद्धि की चरमावस्था है। इसी को निर्वाण, महासुख, सुखराज, महामुद्रा, साक्षात्कार आदि नामों से अभिहित करते है। अर्थात् इस अवस्था में मन और प्राण का संचार नही होता, जहाँ सूर्य और चन्द्र को प्रवेश करने का अधिकार नही है, वही योगी विश्राम लेता है। यह सहजावस्था ही उन्मनी अवस्था है। वही महासुख की अवस्था ह।[2] यह अवस्था न प्रवचन, न मेधा, न बहु श्रवण से प्राप्त होती है। यह प्राप्त होती है—एकमात्र गुरु कृपा से।

सहजावस्था ही महासुख, सुख राज महामुद्रा की अवस्था है

गुरुकृपा का क्या स्वरूप है, इस सम्बन्ध मे बौद्ध साधना का अपना वैशिष्ट्य है और वह यह कि गुरु शून्यता और करुणा की युगनद्ध मूर्त्ति है। बोधिचित्त की प्राप्ति के लिए शून्यता और करुणा अनिवार्यतः आवश्यक है। चित्त की सम अवस्था और जगत् के प्रति करुणा का भाव है—साधनात्मक बोधिचित्तत्व।

गुरुकृपा का स्वरूप-वैशिष्ट्य

शून्यता और करुणा के संयोग की चरम स्थिति को 'धर्ममेघ' की स्थिति कहते है। इसी प्रकार गुरु है—प्रज्ञा और उपाय के मिथुनी-भूत रूप। न केवल प्रज्ञा से और न केवल उपाय से ही बुद्धत्व की प्राप्ति हो सकती है। दोनो का योग अनिवार्य है तभी बुद्धत्व की उपलब्धि हो सकती है।[3]

'धर्ममेघ' की स्थिति

---

१ यह सहजावस्था सरहपा के शब्दों में ऐसी है—

जन्ह मन पवन न संचरइ रवि ससि नाह प्रवेश।
तहि वट चित्त विसाम करु, सरहे कहिय उवेश॥

२ जयति सुखराज एकः कारणरहितः सदोदितो जगताम्।
यस्य च निगदनसमये वचनदरिद्रो बभूव सर्वज्ञः॥

अर्थात् इस सुखराज की जय हो जो कारण रहित है और जिसका निर्वचन करते समय स्वयं सर्वज्ञ भी वचन से दरिद्र हो गये। सेकोद्देश टीका पृ० ६३ पर, सरहपाद का वचन।

३ न प्रज्ञा केवलमात्रेण बुद्धत्वं भवति नाप्युपायमात्रेण।

किन्तु यदि पुनः प्रज्ञोपायलक्षणौ समतास्वभावौ भवतः एतौ द्वौ अभिन्नरूपौ भवतः, तदा भुक्तिर्मुक्तिर्भवति। —ज्ञानसिद्धिः १३

यह शून्यता और करुणा तथा प्रज्ञा और उपाय को ही पुरुष तत्त्व और नारी तत्त्व मान लिया गया और इनके अद्वय मिलन को ही साधना की परिणति। उपाय पुरुष तत्त्व है और प्रज्ञा नारी तत्त्व। शून्यता नारी तत्त्व और करुणा पुरुष तत्त्व।

शून्यता और करुणा, प्रज्ञा और उपाय

अर्थात् शून्यता प्रज्ञा-नारीतत्त्व शक्तितत्त्व, करुणा-उपाय पुरुष तत्त्व-शिवतत्त्व। प्रज्ञा और उपाय का योगिक भाषा में और नाम है। वह है—क्रमश इडा और पिगला, चन्द्रनाडी और सूर्यनाडी,बाम और दक्षिण, स्वर और व्यंजन।

अवधूतिका

इड़ा और पिगला के बीच जो सुषुम्ना है, उसे ही बौद्ध साधना मे 'अवधूतिका' कहते है।

इस 'अवधूतिका' के मार्ग से ही बोधिचित्त निर्माण-काय या निर्माण चक्र (नाभिदेश-स्थित) से ऊपर चढता है और क्रमश. धर्मकाय अथवा धर्मचक्र (हृदयस्थित) पर पहुंचकर संभोग-काय या संभोग चक्र (ग्रीवास्थित) पर आता है और अन्तत· उष्णीश कमल में पहुँचकर परम आह्लाद को प्राप्त होता है। यही महासुख की अवर्णनीय अवस्था है, जहा प्रज्ञा और उपाय, शून्यता और करुणा का महामिलन संघटित होता है।'

'युगनद्ध' पर कुछ और विचार करना चाहिए। क्योकि यही है बौद्ध सहजियों की सहज साधना का प्राण। 'पंचकर्म' के पांचवें अध्याय मे युगनद्ध कर्म की बड़ी ही स्पष्ट और विस्तृत व्याख्या है। वहा यह लिखा है कि 'युगनद्ध' वह स्थिति है, जहा

युगनद्ध तत्व

'संक्लेश' और 'व्यवदान' की अभिज्ञा के द्वारा संसार का सर्वथा निरसन हो जाता है, परम निवृत्ति की अवस्था प्राप्त हो जाती है। यह ग्राहक और ग्राह्य का, सान्त और अनन्त का, प्रज्ञा और उपाय का, शून्यता और करुणा का, पुरुष और नारी का पूर्णतः सम्मिलन-सामरस्य है। शरीर, मन और वचन से 'तथता' मे स्थित होकर फिर इस दु खपूर्ण संसार की ओर लौटना—केवल इसलिए कि 'संवृत्ति' और 'पर-मार्थ' का सम्यक् ज्ञान हो जाय और फिर इस संवृत्ति और परमार्थ को पूर्णतः मिलाकर एक कर देने का नाम 'युगनद्ध' है।[२]

---

१ **उभयोर्मिलनं यच्च सलिल क्षीरयोरिव।**
अद्वयाकार - योगेन प्रज्ञोपायं तदुच्यते॥
चिन्तामणिरिवाशेषं जगतः सर्वदा स्थितम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं सम्यक् प्रज्ञोपाय स्वभावतः॥

—हेवज्रतंत्र

२ **द्रष्टव्य—प्रो० हर्वर्ट वांन गुंथर का 'यगुनद्ध' ग्रन्थ, चौखंभा सिरीज स्टडीज अ० ३।**

'अद्वयवज्र सग्रह' के 'युगनद्ध प्रकाश' मे हम देखते है कि शून्यता और करुणा का एकान्त और नितान्त सम्मिलन सर्वथा अनिर्वचनीय है, अचिन्तनीय है। वे चिर सम्मिलन की स्थिति मे नित्य विद्यमान है। उक्त ग्रन्थ के 'प्रेम पंचक' मे यह बताया गया है कि शून्यता करुणा की पत्नी है और इनके इसी भाव मे अखण्ड मिलन को 'सहज प्रेम' कहा जाता है। युगनद्ध या अद्वय या समरस स्थिति एक ही है। शैव और शाक्त तत्रो मे जिसे 'मैथुन' या 'कामकला' कहा गया है, वह भी यही है।[1] इन तत्रो मे परात्पर तत्त्व की दो शक्तिया---चल-अचल, ऋणात्मक और धनात्मक (Static and, Dynamic Positive & Negative) के मिलन और परम सत्य की उपलब्धि का जहा विवरण है, वहा पुरुष-तत्त्व और नारी तत्त्व अथवा बीज और योनि का प्रसंग प्रतीकात्मक रूप मे आया है। आरंभ मे तो यह प्रतीकात्मक साधना अपने स्वस्थ गुह्य साधना के रूप मे रही, परन्तु बाद मे चलकर क्या हिन्दू-तत्र और क्या बौद्ध तत्र ने इनके स्थूल और भ्रष्ट रूप को ही साधना के रूप मे स्वीकार कर लिया। मानव-प्रकृति की अधोगामिनी प्रवृत्ति के लिए यह एक सहज आधार मिल गया। परिणाम यह हुआ कि शून्यता और करुणा अथवा प्रज्ञा और उपाय के सम्मिलन को बौद्ध तत्रो ने देवताओ और देवियो के शारीरिक सम्मिलन को आदर्श स्थिति के रूप मे अकित किया---चित्रो मे भी और मूर्तियो मे भी।

शून्यता और करुणा

'समरस का वास्तविक अर्थ है---विश्व की विविधता मे एकता की अनुभूति, तथा समस्त विषमताओ के भीतर एक अविच्छिन्न अखण्ड आनन्द -विलास की धारा। 'हेवज्रतंत्र' मे यह उल्लेख है कि 'सहजावस्था' मे न प्रज्ञा का भाव रहता है न उपाय का, द्वैत का किसी प्रकार अनुभव ही नही होता। ऐसी स्थिति में उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ सब समान है।[2] योग साधना के द्वारा साधक एक ऐसी स्थिति मे प्रवेश करता है, जहा से सारा ससार आनन्द का एक अपरिमेय पारावार-सा दीखने लगता है, जिसमे सारी द्वैतभावना, विषमता, द्विधा, विरोध या भेद नष्ट हो चुके होते है और आनन्द-ही-आनन्द रह जाता है। यही 'महासुख' की सहजावस्था है। महासुख की इस सहजावस्था को बौद्ध तत्र प्रज्ञा और उपाय अथवा शून्यता और करुणा के सम्मिलन से सिद्ध होता मानते है और इसी को हिन्दू-तंत्र शिव और शक्ति के 'समरस' होने से उद्भूत मानते है। अत 'महासुख' बौद्धो मे साधक की एक विशिष्ट स्थिति का नाम है जो लगभग 'निर्वाण' का पर्याय-वाची है। महासुख भावात्मक या धनात्मक है और निर्वाण है अभावात्मक या ऋणात्मक। परन्तु

'समरस' का वास्तविक अर्थ

---

१ दे० कामकला विलास १२, पद २, ५, ७।

२ हीन मध्योत्कृष्टान्य एव अन्यानि यानि तानि च।
सर्वे तानि समानीति द्रष्टव्यं तत्वभावतः॥
---हेवज्रतंत्र (ह० लि०) पृ० २२
प्रो० शशिभूषण दास गुप्त के 'आब्सक्योर रिलिजस कल्ट' के पृ० ३४ से उद्धृत।

यह लक्ष्य करने की बात है कि 'निर्वाण' ही बौद्ध साधना का केन्द्र-विन्दु एव परम लक्ष्य है। उसका विवरण 'पर', 'शान्त', 'विशुद्ध', 'पुनीत', 'शान्ति', 'अक्खर', ध्रुव', 'सच्चा', 'अनन्त', 'अजात', 'असंखता', 'एकता', 'केवल', 'शिव' आदि शब्दो मे किया गया है।[1]

तंत्रो ने भी प्राय 'निर्वाण' और 'महासुख' को एक ही अर्थ मे व्यवहृत किया है। निर्वाण का अर्थ ही है--सतत् सुखमय स्थिति, आनन्द और मुक्ति का केन्द्र, अखण्ड परमानन्द, समस्त वस्तुओ का बीज, आप्त कामना की पराकाष्ठा, बुद्धो का परम सस्थान--'सुखावती'।

'सुखावती'

मुद्रा--मन स्थिति और आनन्द की साधन-प्रक्रिया यो है--

मुद्रा--कर्ममुद्रा, धर्ममुद्रा, महामुद्रा, समयमुद्रा--

मन स्थिति--विचित्र, विपाक विमर्द, विलक्षण

आनन्द, आनन्द, परमानन्द, विरमानन्द, सहजानन्द

'महासुख' की अवस्था को भी प्राय इन्ही शब्दो मे व्यक्त किया गया है। न इसका आदि है, न मध्य और न अन्त। प्रज्ञा और उपाय के सम्मिलन से महासुख की जो स्थिति होती है, वही वज्र सत्त्व की स्थिति है। 'हेवज्र-तत्र' मे महासुख का एक बडा ही भव्य और उदात्त रूप मिलता है--सुख ही है परात्पर तत्व, यही है धर्मकाय, यह स्वयं भगवान् बुद्ध है। सुख का रग काला है, नीला है, रक्त है, श्वेत है, हरा है, यही सारा विश्व ब्रह्माण्ड है, यही प्रज्ञा है, यही उपाय है, यही स्वय युगल-मिलन है, यह सत् है, असत् है, यह स्वय भगवान् बज्रसत्व है।

ऊपर हम कह आये है कि वज्र-यान का ही दूसरा नाम सहजयान है और इसमे 'महासुख' को ही केन्द्र में रखकर समस्त साधना चलती है तथा इस साधना-शैली मे योगाभ्यास के साथ मिथुन योग ऐसा घुला मिला है कि इन्हे पृथक् किया ही नही जा सकता। अस्तु, महासुख ही है समस्त गुह्य (Esoteric) साधनाओ का सार-समुच्चय और यही है समस्त गुह्य धर्म-साधनाओ की 'सहजावस्था', जिसका भी उल्लेख हम ऊपर कर आये है। 'सहज' शब्द जितना सीधा-सादा देखने मे लगता है, उतना यह वास्तव मे है नही। यो इसका अर्थ है 'सह जायते इति सहज'।[2]

---

१ Rhys Davids A Dictionary of Pali language **में 'निर्वाण' के पर्यायवाची शब्दों में**—The harbour of refuge,t he cool cave, the island amidst the floods, the place of bliss, emancipation, libration, safety, tranquillity, the home of ease, the calm, the end of suffering, the medicine for all suffering, the unshaken, the ambrosia, the unmaterial, the imperishable, the abiding, the further shore, the unending, the bliss of effort, the supreme joy, the ineffable, the holy city **इत्यादि-इत्यादि दिए है।**

२ **तस्मात् सहज जगत्सर्वं सहजं स्वरूपमुच्यते।**
स्वरूपमेव निर्वाणं विशुद्धाकार--चेतसः॥ **पृ० ३९**

यद्यपि महासुख की साधना मे सहज स्थिति की उपलब्धि होती है; परन्तु यह भूलकर भी नही मानना चाहिए कि यह 'देहज' है—

'देहस्थोऽपि न देहज.'। यह सहज स्थिति स्वसंबंध है। वहाँ न ज्ञाता है न ज्ञेय और न ज्ञान।

शक्ति जब वज्र-काय या सहजकाय मे पहुंचती है तब वह स्वयं 'शून्यता' हो जाती है और साधक का शुद्ध बुद्ध-चित्त ही भगवान् वज्रसत्व बन जाता है। इस प्रकार जब वज्रसत्व और शून्यता का पूर्ण सम्मिलन साधक के सहज काय मे हो जाता है तब वह 'महासुख' की स्थिति को प्राप्त होता है। चित्त महासुख की मदिरा पीकर मदमत्त हो जाता है, स्वयं वज्रसत्व हो जाता है। इस सहज विलास की स्थिति मे बोधिचित्त के उदय से अज्ञान वैसे ही भाग जाता है जैसे सूर्य के उदय से अंधकार। यही है परम ज्ञान और परम आनन्द की चरम परिणति जो बौद्ध साधना का लक्ष्य है।

सहज विलास की स्थिति

(ख) सिद्ध सम्प्रदाय और रसेश्वर दर्शन में मधुरभाव

सिद्ध सम्प्रदाय अपने देश मे गुह्य धर्म साधना का एक परम प्राचीन सम्प्रदाय है जिसमे काय साधना पर विशेष बल है। इस शरीर को ही सुदृढ़ कर अमरत्व लाभ की साधना ही इस सम्प्रदाय की अपनी निजी विशेषता है। सिद्धो का रसायनियों से घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है। 'सर्व-दर्शन-संग्रह' में रसायनियों को भी एक संप्रदाय विशेष के रूप में सायण-माधव ने स्वीकार किया है और रसायन के अनेक प्रामाणिक ग्रन्थो से इस दर्शन की विशेषताओ का निदर्शन किया है। रसायनियो मे 'रस' विशेष के द्वारा शरीर को ही अजर-अमर बनाने तथा अमर-सिद्धि लाभ की व्यवस्था है। चीन और तिब्बत मे रसायनियो का बहुत पहले बडा ही व्यापक विस्तार था और वहाँ यह अत्यन्त गुह्य परन्तु अत्यन्त लोकप्रिय साधना थी। तिब्बत से ही यह भारत में आई ऐसी मान्यता इतिहासकारो की है। जो हो, परन्तु है यह परम प्राचीन साधना-प्रणाली। महर्षि पंतजलि अपने 'योगसूत्र' के कैवल्य पाद मे कहते है कि औषधि के द्वारा भी सिद्धि लाभ होता है।[1] इसपर भाष्य करते हुए व्यास और वाचस्पति ने कहा है कि यहा ओषधि का अर्थ 'रस' है और निश्चय ही इसका संकेत उन योगियो की गुह्य साधना से है जो रसायन के द्वारा सिद्धि-लाभ करते थे। नेपाल, तिब्बत तथा हिमालय की उपत्यका मे नाथ सिद्धो तथा बौद्ध सिद्धाचार्यो का मिलन हो गया और दोनो सम्प्रदायों की विचारधारा, साधना-शैली, आचार आदि मे बहुत अंशो मे

रसायन

यह जगत् स्वरूपतः सहज है, यह सहज ही जगत् का सार है, विशुद्ध चित्तवालों के लिए यही निर्वाण है। **—हेवज्रतंत्र संहिता**

१. जन्मौषधिमंत्रतपः समाधिजाः सिद्धयः।

—योगसूत्र कैवल्यपाद ४–१

समानता आ गई। समस्त गुह्य साधनाओ में एक विचित्र अखण्ड एकरूपता मिलती है और यह दो प्रकार की है (१) आचार की सकुल प्रणाली और (२) योगाभ्यास। किम्वदन्ती और जनश्रुति है कि जब क्षीरोद सागर मे देवी को यह रहस्य बतलाया जा रहा था तब मत्स्येन्द्र नाथ ने मत्स्य रूप मे यह रहस्य विद्या पहले पहल पाई। इनके पहले गुरु आदिनाथ है जो हिन्दुओ के शिव और बौद्धो के बुद्ध है। इन्ही गुरु आदिनाथ से योग साधना की धारा चली। बौद्धो की तरह नाथो के यहा भी सिद्धि की चरमावस्था को सहज समाधि की अवस्था कहते है। और 'अकुलवीर तत्र' मे जो मत्स्येन्द्र नाथ का लिखा बताया जाता है उस सहज अवस्था का एक पद है जिसमें यह स्पष्ट उल्लेख है कि सहज समाधि की स्थिति परम शान्ति, परम अद्वय की स्थिति है जिसमे योगी का चित्त तरग-हीन समुद्र की तरह सम और गम्भीर हो जाता है और समस्त जगत उसमे एकाकार हो जाता है। उस समय स्वय साधक ही देवी है, देव है, गुरु है, शिष्य है, ध्यान है, ध्याता है और स्वय सर्वेश्वर देवता है[1]। नाथो ने शरीर के भीतर ही सभी तीर्थ माने है--उनके नाम है -पीठ, उपपीठ, क्षेत्र, उपक्षेत्र सन्देह आदि। ८४ सिद्ध और ९ नाथ है। सिद्धो मे '८४' शब्द ही रहस्यमय ढंग से व्यापक पाया जाता है।

सूर्य चन्द्र सिद्धान्त

तंत्र और योग की प्रक्रिया मे सूर्य और चन्द्र का उल्लेख बार बार आता है और इन दोनो के सम्मिलन को 'योग' कहा गया है। सूर्य और चन्द्र का अर्थ साधारणतया दाहिने और बाये की दो नाडियो से है और इनके मिलन से प्राण और अपान की समता प्राप्त होती है। 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' मे जो गोरख का लिखा बताया जाता है, वह स्पष्ट है कि भौतिक शरीर के पाच तत्त्वो या कारणो के समवय से सगठित किया है और वे पाच तत्त्व है- -कर्म, काम, चन्द्र, सूर्य और अग्नि[2]। इसमे पहले दो अर्थात् कर्म और काम पिण्ड शरीर के कारण है और दूसरे तीन सूर्य, चन्द्र और अग्नि है शरीर के मूल कारण। सूर्य और अग्नि एक ही तत्त्व है अस्तु इन तीनो मे दो ही प्रधान रूप से है और वे है चन्द्र और सूर्य। चन्द्र है रस तत्त्व या सोम तत्त्व और सूर्य है अग्नि तत्त्व। इस प्रकार यह शरीर सोम अग्नि के सगठन से हुआ। रस या सोम है उपभोग्य और अग्नि है उपभोक्ता। इसी प्रकार इस स्थूल जगत मे अग्नि और चन्द्र का प्रकाशन क्रमश पिता के शुक्र और माता की रज के रूप मे हुआ और इन दोनो के संयोग से ही यह शरीर हुआ।[3] 'हठयोग प्रदीपिका' का

---

१ स्वयं देवी स्वयं देवः स्वयं शिष्यः स्वयं गुरुः।
स्वयं ध्यानं स्वयं ध्याता स्वयं सर्वेश्वरो गुरुः॥

---अकुलवीर तंत्र २६

२ कर्मकामाश्चन्द्रः सूर्योअग्निरीति प्रत्यक्ष कारणं पंचकम्।

---१६२

३ किं च सूर्याग्नि-रूपम पितु : शुक्र सोम रूपम च मातरजः। उभयोःसंयोगे पिण्डोत्पत्तिर्भवति।

यह भी सिद्धान्त है कि हठयोग मे ह-सूर्य और ठ-चन्द्र के मिलन मे साधना पूरी होती है। सूर्य चन्द्र के सम्बन्ध मे स्वय गीता कहती है--

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यञ्ह ओजसा।
पुष्णाणि चौषधि सर्व सोमो भूत्वा रसात्मक ।।
अह वैश्वानरो भूत्वा प्रणिना देहमाश्रित ।
प्राणोपानसमायुक्त पचाम्यन्न चतुर्विधम् ।।

'बृहज्जावालोपनिषद' के दूसरे ब्राह्मण मे सूर्य चन्द्र-तत्त्व की बडी ही मार्मिक व्याख्या है।[1] चन्द्र-सूर्य तत्त्व का एक और भी अर्थ है और वह है शिव शक्ति। चन्द्रमा अमृत है सूर्य कालाग्नि। चन्द्रमा सहस्रार मे ठीक सहस्र दल कमल के नीचे स्थित है नीचे की ओर मुह किए और सूर्य है नाभिदेश के मूलाधार मे ऊपर की ओर मुह किए। शरीर मे बिन्दु के दो रंग है--पाण्डुर बिन्दु और लोहित बिन्दु। पहला है शुक्र और दूसरा महा रजस्। चन्द्रमा मे पाण्डुर विन्दु है, सूर्य मे लोहित बिन्दु है। चन्द्रमा ही है शुक्र अर्थात् शिव और सूर्य ही है रजस् अर्थात् शक्ति। बौद्ध तंत्रो तथा बौद्ध सहजिया गानो मे सूर्य को निर्माण काय मे गौर चन्द्रमा को 'बोधिचित' रूप मे उष्णीश कमल मे स्थित मानते है। 'गोरक्षविजय'[2] मे सूर्य चद्रतत्त्व का अनेक रूपो मे विवरण आया है। चन्द्र सूर्य के मिलने की विविध व्याख्याओ मे पहली और मुख्य व्याख्या है शिव शक्ति का सहस्रार मे

---

१ **अग्निसोमात्मकं विश्वमित्यग्निराचक्षते।**
रौद्री घोरा या तैजसी तनूः सोमः शतयमृतमयः शक्तिकरी तनूः।
अमृतं यत्प्रतिष्ठा सा तेजो विद्या कला स्वयम्।
स्थूल सूक्ष्मषु भूतेषु स एक रसतेजसी ।।१।।
द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका।
तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा वानलात्मिका ।।२।।
वैद्युदादिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः।
तेजो रस विभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम्।
अग्नेरमृत निष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते।
अतएव हविः क्लृप्तमग्नीसोमात्मकं जगत् ।।
ऊर्ध्वशक्तिमयः सोम अधोशक्तिमयो बलः।
ताभ्यां संपुटिततस्तस्माच्छश्वविश्वमिदं जगत् ।।
शिवश्चोर्ध्वमयी शक्तिरूर्ध्वशक्तिमयः शिवः।
तदित्थं शिवशक्तिभ्यां नाव्याप्रृतमिह किंचन ।।

--बृहज्जाबोलोपनिषद् २।१-८

२ दे० पृ० १४०

मिलन।[1] दूसरी व्याख्या है योग की एक विशिष्ट प्रक्रिया जिसमे योगी और योगिनी का मिलन होता है और रेतस् और रजस् के सम्मिलित द्रव पदार्थ को वज्रौली मुद्रा द्वारा योगी या योगिनी पान कर जाते हैं। तीसरी व्याख्या है, प्राणायाम द्वारा प्राण और अपान को समकर के इडा और पिंगला नाडियो को वश मे करना। इडा और पिंगला और सुषुम्ना को नाथ पथ मे सोम सूर्य और अग्नि नाड़ी के रूप मे भी वर्णन मिलता है। नाथ पंथ मे सूर्य चन्द्र के सम्मिलन का एक और, और महान रहस्यमय अर्थ है वह यह कि सूर्य को वश मे करके चन्द्रमा से झरते हुए अमृतरस से शरीर को नव नवायमान कर दिया जाय। सूर्य का अर्थ है सहार, चन्द्रमा का अर्थ है सृजन। दोनो को वशीभूत करके योगी शरीर मे ही अमरत्व लाभ करता है। योग की प्रक्रिया मे यह माना जाता है कि शरीर का मूल तत्त्व है सोम या अमृत जो सहस्रार स्थित चन्द्रमा मे जमा रहता है। सहस्रार से एक नाडी जिसे 'शखिनी' कहते हैं जिह्वा के मूल तक चली गई है। यही है योगियो का 'वकनाल' जिसके द्वारा सोम रस या महारस का पान होता है। इस शंखिनी नाडी का वर्णन 'गोरक्षविजय' मे दोनो छोर पर मुंह वाली नागिन के रूप मे मिलता है। शखिनी का मुह जिससे चन्द्रमा को अमृत झरता रहता है 'दशम द्वार' कहा जाता है। योगियो की यह मान्यता है कि चन्द्रमा से झरता हुआ अमृत रस या सोम रस सूर्य मे गिरने के कारण कालाग्नि मे जलकर भस्म होता जाता है और इसी कारण मनुष्य जीवन को मृत्यु मे पर्यवसित हो जाना पडता है। यदि किसी प्रकार इस अमृत रस को सूर्य मे गिर कर जल जाने से बचाया जा सके, तो मनुष्य काल को जीत कर अमर बन सकता है। इसके लिए यदि दसवे द्वार को बन्द कर दिया जाय और चौकसी रखी जाय, तो अमरत्व की सिद्धि प्राप्त हो सकती है। यदि यह द्वार खुला रहा तो 'महारस' को सूर्य या काल खा जाएगा।[2] इसी दसवे द्वार से योगी अमृत रस का पान करते है और अमरत्व लाभ करते है।

प्रश्न यह है कि इस महारस को नष्ट होने से बचाया कैसे जाय? इसके लिए योग की अनेक प्रक्रियाएं है जिनमे 'खेचरी मुद्रा' बहुत ही प्रभावशालिनी है। जीभ को उलट कर 'राज-दन्त' या शंखिनी के द्वार तक पहुचा देते है और दृष्टि को मध्य मे स्थित कर योगी उस सोमरस का पान करता है। योग शास्त्र मे 'खेचरी' की बडी प्रशसा है और कहा गया है कि खेचरी सिद्ध हो जाने पर किसी रमणी द्वारा आलिगित होने पर भी 'विन्दु' चचल नही होता।

---

१ बिन्दु शिवोरजः शक्ति र्बिन्दुरिन्दु रजो रविः।
उभयो संगमादेव प्राप्यते परमं पदम्॥

—गोरस सिद्धान्त संग्रह पृ० ४१

२ चन्द्रात् सारः स्रवति वपुषः तेन मृत्युर्नराणाम्।
त० बध्नीयात् सुकर्ण अतो नान्यथा कार्य-सिद्धिः॥

—गोरक्षपद्धति १५

'गोरक्षपद्धति'[1] तथा 'हठयोग प्रदीपिका' मे खेचरी मुद्रा की अत्यधिक प्रशंसा है। चन्द्रमा से झडते हुए अमृत रस, सोमरस, महारस को 'अमर वारुणी' भी कहते है। नाथयोगियो मे खेचरी मुद्रा के द्वारा जिह्वा को उलट कर ऊपर चढाने का नाम है 'मास भक्षण' और सोमरस के पान का नाम है वारुणीपान[2]।

ऊपर हम कह आए है कि सूर्य है रसज् और चन्द्रमा है रेतस्। सूर्य का अर्थ है शक्ति और चन्द्रमा का अर्थ है शिव। चन्द्रमा को सूर्य की वह्नि से बचाना चाहिए। दूसरे शब्दो मे पुरुष को स्त्री के स्पर्श से बचना चाहिए। स्त्री को नाथ-पथवाले बाघिन

सूर्य चन्द्र--स्त्री पुरुष भाव के रूप मे रखते है। वह दिन मे 'जादूगरनी' और रात मे 'बघिनी' है। नाथ सिद्ध सभी के सभी नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे और इस बात पर वे सतत सावधान थे कि बाघिनी के पजे मे न पडे। गोरख ने कहा है कि स्त्री के श्वास-मात्र से शरीर सूख जाता है और नष्ट हो जाता है।[3]

---

१ पृ० ३७, ३८ बम्बई संस्करण।
तु० 'हठयोग प्रदीपिका' में चतुर्थोपदेश का श्लोक ४४-४६।

२ गोमांसं भक्षयेनित्यं पिबेत अमरवारुणीम्।
कुलीनं तमहंमन्ये चेतरे कुलघातकाः॥
गोशब्देनोदित जिह्वातत्प्रवेशोहि तालुनि।
गोमासं भक्षणं ततु महापातक नाशनम्॥
जिह्वा प्रवेशा संभूता वह्निननोत्पादितः खलु।
चन्द्रात् स्रवति यः सारः सस्यादमरवारुणी॥ --गोरक्ष पद्धति ३७-३९

तथा हठयोग प्रदीपिका ३. ४७-४८-४९

३ दिन का मोहिनी रात का बाघिनी पलक पलक लहु चुसे।
दुनिया सब बौरा हो के घर घर बाघिनी पोसे॥ --कश्चित्

तुलनीय-- नारी की झांई परत अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिन की कौन गति, नित नारी के संग॥
नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर।
देखे ही ते विष चढ़ै, मन आवै कछु और॥
नैनों काजर लाइ कै, गाढ़े बाँधे केस।
हाथों मेंहदी लाइ कै, बाघिनि खाया देस॥ --कबीर

४ गुरु जी ऐसा काम ना कीजै।
जामें अमी महारस छीजै॥

नाथ सिद्ध और बौद्ध सिद्धाचार्य

नाथ सिद्धो और बौद्ध सिद्धाचार्यो मे कतिपय ऐसे असामान्य भेद है, जो स्पष्टतः परिलक्षित होते है। बौद्ध सहजियो मे मिथुन योगाभ्यास का प्रचलन था जो मिथुनानन्द को महासुख मे परिवर्तित कर देता है। बौद्ध सहजियो ने स्त्रियो की बडी प्रशसा की और उनके गुण गाये और उन्हे प्रज्ञा, नैरात्मा या शून्यता का अवतार माना और उनके सग को साधना की सिद्धि के लिए आवश्यक जाना। ठीक इसके विपरीत नाथो ने स्त्री मात्र की भर्त्सना की, उन्हे बाधिनी और जादूगरनी कहा। नाथ साधनामे स्त्री-सग सर्वथैव वर्जित माना गया है। पर नाथ सिद्ध भी बज्रौली, अमरौली, सहजौली आदि मुद्राए जानते और इनका प्रयास तथा प्रयोग करते थे।[1] 'रसार्णव' मे रस के सम्बन्ध मे विस्तृत व्याख्या है। पार्वती ने शिव से जीवनमुक्ति के सम्बन्ध मे पूछा है। शिव ने कहा– मरणान्तर मुक्ति किस काम की? मुक्ति तो वह जो जीवन मे ही, जीते-जी प्राप्त कर ली जाय? इस पर उन्होने 'रस' की चर्चा की। 'रस' का अर्थ है 'पारद', क्योकि वह मनुष्य को उस पार पहुचा देता है 'पार ददातीति पारद'। यह 'रस' ही शिव का शुक्र है और अभ्रक है गौरी का रजस्। इन दोनो के सयोग से जो वस्तु तैयार होती है, उसी मे मनुष्य को अमरत्व प्रदान करने की क्षमता है।[2] रसायनियो ने सिद्ध देह और दिव्य देह की चर्चा की है। यह वह देह है जो जन्म-जरा-मरण से मुक्त है। नाथ सिद्ध और रस सिद्ध दोनो ने ही शरीर मे अमरत्व लाभ को साधना का लक्ष्य माना है। रस सिद्धो ने सिद्ध देह के दो भेद किये है––एक है जीवनमुक्त का और दूसरा है परामुक्त का। पहला है शुद्ध माया का शुद्ध शरीर जिसे 'प्रणवतनु' या 'मत्र तनु' कहते है। यह जरा-मृत्यु से रहित है, परन्तु जब सिद्ध देह परामुक्ति की चिन्मय अवस्था मे प्रवेश करती है तो वहा इसका तिरोधान हो जाता है। तान्त्रिक पारिभाषिक शब्दावली मे इन्हे 'वैदव देह' और 'शाक्त देह' कहते है।

(ग) कापालिक, नाथ तथा संत-साधना मे मधुर भाव

उत्तर मध्यकालीन निर्गुण सन्त यद्यपि अपनेको वैष्णव ही कहते है, परन्तु मूल वैष्णव-साधना से उनकी साधना-पद्धति अनेक बातो मे सिर्फ भिन्न ही नही है, विपरीत भी मालूम पडती है। इसका कारण मुस्लिम प्रभाव नही है। सतो के साहित्य मे जो वाह्याचार विरोधी स्वर पाया जाता है, उसकी परम्परा बहुत पुरानी है। इस साहित्य मे सहज, शून्य, गगन, गगनोपम, खसम, उनमनि, इडा, पिगला आदि शब्द इतनी अधिक मात्रा मे प्रयुक्त हुए है कि इन शब्दो को व्यापक व्यवहार करने वाले कौल, वज्र यानी, कापालिक, शाक्त साधको की बात आये विना

---

१ रसार्णवः प्रो० पी० सी० राय द्वारा सम्पादित।

२ अभ्रकः तव बीजं तु मम बीजं तु पारदः।
अनयोर्मेलनं देवि! मृत्युदारिद्रयनाशनम्॥

––सर्व दर्शन संग्रह पृ० २०४।

नही रहती। कबीर, दादू आदि ने कभी सहज समाधि लगाने की सलाह दी है, कभी सहज सुख पाने की व्यग्रता प्रकट की है, कभी शन्य सरोवर मे स्नान करने का महत्व बताया है, कभी सहज शून्य के द्वार पर खडा होकर मुनियो के भाग्य पर तरस खाई है। कबीर दास ने तो एक स्थान पर बडी व्याकुलता से पुकारा है कि ऐसा कोई सन्त है जो सहज सुख उत्पन्न करा सके? सिर्फ उसी प्रकार एक बून्द उस राम रस को दे सके, जिस प्रकार कलाली चषक भरकर मादक रस दिया करती है। मै सारा जप-तप उसे दलाली मे देने को प्रस्तुत हू।

है कोउ संत सहज सुख उपजै
जाको जप तप दऊ दलाली।
एक बून्द भरि दइ राम रस
ज्यो भरि देइ कलाली।।

सहज शब्द की दीर्घ परम्परा है। नाना जाति के साधको की चित्त-गगा मे स्नान करता हुआ यह शब्द कबीर के हृदय मे राम रस के रूप मे आविर्भूत हुआ है। इसकी दीर्घ यात्रा की कहानी मनोरजक भी है और सन्त साहित्य के समझने मे सहायक भी। भक्तप्रवर, दादूदयाल ने अपने गुरुदेव को सम्बोधन करके प्रश्न किया है—'कौण सहज कहु, कौन समाध, कौण भगति कहु कौण अराध।' और उत्तर दिलाया है—

आपा गर्व गुमान तजि मद मच्छर अहकार।
गहै गरीबी बदगी सेवा सिरजन हार।।

यहा 'सहज' गरीबी ग्रहण करके बंदगी करने के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। वैसे तो 'सहज' शब्द का प्रयोग बहुत पुराना है। गीता मे भगवान् श्रीकृष्ण कहते है—

'सहज कर्म कौन्तेय सदोपमति न त्येजत्'

अर्थात् सहज कर्म को सदोष होने पर भी नही छोडना चाहिए। आगे चलकर सातवी शताब्दी के बाद के कौलो, शाक्तो और बौद्धो के साहित्य मे इस शब्द का बडा व्यापक प्रभाव दिखाई पडता है। बज्रयानी सिद्धो का 'सहज' बहुत कुछ उपनिषद् के ब्रह्म के समान अनिर्वचनीय और अचिन्य गुणरूप बन गया है।[1] सातवी से चौदहवी शताब्दी तक इस शब्द का साधना-जगत् मे व्यापक प्रभाव रहा है।

---

१ तस्मात् सहजं जगत् सर्वं सहजं स्वरूपमुच्यते।
स्वरूपमेवं निर्वाणं विशुद्धाकार चेतसः।।

'सहज' शब्द का व्यवहार क्यो होने लगा? जैसे-जैसे धर्म साधना मे आडम्बर प्रधान बाह्याचारो का प्रभाव बढता गया, कृच्छाचार को सिद्धिसोपान समझा जाने लगा, तीर्थ, व्रत, होम, यज्ञ, लुचन, मुचन, तंत्र, मंत्र का प्रभाव बढने लगा वैसे वैसे भी धर्मो के वास्तविक भक्तो के चित्त मे प्रतिक्रिया हुई। इस समूची प्रतिक्रिया को यह 'सहज' शब्द सूचित करता है। परन्तु वाह्याडबर और कृच्छाचार का विरोध इसका अभावात्मक पक्ष है। इसका भावात्मक पक्ष यह है कि भगवान् को प्राप्त करने के लिए उसे तीर्थो मे, क्रियाओ मे और घटाटोपपूर्ण आचारो मे नही, अपने अन्तर मे देखना चाहिए। यह मनुष्य का शरीर ही सब तीर्थो का निवास है। इसी मे सब ब्रह्माण्ड निहित है, इसी मे परम प्राप्तव्य का वास है। इस प्रकार मनुष्य का शरीर ही सब साधनाओ का उत्तम साधन है। फिर एक बार जो इस तथ्य को समझ लेता है, उसके लिए न योग की जरूरत होती है, न वैराग्य की, न प्राणायाम की, न कृच्छ-साधना की। वह सहज भाव मे रहकर उस परम तत्त्व को पा लेता है, जो मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है।

'सहज' का सर्वमान्य अर्थ

सहज मत का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि मनुष्य का यह शरीर ही सब कुछ है। 'जोइ जोइ पिडे सोइ ब्रह्माण्डे', 'ब्रह्माण्डे यास्ति यत् किंचित् तत् पिण्डेऽप्यस्ति सर्वथा'। इस सिद्धान्त को सभीने स्वीकार किया है। परन्तु इसी मूल सिद्धान्त को स्वीकार करने के फलस्वरूप सहज मत की दर्जनो व्याख्याए और कई रूपान्तर हो गए है। सरहपा नामक बौद्ध सिद्ध ने यह बताया है कि इसी शरीर मे सरस्वती है, इसी मे यमुना है, इसी मे गगा है और समुद्र है। इसी मे प्रयाग है, इसी मे वाराणसी है, इसी मे चन्द्रमा और सूर्य है। इसी मे सब क्षेत्र है, सब सिद्धपीठ है, सारे उपपीठ है, मै इसी महातीर्थ मे घूमता रहता हूं--मैने इस देह के समान शुभ-तीर्थ नही देखा।[1]

पिण्ड ही ब्रह्माण्ड है

कबीर ने इसी स्वर मे गाया था--

यहि घट अंतर बाग बगीचे यहि मे सिरजन हारा।
यहि घट अतर सात समुद एही मे नौलख तारा।। इत्यादि

ऐसी युक्तिया संतो के साहित्य मे भरी पडी है।

इस शरीर की पाच वस्तुएं मध्ययुग के साधको को बहुत शक्तिशाली दिखी हैं--मन, प्राण, वाक, शुक्र और कुण्डलिनी। इन पाच बातो के आश्रय करके मोटे तौर पर (१) राजयोग मूलक साधनाए, (२) हठयोग मूलक साधनाए, (३) मत्र जप, (४) उर्ध्वरेतस् साधना, सहजो-

---

१ एत्थु से सरसुह जमुना एत्थु से गंगा साअरु।
एत्थु पआग बराणसि एत्थु से चंद दिवाअस।।
एत्थु पीठ उपपीठ एत्थु महं भमइ परिट्ठओ।
देह सरिस तिथ्थ महं सुह आराण न दिटठयो।।

लिका साधना, सोमसिद्धान्ती साधना, कपालवनिता, युगनद्ध मूर्ति, नीलाम्बरी साधना, रसेश्वर सिद्धान्त, सहजिया वैष्णव साधना इत्यादि तथा (५) कुण्डलिनी योग मूलक साधनाए प्रचलित हुई है।

कौलमत में सहज साधना

बौद्धमत मे सहज साधना का प्रवेश कौल मत के द्वारा ही हुआ। 'कौल ज्ञान निर्णय' के अनुसार मत्स्येद्रनाथ कौलज्ञान के प्रथम प्रवर्त्तक है। 'तत्रालोक' की टीका मे सकुल कुल शास्त्र का अवतारक कहा गया है। आदि युग मे जो कौल ज्ञान था, वह द्वितीय अर्थात् त्रेता युग मे 'महत्कौल' नाम से परिचित हुआ और तृतीय अर्थात् द्वापर मे 'सिद्धामृत' नाम से और इस कलिकाल मे 'मत्स्योदर कौल' नाम से प्रकट हुआ है। दन्त कथाओ से यह स्पष्ट है कि मत्स्येन्द्रनाथ अपना असली मत छोडकर कदली देश की स्त्रियो की माया मे फस गये थे। ये कदली स्त्रिया योगिनी थी। वह शास्त्र कामरूप की योगिनियो के घर-घर मे विद्यमान था।[1] और मत्स्येन्द्रनाथ उसी कामरूपी स्त्रियो के घर जाकर अनायास लब्ध शास्त्र का सार सकलन कर रहे थे। कामरूप की योगिनियो के माया-जाल से गोरक्षनाथ ने मत्स्येन्द्रनाथ का उद्धार किया था, यह भी दन्तकथाओ से स्पष्ट है। वह सिद्ध मत पूर्ण ब्रह्मचर्य पर आश्रित था, देवी अर्थात् शक्ति उसकी प्रतिद्वद्विनी थी और उसमे स्त्री-सग पूर्णरूपेण वर्जित था। गोरक्षनाथ ने कामरूप से मत्स्येन्द्रनाथ को उद्धार करके इसी मत मे प्रतिष्ठित किया था। कौल ज्ञान सिद्धि परक विद्या है और यद्यपि इस शास्त्र मे अद्वैत भाव की चर्चा है, पर मुख्यत यह उन अधिकारियो के लिए लिखा गया है जो कुल और अकुल –शक्ति और शिव––के भेद को भूल नही सके है। इसके विपरीत 'अकुल वीर तंत्र' का अधिकारी वह है जिसे अद्वैतज्ञान हो गया है और जो अच्छी तरह समझ गया है कि कुल और अकुल मे कोई भेद नही है, शक्ति और शिव अविछिन्न भाव से विराज रहे है। यह निश्चित है कि 'अकुल वीर तत्र' मे प्रतिपादित साधना वास्तविक सहज साधना है। इसी को कभी अवधूत मार्ग कभी सिद्ध मार्ग और कभी सहज मार्ग कहा गया है।

बौद्ध सिद्धो की कई बातो से 'कौलज्ञान निर्णय' की कई बाते मिलती है––(१) सहज पर जोर देना, (२) वाह्याचार का विरोध, (३) कुलक्षेत्र और पीठो का वर्णन, (४) वज्रीकरण का प्रयोग, (५) पचपवित्र आदि पारिभाषिक शब्द।[2] पुराना सिद्ध मार्ग मुख्य रूप से योग परक था और पच मकारो या पंच पवित्रो की व्याख्या उसमे सदा रूपक मे हुआ करती थी। इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथ ने जिस प्राचीन कौल मार्ग की चर्चा की है, वह निश्चय ही शाक्त मत था, बौद्ध नही।' अकुल वीर तंत्र मे बौद्धो को स्पष्ट रूप से मिथ्यावादी और मुक्ति का अपात्र बताया

---

१ तस्य मध्ये इमं नाथ सारभूतं समुद्धृतं।
कामरूपे इदं शास्त्रं योगिनीनां गृहे गृहे॥ २२.१०

२ देखिए डा० पी० सी० बागची की 'कौलज्ञान निर्णय' की भूमिका।

गया है।[1] इसी 'अकुल वीर तंत्र' से कौल मत की सहज साधना विवृत्त हुई है। इसलिए कौल सहज साधना निश्चित रूप से बौद्ध-साधना से भिन्न है।

कुल और अकुल

कुलतत्र शब्द द्वैत परक है और अकुल तंत्र अद्वैत परक और भेद विरोधी सहज परक। कौल लोगो के मत से 'कुल' का अर्थ है शक्ति और अकुल का 'शिव'। कुल से अकुल का सम्बन्ध स्थापन ही कौल मार्ग है।[2] इसलिए कुल और अकुल को मिलाकर समरस बनाना ही कौल साधना का लक्ष्य है और 'कुल' और 'अकुल' का सामरस (समरस होना) ही कौल ज्ञान है। शिव का नाम अकुल होना उचित ही है, क्योकि उनका कोई कुल गोत्र नही है, आदि-अन्त नही है।[3] शिव की सिस्टक्षा—अर्थात् सृष्टि करने की इच्छा का नाम ही शक्ति है। शक्ति से समस्त पदार्थ उत्पन्न हुए है। शक्ति शिव की क्रिया है। परन्तु शिव और शक्ति मे कोई भेद नही है। चन्द्रमा और चन्द्रिका का जो सम्बन्ध है, वही शिव और शक्ति का सम्बन्ध है।[4] 'सिद्ध सिद्धान्त संग्रह' के चतुर्थ उपदेश मे कहा गया है कि शिव अनन्य, अखण्ड, अद्वय, अविनश्वर, धर्महीन और निरग है। इसीलिए उन्हे अकुल कहा जाता है। चूकि शक्ति सृष्टि का हेतु है और समस्त जगत् रूपी प्रपंच की प्रवर्तिका है, इसलिए उसे 'कुल' (वंश) कहते है।[5] शक्ति के विना शिव कुछ भी करने मे असमर्थ है।[6] इकार

---

१ विकल्प वहुलाः स मिथ्यावादा निरर्थकः।
न ते मुचन्ति संसारे अकुल वीर विवर्जितः॥ ——अकुल वीर तंत्र।

२ कुल शक्तिरिव प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते।
कुले कुलस्य संबंधः कौलमित्यभिधीयते॥
——सौभरिय भाष्कर पृ० ५३

३ वर्ण गोत्रादिराहित्यादेक एवाकुलंमतम्।
अनन्तत्वादखंडत्वादद्वपत्वादनाशनात्॥
निर्धर्मत्वाद् कुलं स्पाच्निरंन्तरम्॥ ——सिद्ध सिद्धान्त संग्रह पृ० ४।

४ शिवस्यामान्तरे शक्तिः शक्ते रम्यन्तरे शिवः।
अन्तरं नैव जानीयात् चन्द्रं चन्द्रिकयोरिव॥

५ कुलस्य सामरस्येति सृष्टि हेतुः प्रकाशम्।
सा चापरंपराशक्ति राज्ञेशस्यापरं कुलम्॥
प्रपंचास्य समस्तस्य जगद्रूपप्रवर्तनात्।
——सिद्ध सिद्धान्त संग्रह, सं० ४-१२-१३।

६ शिवोऽपि शक्ति रहितः कर्तुंशक्तो न किंचन।
शिव स्वशक्तिसहितो सभासाद् भासको भवेद्॥
——सि० सि० सं० ४।१६।

शक्ति का वाचक है और शिव में से इकार निकाल देने से वह 'शव' हो जाता है।[१] इसलिए शक्ति ही उपास्य है। इस शक्ति के उपासक शाक्त ही कौल है। यह मत बौद्धसाधना से मूलतः भिन्न है। इस साधना में लक्ष्य है अखण्ड, अद्वय और अविनश्वर शिव और बौद्धसाधना का लक्ष्य है नैरात्म्य भाव। जिस प्रकार वृक्ष के विना छाया नही रह सकती, अग्नि के विना धूम नही रह सकता, उसी प्रकार शिव शक्ति आविच्छेय है, एक के विना दूसरे की कल्पना नही की जा सकती।[२]

कौल मार्ग का अत्यन्त सक्षिप्त परन्तु अत्यन्त शक्तिशाली उपस्थापन 'कौलोपनिषद्' मे दिया हुआ है। आरम्भ मे कहा गया है कि ब्रह्म का विचार हो जाने के बाद ब्रह्मशक्ति (धर्म) की जिज्ञासा होती है। ज्ञान और बुद्धि ये दोनो ही धर्म (शक्ति) के स्वरूप है, जिनमें एकमात्र ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। योग और मोक्ष दोनो ही ज्ञान है। अधर्म का कारण अज्ञान है, पर यह अज्ञान भी ज्ञान से अभिन्न है। प्रपच (शब्द स्पर्श, रस, गन्ध, रूप) ही ईश्वर है और अनित्य भी नित्य है क्योकि वह भी ब्रह्म-शक्ति का रूप ही है। मतलब यह है कि ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति में कोई भेद नही है। जीव के पाच बन्धन है—(१) अनात्मा मे आत्मबुद्धि (२) आत्मा मे अनात्म बुद्धि (३) जीवो मे परस्पर भेद-ज्ञान (४) उपास्य और उपासक मे भेद-बुद्धि (५) चैतन्य अर्थात् परं ब्रह्म से आत्मा को पृथक् समझने की बुद्धि।

ये पाचों बन्धन भी ज्ञान रूप ही है, क्योकि ये सभी ब्रह्म-शक्ति के विलास है। इन्ही बन्धनों के कारण मनुष्य जन्म-मरण के चक्रो मे पडता है। इसी देह मे मोक्ष है। ज्ञान यह है कि समस्त इन्द्रियो मे नयन प्रधान है, अर्थात् आत्मा। सभी कुछ शाभवी (शक्ति) का रूप है। इस मार्ग के साधक के लिए वेद नही है। मंत्र-सिद्धि के पूर्व वेदादित्याग करना चाहिए। अपना रहस्य शिष्टभिन्न किसीको भी नही बताना चाहिए। भीतर से शाक्त, बाहर से शैव और लोक में वैष्णव होकर रहना चाहिए—यही आचार है।[३] आत्मज्ञान से ही मुक्ति होती है। लोक-निन्दा वर्जनीय है। अध्यात्म यह है—व्रताचरण न करे, नियम पूर्वक न रहे। नियम मोक्ष का बाधक है। किसी कौल सम्प्रदाय की स्थापना नही करनी चाहिए। सबमे समता की बुद्धि रखना ऐसा करनेवाला ही मुक्त होता है, वही मुक्त होता है। संक्षेप मे यही सहज साधना है। सब प्रकार के द्वन्द्वो से मुक्त, सब प्रकार के टंटे से अलिप्त स्पष्ट ही 'कौलोपनिषद्' और 'अकुल

---

१ शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः।

—देवी भागवत का कवच

२ न शिवेन विनाशक्तिर्नशक्तिरहितः शिवः।
अन्योन्यं च प्रवर्तन्ते अग्निर्धूमो यथा प्रिय।
न वृक्षरहिता छाया नच्छायारहितो द्रुमः॥ —१७ ८-९

१ अन्तः शाक्ताः बहिर्शैवाः समामध्ये च वैष्णवाः।
नाना रूप धरा कौला विचरन्ति महीतले॥

ीर तंत्र' सहज साधना को सब प्रकार के दिखावे से मुक्त और आन्तरिक शक्ति पर आधारित मानते हैं।

स्पष्ट है कि इस समूचे जगत्-प्रपंच का कारण शिव और शक्ति का पृथक्-पृथक् हो जाना ही है और इस प्रपंच की समाप्ति दोनों के मिलन मे है। जबतक शिव और शक्ति समरस नही हो जाते, तबतक जीव प्रपंचग्रस्त है। इसलिए इनका समरस ही प्रधान लक्ष्य है। इस सामरस्य के अनेक रूप हैं। विविध सहजमत इसी सामरास्य को प्राप्त करने के उपाय अपने अपने ढंग से बताते है।

शाक्ततंत्रो मे कुण्डलिनी योग साधना का बहुत उल्लेख है। कौल और नाथ मत मे भी कुण्डलिनी-योग की खूब चर्चा है। साधक का प्रधान कर्त्तव्य जीव-शक्ति कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करना है। शक्ति ही महा कुण्डलिनी रूप से जगत् मे व्याप्त है,

कुण्डलिनी योग की साधना

मनुष्य के शरीर मे वह कुण्डलिनी रूप से संस्थित है। कुण्डलिनी और प्राणशक्ति को लेकर ही जीव मातृकुक्षि में प्रवेश करता है। सभी जीव साधारणत: तीन अवस्थाओ मे रहते हैं—जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न। इन तीनों अवस्थाओ में कुण्डलिनी शक्ति निश्चेष्ट रहती है।

पीठ मे स्थित मेरुदण्ड जहाँ सीधे जाकर पायु और उपस्थ के मध्य भाग मे लगता है, वहाँ एक 'स्वयम् लिङ्ग' है, जो एक त्रिकोण चक्र में अवस्थित है। इसे 'अग्निचक्र' कहते है। इसी त्रिकोण या अग्निचक्र में स्थित स्वयम् लिङ्ग को साढे तीन

चक्र भेदन की प्रक्रिया

वलयो या वृत्तो मे लपेटकर सर्पिणी की भाँति कुण्डलिनी अवस्थित है। इसके ऊपर चार दलो का एक कमल है, जिसे 'मूलाधार चक्र' कहते है। फिर उसके ऊपर नाभि के पास 'स्वाधिष्ठान चक्र' है, जो छ. दलो के कमल के आकार का है और उसके भी ऊपर, हृदय के पास 'अनाहत चक्र' है। ये दोनो क्रमश दश और बारह दलो क पद्म के आकार के है। इसके भी ऊपर कण्ठ के पास 'विशुद्धारव्य' चक्र जो सोलह दल के पद्म के आकार का है। और भी ऊपर जाकर भूमध्य मे 'आज्ञा' नामक चक्र है जिसके सिर्फ दो ही दल है। ये ही षट्चक्र है। इन चक्रो को क्रमश पार करती हुई उद्बुद्ध कुण्डलिनी शक्ति सबसे ऊपरवाले सातवे चक्र (सहस्रार) मे परम शिव से मिलती है। इस चक्र मे सहस्रदल होने के कारण इसे 'सहस्रार' कहते है और परम शिव का निवास होने के कारण 'कैलाश' भी कहते है[1]। इस प्रकार सहस्रार में परम शिव, हृत्पद्ममे जीवात्मा और मूलाधारमे कुण्डलिनी विराजमान है। जीवात्मा परम शिव से चैतन्य और कुण्डलिनी से शक्ति प्राप्त करता है। इसीलिए

---

१ अत ऊर्ध्वं दिव्य रूपं सहस्रारं सरोरुहम्।
ब्रह्माण्ड व्यस्त देहस्य वा तिष्ठति सर्वदा॥
कैलाशोनाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति॥

—शिव संहिता ५, १५१-५२

कुण्डलिनी जीवशक्ति है। साधना के द्वारा निद्रिता कुण्डलिनी को जगाकर मेरुदण्ड की मध्य स्थिता नाड़ी सुषुम्ना के मार्ग से सहस्रार मे स्थित परम शिव तक उत्तोलित करना ही कौल साधक का कर्तव्य है। वही शिव-शक्ति का मिलन होता है। शिव-शक्ति का यह सामरस्य ही परम आनन्द है।[1] जब यह आनन्द प्राप्त हो जाता है, तब साधक के लिए कुछ भी करने को नही रह जाता।[2]

पशुभाव, वीरभाव, दिव्यभाव

प्रत्येक मनुष्य इस साधना के लिए समान भाव से विकसित नही है। कुछ साधक ऐसे होते है, जिनमे सांसारिक आसक्ति अधिक होती है। इस प्रकार मोह रूपी पाश या पगहे मे बँधे हुए जीवो को 'पशु' कहते है। और शास्त्रो मे ऐसे जीवो के लिए अलग ढङ्ग की साधना निर्दिष्ट है। परन्तु कुछ साधक ऐसे होते है, जो अद्वैत ज्ञान का एक उथला-सा आभासमात्र पाकर साधनमार्ग मे उत्साहित हो जाते है। और प्रयत्नपूर्वक मोह-पाश को छिन्न कर डालते है। इन्हे **'वीर'** कहा जाता है। यह साधक क्रमश अद्वैत ज्ञान की ओर अग्रसर होता रहता है और अन्त मे उपास्य देवता के साथ अपने-आपकी एकात्मता पहचान जाता है। जो साधक सहज ही अद्वैत ज्ञान को अपना सकता है, वह उत्तम साधक 'दिव्य' कहलाता है। इस प्रकार साधक तीन प्रकार के हुए ——पशु, वीर और दिव्य। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते है। दिव्य भाव के साधक की साधना 'सहज' कही जाती है। तन्त्रशास्त्र मे दिव्य साधक की साधना का नाम ही 'कौलाचार' है।

सात प्रकार के आचार

तन्त्रशास्त्रो मे सात प्रकार क आचार बताये गये है——वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। इनमे जो वेदाचार है, उसमे वैदिक का कर्म यज्ञयागादि विहित है। तत्र के मत से यह सबसे निचली कोटि की उपासना है। (२) वैष्णवाचार मे निरामिष भोजन, पवित्र भाव से व्रत उपावास, ब्रह्मचर्य और भजनासक्ति विहित है। (३) शैवाचार मे यज्ञ नियम, ध्यान, धारणा, समाधि और शिव शक्ति की उपासना तथा (४) दक्षिणाचार मे उपर्युक्त तीनो आचारो के नियमो का पालन करते हुए रात्रि काल मे भाग आदि का सेवन करके इस मत्र का जप करना विहित है। परन्तु ये चारो ही आचार पशुभाव के साधक के लिए ही विहित है। इसके बाद वाले आचार वीरभाव के साधक के लिए है। (५) वामाचार मे आत्मा को वामा (शक्ति) रूप मे कल्पना करके साधना विहित है। 'सिद्धान्ताचार' मे मनको अधिकाधिक शुद्ध करके यह बुद्धि उत्पन्न करने का उपदेश है कि शोधन से संसार की प्रत्येक वस्तु शुद्ध हो जाती है। ब्रह्म से लेकर ढेले तक मे कुछ भी ऐसा नही है, जो परम शिव से भिन्न हो। इन सब मे श्रेष्ठ है कौलाचार इसमे कोई भी नियम नही है। इस आचार के साधक साधना की

---

१ समरसानन्द रूपेण एकाकारं चराचरे।
यं च तातं स्वदेहस्थमकुलवीरं महाद्भुतम्॥
——अकुलवीर तंत्र ११५।

२ देखिये——नाथ सम्प्रदाय पृ० ७३।

र्वोच्च अवस्था मे उपनीत हो गए होते है और जैसा कि 'भावचूडामणि' में शिव जी ने कहा है—— र्दम और चन्दन मे, पुत्र और शत्रु मे, श्मशान और गृह मे तथा स्वर्ण और तृण मे लेश मात्र भी ेदबुद्धि नही रखते।[1]

इस प्रकार यह साधना भी अन्ततक अकुल वीर तत्र की सहज साधना के समान बन ाती है।[2]

बौद्ध और नाथ मत मे जालन्धर नाथ और कान्हपा या कानपा (कृष्णपाद) समान भाव ा समादृत सत है। कानुपा ने अपनेको कापालिक कहा है और अपने गुरु को जालधर पाद का शिष्य बताया है। कृष्णपाद ने अपने दोहो मे महासुख की आवास भूमि ककाल दण्ड रूप मेरुगिरि के शिखर को कहा है और 'मेखला टीका' मे इस मेरुगिरि का नाम 'जालधर' बताया गया है। अनुमानत: मेखला टीका कृष्णपाद की शिष्या मेखला योगिनी की लिखी हुई है।

कापालिक मत में सहज साधना

ो हो, कृष्णपाद के मन मे जालधर पाद के प्रति कितनी भक्ति थी, वह इस नामकरण से ही स्पष्ट ो जाती है। जिस कापालिक मत को जालधर पाद और कृष्णपाद इतना बहुमान दे गये है, वह ैव कापालक मार्ग था या बौद्ध बज्रयानी——यह प्रश्न निरर्थक है। वस्तुत उन दिनो इन तान्त्रिक ार्गो मे बहुत नैकटच का भाव था। भवभूति के 'मालती माधव' नामक प्रकरण से मालूम होता है ि कि सौदामिनी नामक बौद्ध भिक्षुणी श्री पर्वत पर कापालिक साधना सीखने गई थी। यह कापा-लिक साधना निश्चित रूप से शैव साधना थी। श्री पर्वत उन दिनो का प्रसिद्ध तान्त्रिक पीठ था, हा बौद्ध, शैव, शाक्त सभी प्रकार की तान्त्रिक साधनाए एक दूसरी की बगल मे पनप रही थी। ाणभट्ट ने कादम्बरी मे और हर्षचरित मे श्री पर्वत को शाक्त तत्र की साधना के पीठ के रूप मे लेखा है। 'चर्याचर्य विनिश्चय' की टीका मे दौमोडीपाद का श्लोक उद्धृत है, जिसमे बताया ाया है कि 'कापालिक' किसे कहते है। प्राणी अर्थात् साधक का शरीर ही वज्रधर है। जगत् की ो कोई भी स्त्री 'कपालवनिता' है और प्राणी के भीतर स्थित 'सोऽह' रूप आत्मा ही हेरुक भगवान् ी मूर्ति है, जो हमसे अभिन्न है। (१) श्री पद्म और (२) इन्द्रिय आदि सूक्ष्म ग्राह्य तत्त्व तथा ृथ्वी प्रभृति स्थूल ग्राह्य तत्त्व को दहन करनेवाला (३) मदन ये ही तीन रत्न है। इनको यथा ौरव ध्यान करता हुआ योगीश्वर परमसिद्धि को प्राप्त करता है।[3] कपालवनिता रूप स्त्री

---

१ कर्दये चन्दने भिन्नं पुत्रो शत्रो तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि! तथा वै कांचने तृणे।
भेदो यस्य लेशोऽपि स कौलः परिकीर्तितः॥

२ दे० नाथ सम्प्रदाय पृ० ४।

३ म० म० पं० हरप्रसाद शास्त्री का पाठ इस प्रकार है——
प्राणी वज्रधरः कपालवनितातुल्योजगत् स्त्रीजनः।
सोऽहं हेररुक मूर्त्तिरेष भगवान् योनः प्रभिन्नांऽपिच॥

जन्म साध्य होने के कारण यह साधना 'कापालिक' कही जाती है और इसी के साधक 'कापालिक' कहे जाते हैं। बज्रयानी लोग बौद्धधर्म के प्रसिद्ध तीन तंत्र (बुद्ध, धर्म और संघ) के स्थान में बज्र, पद्म और मदन को तीन रत्न मानते हैं। कापालिक साधना मे स्त्री की सहायता आवश्यक थी। आधुनिक नाथ मार्ग मे 'बज्रोली'[1] नामक जो मुद्रा पाई जाती है, उसमें ही स्त्री का होना

श्री पद्मसदनं च णेकुदहनं कुर्वन, यथागौरवात्।
सतत् सर्वमतीन्दुर्यंक मनसा योगीश्वर सिद्धयति॥

१ 'बज्रोली', 'अमरोली', और 'सहजोली' मुद्राओं का विवरण 'हठयोग प्रदीपिका' उपदेश ३ मे निम्नलिखित प्रकार से है--

बज्रोली

मेहनेन शनैः सम्यगूर्ध्वाकुंचनमभ्यसेत्।
पुरुषोम्यथवा नारी बज्रोलीसिद्धिमाप्नुयात्॥
चलतः शस्तनालेन फूत्कारं बज्रकंदरे।
शनैः शनैः प्रकुर्वीता वयुसंचारकारणात्॥
नारी भगे पतद्विन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत्।
चलितं च निजं बिंदुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत्॥
एवं संरसयेद् बिन्दु मृत्युंजयति योगवित्॥ --ह० प्र० ३.८५-८८।

सहजोली

सहजोलिश्चामरोलिर्वज्रोल्याभेद एकतः।
जरा सुभस्मनिक्षिप्य दग्धगोमयसंभवम्॥
बज्रोली मैथुनादूर्ध्वं स्त्रीपुंसो स्वांगलेपनम्।
आसीनयोः सुखेनैव मुक्त व्यापारयोः क्षणाद्॥
सहजोलिरियं प्रोक्ता श्रद्धेया योगिभि सदा।
अयं शुभकरो योगो भोगयुक्तोऽपि मुक्तिदः॥ --ह० प्र० ३.९२-९४

अमरोली

पित्तोल्वणत्वात्प्रथमांबुधारां विहाय निःसारतयांत्यधारा।
निष्कल शीतलमध्यधाराकापालिके खण्डमतेऽमरोली॥
अमरी यः पिबेन्नित्यं नस्यं कुर्वन्दिन दिने।
बज्रोलीमभ्यसेत्सम्यगभरोलेति कथ्यते॥
अभ्यासानिःसृतां चांद्रीं विभूत्या सहमिश्रयेत्।
धारयेदुत्तमांगेषु दिक दृष्टिः प्रजापते॥ --ह० प्र० ३. ९६-९८

परम आवश्यक माना गया है। मालती माधव का कापालिक अघोरघंट अपनी शिष्या कपाल-कुण्डला के साथ योग-साधन करता था। सब मिलाकर ऐसा लगता है कि क्या शैव और क्या बौद्ध दोनो कापालिक साधनाओ मे स्त्री की सहायता आवश्यक थी।[1]

'मालती माधव' से इतना स्पष्ट है कि (१) भवभूति का जाना हुआ कापालिक मत परवर्ती नाथ पंथियो के समान नाड़ियो और चक्रो मे विश्वास करता था, (२) शिव और जीव की अभिन्नता में आस्था रखता था और (३) योग द्वारा चित्त के चाचल्य को रोकने से ही कैवल्य रूप में अवस्थित शिव रूप आत्मा का साक्षात्कार होता है, यह मानता था और (४) शक्ति युक्त शिव की प्रभविष्णुता मे विश्वास रखता था। मालती माधव मे आये हुए 'पचामृत' का असली अर्थ है—शुक्र, शोणित, मेद, मज्जा और मूत्र। इनको आकर्षण करके ऊपर उठाने की प्रक्रिया से शरीर को बज्रवत् बनाया जा सकता है, अणिमादिक सिद्धिया पाई जा सकती हैं। वज्रयानी साधको मे तथा कौलमार्गी तात्रिको मे भी यह विधि है। नाथमार्ग मे जो वज्रबोली साधना है, उसे इस साधना का भग्नावशेष समझना चाहिए। ऐसा जान पड़ता है कि अन्यान्य तात्रिको की भाति कापालिक लोग भी विश्वास करते थे कि परम शिव ज्ञेय है, उपास्य है, उनकी शक्ति और तद्युक्त ऊपर या सगुण शिव। इसी बात को लक्ष्य करके 'देवी भागवत' मे कहा गया है कि कुण्डलिनी अर्थात् शक्ति से रहित शिव भी शव के समान (अर्थात् निष्क्रिय है)—'शिवोऽपिशवतां याति कुण्डलिनीविवर्जित.' और इसी भाव को ध्यान मे रखकर शंकराचार्य ने 'सौन्दर्य लहरी' मे कहा है कि शिव यदि शक्ति से युक्त हो तभी कुछ करने मे समर्थ है, नही तो वे हिल ही नही सकते।[2] तात्रिक लोगो का मत है कि परम शिव के न रूप है, न गुण और इसीलिए उनका स्वरूप-लक्षण नही बतलाया जा सकता। जगत् के जितने भी पदार्थ है, वे उससे भिन्न है और केवल 'नेति-नेति' कहा जा सकता है। निर्गुण शिव (पर शिव) केवल जाने जा सकत है, उपासना के विषय नहीं

अमरोली आदि मुद्राएं समाधि के सिद्ध होने पर ही सिद्ध होती है। जब अन्तःकरण रूप चित्त ध्यान करने योग्य वस्तु के आकारवृत्ति-प्रवाह को प्राप्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्माकार हो जाता है और प्राणवायु सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाती है अर्थात् इस प्रकार जब चित्त सम हो जाता है तभी अमरोली, बज्रोली, सहजोली मुद्राएं भली प्रकार हो जाती है। जिसने प्राण और चित्त को नहीं जीता, उसको सिद्ध नहीं होती। इसी पर हठयोग प्रदीपिका उ० ४ श्लो० १४ यों है—

चित्तेसमत्वमापन्ने वायो ब्रजति मध्यमे।
तदामरोली बज्रोली सहजोली प्रजापते॥

१ क्षीर चैकं द्वितीयं तु नारी च वशवर्तिनी —ह० प्र० ३, ८४

२ शिवः शक्तया युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितं।
न च देवं देवी न खलु कुशस्त्रः स्पन्दितुमपि॥

है। शिव केवल ज्ञेय है, उपास्य तो शक्ति है। इस उक्ति की उपासना के बहाने भवभूति ने शक्ति के क्रीडन और ताण्डव का बडा शक्तिशाली वर्णन किया है। शक्तियो से वेष्ठित 'शक्ति-नाथ' की महिमा वर्णन करने के कारण यह अनुमान असंगत नही जान पडता कि कापालिक लोग भी परमशिव को निष्क्रिय निरजन होने के कारण केवल ज्ञेय मानते थे।' 'मालती माधव'की टीका मे और 'कर्पूर मजरी' मे सोमसिद्धान्तियो की चर्चा आती है। ये 'उमयासहितो रुद्र.' को 'सोम' कहते और इसी प्रकार की हर-पार्वती के मिथुन रूप की उपासना करते थे। बज्रयानी और शैव-दोनो प्रकार की कापालिक साधना मे भोग मूलक योग-साधना की महिमा स्वीकार की गई है। यहा सामरस्य स्त्री-पुरुप के स्थूल शरीर के मिलने से उत्पन्न माना गया है। इस प्रकार सहज मत का सामरस्य इन साधनाओ को स्थूलशरीर-मिलन के रूप मे प्रकट हुआ है। परन्तु यह समझना भूल है कि स्थूल मिलन ही इस साधना का यथार्थ रूप है। स्थूल मिलन पच पवित्र के आकर्षण और ऊर्ध्वचालन का साधन है, जिससे शरीर बज्र के समान बन जाता है और मन अचचल हो जाता है।"

वज्रयान में और कापालिक मत में सहजानंद या महासुख

महायान बौद्धो की परवर्ती शाखा वाले यान मे सबसे बडे सुख को 'सहजानन्द' कहा गया है। इसे ही 'महासुख' भी कहा गया है। एक ऐसा समय गया है जब सहजयानी और बज्रयानी साधकशून्य को निषेधात्मक न मानकर विधात्मक और धनात्मक रूप मे समझने लगे थे। इसी भाव के बताने के लिए वे 'सुखराज' या 'महासुख' शब्द का व्यवहार करते थे। ये साधक चार प्रकार के आनन्द मानते थे—प्रथमानन्द, परमानन्द, विरमानन्द और सहजानन्द। सबसे श्रेष्ठ आनन्द सहजानन्द है यही सुखराज है, यही महासुख है। इसे किसी शब्द से नही समझाया जा सकता। यह अनुभवैकगम्य है। इसमे इन्द्रियबोध लुप्त हो जाता है, आत्मभाव या अस्मिता विलुप्त हो जाती है, 'केवल' रूप मे अवस्थिति होती है।[१]

---

१ दे० नाथ सम्प्रदाय पृ० ८६।

२ सरह पाद ने इसी भाव को बताने के लिए कहा है--

इन्द्रिअजत्थ विलअ गउ णडिउ अप्प सहावा।
सो हले सहजन ततु फुड़ पुच्छहि गुरु पावा॥

सर्वज्ञ भगवान् बुद्ध भी इस सुखराज या महासुख की व्याख्या करते समय मौन रह गये, क्योंकि वह वाणी से परे था--

जयति सुखराज एव कारणरहितः सदोदितो नगताम्।
यस्य च निगदनसमये वचनदरिद्रो बभूव सर्वज्ञः॥
--नउपाद की सेकोदेश की टीका में सरहपाद का वचन

अर्थात् जय हो इस कारणरहित सुखराज की जो जगत् के नाशवान चंचल पदार्थों में एक मात्र स्थिर वस्तु है और सर्वज्ञ भगवान् बुद्ध को भी इसकी व्याख्या करते समय वचन-दरिद्र हो जाना पड़ा था।

सो यह 'सुखराज' ही सार है, यही शून्यावस्था है क्योकि इसका न आदि है न अन्त है, न मध्य है, न इंसमें अपनेका ज्ञान रहता है, न पराये का। न यह जन्म है न मोक्ष, न भव न निर्माण।[1]

बौद्ध मत में सहज साधना का प्रवेश

समस्त बौद्ध, बज्रयानी और सहजयानी साधक मानते है कि दो प्रकार के सत्य होते हैं—(१) लोक संवृत्ति सत्य और लौकिक सत्य और (२) पारमार्थिक सत्य अर्थात् वास्तविक सत्य। लोक में बोधि का अर्थ है स्थूल शारीरिक शुक्र जब कि परमार्थिक सत्य मे वह ज्ञात रूप चित्त है। इसी प्रकार पद्म और बज्र के सांवृत्तिक अर्थ स्त्री और पुरुष के जननेन्द्रिय है परन्तु पारमार्थिक अथवा वास्तविक अर्थ आध्यात्मिक है। जो साधक साधना मार्ग मे अग्रसर होने की इच्छा रखता है उसके लिए चित्त को वश में करना परम आवश्यक है। इस चित्त मे यदि कामनाओं के उपभोग न करने के कारण क्षोभ हुआ तो साधना मिट्टी में मिल जायगी। यही सोचकर अनंग वज्र ने कहा था कि इस प्रकार प्रवृत्त होना चाहिए जिससे चित्त क्षुभित न हो, यदि चित्त रत्न संक्षुब्ध हो गया तो कभी सिद्धि नही मिल सकती[2]। फिर यह विक्षोभ दमन कैसे किया जाय? वासनाओं के दबाने से वे मरती नही, केवल और भी अन्तस्तल मे जाकर छिप जाती है। अवसर पाते ही वे उद्‌बुद्ध हो जाती है और साधक को दबोच लेती है। इसीलिए उनको दबाना ठीक नही। उचित पंथ यह है कि समस्त कामनाओं का उपभोग किया जाय तभी शीघ्र चित का संक्षोभ दूर होगा और सच्ची सिद्धि प्राप्त होगी।[3] इस प्रकार कामोपभोग का साधना-क्षेत्र में प्रवेश हुआ। इस साधना की पृष्ठभूमि शून्यवाद था। शून्यता और समस्त अभावों और अभावो से मुक्त नि.स्वभावता ही साधक का चरम लक्ष्य है। कामनाओ के उपभोग के लिए स्त्री की आवश्यकता है, इसलिए बज्रयान में पाच बुद्धो और अनेक बोधिसत्वो की शक्ति की कल्पना की गई है। सिद्धि प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता है इसलिए जो बुद्ध सिद्ध हो गये है उनके भी गुरु है। यह गुरु शून्यता ही है। जैसे गुड़ का धर्म माधुर्य है और अग्नि का धर्म है उष्णता, उसी प्रकार समस्त

---

१ इसी अपूर्व महासुखराज को सरहपाद ने इस प्रकार कहा है—

आइ ण अन्त ण मन्झ णउ णउ भव णउ णिव्वाण।
एहु सो परम महासुह, गउ पर णउ अप्पाण॥

—ज० सि० ले० पृ० १३

दे० नाथ सम्प्रदाय पृ० ८९

२ तथा तथा प्रवर्तेत यथा न क्षुभ्यते मनः।
संक्षुब्धे चित्तरत्ने तु सिद्धिर्नैव कदाचन॥

३ दुष्करैर्नियमैस्त्रीव्रैः सेव्यमानो न सिद्धयति।
सर्व कामोपभोगैस्तु सेव्यंश्यांशु सिद्धति॥

धर्मों का धर्म, समस्त स्वभावों का स्वभाव शून्यता है।[1] शून्यता का मूर्त रूप ही वज्रसत्व है। वज्रसत्व, वज्रधर, वज्रपाणि, तथागत इसी शून्य के नाम है। यही वज्रधर समस्त बुद्धों के गुरु है।[2] इस मानव शरीर का प्रधान आधार उसकी रीढ़ या मेरूदण्ड है। सो, इस मेरुदण्ड के भीतर तीन नाडियो से होता हुआ प्राण वायु सचारित होता है। बाईं नासिका से 'ललना' और दाहिनी नासिका से 'रसना' नामक प्राणवायु की वहन करनेवाली नाडियाँ चलती है, जिनमें पहली प्रज्ञा-चन्द्र है और दूसरी, उपाय सूर्य। प्रज्ञा और उपाय नाथ पंथियों की इच्छा और क्रियाशक्ति की समशील है। मध्यवर्ती नाड़ी 'अवधूती' है जो नाथ पंथियों की सुषुम्ना की समशीला है। इस नाडी से जब प्राणवायु उर्ध्वगति को प्राप्त होता है तब ग्राह्य और ग्राहक का ज्ञान नही रहता। इसीलिए अवधूती नाड़ी को ग्राह्य-ग्राहक वर्जित कहा जाता है।[3] मेरुगिरि के शिखर पर महासुख का आवास है जहा एक चौसठ दलो का कमल है। यह कमल चार मृणालों पर स्थित है, प्रत्येक मृणाल के चार क्रम है और प्रत्येक क्रम के चार-चार दल है। इस प्रकार यह (४ × ४ × ४) चौसठ दलो का कमल है, जहा वज्रधर योगी इस पद्म का आनन्द उसी प्रकार लेता है जिस प्रकार भ्रमर प्रफुल्ल कुसुम का।[4] इन चार मृणालो के दलो को शून्य, अतिशून्य, महाशून्य और सर्वशून्य का आवास है, उसीका नाम 'उष्णीश कमल' है, यही डाकिनी जालात्मक जालंधर गिरि नामक महा मेरुगिरि का शिखर है, यही महासुख का आवास है।[5] इसी गिरि शिखर पर

---

१ गुडे मधुरता चाग्नेरुष्णत्वंप्रकृतिर्यथा।
शून्यता सर्वधर्माणां तथा प्रकृतिरिष्यते॥

२ इस विषय में विशेष विवरण के लिए देखिये 'विश्वभारती पत्रिका', खंड ४, अंक १ में प्रकाशित भदन्त शान्ति भिक्षु का लेख।

३ हे व्रज में सरोरुह पाद ने कहा है—

ललना प्रज्ञा स्वभावेन रसनोपायसंस्थिता।
अवधूती मध्यदेशेतु ग्राह्य ग्राहक वर्जिता॥

४ ललना रसना रवि शशि तुड़िया वेन विपासे।
चउपमर चउक्रम चउमृणालथिउ महासुहवासे॥५॥
एवं काल वीअलउकुसुमिम अरविन्दए।
महुअ रुए सुर अवीर जिंघयम अरन्दए॥

—बौद्धगान ओ दोहा पृ० १२४

५ शून्यातिशून्यं महाशून्य सर्वशून्यमितिचतुः शून्य रूपेण पत्र चतुष्टयं चतुरादि स्वरूपेण चतुर्मृणालसंस्थिता कुत्रेत्याह। महासुखं वसति अस्मिन्निति महासुखवासे उष्णीष कमलं तत्र सर्व शून्यालयो डाकिनी जालात्मकं जालंधराभिधानं मेरुगिरि शिखरनिसर्वेः।

—पृ० १२४

पहुंचने पर योगी स्वयं वज्रधर कहा जाता है, यही वह सहजानन्द रूप महासुख को अनुभव करता है।[1] पहले जो चार प्रकार के आनन्द बताये गये है उनमे प्रथम आनन्द कायात्मक है अर्थात् शारीरिक आनन्द है, दूसरे और तीसरे वाचात्मक और मानसात्मक है। अंतिम आनन्द ज्ञानात्मक है और इसी लिए सहजानन्द कहा जाता है। इसी आनन्द से महासुख की अनुभूति होती है। संक्षेप में तात्पर्य यह है कि सहज मत के विभिन्न साधको ने (१) शरीर को सब प्रकार के साधना का साधन माना है। (२) शिव और शक्ति के मिलन या सामरस्य को कभी (क) प्रज्ञा-उपाय के योग से, (ख) कभी स्थूल शरीर मिलन से (ग) कभी कुण्डलिनी रूपी शक्ति के साथ शून्य चक्र या सहस्रसार स्थित शिव के मिलन के रूप में (घ) कभी पंच पवित्रो के आकर्षण योग से और (ङ) कभी मंत्र-जप आदि से साध्य समझा है।

(३) सबने ऊपरी दिखावे, पूजापाठ, ध्यान-धारणा, और विधि-विधान का विरोध किया है; पर अन्ततक चलकर सब साधनाओ ने बहुत जटिल रूप धारण किया है।

(४) यद्यपि सभी साधनाओं ने शरीर मे ही परम प्राप्तव्य को प्राप्त करने का प्रयास किया है और वैराग्य तथा कृच्छ्राचार की आलोचना की है पर प्रेममूलक साधना उन्हे नही प्राप्त हो सकी। वे सिद्धि, मुक्ति और निर्वाण के चक्कर मे ही पडे रहे। प्रेम भक्ति से दूर ही बने रहे।

सातवी से ११वी-१२वी शताब्दी तक के साहित्य में यद्यपि सहज साधना नाना अर्थो में व्यवहृत हुई है, परन्तु उसका मूल अर्थ बराबर याद रखा गया है। वह मूल अर्थ यह है—

(१) वाह्याडबर और कृच्छ्राचार से परम सत्य का साक्षात्कार नही होता।

(२) परम प्राप्तव्य मनुष्य के शरीर में ही है।

(३) परम प्राप्तव्य का स्वरूप अनिर्वचनीय है, केवल गुरु ही उसे बता सकते है।

(४) स्त्री-त्याग, वैराग्य और कृच्छ्रसाधना मुक्ति के लिए आवश्यक नही है।

नाना साधनाओ के संसर्ग से इस मूल अर्थ के कई प्रकार के परिवर्धन हुए है। विशेष रूप से शरीर को ही सिद्ध सोपान मानने के सिद्धान्त ने योगमूलक और भोगपरक साधना पद्धतियों को बल दिया है। ११वी-१२वी शताब्दी के अन्त मे इन वाह्याचार और आडम्बर विरोधी साधनाओं ने भी घोर तंत्र-मंत्र-अभिचार और रहस्यात्मक जटिलरूपो मे आत्मप्रकाश किया। इसके विरुद्ध भी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। प्रतिक्रिया का प्रथम तीव्र रूप नाथ साधको में दिखाई देता है। उन्होंने बौद्धों, सौममार्गियो और शाक्त साधको पर कसके प्रहार किया। पुरानी साधनाओं से जो बाते किसी प्रकार सरकती हुई उनके मार्ग मे आ गई थी, उनका रूपकात्मक अर्थ किया और दृढ़ता के साथ ब्रह्मचर्य, वाक्संयम और शुद्ध चित्त का समर्थन किया। गोरखनाथ ने कहा है—

---

१ एहु सो गिरिवर कहिअ मनि एहु सो महासुह पाव।
एत्थुरे निरुगा सहज रवगुन हइ महासुह जाव ॥२६॥

इंद्री का लड़बड़ा जिह्वा का फूहड़ा।
गोरख कहे ये परत चूहड़ा।।
काछ का जती मुष का सती।
सो सत्पुरुष उत्तमो कथी।।

गोरक्ष पूर्व सहज मार्गियों मे दोनों ही बातें बढ़ गई थी। परन्तु गोरखनाथ का हठ योग सहज साधना का सहायक नही था। वह सिद्धि प्राप्त करने का मार्ग मात्र रह गया था। उसमें भी परम प्राप्तव्य की प्राप्ति के प्रयास से विकट साधना उत्तर भारत मे व्याप्त हो गई थी। ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो जायगा कि सहज मार्ग की विभिन्न साधना-धाराओ मे एक बहुत बड़ी कमी थी। वे वाह्याचार मूलक धर्म साधना का विरोध अवश्य करते और शरीर मे ही परम प्राप्तव्य को प्राप्त करने का प्रयास करते थे; पर इन समूची साधनाओं मे प्रेम को कोई स्थान नही है। प्रेम के विना भक्ति हो नही सकती। और मध्ययुग का यह समूचा कायायोग मूलक सहज मार्ग भक्ति से शून्य है। चौदहवी शताब्दी मे दक्षिण से भक्ति की प्रेम प्रधान धर्मसाधना उत्तर में पूर्ण रूप मे परिचित हो गई थी। इसी समय ईरान के सूफी साधको की मधुर भाव की साधना भी धीरे-धीरे लोकप्रिय होने लगी। नाथ सिद्धों ने सहज साधना को श्री सुन्दरी साधना के दलदल से निकाल लिया था। पारन्तु उसमें वास्तविक प्रेम मूलक सहज साधना का स्वर दक्षिण के आचार्यों और पश्चिम के सूफी साधको के समर्थ के कारण प्रधान हो गया। कबीर ने सहज साधना की जो नई व्याख्या की, उसमे सहज जीवन पर जोर था—

सहज सहज सब कोइ कहै सहज न चीन्है कोइ।
जिन सहजै विषया तजी सहज कही जै सोइ।।
सहज सहज सब कोइ कहै सहज न जानै कोइ।
जिन सहजै हरिजू मिलै सहज कहीजै सोई।

उन्होने नाथ पंथियों के घटाटोप प्रधान समाधि के स्थान पर सहज समाधि ग्रहण करने की सलाह दी। सहज समाधि—जो अन्तरतर के परम प्रेममय 'आराध्य' को पहचान लेने के बाद अनायास सिद्ध हो गई है, जो अहेतु आत्मसमर्पण का फल है!

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन से उपजी दिन दिन अधिक चली।
जहं जहं डोलौ सोइ परिकरमा जो कुछ करौ से सेवा।
जब सोवौ तब करौ दण्डवत पूजो और न देवा।
कहूँ सो नाम सुनू सो सुमिरन खाव पियों सो पूजा।
गिरह उजार एक सम लेखौ भाव न राखौ दूजा।
आंख न मूदो, कान न रूंधो तनिक कष्ट नहि धारो।
खुले नयन पहिचानौ हंसि हंसि सुन्दर रूप निहारौ।।

सबद निरन्तर से मन लागा मलिन वासना त्यागी।
ऊठत बैठत कबहूं न छूटै ऐसी ताड़ी लागी।
कह कबीर यह उनमनि रहनी सो परगट करि भाई।
दु ख सुख से कोउ परे परम पद ओहि पद रहा समाई।

पूर्ववर्ती सहज साधनाओं मे अंतरस्थित परम प्राप्तव्य को भाव-निरपेक्ष रूप मे ग्रहण करने का प्रयास था, इसीलिए उसमे शुष्कता आ गई और बहक जाने की सम्भावना बनी रही। इस साधना में भावगृहीत मधुर रूप को पाने का प्रयास था इसलिए इसमें स्थिरता और सरसता दोनों बनी रही। इस परम प्रेममय अन्तरस्थित देवता को पाने के बाद मोह, ममता और आसक्ति अनायास चली जाती है, इसीलिए यह सच्ची सहज साधना है। कबीर ने कहा है—

सहजहि सहजहि सब गए सुत वित कामिनी काम।
एक्यैक ह्वै रमि रह्या दास कबीरा राम।।

ऐसा भक्त अपनेको पतिव्रता सती से तुलनीय मानने लगता है—सती जो सिन्दूर की महिमा और गौरव ही जानती है। सिन्दूर को काजल से नही बदला जा सकता, राम को भी काम से नही बदला जा सकता—

कबीर रेख संदूर की काजल दिया न जाइ।
नैनू रमिया रमि रह्या दूजा नहीं समाया।।

यही सच्ची सहज साधना है। इस मार्ग का साधक परिपूर्ण प्रेम का आनन्द पाता है। दादू ने कहा है—

दादू सुमिरण सहज का दीन्हा आप अनन्त।
अरस परस उस एक सों खेलै सदा वसन्त।।

सो, यह प्रेम भक्ति मूलक मार्ग ही सहज मार्ग है। यही मधुर भाव की साधना है। इसमे अखण्डानन्द सन्दोह परम प्रिय का प्रेम सहज ही प्राप्य है, वह अन्तर की स्वाभाविक व्याकुलता के मार्ग से अनायास ही, सहज भाव से आ जाता है। भक्तवर दादू दयाल ने बड़ी मीठी भाषा में इस तत्त्व को समझाया है—

पीव की प्रीति तो पाइये जो सिर होवे भाग।
यो तो अनत न जाइसी रहसी चरननि लागि।
अनते मन निवारिया रे मोहि एकै सेती काज,
अनत गए दुख उपजै मोहि एकैहि सेती राज रे।।
साइं सो सहजो रमौ रे और नहि आन देव।
तहां मन विलंबिया जहां अलख अभेव रे।।
चरन कंवल चित्त लाइयॉ रे भौरे ही ले भाव।
दादू जन अचेत है सहजै ही लू आव रे।

इस प्रकार सहजमत की सर्वाधिक हृदयग्राही और सरस परिणति संत साहित्य की सहज भक्ति साधना में हुई है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने अपने 'मध्यकालीन धर्म साधना'[1] मे एक ऐसे सम्प्रदाय की चर्चा की है, जिनका साहित्य अब मिलता नही; परन्तु जो कभी बहुत प्रख्यात रहा है, वह है नीलपटों या नीलाम्बरो का सम्प्रदाय। यो लोग अत्यन्त निचली श्रेणी के भोग परक धर्म का प्रचार करते थे। खाओ, पियो, और मौज करो—यही इनका आदर्श था। पुरुष और स्त्री के जोड़े नग्न होकर एक ही नीले वस्त्र मे लिपटे रहते थे। द्विवेदी जी ने अपने उसी प्रबंध मे एक स्थान पर इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए लिखा है—राजा भोज की कन्या ने ऐसे ही एक जोड़े से धर्म विषयक प्रश्न किया जिस पर 'दर्शनी' ने उपदेश दिया—

पिव खाव च वामलोचने यदतीतं वरगामि तन्नते।
नहि भीरु गतं निवर्तते सुमदय मात्रमिद कलेवरम्॥

खाओ, पियो, मौज करो। जो बीत गया सो कभी लौट नही सकता। अगर तुमने तप किया और कष्ट उठाया तो वह तुम्हारे लिए बिल्कुल बेकार है, क्योकि वह जो गया सो गया। असल बात यह है कि यह शरीर सिर्फ जड तत्त्वों का संघातमात्र है, इसके आगे कुछ भी नही है।

राजा भोज को जब यह बात मालूम हुई तब उन्होंने इस संप्रदाय का उच्छेद कर दिया। खोज-खोज कर नीलपटो के सभी जोड़े समाप्त कर दिये गये। इसमें चार्वाकियो और सहजियों का अपूर्व सम्मिश्रण दीखता है।

(घ) वैष्णव सहजिया

बौद्ध सहजिया साधना के क्रम-विकास मे हम यह देख आये है कि किस प्रकार प्रज्ञा और उपाय अथवा शून्यता और करुणा का सम्मिलन ही महासुख की अवस्था है। यह प्रज्ञा और उपाय अथवा शून्यता और करुणा तांत्रिको का शिवशक्ति ही नामान्तर भेद से है तथा उष्णीश कमल में 'अवधूतिक का' मिलन तंत्र के अनुसार सुषुम्ना का सहस्रार मे प्रविष्ट होकर शिवशक्ति सामरस्य है। यह प्रज्ञा और उपाय, शिव और शक्ति, राधा और कृष्ण एक ही तत्त्व है, प्रस्थान भेद से, साधना शैली के भेद से तथा अधिकार भेद से एक ही मूलतत्त्व को भिन्न-भिन्न नाम से अभिहित किया गया है। वैष्णव सहजियों ने प्रेम में परकीया भाव ही लक्ष्य माना। मानवप्रेम के द्वारा ही दिव्यप्रेम की परिकल्पना हुई। प्रेम केवल प्रेम के लिए ही जहां लोक और वेद की श्रृंखला को तोड़कर अपने प्रेमास्पद का वरण करता है, वही वह आदर्श है। विवाहिता पत्नी के प्रति चिर सहवास, प्रगाढ़ परिचय के कारण प्रेम का रस-रहस्य बहुत कुछ नष्टप्राय हो जाता है। उसमे

प्रेम की परकीया रति

---

१ सहज साधना का यह अंश 'नाथ संप्रदाय' के आधार पर लिखा गया है।

उतना तीव्र आकर्षण, रहस्य, उत्कंठा, आदि का भाव नही रहता, या जितना परकी प्रेम में होता है।· स्वकीय मे प्रेम कर्त्तव्य प्रधान, समाज बन्धन का आश्रित, रंग में फीका और रस में उदास हो जाता है। संसार मे देखा जाता है कि परकीया मे ही प्रेम अपनी तीव्र उत्कंठा, रहस्यमयता और प्रखर आकर्षण के कारण अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, जो लोकलाज और कुलकानि को तिलांजलि दे देता है। वैष्णव सहजियो ने प्रेम के इस परकीया भाव की तीव्रता को अपनी प्रेम साधना का आदर्श माना।[1] किम्बदन्ती है कि स्वयं श्री चैतन्य देव ने सार्वभौम की कन्या 'साठी' के संग सहज साधना की।[2] इतना ही नही, प्राय· सभी वैष्णव भक्त कवियो ने किसी-न-किसी कुमारिका के संग मे सहज साधना की। जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास को तो छोड़ ही दीजिये, रूप गोस्वामी ने मीरा के साथ, रघुनाथ भट्ट ने करमा बाई के साथ, सनातन गोस्वामी ने लक्ष्मी हीरा के साथ, लोकनाथ गोस्वामी ने चण्डालिनी कन्या के संग, कृष्णदास गोस्वामी ने ब्रजदेवी पिंगला के साथ, जीव गोस्वामी ने श्यामा नाइन के साथ, रघुनाथ गोस्वामी ने राधाकुण्ड पर मीराबाई के साथ, गोपाल भट्ट गोस्वामी ने गौरीप्रिया के साथ और राय रामानन्द ने देवकन्या के साथ सहज साधना सम्पन्न की।

'आनन्द भैरव' में सहज साधना का उल्लेख

'आनन्द भैरव' में संकेतत· यह उल्लेख है कि स्वयं शिव विभिन्न शक्तियों के साथ कुचनीस देश मे सहज साधना की और बौद्धसहजिया कहते है कि स्वयं भगवान् बुद्ध ने अपनी प्रिया गोपा के साथ सहज साधना की। परकीया भाव मे यह सहज साधना क्या है, इस पर हम आगे विचार करेगे।

पालो के पतन के पश्चात् सेनों के शासन-काल मे बौद्धधर्म का पतन और वैष्णव का उत्थान हो रहा था। राजा लक्ष्मण सेन के राजकवि थे जयदेव। इनका आविर्भाव बारहवी शताब्दी में उत्तर काल मे हुआ। मिथिला कोकिल विद्यापति, जो चण्डीदास के समकालीन थे, राधाकृष्ण के प्रेम पूरक गीतो के कारण अत्यधिक लोकप्रिय हुए। किम्बदन्ती है कि उन दिनो वैष्णवो की बड़ी-बड़ी सभाओं मे स्वकीया भाव और परकीया भाव को लेकर प्रचण्ड शास्त्रार्थ हुआ करते थे और अन्ततः स्वकीया पक्ष की ही हरबार हार हो जाती थी। वे अपनी हार को केवल मौखिक रूप मे स्वीकार ही नही करते थे, अपितु लिखकर पर पक्ष को दे भी देते थे।

यहां परकीया रति मे यह सहज उपासना क्या है, इस पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। यह भूल न जाना चाहिए कि यह साधना का मार्ग है भोग का नही—यहां भोग को भी उन्नीत पर साधना का दिव्य मंगलमय रूप देना होता है। सहज साधना मे मिथुन सुख को जीतकर उसे अपना वशवर्ती 'दास' बना लेना होता है और फिर उसे दिव्य बनाकर परात्पर प्रेमानन्द विलास

---

१ बंग साहित्य परिचय, खण्ड २, पृ० १६५०।

२ चै० च० मध्यलीला, अ० १५

अकिंचन दास—'विवर्त विलास'

का साधन बना लिया जाता है। कृष्ण ही है रस और राधा है रति, कृष्ण है मदन, राधा है मादन। शिव शक्ति की तरह, प्रज्ञा उपाय की तरह राधा और कृष्ण का लीला विलास एवं आनन्दोल्लास ही साधक का चरम लक्ष्य है। इसे चरितार्थ करने के लिए उसे यह साधना द्वारा अनुभव करना होता है कि यावत् पुरुष और स्त्री कृष्ण और राधा के व्यक्त रूप है और इनका प्रेम और सम्मिलन ही सहजियों की चरम स्थिति है। प्रेम की यह दिव्यधारा अखण्ड भाव से तैलधारावत् विश्व के कण-कण में प्रवाहित हो रही है और इसे साधना के द्वारा उद्घाटित किया जाता है।

ब्रह्म, परमात्मा, भगवान्

अब प्रस्तुत विषय है कि दिव्य प्रेम की यह अजस्र धारा कैसे उद्घाटित होती है और मानव प्रेम का दिव्यीकरण (Divinisation) किस प्रकार होता है। परात्पर तत्त्व की हम तीन रूपों मे भावना कर सकते है—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्[1]। भगवान् रूप में कृष्ण की तीन शक्तिया है—स्वरूपा शक्ति, जीव शक्ति या तटस्था शक्ति, और माया शक्ति। भगवान् की स्वरूपा शक्ति में तीन तत्त्व निहित है—सत्, चित् और आनन्द। सत्, चित् और आनन्द का ही दूसरा नाम संधिनी शक्ति, संवित शक्ति, और ह्लादिनी शक्ति है। राधा ही यह ह्लादिनी शक्ति है।

भोक्ता भोग्या

भगवान् मे ही भोक्ता और भोग्या दोनों भाव सन्निहित है। भोग्या के बिना भोक्ता की स्थिति या आनन्दोल्लास संभव भी कैसे है? राधा चिर भोग्या और कृष्ण चिर भोक्ता है—मूल में एक, पर लीलाविलास के लिए दो। यह लीला भी तीन प्रकार की होती है—प्रातिभासिक, मायिक, व्यावहारिक। इसका यथास्थान हम विवरण प्रस्तुत करेगे। अभी यह ध्यान रहे कि लीला भोग नही है। विन्दु का जब ऊर्ध्व गमन होता है, तब वह लीला है और अधोगमन होता है, तब वह भोग है। लीला और भोग के बीच का यह असामान्य भेद भूल जाने से ही लीला के हृदयंगम मे कठिनाई उपस्थित होती है।

वन वृन्दावन, मन वृन्दावन, नित्य वृन्दावन

यह लीला वन वृन्दावन, मन वृन्दावन और नित्य वृन्दावन में होती रहती है। वन वृन्दावन मे होती है लीला की आन्तरिक लीला और नित्य वृन्दावन मे जिसे नित्य देश या गुप्त चन्द्रपुर कहते है राधा और कृष्ण की नित्य, दिव्य मनोहारिणी, प्रेम लीला और रास-विलास होता रहता है। यही 'सहज है'। प्रेम साधना से जब प्रेममय प्रभु के प्रेम का एक कण मिल जाता है, तभी साधक इस नित्य लीला में दिव्य भाव में और सिद्ध देह से प्रवेश पा सकता है। भाव देह और सिद्ध देह क्या है, इसकी चर्चा हम यथास्थान आगे करेंगे।

---

१ वदन्ति तत् तत्त्वविदः तत्त्वं यज् ज्ञानयद्वयम्। ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति उच्यते।
—भागवत—१.२.११.

वैष्णव सहजियो ने नित्य वृन्दावन की नित्य लीला को माना, पर उनकी मान्यता यह है कि नित्य वृन्दावन की राधा कृष्ण की नित्य लीला केवल वन-वृन्दावन की प्रकट लीला के रूप मे ही अवतरित नही होती अपितु प्रत्येक पुरुष मे कृष्ण और प्रत्येक स्त्री मे राधा का अवतार होता है और यह स्त्री-पुरुष के मिलन के रूप मे राधा और कृष्ण की लीला चलती रहती है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर जो वास्तविक सत्व है वह कृष्ण ही है और यही मनुष्य का वास्तविक 'स्वरूप' है और उसका बहिर्मुखी जीवन तथा उसके शरीरिक स्थूल कार्य-व्यापार उसका 'रूप' है। और ठीक इसी प्रकार प्रत्येक स्त्री आन्तरिक रूपमे वस्तुत राधा ही है जो उसका वास्तविक स्वरूप है और उसा वाह्यत जीवन व्यापार उसका रूप है। परन्तु इस रूप के अन्दर ही वह स्वरूप रहता है, अतएव प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री के रूपमे और कोई नही केवल कृष्ण और राधा का ही लीला-विलास चल रहा है।[1] राधा कृष्ण की यह रूप-लीला और स्वरूप-लीला ही क्रमश प्राकृत लीला और अप्राकृत लीला के रूप मे मानी गई है। इस प्रकार प्रत्येक पुरुष को कृष्ण और प्रत्येक स्त्री को राधा रूप मे देखने और अनुभव या भावना करने की यह प्रणाली सहजियो की नई नही है। हम देख आये है कि तन्त्रो ने प्रत्येक पुरुष को शिव और प्रत्येक स्त्री को शक्ति रूप मे तथा बौद्ध दर्शन ने प्रत्येक पुरुष को उपाय और प्रत्येक स्त्री को प्रज्ञा के रूप मे भावना करने का उपदेश किया है।

स्वरूप लीला और रूप लीला

ऊपर हम कह आये है कि कृष्ण ही है रस और राधा है रति, कृष्ण ही है काम और राधा है मादन। कृष्ण काम या कन्दर्प रूप मे जीव-जीव के प्राण को अपनी ओर आकृष्ट करते रहते है—'नाम समेत कृतसंकेत वादयत मृदु वेणुम्'। राधा है मादन जो भोक्ता को आनन्द विलास की प्रदात्री है। रस और रति, काम और मादन के बीच जो दिव्य प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है वही 'सहज' है।

'सहज'

पुरुष का कृष्ण रूप मे और स्त्री का राधा रूप मे अनुभव या भावना को आरोप की साधना कहते है। निरन्तर शुद्ध चिन्तन और शुद्ध भावना के द्वारा अपने अन्दर के सारे मल-आवरण आदि विकारो को नष्ट कर अपने अन्दर के पशु का बलि देकर साधक सर्वथा पवित्र हो जाय और पुरुष मे कृष्ण की और स्त्री मे राधा की भावना दृढ करे। इस प्रकार भावना दृढ होते-होते जब पुरुष को अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् अपने कृष्णत्व का और स्त्री को अपने राधात्व का अनुभव होने लगे, तब उनका प्रेम साधारण स्त्री-पुरुष का पार्थिव प्रेम न होकर राधा-कृष्ण का दिव्य प्रेम हो जाता है। प्रेम की यह दिव्य अनुभूति ही सहज की अनुभूति है।

आरोप साधना

---

१ दे० रति विलास पद्धति—ह० लि० क० वि०, सं० ५६४ पृ० १३ अ।
प्रो० शशिभूषण दास गुप्त के Obscure Religious Cults, से उद्धृत।

ऊपर हम कह आये है कि मनुष्य का वाह्य जीवन 'रूप' है और आन्तरिक या आध्यात्मिक जीवन जो शुद्ध 'कृष्णत्व' या 'राधात्व' की स्थिति है 'स्वरूप' है। रूप को इस स्वरूप की प्राप्ति होनी चाहिए तभी हमारे वास्तविक, आध्यात्मिक जीवन का शुभारभ है। स्मरण रखने की बात यह है कि रूप पर स्वरूप के आरोप का अर्थ रूप की सुप्ति नही है, प्रत्युत् रूप के एक-एक कण को स्वरूप के रसबोध से सराबोर करना पडता है। यह मानव शरीर तथा मानव-जीवन व्यर्थ या हेय नही है। सहजियो ने इसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना है। मानवीय सौन्दर्य की मादकता मे ही साधक को दिव्य सौन्दर्य की झलमल ज्योति का प्रतिबिब मिलता है। दिव्य सौन्दर्य तथा दिव्य प्रेम का अर्थ यह कदापि नही है कि मानवी सौन्दर्य और मानवी प्रेम का तिरस्कार किया जाय। मानवी प्रेम और मानवी सौन्दर्य की शृखला को स्वीकार करते हुए, उसके भौतिक आकर्षण और नशा को मानते हुए ही साधक मन का निग्रह सफलता पूर्वक कर सकता है और परम दिव्य आनन्द और दिव्य सौन्दर्य की ओर साधना द्वारा अग्रसर हो सकता है। अभिप्राय यह कि जैसे पारा या गधक शोधा जाता है, उसी प्रकार इस लौकिक मानवी प्रेम और मानवी सौन्दर्य को शोध कर दिव्य प्रेम और सौन्दर्य की समिद्धि होती है जो अपने-आपमे निरन्तर, अपरिमेय और अनिर्वचनीय है। यह दिव्य प्रेम मानवी प्रेम की परिणति है अथवा यो कहा जाय कि दिव्य प्रेम का जन्म मानवी प्रेम के गर्भ से होता है, ठीक जैसे कीचड से कमल का। जहाँ ठेठ वैष्णवो ने 'निजेन्द्रिय प्रीति इच्छा' को काम और 'कृष्णेन्द्रिय प्रीतिइच्छा' को प्रेम की सज्ञा दी है, वहाँ वैष्णव सहजियो ने इस भेद को मिटा दिया है। वे कहते है कि दिव्यीकरण के अनन्तर निजेन्द्रिय प्रीति इच्छा और कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा मे कोई अन्तर नही रहता--निजेन्द्रिय तर्पण और कृष्णेन्द्रिय तर्पण एक ही वस्तु है। स्पष्ट शब्दो मे, उनकी मान्यता है कि प्रेम का जन्म काम से होता है। काम के बिना प्रेम हो नही सकता, अस्तु, काम को निर्बीज करने की, उच्छिन्न करने की कतई आवश्यकता नही है। सहजियो की दृष्टि मे भगवान् के चरणो मे भक्त की प्रीति का नाम 'प्रेम' नही है। प्रेम है राधा और कृष्ण की प्रगाढ प्रीति, जो रूप मे स्वरूप के आरोप द्वारा प्रत्येक स्त्री और पुरुष मे उपलभ्य है। इसी मे पुरुष और स्त्री शरीर की चरितार्थता है। इसीलिए यह शरीर और यह जीवन हेय नही है।[1] मनुष्यत्व ही देवत्व की जननी है। प्रेम से ही मनुष्य देवता बन जाता है, इसीलिए मनुष्य

आरोप तत्त्व

---

१ चण्डीदास का एक गीत है--

शुन हे मानुष भाइ
सबेर उपरे मानुष सत्य
ताहार उपरे नय।

तथा च--

मानुष देवेर सार जार प्रेम जगते प्रचा
जगतेर श्रेष्ठं मानुष जार बलि
प्रेम प्रीति रस मानुष करे केलि॥ **--सहजिया गान २७**

ही सर्वश्रेष्ठ हुआ, क्योकि उसी मे परात्पर दिव्य प्रेम का अनन्तरस-सागर लहरे मारता है। इस प्रकार मनुष्य से परे देव अथवा भगवान् की सत्ता को सहजिया नही मानते। राधा और कृष्ण को भी देवी-देवता रूप मे ये नही पूजते। इनकी मान्यता यह है कि मानव शरीर मे ही राधा और कृष्ण की उपलब्धि हो सकती है। दिव्य दृष्टि से देखने पर रूप और स्वरूप मे ऐसी अभिन्न अविभेद्य एकता और सघनता है कि इन्हे पृथक किया नही जा सकता। ऐसी दृष्टि खुलने पर मानव और देव मे कोई भेद नही रह जाता। रूप मे स्वरूप उसी प्रकार परिव्याप्त है जैसे पुष्प मे सुगधि। स्वरूप की उपलब्धि रूप के द्वारा ही होती है, इसलिए पूज्य हुआ रूप अर्थात् मानव शरीर। मनुष्य सदा किसी प्रेम मे तडपता रहता है। यह जलन क्यो है और किसके लिए है, वह समझ नही पाता। यह जलन और यह तडप 'प्रेमा' के लिए है, हृदय की रानी के लिए, प्राणो की प्राण के लिए है। दिव्य प्रेम के द्वारा ही पुरुष और स्त्री दिव्यत्व को प्राप्त होते है, परन्तु मानवी प्रेम के द्वारा ही पुरुष-स्त्री मे पावन प्रेम का उदय होता है, जिसमे वे अपने कृष्णत्व और राधात्व की उपलब्धि करते है।

आरोप सहित प्रेम से ही साधक वृन्दावन मे प्रवेश पाता है, स्वरूप का रूप पर आरोप किए बिना मात्र रूप की उपासना सीधे नरक को ले जानेवाली है। सहज साधना का साधक सामान्य रस का मनुष्य नही होता, न वह राग मनुष्य होता है, वह तो अयोनि मनुष्य होता है और क्रमश सहज मनुष्य और नित्य मनुष्य की स्थिति लाभ करता है। इसी प्रकार सामान्य स्त्री इस साधना मे प्रवेश नही पा सकती। यह साधना 'विशेष रति' के द्वारा राधात्व प्राप्त करने पर ही संभव है। अभिप्राय यह कि विशुद्ध रस को प्राप्त मनुष्य अपने कृष्णत्व के द्वारा और विशुद्ध रति को प्राप्त स्त्री अपने राधात्व के द्वारा ही सहज साधना मे प्रवेश पाते है। 'उज्ज्वल नीलमणि' मे श्री जीव गोस्वामी ने रति के तीन भेद माने है— समर्था, समज्जसा और साधारणी। समर्था मे नायिका नायक को सुख प्रदान करने के लिए ही नायक से मिलती है। वह निःशेष आत्मदान के द्वारा अपने प्रियतम को परम आनन्द देना चाहती है। राधा ही समर्था के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। समजसा रति मे प्रिया प्रीतम की समान सुख कामना होती है जैसे रुक्मिणी आदि। साधारणी रति मे नायिका स्वसुखेच्छया नायक से मिलती है जैसे कुब्जा। सहजियो ने रति के इस वर्गीकरण को स्वीकार किया है और वे मानते है कि एकमात्र समर्था रति ही सहज साधना के लिए वरेण्य है।

रति और रस

प्रेमसाधना की सिद्धि के लिए सहजियो मे बडे ही कठोर नियम एवं कृच्छ साधना की विधि है। वास्तविक प्रेम सपादन के लिए यह आवश्यक है कि साधक शव हो जाय अर्थात् उसके अन्दर की सारी निम्न वृत्तियाँ और पशु भाव समूल नष्ट हो जाय, जिससे उसपर दिव्य वृत्तियाँ और दिव्य भाव अपना पूरा रंग डाल सके। उसका रूप स्वरूप की ज्योति और रस से ओतप्रोत हो। साराश यह कि पुरुष अपने पुरुषत्वाभिमान का परित्याग कर जो उसका वास्तविक नारी

प्रेम सिद्धि

स्वभाव है उसे प्राप्त कर ले तब इस साधना मे पैर रखे। इस साधना की कठिनाई को व्यक्त करने के लिए सिद्धो ने कई ऊलटबासियाँ कही है--समुद्र मे स्नान पर रचमात्र भी भीगता नही, साँप के आगे मेढक का नृत्य, मकरी के तार से हाथी बाँधना इत्यादि। सहजियो ने प्रेमसाधना मे साधक की तीन कोटियाँ मानी है--प्रवर्त, साधक, और सिद्ध। उनके लिए पचाश्रय है--नाम, मत्र, भाव, प्रेम और रस। प्रवर्त स्थिति के साधक के लिए नाम और मत्र, साधक स्थिति के लिए, भाव और सिद्ध स्थिति के लिए प्रेम तथा रस। अभिप्राय यह कि सिद्ध अवस्था प्राप्त होने पर ही साधक प्रेम और रस की साधना का अधिकारी होता है। सिद्धि के लिए शरीर और मन दोनो का बलवान् होना नितान्त आवश्यक है। सबल शरीर के बिना सहज साधना असभव है। इसलिए प्रेम साधना मे कायसाधना भी एक अत्यन्त प्रमुख अग है। वह 'तत्त्व' है इस देह मे ही अतएव देह की उपेक्षा कर के उस तत्त्व की प्राप्ति कठिन क्या असभव है। जो इस भाण्ड (शरीर) को जान जाता है वह ब्रह्माड को जान जाता है। चैत्त रूप ही सहज रूप है और वह शरीर के भिन्न कमलो मे निवास करता है। राधा और कृष्ण का सारा रहस्य इस शरीर के भीतर ही जाना जा सकता है। प्रेम की साधना मे द्वैत का सर्वथा निरसन हो जाता है दो शरीर एक आत्मा--एक शरीर एक आत्मा, दो का एक मे सर्वथा विलयन। प्रेमी और प्रेमास्पद प्रेम मे जब सर्वथा धुल कर 'एकमेक' हो जाते है, तभी इस साधना की सिद्धि मानी जा सकती है। चण्डीदास ने गाया है--

पीरिति उपरे पीरित वइसइ
ताहार उपरे भाव
भावरे उपरे भावरे बसति
ताहार उपरे लाभ।।
प्रेमेरे माझारे पुलकेर स्थान
पुलक उपरे धारा
धारार ऊपरे धारर वसति
ए सुख बुझाये कारा।।
मृत्तिका उपरे जलेर बसति
ताहार उपरे ढेउ
ताहार उपरे पीरीति बसति
ताहा को जानाय केउ।। --चण्डीदास

जब साधक के हृदय मे वास्तविक प्रेम का उदय होता है तब प्रेमास्पद प्रेम का एक प्रतीक मात्र बन जाता है और सारा विश्व अपनी अनन्त गरिमा, रहस्य तथा अपरिमेय सौन्दर्य के साथ प्रेमास्पद के शरीर मे ही घनीभूत होकर स्फुटित हो जाता है, इतना ही नही, वह प्रेमास्पद ही परम सत्य परम शिव और परम सुन्दर का प्रतीक हो जाता है। प्रेम के ऐसे दिव्य आवेश मे चण्डीदास ने 'रामी' को संबोधित करते हुए गाया है--

तुमि हउ पितृ मातृ, तुमि वेदमा ता गायत्री ।
तुमि से मत्र तुमि से तत्र
तुमि से उपासना रस ।

अर्थात् तुम्ही हो मेरी माता, पिता, तुम्ही हो वेदमाता गायत्री
तुम्ही से है सारे तत्र-मत्र और तुम्ही हो उपासना रस का मूल उत्स ।

प्रेम साधना मे यही है आनन्द की वह स्थिति, जिसे तैत्तिरीयोपनिषद् ने ब्रह्म से अभिन्न कहा है तथा यह माना है कि इसीसे सबकी उत्पत्ति हुई, इसीमे सबका पोषण होता है तथा इसी मे सबका अभिसवेश होता है ।[1]

---

१ आनन्दो ब्रह्मेति व्याजानात्। आनन्दाद्धेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।

—तै० उ० ३.६

चौथा अध्याय

सिद्ध देह और लीला-प्रवेश

यह स्मरण रखना होगा कि इस भौतिक स्थूल देह, विषयासिक्त मन, बहिर्मुखी बुद्धि तथा मलिन अन्तःकरण से भगवान की मधुर लीला मे प्रवेश नही होता। वैधी भक्ति के एकादश अंगो––शरणापत्ति, गुरुसेवा, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवा, अर्चना, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन के साधन से जब शरीर, इन्द्रियों और मन के द्वारा पूर्णतः एक मात्र प्रभु की उपासना[1] होने लगती है तब वह वैधी साधन भक्ति कहलाती है। वैधी साधना का क्या स्वरूप है इसका प्रकरण यथास्थान आगे आयगा। अभी यहाँ इतना अभीष्ट है कि वैधी साधनां को सागोपांग सम्पन्न कर चुकने के अनन्तर ही साधक का रागानुगा भक्ति में प्रवेश होता है। 'रागानुगा' के अनन्तर है रागात्मिका भक्ति जो मधुर रसमयी है और जिसमें केवल ब्रज की गोप-कन्याओं का प्रवेश है। इन ब्रजवासिनी गोप-कन्याओं की प्रीतिमयी भक्ति का जिनके द्वारा अनुगमन होता हो वही है रागानुगा।[2] ब्रजभाव की प्राप्ति के लोभ का ही नाम है 'रागानुगा'।[3] ब्रजभाव की लिप्सा से ब्रजलोकानुसारत. ब्रज सेवन से रागानुगा की उपलब्धि होती है। इस प्रकार की साधना मे सखी भाव या राधा भाव मे स्थित होकर उसी प्रकार की लीला, वेश और स्वभाव का आचरण करते हुए आनन्दोल्लास में मग्न रहना चाहिए। पहले हम कह आये है कि रागानुगा में स्मरण ही मुख्य साधन है।[4] स्मरण की प्रगाढ़ता से ही इसमें विशेष सफलता मिलती है।

प्रवेशाधिकार

---

१ 'कायषीकान्तकरणानां उपासना'

२ विराजन्ती अभिव्यक्तं व्रजवासी जनादिषु
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥

––जीव गोस्वामी।

३ विश्वनाथ चक्रवर्ती का कथन है––
व्रजलीला परिकरास्था शृंगारादि भावमाधुर्ये श्रुते इदं ममापि भूयात्
इति लोभोत्पत्तिकाले शास्त्रयुक्तयापेक्षा न स्यात्॥

४ 'रागानुगायां स्मरणस्य मुख्यताम्।

इसीसे भावयोग द्वारा साधक का भगवान् से मिलन होता है और इसे ही 'आतर मिलन' (Mystic Union with the Beloved) कहा जाता है।[1] भाव की तीव्रता मे साधक केवल वृन्दावन लीला का साक्षात्कार नही करता, अपितु इसमे सखी भाव से प्रवेश कर इस लीला-विलास का आस्वादन भी करता है।[2] रागानुगा भक्ति का आदर्श है व्रजवासियो की रागात्मिका भक्ति की उपलब्धि। रागात्मिका के कई रूप है--(१) कामजन्य जैसे गोपियो का, (२) द्वेष जन्य जैसे कंस का, (३) भयजन्य जैसे शिशुपाल का, (४) स्नेहजन्य जैसे यादवो का। रागात्मिका मे सिद्ध देह से नित्य धाम मे लीलास्वादन होता है। दीक्षा मे अष्ट सखियो मे से किसी एक की लाइन मे मजरी के द्वारा प्रवेश होता है। रागात्मिका मे मजरी ही गुरु है। सिद्ध देह की अभिप्राप्ति परे मजरी के द्वारा ही सखी देह प्राप्त होता है। सखी देह का कायव्यूह ही श्री राधा जी है। रागात्मिका के दो भेद है--(१) कामरूपा (२) सबधरूपा। कामरूपा का अर्थ है सभोग-तृष्णा। यह सभोगतृष्णा एक मात्र श्री कृष्ण को सुख पहुँचाने के लिए है--'कृष्ण सौख्य-र्थमेव केवल उद्यम' और इसकी परिणति व्रजदेवियो की प्रीति मे होती है। 'कामानुगा' का भाव है 'केलितात्पर्यवती सभोगेच्छा' केलि के लिए सभोगेच्छा। कुब्जा की रति कामप्राया है, कामरूप नही।

---

१ As the little water drop poured into a large measure of wine seems to lose its own nature entirely and to take on both these taste and colour of the wine, or as the iron heated red-hot loses its own appearance and glows like fire, or as an filled with sunlight is transformed with the same brightness so that it does not so much apear to be illuminated as to be itself light, so must all human feeling towards the Holy one be self dissolved in unspeakable wise and wholly transfused into the will of God.—D. Diligendo Deo C. 10

२ **विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपने 'रागवर्त्मचन्द्रिका' मे रागानुगा का बड़े विस्तार से वर्णन किया है और उदाहरण स्वरूप यह बतलाया है कि महाप्रभु श्री चैतन्य देव का जब अवतार हुआ तब उनके साथ ही कई गोपियाँ उनके सखा के रूप मे अवतीर्ण हुईं, उदाहरणार्थ--**

रूप मंजरी	--	**रूपगोस्वामी के रूप मे**
लावण्य मंजरी	--	**सनातन गोस्वामी के रूप मे**
रति मंजरी	--	**रघुनाथदास के रूप में**
गुण मंजरी	--	**गोपाल भट्ट के रूप में**
विलास मंजरी	--	**जीव गोस्वामी के रूप में**
रस मंजरी	--	**रघुनाथ भटट के रूप मे**

संबध रूपा रति में माता, पिता या मित्र के रूप मे श्रीकृष्ण से सबध होता है--जैसे नन्द, यशोदा, गोप।

भावभक्ति की प्राप्ति साधन भक्ति के परिपाक से होती है। यह कृष्ण-कृपा वा कृष्ण-भक्त कृपा से प्राप्त होती है। इसीलिए इसके तीन भेद किये गये है--साधनाभिनिवेशजा, (२) कृष्णप्रसादजा (३) कृष्णभक्तप्रसादजा। भाव भक्ति मे अभी भाव रसदशा तक नही पहुँचा है। परन्तु भावभक्ति किसी वाह्य प्रयत्न से साधित नही होती। शुद्ध सत्व विशेष मे ही इसकी स्फूर्ति होती है और प्रेम की प्रथम छवि है--'प्रेम्ण प्रथम छविरूप'। भावभक्ति से 'रुचि' के द्वारा चित्त मसृण हो जाता है। यह 'रुचि' ही भगवत्प्राप्ति की अभिलाषा जगाती है और परिणाम यह होता है कि अनुभावो का स्फुरण होने लगता है--जैसे शान्ति, अव्यर्थकालता, विरक्ति, मान-शून्यता, आशाबन्ध, समुत्कण्ठा, नामगान मे रुचि, भगवद्गुण-व्याख्या मे आसक्ति, भगवान् के वासस्थल मे प्रीति।

भावभक्ति

भावभक्ति के परिपाक मे उत्पन्न होती है प्रेमाभक्ति। भाव जब सान्द्रात्मा-प्रेम की स्थिति मे पहुँच जाता है तब प्रेमाभक्ति का उदय होता है। इसमे हृदय सर्वथैव सम्यक् प्रकारेण मसृण हो जाता है और अनन्य ममता का आविर्भाव होता है। यह साधना भक्ति से हो, रागानुगा से हो या भावभक्ति से हो, परन्तु होता है भगवत्प्रसाद से ही। यह प्रसाद 'केवल' निर्हेतुक हो सकता है या माहात्म्य ज्ञान से हो सकता है। इसमे 'केवल' प्रसाद रागानुगा से प्राप्त होता है और माहात्म्य ज्ञानजन्य प्रसाद वैधी मार्ग से होता है। इसका क्रमविकास यो होता है--श्रद्धा, साधुसग, भजन क्रिया, अनर्थनिवृत्ति, निष्ठा रुचि, आसक्ति, भाव और अन्त मे प्रेम।[१]

प्रेमाभक्ति

प्रेम के मूल मे है 'इच्छा'--भक्त की इच्छा भगवान् से मिलने की ओर उधर भगवान् की इच्छा भक्त से मिलने की। भक्त के मन मे मिलन की इच्छा उठते ही भगवान् के मन मे भी मिलन की इच्छा जाग्रत हो जाती है। उनकी इच्छा सर्वसमर्थ है और उसी के द्वारा मिलन सभव होता है। इसीलिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से परे यह प्रेम ही पचम पुरुषार्थ माना गया है। कारण यह है कि मधुर भाव के विना अखण्ड और सकोचहीन मिलन असभव है।

प्रेम ही परम पुरुषार्थ

---

१ **आदौ श्रद्धा ततः संगस्ततोऽथभजन क्रिया।**
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठारुचि स्ततः॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥

--भक्तिरसामृत सिन्धु

व्रजभाव अथवा सखी भाव मे प्रवेश करने के पूर्व दो बाते आवश्यक है––उपासक परिस्मृति और उपास्य परिस्मृति। उपासक परिस्मृति में ग्यारह भाव है। (१) सबंध, (२) वयस, (३) नाम, (४) रूप, (५) यूथ, (६) वेश, (७) आज्ञा, (८) वास, (९) सेवा, (१०) पराकाष्ठा श्वास एवं (११) पाल्यदासी भाव। इनमे सबंध-भाव ही प्राप्ति की आधारशिला है। सम्बन्धकाल मे श्रीकृष्ण के प्रति जिसका जो भाव होता है तदनुरूप ही उसका चरम लाभ होता है।

सखी भाव में प्रवेश

कृष्ण से प्रभु भाव से संबध करने पर साधक उनका दास हो जाता है, सखा भाव से सम्बन्ध करने पर उनका सखा, पुत्रभाव से संबंध करने पर उनका पिता-माता, स्वकीय पति भाव मे सम्बन्ध करने पर वनिता हो जाता है। व्रज मे शान्त रस तो है नही, दास्य भी सकुचित है। उपासक की स्वाभाविक रुचि के अनुसार ही सम्बन्ध स्थापित होता है जिनका श्रीकृष्ण के प्रति स्त्रीत्व भाव से परकीया रस मे रुचि है वे व्रजवनेश्वरी के अनुगत होकर रसास्वादन करते है। वह ऐसा मानते है कि मै श्री राधिका की परिचारिका हूं और श्रीराधारानी मेरी जीवनेश्वरी है। सुतरा राधावल्लभ ही हमारे प्राणेश्वर है। यह तो सम्बन्ध भाव के सबध मे हुआ।

संबंध-भाव

अब 'वयस' के संबध मे यह निवेदन है कि श्रीकृष्ण के साथ हमारा जो भी सम्बन्ध है उससे एक अपूर्व स्वरूप का उदय होगा––यह स्वरूप है व्रजललना-स्वरूप। उसमें सेवा के उपयुक्त स्वरूप की अत्यन्त आवश्यकता है। अस्तु, किशोरवयस् ही वास्तविक वयस है। दस वर्ष से सोलह वर्ष तक 'किशोर' है। सोलह वर्ष की अवस्था ही वय सधि है। व्रजललनाएँ नित्य किशोरी है कारण कि उनमे बाल्य, पौगण्ड, एव वृद्धावस्था का आविर्भाव कदापि नही होता। इसलिए इस रस का साधक अपनेको किशोरी रूप मे भावना करे।'

वयस्

इसके अनन्तर है नाम भाव। व्रजरानी की परिचारिका की परिचारिका का सम्बन्ध ज्ञात होते ही सखी रूप का जो नाम है, वही साधक का नाम हो जाता है। साधक की रुचि देखकर गुरु जो नाम दे दे, वही साधक का नित्य नाम है। नाम द्वारा ही साधक व्रजललनाओ के समीप 'मनोरम' होता है। उसकी रुचि के अनुसार प्रिया, लता, अली, सखी, कला आदि नाम उसे प्राप्त होते है।

नाम

---

१ आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोहराम्।
रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्॥

––सनत्कुमार तंत्र

'रूप' के सम्बन्ध मे लक्ष करने की बात यह है कि रूप-यौवन-सम्पन्न किशोरी हो जाने पर रुचि के अनुसार ही गुरुदेव सिद्ध रूप का निर्णय करते है। अचिन्त्य चिन्मय रूप विशिष्ट हुए विना श्री राधारानी की परिचारिका कौन हो सकता है?

रूप

किस 'यूथ' मे साधक का सखी रूप मे वरण हुआ है, यह जानने के लिए यह जानना होगा कि श्रीमती राधिका ही यूथेश्वरी है। राधिका की अष्ट सखियो मे से किसी एक के यूथ मे रहना होगा। ललिता, विशाखा, चन्द्रावली आदि किसी सखी के यूथ मे सम्मिलित होकर उसी की आज्ञा से श्रीराधामाधव की सेवा की जाती है।

चन्द्रावली आदि सखियाँ राधामाधव के लीला सम्पादन के लिए निरन्तर यत्नवती रहती है और विपक्ष-पक्ष होकर रसवृष्टि करने के लिए वही वह भाव ग्रहण करती है। वस्तुत स्वय श्रीराधिकाजी ही यूथेश्वरी है और श्रीकृष्ण की विचित्र लीला की अभिमानिनी है। जिनकी जो सेवा है उनका वही 'अभिमान' है। जो सेवा मिली है, उस सेवा के उपयोग नानाविध गुणो को धारण करने का आदेश गुरुदेव देते है।

यह आज्ञा दो प्रकार की है--नित्य और नैमित्तिक। करुणामयी सखी जो नित्य सेवा की आज्ञा दे उसे निरपेक्ष होकर अष्टकाल मे जहाँ जो आवश्यक हो, निर्भ्रान्त होकर करना उचित है। बीच-बीच मे समय और प्रयोजन के अनुसार भी सेवा मिलती रहती है।

व्रज के किस ग्राम में वास होना चाहिए, गोपी होकर कहाँ जन्म हुआ, किस गाँव मे विवाह हुआ, किस कुण्ड के पास किस कुज मे रहना आदि के सबध मे गुरुदेव का आदेश होता है।

वास

'सेवा' मे जो यूथेश्वरी की आज्ञा हो वही करना होता है, जो श्रीराधिकाजी की ही सेवा मे लीन रहती है। कृष्ण यदि ऐसी सखी के प्रति रति का प्रकाश करे तो उसे स्वीकार नही करना चाहिए, क्योकि राधिका जी की दासी को ऐसा करना अनुचित है। राधिका की अनुमति के विना कृष्ण-सेवा स्वतन्त्र होकर नही करना चाहिए। इसी का नाम है सेवा। श्री राधा की अष्टकाली सेवा ही दासी के लिए कर्त्तव्य है। 'पात्यदासी' का अर्थ है--जो गाढ प्रेमरस से परिप्लुप्त होकर प्रियता द्वारा प्रागल्भ्य लाभ कर लेती है अर्थात् 'धृष्ट' हो जाती है और प्रति दिन क्रम से प्राणप्रिय राधाकृष्ण का लीला-विहार कराती है और वैदग्ध क्रम से अपनी सखी श्री राधिका के रसपूर्वक मान की शिक्षा देती है। वही श्री ललिता अपना पात्यदासी बना ले, यही साधक की कामना होती है।'

सेवा

---

१ सान्द्रप्रेमरसैःप्लुता प्रियतया प्रागल्भ्यमाप्ता तयोः
प्राणप्रेष्ठ वयस्ययोरनुदिनं लीलाभिसंगंक्रमैः।
वैदग्ध्येन तथा सखीं प्रति सदा मानस्य शिक्षां रसैः।
येऽयं कारयतीह हन्त ललिता गृह्णातु सा मां गणैः॥ **--व्रजविलासस्तव श्लोक २९**

सेवा में ताम्बूलरचना, चरणमर्दन, पय दान, अभिसारादि कार्य के द्वारा श्री राधा जी को नित्यतुष्ट रखना ही मुख्य है।

श्री राधाकृष्ण के प्रणय ललित कौतुक की पात्री बनना, संगीत वाद्य के द्वारा उनका मनोरंजन करना यह भी सेवा में सम्मिलित है। राधिका के शृंगार की पुष्टि के लिए सपत्नी भाव से स्थित सौभाग्य, गर्व, विभ्रम प्रभृति गुणों की गुणवती के साथ श्री कृष्ण कुछ क्षणों के लिए क्रीडा करते हैं, यह सौभाग्य केवल चन्द्रावली जी को प्राप्त है।

सिद्ध देह क्या है ?

यह सिद्ध देह न तो अस्थि-मांस-रक्तमय जड देह है और न सांख्य प्रोक्त सूक्ष्म और कारण देह ही है। यह है दिव्यानन्द चिन्मय रस प्रतिभावित नित्य शुद्ध सुचारु समुज्ज्वल परम सुन्दरतम सच्चिदानन्दमय रस विग्रह। वैष्णव साधना के क्षेत्र मे इस सच्चिदानन्दरसमय मूर्ति को 'मंजरी' कहते है। ये सखियो की अनुमति के अनुसार श्री राधामाधव की सेवा मे नियुक्त रहती है और परमानन्द का अनुभव करती है। इनका यह देह नित्य शुद्ध, नित्य सुन्दर, नित्य मधुर, नित्य नव सुषमा सम्पन्न और नित्य समुज्ज्वल रहता है। इन पर देश-काल का कोई प्रभाव नही पडता। इस मार्ग मे साधना की परिपक्व स्थिति मे इस सिद्ध देह की स्वयमेव स्फूर्ति हुआ करती है। पाँच भौतिक देह छूट जाती है, पर यह सच्चिदानन्द रसविग्रहमयी ब्रज सुन्दरियाँ भगवान के प्रेमधाम मे स्फूर्ति प्राप्त करके श्री युगल स्वरूप की सेवा मे नित्य नियुक्त रहती है।

अष्ट सखी, अष्ट मंजरी के नाम, वर्ण, वस्त्र, वय, दिशा, सेवा

इस साधना के क्षेत्र मे तथा भगवान् श्री राधामाधव के प्रेमधाम मे भगवान् श्री वृन्दावनेश्वर तथा श्री वृन्दावनेश्वरी, उनकी अष्ट सखी और अष्ट मंजरियो के नाम, वर्ण, वस्त्र, वय तथा सखी और मंजरियो की दिशा और उनकी सेवा इस प्रकार मानी गई है।

दिशा	नाम	देह का वर्ण	वस्त्र का रंग	वयस	सेवा
	श्री नन्दनन्दन श्यामसुन्दर	इन्द्रनील मणि	नीला	वर्ष मास दिवस १५ ६ ७	
	श्री मती राधिका रासेश्वरी	तपाया स्वर्ण	पीला	१४ २ १५	
		सखी			
उत्तर	श्री ललिता	गोरोचन	मयूरपिच्छ	१४ ३ १२	ताबूल
ईशान कोण	श्री विशाखा	बिजली	तारावर्ण	१४ २ १५	वस्त्रादि
पूर्व	श्री चित्रा	काश्मीर	काच वर्ण	१४ १ ४	चित्र
अग्निकोण	श्री इन्दुलेखा	हरिताल	दाडिमपुष्प	१४ २ १२	अमृतासन
दक्षिणनैऋत्य	श्री चम्पकलता	चम्पापुष्प	चीलवर्ण	१४ २ १४	चवर

कोण	श्री रग देवी	पद्मकिजल्क	जवापुष्प	१४ २ ८	चन्दन
पश्चिम	श्री तुगविद्या	काश्मीर	पाण्डुवर्ण	१४ २ २०	गानवाद्य
वायव्य कोण	श्री सुदेवी	पद्मकिजल्क	जवापुष्प	१४ २ ८	जल

मंजरी

उत्तर	श्री रूप मंजरी	गोरोचन	मयूरपिच्छ	१३ ६ ०	ताबूल
ईशानकोण	श्री मजुलीला मजरी	तप्तस्वर्ण	किंशुक पुष्प	१३ ६ ७	वस्त्र
पूर्व	श्री रस मजरी	चपा पुष्प	हंसवर्ण	१३ वर्ष	चित्र
अग्निकोण	श्री रति मंजरी	बिजली	तारावर्ण	१३ २ ०	चरणसेवा
दक्षिण	श्री गुण मंजरी	बिजली	जवापुष्प	१३ २ २७	जल
नैऋत्यकोण	श्री विलास मजरी	स्वर्ण केतकी	भ्रमरवर्ण	१३ ० २६	अजन सिदूर
पश्चिम	श्री लवंग मंजरी	बिजली	तारावर्ण	१३ ६ १	माला
वायव्यकोण	श्री कस्तूरी मजरी	स्वर्ण वर्ग	काचवर्ण	१३ वर्ष	चन्दन

इन सखियों और मञ्जरियो के नाम, सेवा आदि मे व्यतिक्रम भी माना जाता है। जैसे श्री सुदेवी जी के देह का वर्ण उद्दीप्त स्वर्ण के समान भी माना गया है—'प्रोत्तप्त शुद्ध कनकच्छवि चारुदेहाम्'। प्रधान अष्ट मञ्जरियो के नाम मे भी अन्तर माना गया है। उपर्युक्त सूची के स्थान पर ये नाम भी मिलते हैं—

कुछ और सखियों और मंजरियों के नाम

(१) श्री अनङ्ग मञ्जरी, (२) श्री मधुमती मञ्जरी, (३) श्री विमला मञ्जरी, (४) श्री श्यामलता मञ्जरी, (५) श्री पालिका मञ्जरी, (६) श्री मङ्गला मञ्जरी, (७) श्री धन्या मञ्जरी, (८) श्री तारका मञ्जरी। इनमे से प्रत्येक के अनुगत दो-दो मञ्जरियाँ अथवा प्रिय नर्म सखियाँ क्रमशः इस प्रकार है—(१) श्री लवङ्ग मञ्जरी, (२) श्री रूप मञ्जरी, (३) श्री रस मञ्जरी, (४) श्री गुण मञ्जरी, (५) श्री रति मञ्जरी, (६) श्री मृदु मञ्जरी, (७) श्री लीला मञ्जरी, (८) श्री विलास मजरी, क (९) श्री विलास मञ्जरी, ख (१०) श्री केलि मञ्जरी, (११) श्री कुन्द मञ्जरी, (१२) श्री मदन मञ्जरी, (१३) श्री अशोक मञ्जरी, (१४) श्री मञ्जुलीला मञ्जरी, (१५) श्री सुधा मञ्जरी, (१६) श्री पद्म मञ्जरी। प्रधान अष्ट सखियो का क्रम भी कही-कही ऐसा माना गया है—श्री रग देवी, श्री सुदेवी, श्री ललिता, श्री विशाखा, श्री चम्पकलता, श्री चित्रा, श्री तुग विद्या, श्री इन्दु लेखा, अथवा श्री ललिता, श्री विशाखा, श्री चम्पकलता, श्री इन्दु लेखा, श्री तुग विद्या, श्री रङ्गदेवी, श्री सुदेवी, श्री चित्रा। सखियो एव मञ्जरियो की सख्या इतनी ही नही है। ये तो मुख्य आठ-आठ हैं। सिद्ध देह मे मञ्जरियों की स्फूर्ति और तद्रूपता प्राप्त हो जाती है।

यह परमगोपनीय साधन राज्य का विषय है। यह स्मरण रहे कि इस राजमार्ग मे रति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव---ये आठ स्तर माने गये है। इनमे रति प्रथम है और यह रति तभी मानी जाती है जब कि इस लोक और परलोक के समस्त भोगो से तथा मोक्ष से भी सर्वथा विरति होकर केवल भगवच्चरणाविन्द मे ही रति हो गई हो। साधक के चित्त मे केवल एक ही भावना दृढ होकर बद्धमूल हो जाय कि इस लोक मे, परलोक मे सर्वत्र सर्वदा और सर्वथा एक मात्र श्रीकृष्ण ही मेरे है और श्रीकृष्ण के सिवा मेरा और कोई भी, कुछ भी, किसी काल मे भी, नही है। अतएव यहाँ दूसरी वस्तु मात्र तथा तत्त्व का अभाव हो जाता है, तब काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या और असूया आदि दोषो के लिए तो कल्पना ही नही की जा सकती। ये तो साधक देह मे ही समाप्त हो जाते है। सिद्ध देह मे तो सत्य निरन्तर श्रीकृष्णानुभव के अतिरिक्त और कुछ रहता ही नही। अस्तु,

ऊपर हम कह आये है कि इस भौतिक देह से लीला मे प्रवेश नही हो सकता, उसके लिए चाहिए भाव देह और सिद्ध देह। नाथ साधना, बौद्ध साधना, रसेश्वर साधना, ईसाई और सूफी साधना मे इस सिद्ध देह की चर्चा है, हाँ, प्रक्रिया और लक्ष्य मे भेद है। अस्तु, देह दो प्रकार का है---साधक देह और सिद्ध देह। साधक देह से साधन होता है और सिद्ध देह से रस का सवेदन और लीला का आस्वादन।[1] साधक देह भी मातृगर्भ से उत्पन्न प्राकृत देह नही है। कुछ लोग भाव देह और सिद्ध देह मे भेद मानते है और कुछ लोग अभेद। सामान्यत. पहले साधक देह को प्राप्त करना चाहिए, फिर सिद्ध देह को या पहले भावदेह, तब सिद्ध देह। व्यक्तिगत अनुभूति के आधार पर युक्ति का प्रयोग भिन्न-भिन्न महात्माओ ने भिन्न-भिन्न ढङ्ग से किया है, पर भेद-अश हटाकर देखने पर यह पता चलेगा कि कोई भेद नही है।

साधक-देह और सिद्ध-देह अथवा भाव-देह और सिद्ध-देह

सबसे पहले है प्राकृत देह। इसके तीन भेद---स्थूल, सूक्ष्म और कारण। किसी-किसी मत मे इस कारण देह को महाकारण देह मे परिवर्तन करना ही साधना का लक्ष्य है। कुछ लोगो की मान्यता है कि कारण देह शुद्ध है, इसे ही भाव देह बना देना चाहिए। साख्य कारण देह नही मानता। कारण देह आनन्दात्मक है, पर है अज्ञानात्मक। कारण की निवृत्ति होने पर ही महा कारण का आविर्भाव होता है। उपासना, योगाभ्यास या नाम साधन के द्वारा 'स्वभाव' की प्राप्ति के लिए चेष्टा होनी चाहिए। गुरुकृपा का आश्रय लेकर किसी भी साधना का अवलम्बन कर के अविद्या माया से निवृत्त हो जाना चाहिए। मन्त्र-साधना, जपादि वैध कर्म से 'स्वभाव' की प्राप्ति होती है।

प्राकृतदेह और उसके भेद : स्थूलदेह, सूक्ष्मदेह, कारण देह : महाकारणदेह

---

१ सेवा साधक रूपेण सिद्धरूपेण चात्रहि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥ ---संकल्प कल्पद्रुम

'स्वभाव' का अर्थ स्पष्ट रूप मे जानना यहाँ प्रसङ्गत आवश्यक है। स्वभाव का अर्थ है प्रत्येक जीव का वैशिष्ट्य। प्रत्येक जीव अपना वैशिष्ट्य लेकर आता है। यह वैशिष्ट्य ही है उसका 'स्व-भाव' अथवा भाव। स्वभाव की प्राप्ति मे अपने स्वरूप मे परिवर्तन हो जाता है। ज्ञानमार्ग से जो सम्बन्ध भगवान् मे है उसका परिणाम 'एकता' की प्राप्ति है, पर भक्तिमार्ग मे साधन करनेवाले को 'भेद' की प्राप्ति होती है—वैशिष्ट्य या स्वभाव के कारण। उपनिषद् कहते हैं—'परज्योति सपद्य ब्रह्मणा सह एकीभूत्वा स्वभावो प्राप्ति.' अर्थात् पर ज्योति का सम्पादन कर साधक ब्रह्म के साथ 'एकता' प्राप्त कर लेता है और तब उसे स्वभाव की प्राप्ति होती है। ब्रह्मज्ञान के द्वारा निज स्वभाव खुल जाता है। प्रकाश सब वस्तु को अपना स्वरूप प्रदान कर देता है, यही उसका धर्म है। अन्धकार मे सब एकाकार हो जाता है। आवृत स्वभाव को ज्ञान अनावृत कर देता है। भगवान् के साथ जो सम्बन्ध होता है वह स्वभाव को लेकर ही। स्वरूप जाने बिना भगवान् से सम्बन्ध क्या ?

'स्वभाव'

भाव देह का अर्थ है स्वभाव-देह स्वरूप देह, जिससे जीव चित्स्वरूप मे भगवान् से खेलता है। भावदेह ही भक्तिदेह है, चन्द्रमा की भाँति शीतल ज्ञान-देह प्राप्त होने पर पतन हो सकता है यद्यपि ज्ञान तब भी रहता है पर रहता है अज्ञान से आवृत। परन्तु भाव-देह मे भगवत्प्रीति का ही सम्पादन होता है और वह नष्ट नही होता। भाव देह की प्राप्ति के पूर्व परभाव की निवृत्ति' हो जाना चाहिए। अविद्या के हट जाने पर ही स्वभाव खुल जाता है। स्वभाव साकार है, पर उसका वर्णन नही किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव अलग है। गुरु का प्रयोजन यही है कि वे बाहरी आवरण हटाकर शिष्य के 'स्वभाव' को खोल देते हैं। विधि-निषेध तक ही गुरु का प्रयोजन है। अविद्या-माया का आवरण हटते ही गुरु का प्रयोजन शेष नही रह जाता। भावमार्ग गुरुगम्य नही है। भाव-देह प्राप्त हो जाने पर स्वभाव ही 'गुरु', स्वभाव ही शास्त्र तथा स्वभाव का निर्देश ही विधि-निषेध होता है। बाहर से कोई नियन्त्रण करनेवाला नही रहता। गभीर आन्तर राज्य की नीरवता मे वाह्य जगत की किसी भी वस्तु का कोई स्थान नही होता। तथापि वहाँ की कोई शक्ति अन्तर्यामी रूप से भीतर रहकर भक्त को परिचालित करती है, इसी को स्वभाव कहते हैं।

भाव-देह, स्वभाव-देह, स्वरूप-देह

शिशु को जिस प्रकार शिक्षा नही दी जाती कि वह किस प्रकार माँ को पुकारे अथवा माँ के साथ व्यवहार करे—वह अपने स्वभाव के द्वारा ही नियमित होता है, ठीक उसी प्रकार जो भक्त भाव देह मे शिशु है उसे मातृ-भक्ति सिखानी नही पड़ती, वह स्वभाव की सन्तान है, स्वभाव ही उसे परिचालित करता है। वह अपने-आप जो करेगा वही उसका भजन है। रागात्मिका

'स्वभाव'

---

१ छान्दोग्य

भक्ति मे वाह्य शास्त्र या वाह्य नियमावली की आवश्यकता नही होती। स्वभाव प्राप्ति के वाद इच्छा का प्रतिभात नही होता। स्वभाव प्राप्ति के बाद आत्म द्विधाकरण (सेल्फ डुप्लिकेशन) की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

भाव का विकास ही प्रेम है। भाव-साधना करते-करते स्वभावत ही प्रेम का आविर्भाव हो जाता है। जबतक प्रेम उदय नही होता, तबतक भगवान् का अपरोक्ष दर्शन नही हो सकता। भाव के उदय के साथ आश्रय तत्त्व की अभिव्यक्ति होती है, परन्तु जबतक प्रेम का उदय नही होता, तब तक विषयतत्त्व का आविर्भाव नही हो सकता। अस्तु, प्रेम की अवस्था ही पूर्णता की अवस्था है।

भाव और प्रेम

कमल के विकास के लिए जिस प्रकार एक ओर जलपूर्ण सरोवर और उसके साथ पृथिवी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार दूसरी ओर ज्योतिर्युक्त तेजोमण्डल तथा उसके साथ आकाश भी आवश्यक होता है। नीचे रस और ऊपर रवि-किरण, इन दोनो का एक साथ सयोग होने पर कमल स्फुटित होता है अन्यथा स्फुटित नही हो सकता। भाव के विकास के लिए भी उसी प्रकार एक ओर लक्ष्योन्मेष रूप और दूसरी ओर रसोद्गम का मूल कारण स्थायी भाव आवश्यक होता है।

रस और ज्योति

खेचरी भाड या अमृत भाड से लक्ष्योन्मेष के साथ-साथ अमृत-क्षरण प्रारम्भ हो जाता है। भाव-सरोवर मे पहले भाव-कलिका के रूप मे प्रकट होता है, पश्चात् सूर्य की किरणे उसे प्रेम-कमल के रूप मे विकसित कर देती है। भाव देह, फिर प्रेम देह, फिर सिद्ध देह। भाव देह विरह का देह है, प्रेम देह मिलन का और सिद्ध देह मे न विरह है, न मिलन, वहाँ है नित्य अखण्ड लीला-स्वादन।[1]

भाव देह, प्रेम देह, सिद्ध देह

भगवान् निरन्तर स्वय अपने साथ क्रीडा कर रहे है। वे नित्य है, इसलिए उनकी लीला भी नित्य है। अज्ञान की क्रिया के रहने पर इस नित्य लीला की कल्पना नही की जा सकती। पहले अद्वैत बोध मे स्थित प्राप्त करना आवश्यक है, तब दिखाई देता है कि एक ही नाना रूपो मे सजकर अपने साथ आप ही सर्वदा—क्रीडा कर रहे है। उपनिषद् के शब्दो मे यही है उनकी आत्म रति, आत्म-क्रीडा, आत्म-मिथुन, आत्मरमण।[2] अनन्त प्रकारो मे वह एक ही द्वितीय बनते है

---

१ विशेष विवरण के लिए देखिए—म० म० पं० गोपीनाथ कविराज का 'भक्ति रहस्य' शीर्षक लेख 'कल्याण' हिन्दू संस्कृति अंक पृ० ४३६-४४४

२ प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वान्भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥
—मुण्डकोपनिषद् ३-४

एव अनुरूप रस का आस्वादन करते है। भोक्ता वे है, भोग्य वे है और भोग भी वे ही है—द्वितीय के लिए स्थान नही है, फिर भी अनन्त प्रकारो से द्वितीय का स्वाँग उन्होने रच रखा है। यह कृत्रिम द्वितीय वस्तुत· 'एकमेवाद्वितीयम्' है। अद्वैत की एक दिशा है, वह लीलातीत, निरञ्जन, निष्क्रिय है। पृथक् रूप मे शक्ति की वहाँ सत्ता ही नही है। सब शक्तियाँ वहाँ तिरोहित है। उस समय वे अपने भाव मे आप ही मगन है, सुषुप्त है। उसकी दूसरी एक दिशा है। वह निरन्तर लीलामय और सक्रिय है। दोनो ही नित्य और दोनो ही सत्य है। भगवान् अनन्त शक्ति-सम्पन्न है, इसी कारण उनकी अनन्त लीलाएँ है। उनकी सभी लीलाएँ स्वरूपत चिन्मय, आनन्दमय और अप्राकृत है। वे एक होकर भी अनन्त है। इसीलिए उनकी क्रीडाओ की इयत्ता नही है। रसरूप मे एक होने पर भी वे अनन्त है। इसीलिए उनके रसास्वादन के वैचित्र्य का भी अन्त नही है। स्मरण रखना होगा कि भगवान् की इस नित्य लीला मे सकोच नही है, विभाग नही है, द्वन्द्व नही है, अज्ञान नही है। जिसका प्रतीत होना है वह भी लीला का ही अङ्ग है। इस कारण वह भी चिन्मय, अप्राकृत और आनन्दमय है। लीला केवल अभिनय मात्र है। रसास्वादन के बहाने से रङ्गमञ्च मे उसका आयोजन होता है। वे स्वय अपने साथ आप क्रीडा कर रहे है। यह नित्य लीला है। यह सब चिन्मय राज्य का व्यापार है। वहाँ का आभास, विभाग भी चिन्मय है क्योकि अप्राकृत है। निमित्त भी वे ही है उपादान भी वे ही है। कर्ता वे है, कर्म वे है, करण वे है, केवल यही नही क्रिया भी वे है, एक चैतन्य रूपी वे विविध स्वाग बनाकर नाना प्रकारो से क्रीडा करते है, अपने साथ आप ही। और सब क्रीडाओ के मध्य मे भी वे लीलातीत रूप मे अपनी क्रीड़ा को स्वय ही देखते है। लीला करते भी वे है, देखने भी वे है, अपनी क्रीडा के अतीत भी वे है।[1] वे विश्वगीत है, विश्वनय है, परमानन्दमय घनीभूत प्रकाश स्वरूप है, सब कुछ उनमे अभिन्न रूप से स्फुरित हो रहा है, उनसे पृथक् कोई ज्ञाता नही है, ज्ञान नही है—सब ज्ञान वे है, सम्पूर्ण ज्ञेय भी वे है। एक मात्र वे ही अनन्त विचित्रताओ के साथ सर्वदा और सर्वत्र खेलते और खेलाते प्रतिभासमान हो रहे है। यही उनकी नित्य लीला है।[2]

---

१ तस्य पुनर्विश्वोत्तीर्ण विश्वात्मक परमानन्दमय प्रकाशैकघनस्य एवंविध मेवाखिलं अभेदेनैव स्फुरित न तु वस्तुतः अन्यं किंचित् ग्राह्यं ग्राहकं वा, अपितु स एवं यूत्थं। नानावैचित्र्यसहस्रैः स्फुरति।

—शक्ति सूत्र

२ देखिये आनन्दवार्ता।

पाँचवाँ अध्याय

अवतारतत्त्व तथा रामोपासना

हमारे देश के अति प्राचीन काल से किसी-न-किसी प्रकार से अवतारवाद प्रचलित है। ख्रीस्तीय धर्म समाज में भी (डिसेण्ट ऑव गॉड ऐज मैन) अर्थात् नर के रूप में भगवत्सत्ता का अवतरण होता है—यह सिद्धान्त प्रचलित है। इस्लाम धर्म में भी प्रकारान्तर से अवतारवाद नहीं है सो बात नहीं है। बौद्धों में, विशेषतः त्रिकायवादी महायानी बौद्धों में निर्माणकाय के रूप में अवतारवाद ने स्थान ग्रहण किया है। इससे सिद्ध होता है कि एक प्रकार से प्रत्येक धर्म में अवतारवाद-तत्त्व स्वीकृत हुआ है।

सभी धर्मसाधनाओं में अवतार-तत्त्व

वैष्णव पुराणों तथा शास्त्रों के आधार पर भगवत्स्वरूप के तीन प्रकार माने गये हैं और वे निम्नलिखित हैं—

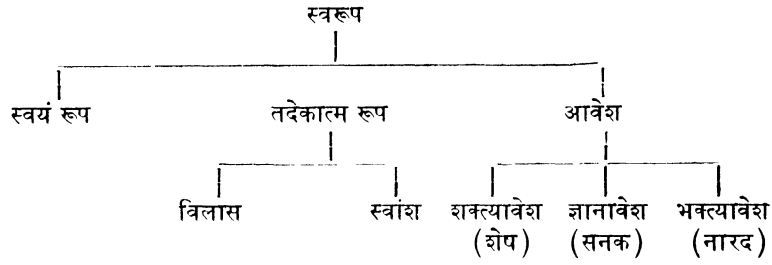

१—तुलनीय

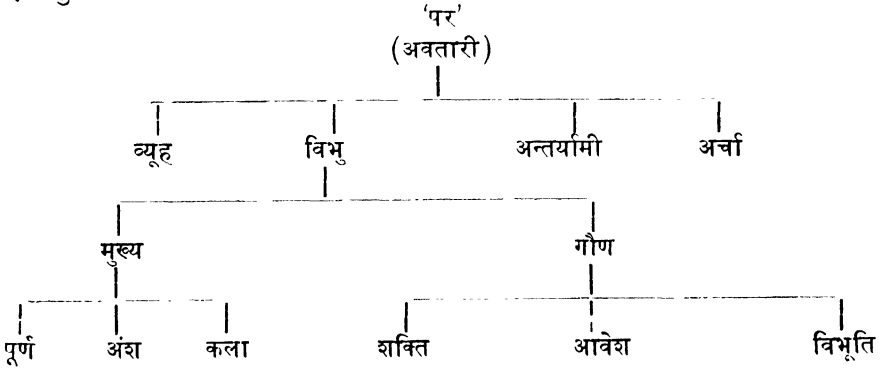

यदि किसी जीव मे विशेष ज्ञान-शक्ति अथवा क्रिया-शक्ति अथवा युगपत् दोनों का सञ्चार देखा जाय तो उसे आवेशावतार कहते है । उदाहरणार्थ––भक्तिशक्ति के अवतार श्री वेदव्यास जी, क्रियाशक्ति के अवतार पृथु जी एवं ज्ञानशक्ति के अवतार सनकादिक हुए ।

अवतार के और भी भेद है––पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार । पुरुषावतार के तीन भेद है––प्रथम पुरुष, द्वितीय पुरुष और तृतीय पुरुष । इन तीनों मे जो महत्तत्त्व का स्रष्टा कारणार्णवशायी, प्रकृति का अन्तर्यामी प्रथम पुरुष है, वह पर-व्योमस्थ संकर्षण का अंश है । जो समष्टि विराट् का अन्तर्यामी गर्भोदशायी एव ब्रह्मा का भी रचयिता द्वितीय पुरुष है, वह पर-व्योमस्थ प्रद्युम्नजी का अशावतार है और व्यष्टि विराट् का अन्तर्यामी क्षीरोदशायी जो तृतीय पुरुष है, वह परव्योमस्थ अनिरुद्ध का अश है ।

अवतार के भेद

पुरुषावतर

सत्त्वगुण के द्वारा उत्पन्न पालन करनेवाले क्षीरोदनाथ विष्णु ही है । रजोगुण के द्वारा गर्भोदशायी की नाभि से उत्पन्न सृष्टिकर्ता ब्रह्मा है । तमोगुण से सृष्टि के सहारकर्ता शिव का अवतार होता है । किन्तु जो सदाशिव है, वे निर्गुण एव स्वयंरूप विलास विशेष है, अत वे गुणावतार शिव के अंशी है ।

गुणावतार

सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार, नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण, कपिल देव, दत्तात्रेय, हयग्रीव, हस, पृत्श्णिगर्भ, ऋषभदेव, पृथु, नृसिह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, रघुनाथ, व्यास, बलदेव, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि प्रभृति लीलावतार कहे जाते है । प्रत्यक कल्प मे यह सब-के-सब अवतीर्ण होते है, अत इनको कल्पावतार भी कहा जाता है ।

लीलावतार

चौदह मन्वन्तर अवतारो के नाम है––यज्ञ, विभु, सत्यसेन, हरि, वैकुण्ठ, अजित, वामन, सार्वभौम, ऋषभ, विश्वक्सेन, धर्मसेतु, सुदामा, योगेश्वर, बृहद्भानु ।

मन्वन्तरावतार

सतयुग, त्रेता आदि चारो युगो मे क्रम से शुक्ल, रक्त श्याम और कृष्ण ये चार युगावतार होते है ।

युगावतार

पूर्वोक्त इन सब प्रकार के अवतारो मे कोई आवेश, कोई प्राभव, कोई वैभव, कोई परावस्थ नाम से अभिहित होते है । सनकादि, नारद और पृथु आदि 'आवेशावतार' है । मोहिनी, धन्वन्तरि, हंस, ऋषभ, व्यास, दत्तात्रेय, शुक्ल प्रभृति प्राभव है । प्राभव की अपेक्षा जो अधिक शक्ति के प्रकाशक है, उनको 'वैभवावतार' कहते है––वे है मत्स्य, कूर्म, नर-नारायण, वराह, हयग्रीव, पृत्श्णिगर्भ, बलभद्र, यज्ञ आदि । वैभवो की अपेक्षा भी जो अधिक शक्ति के प्रकाशक है उन्हे 'परावस्थ' कहते है । वे है––नृसिह, श्रीराम, श्रीकृष्ण ।

स्वयरूप मुख्य रूप है। यह अन्य रूपो की अपेक्षा नही करता, स्वत सिद्ध है। निखिलानन्द सन्दोह स्वय रूप भगवान् वही है जिन्हे योगी, ज्ञानी, सिद्ध खोजते रहते है। भगवान् का यह देह चिन्मय है आनन्दमय है। भक्त भगवान् के जिस रूपरस का पान करता है, वह केवल सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य, सौकुमार्य आदि का सार ही नही है, अपितु षड् ऐश्वर्य यश श्री आदि का भी एक मात्र आश्रय है।

स्वयं रूप

तदेकात्म रूप भी मूलत और स्वभावत सर्वथा स्वय रूप के समान है, परन्तु आकृति, वैभव, चरितादिक के कारण भिन्न दीखता है। इसकी अभिव्यक्ति (क) विलास के द्वारा हो सकती है जो शक्ति मे प्राय स्वय रूप के समान है–'प्रायेणात्मसम शक्त्या' जैसे नारायण जो पर वासुदेव के विलास है या (ख) स्वाश रूप मे जो शक्ति मे अपेक्षाकृत न्यून है, जैसे मत्स्य, वराह, सकर्षण आदि। स्वय भगवान् मे ६४ कला, भगवान् मे ६०, परमात्मा मे ५६ और जीव कोटि मे ५० कलाएँ होती है।

तदेकात्म रूप

किसी महापुरुष मे जब शक्ति, ज्ञान या भक्ति के द्वारा भगवान् का आवेश होता है तब उसे आवेशावतार कहते है। शक्तावेश के उदाहरण है शेष, ज्ञानावेश के सनकसनन्दन और भक्त्यावेश के नारद। ये रूप मायिक नही है, ये नित्य रूप है। द्विभुज का चतुर्भुज हो जाना उसी का प्रकाशमात्र है।

आवेश

अवतार का हेतु विश्वकार्य ही है। 'विश्वकार्य' का अभिप्राय है 'महत्' के उत्पादन के कारण जब प्रकृति मे क्षोभ होता है, उसका उपशमन अथवा दुष्टो के विमर्दन के द्वारा देवादिको का सुख-विवर्द्धन। गीता मे भगवान् कहते है कि जब-जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब-तब मै अपने आप को मनुष्य रूप मे सृष्ट करता हूँ।[1]

अवतार के सामान्य और विशेष हेतु

---

१ **अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।**
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥
जन्म कर्म च मे दिव्यम्.....

––गीता,अ० ४, श्लो० ६, ७, ८

गोस्वामीजी ने भी इसे अपने 'राम-चरितमानस' मे ज्यों-का-त्यों ले लिया है और कहते है कि जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म अभिमानी राक्षसो की अभिवृद्धि होती है तब-तब भगवान् मनुज रूप धारण करते है।[1]

परन्तु यह तो अवतार का सामान्य हेतु है। विशेष हेतु है---भक्तो मे प्रेमानन्द का विस्तार करना और विशुद्ध भक्ति का प्रचार करना तथा अपने भक्तो को लीला-रसास्वादन का सुख प्रदान करना।[2]

अवतारो के भेद प्रभेद

अवतार भिन्न-भिन्न रूपो मे प्रकट होते है, परन्तु उनके तीन मुख्य भेद है---(१) पुरुषावतार---प्रथम अवतार है जो निर्गुण होते हुए भी सगुण साकार हो जाता है। पुरुषावातार के तीन स्तर है---

क---यज्ञतत्व के सृष्टिकर्ता अर्थात् सकर्षण कारणोदकशायी। इन्हे प्रथम पुरुष कहते है।

ख---अण्डसस्थित अर्थात् प्रद्युम्न, गुणोदकशायी। ये निखिल ब्रह्माण्ड अर्थात् समस्त सृष्टि के अन्तर्यामी है। इन्हे द्वितीय पुरुष कहते है।

ग---सर्वभूतस्थित अर्थात् अनिरुद्ध, क्षीरोदकशायी अर्थात् व्यष्टि के अन्तर्यामी। इन्हे तृतीय पुरुष कहते है।

---

१ हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहिं सयानी॥
जब जब होइ धरम के हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहि बरनी। सीदहिं बिप्रधेनु सुरधरनी॥
तब तब प्रभुधरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग विस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥

सोई जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं॥

---श्रीरामचरितमानस बा० कां० दो० १२१

अपने जन के लिए ही भगवान् अवतार लेते है, यह गोस्वामी जी स्वतः स्वीकार करते है। अपने जन के लिए का सीधा अर्थ है---अपने जन की रक्षा करने के लिए, उसको प्यार देने के लिए, उसका प्यार पाने के लिए।

२ समुत्कण्ठितानां साधकानां प्रेमानन्दविस्तारणं विशुद्ध भक्ति प्रचारणंच --लघु भागवतामृत।
स्वलीलाकीर्त्तिविस्तारात् भक्तेष्वनुजिघृक्षया। अस्य जन्मादि लीलानां प्राकट्यहेतुरुत्तमः॥

---ब्रह्माण्डपुराण

इसका अर्थ यह है कि प्रकृति और पुरुष के सयोग से ही सृष्टि होती है। सयोग के बाद पुरुष की यह बुद्धि होती है कि मै एक हूं बहुत हो जाऊँ। इसी बुद्धि को महत्तत्त्व कहते है। जो पुरुष इस बुद्धि के कर्ता है, वे ही प्रथम पुरुष है। फिर समष्टि रूपा सृष्टि के जो अन्तर्यामी है वे है द्वितीय पुरुष। जब सृष्टि विन्यास हो चुका होता है और एक बहुत हो चुका होता है और अब उसमे पृथक्त्व या अहकार भाव का उदय हो चुका होता है। इसी पृथक्त्व के अन्तर्यामी भगवान् को तृतीय पुरुष कहते है।[1] इस प्रकार--

प्रथम पुरुष, द्वितीय पुरुष, तृतीय पुरुष

सकर्षण अहकार के अधिष्ठातृ देवता
वासुदेव चित्त के अधिष्ठातृ देवता
प्रद्युम्न बुद्धि के अधिष्ठातृ देवता
अनिरुद्ध मानस के अधिष्ठातृ देवता

(२) गुणावतार--गुणावतार गुणानुसार अवतार है जैसे सत्त्वगुण से युक्त अवतार विष्णु, रजोगुण से युक्त अवतार ब्रह्मा और तमोगुण से युक्त अवतार शिव है।

(३) लीलावतार--श्रीमद्भागवत मे इनकी सख्या २४ है--(१) चतु सन (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) इनका ज्ञान और भक्ति के प्रचार के लिए अवतार हुआ है। (२) नारद (सात्वत तन्त्र के रचयिता), (३) वराह (चतुष्पाद, कुछ के मतानुसार द्विपाद भी), (४) मत्स्य, (५) यज्ञ, (६) नरनारायण, (७) कपिल, (८) दत्तात्रेय, (९) हयशीर्ष, (१०) हस, (११) ध्रुवप्रिय अथवा पृत्निगर्भ, (१२) ऋषभ, (१३) पृथु, (१४) नृसिह, (१५) कूर्म, (१६) धन्वन्तरि, (१७) मोहिनी, (१८) वामन, (१९) परशुराम, (२०) राघवेन्द्र, (२१) व्यास, (२२) बलराम और कृष्ण, (२३) बुद्ध और (२४) कल्कि। इनके अतिरिक्त कल्पावतार भी है जो प्रति कल्प मे आते है।

प्रत्येक १४ मन्वन्तरो पर एक अवतार होता है जो इन्द्र के शत्रुओ का सहार करके देवताओ का मित्र हो जाता है। वे है क्रमश --(१) यज्ञ, (२) विभु, (३) सत्यसेन, (४) हरि, (५) वैकुण्ठ, (६) अजित, (७) वामन, (८) सार्वभौम, (९) ऋषभ, (१०) विष्वक्सेन, (११) धर्मसेतु, (१२) सुधामन्, (१३) योगेश्वर, (१४) बृहद्भानु। इनमे हरि, वैकुण्ठ, अजित और वामन प्रवर अर्थात् श्रेष्ठ और मुख्य अवतार है।

मनवन्तर अवतार

---

१ दे० महामहोपाध्याय श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती विरचिता 'भागवतामृतकणिका'।

चारो युगो मे एक-एक युगावतार होते है। सत्ययुग मे शुक्लवर्ण के, त्रेता में रक्तवर्ण के, द्वापर मे श्याम वर्ण के और कलिकाल मे कृष्णवर्ण के। आवेश, प्राभव, वैभव और परत्व भेद से प्रत्येक कल्प मे ये अवतार चार प्रकार के हो जाते है। अंशावतार के उदाहरण ऊपर दिये जा चुके है। सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, नारद, पृथु आदि औपचारिक अशावतार है। भगवान् इनमे प्रवेश कर अवतार कोटि तक पहुँचा देते है। यह उत्क्रमण (Ascent) का मार्ग हुआ। प्राभव और वैभवावतार मे मोहिनी, हस, शुक्ल आदि है जो अपना कार्य समाप्त कर अन्तर्हित हो गये। इनके दूसरे प्रकार मे धन्वन्तरि, ऋषभ, व्यास, कपिल आदि शास्त्रकार है। वैभव अवतार मे कूर्म, मत्स्य, नर-नारायण, वराह, हयशीर्ष, पृष्णिगर्भ, बलराम आदि १४ मन्वन्तर अवतार है। इन अवतारो के अपने-अपने विशिष्ट लोक भी है, जैसे कूर्म का महातल, मत्स्य का रसातल, नर-नारायण का बदरी, द्विपाद वराह का महलोक, चतुष्पाद वराह का पाताल, हयशीर्ष का तलातल, पृष्णिगर्भ का ब्रह्मा के जनलोक के ऊपर, बलराम का श्रीकृष्ण के साथ उन्ही के लोक मे—वैकुण्ठ का स्वर्गलोक, अजित का ध्रुव लोक, त्रिविक्रम का तपोलोक और वामन का भुव लोक। परन्तु ये सभी अवतार परव्योम या महा वैकुण्ठ के नीचे वाले लोको मे ही रहते है।[1]

युगावतार

परवस्था का अर्थ है सम्पूर्णावस्था। इस अवस्था मे अवतार षडैश्वर्य सम्पन्न एव पूर्णतम होते है। ये है नृसिह, राम और कृष्ण। राम अयोध्या और महावैकुण्ठ मे रहते है। पद्मपुराण के अनुसार राम = नारायण, लक्ष्मण = शेष, भरत = चक्रसुदर्शन, शत्रुघ्न = पाँचजन्य। पुराणो के अनुसार कृष्ण चार स्थानो मे रहते है। व्रज, मथुरा, द्वारिका और गोलोक। भगवान् की सोलह कलाएँ उनकी सोलह शक्तियाँ है। उनके नाम है—श्री, भू, कीर्ति, इला, लीला, कान्ति विद्या, विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईषाना और अनुग्रहा।

पूर्णावतार

अवतार तत्त्व के मूल मे यह सिद्धान्त है कि एक रूप मे अपने नित्यलोक मे नित्य विहार होता है तथा दूसरे रूप मे जगत्प्रवृत्ति होती है। ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसका सारांश यह है कि (१) परमात्मा एक होते हुए भी अपने को अनेक रूपो मे प्रकट कर सकते है। उनके सभी रूप पूर्ण, सत्य, सनातन और केवलैक-बुद्धिगम्य है।

अवतार तत्त्व का मूल सिद्धान्त

---

१ दे० विष्णुधर्मोत्तर, भागवत्पुराण, पद्मपुराण।

२ द्रष्टव्यः—

अहं वहामीह गति तदीयां
रूपद्वयं नित्यमतोऽस्य विष्णोः।

(२) अवतार नित्यरूप है, मायिक नही।

(३) सभी अवतार सच्चिदानन्द-विग्रह है—उसमे परात्पर ज्ञान, परात्पर सत्ता और परात्पर आनन्द का समवाय है और मोक्ष देनेवाले है।

(४) कुछ अवतार मनुष्य रूप मे होते है और कुछ मे मानुषी चेष्टा होती है।

(५) अवतारो का 'मानुषी तनु' भी दिव्य है और उसमे अपूर्णता का लेश भी नही होता।

(६) 'मानुषी तनुमाश्रित' होने पर भी अवतार मे दिव्य शक्तियाँ और दिव्य पूर्णत्व है और इसलिए अतिर्मत्य लीला मे पूर्णत समर्थ है।

(७) कुछ अवतार भूतकाल मे हुए, परन्तु नित्य होने के कारण वे आज भी पूज्य ही है। प्रत्येक अवतार की विशिष्ट देह-लीला होती है और उनका अपना विशिष्ट लोक भी होता है।

(८) अवतार भगवान् के अश है—इस अर्थ मे कि इस धरातल पर आने के साथ ही वे अपने दिव्य अथ च पूर्ण रूप मे अपने निज धाम मे विराजमान रहते है।

(९) अवतार का मुख्य हेतु है—विश्व का कल्याण तथा प्रेम का आस्वादन और भक्ति का प्रचार।

वैसे तो अवतारो की संख्या अनेक है, परन्तु इनमे दस अवतार ही मुख्य है और इनमे भी राम और कृष्ण की प्रधानता है। ये दोनो ही विष्णु के अवतार है और इनका महत्त्व परम प्राचीन एव अत्यन्त व्यापक है। इसमे मुख्य हेतु इनकी 'मानवीयता' ही है। मानवीय रस की प्रचुरता के कारण ही राम और कृष्ण की उपासना बहुत ही पुरानी और अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है। रामावतार का महत्त्व भी बहुत अधिक रहा है। भगवान् रामचन्द्र सदा दुष्टदमनकारी और मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप मे चित्रित हुए है। १५वी शताब्दी के परवर्ती साहित्य मे राम के लीला-गान की प्रथा चली, परन्तु इस लीला मे भी भगवान् श्री रामचन्द्र का दुष्ट दमनकारी और सन्त-हितकारी रूप ही मुख्यत लक्ष्य रहा, उनका मर्यादा पुरुषोत्तम रूप कथमपि म्लान नही हुआ, परन्तु शनै -शनै. १६वी शताब्दी के बाद के साहित्य मे भगवान् राम का चरित्र भी भक्तो के लीला-विहार का साधन बनता और माधुर्य-भावना से ओत-प्रोत होता गया। यहाँ तक कि १८वी शताब्दी के बाद के राम-साहित्य मे प्रणय–विलास और रासलीला का अत्यन्त विशद एव व्यापक विन्यास हुआ और प्रेमी भक्तों की एक धारा-सी छूट पडी जो भगवान् राम की परम प्रेमास्पद, परम प्रिय-तम के रूप मे उपासना करने लगे और इस प्रकार रामावत सम्प्रदाय मे भी, कृष्ण भक्ति शाखा

मानवीय रस

एकेन नित्यं नियतो विहार-
स्तथा द्वितीयेन जगत्प्रवृत्तिः। ——हंसविलासे, ४७ उल्लासे।

श्रृणुतेऽहं प्रवक्ष्यामि विष्णोः रूपं द्विधामतम्।
नित्यं विहार एकेन चान्येन सृष्टि रेव हि॥

——आदि पुराण १०।१६

की भाति, मधुर भाव की उपासना का रूप खुल कर उन्मुक्त एव उद्दाम रूप में, सामने आया। मानवी तनु का आश्रय लेने के कारण भगवान् की मानवी लीला का रसास्वादन सहज रूप मे किया जा सकता है और मनुष्य की भाँति ही मिलन-विरह, सुख-दु ख, हर्ष-विषाद, आविर्भाव और अन्तर्धान के कारण मानव-मन को इन लीलाओ ने विशेष रूप मे मोहित किया और रस-सिक्त किया है और फलस्वरूप हमारा ९९ प्रतिशत काव्य साहित्य इन्ही दो अवतारो को लेकर रचा गया है।

भगवान् राम की लीला मे माधुर्यभाव का प्रवेश क्यो और कैसे हुआ? इसका विचार हम आगे करेगे, परन्तु इस सम्बन्ध मे ध्यान रहे कि यहाँ माधुर्य मे भी पूरी मर्यादा है। अस्तु

अवतारवाद मे वैज्ञानिक विकासवाद

बहुत-से लोग अवतारवाद मे वैज्ञानिक विकासवाद का ही समर्थन करते है। पहले जल-जन्तु (मत्स्यादि) फिर जल-थल मे रहनेवाले (कच्छपादि) फिर केवल स्थलवासी (वराहादि) फिर अर्ध पशु, अर्ध मनुष्य (नृसिंह) फिर मनुष्य का लघु रूप (वामन) फिर दर्पमय क्षत्रियत्व (परशुराम) और बाद मे मनुष्यत्व का पूर्ण विकास और हमे राम-कृष्ण तथा बुद्ध के मानव अवतारो के दर्शन होते है। इसके अतिरिक्त शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अर्थो मे भी दशावतारो का वर्णन है।[1] अवतारो मे श्रीकृष्ण की पूजा सबसे प्राचीन मानी गई है। जैकोबी का कथन है कि पहले इनकी पूजा एक जातीय वीर पुरुष (नेशनल हीरो) के रूप मे होती थी। उसके बाद वैदिक काल के अन्त मे कृष्ण आभीरो के एक जातीय देवता के रूप मे पूजे जाने लगे। गोपाल कृष्ण और वासुदेव कृष्ण[2] जो पहले अलग-अलग थे, अब एक ही व्यक्तित्व मे केन्द्रित हो कर पाञ्चरात्र धर्म के प्रधान आराध्य देव बन गये। महर्षि पतञ्जलि के महाभाष्य मे[3] कृष्ण और अर्जुन का उल्लेख मिलता है। पतञ्जलि ने कृष्ण का उल्लेख केवल एक वीर क्षत्रिय के रूप मे ही नही, वरन् दैवी शक्ति सम्पन्न महापुरुष के रूप मे किया है[4]।

बूलर के मतानुसार जैन धर्म के बहुत पहले ही (ई० पू० आठवी शताब्दी) मे इस धर्म का उदय हो चुका था। तैत्तरीय अरण्यक एवं छान्दोग्य उपनिषद् मे (छठी सदी ईसा पूर्व) कृष्ण का उल्लेख आ चुका है।[5] चौथी शताब्दी मे मेगास्थनीज ने इन्ही का हरि कृष्ण (Heracles)

---

१ द्रष्टव्य—पुरान्स इन दि लाइट आव माडर्न साईन्स। पृ० २०९-२१३

२ The Early History of the Vaisnava Sect. D.Hemchandra Ray Choudhury: Chapters on Vaisnavism and Vasudeva. The Life of Krishna Vasudeva Pages 10-118

३ महाभाष्य—५, ३, ९५।

४ महाभाष्य—४, ३, ९८।

५ तद्वैतद्घोर आंगिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव, छां० ३, १७, ६।

के नाम से अभिहित किया है, और ये शूरसेन देश मे पूजित थे जहाँ कि मथुरा नगरी (Methora) बसी है और जहाँ से यमुना नदी (Gaboras) बहती है। भाण्डारकर ने स्पष्टत श्रीकृष्ण मे सात्वत जाति का सम्बन्ध होने से इस धर्म का नाम 'सात्वत धर्म' माना है।[1] यह सात्वत धर्म ही 'भागवत् धर्म' कहलाया। 'भागवत' का अर्थ है भगवान् का भक्त। ई० पू० १४० मे तक्षशिला मे ग्रीक सम्राट् अन्तियल्किदास (Antialkidas) का प्रतिनिधि हिलियोगस और भागभद्र तथा विदिशा के राजा अपने नाम के साथ 'भागवत' उपाधि का व्यवहार करते थे। इनके द्वारा भगवान् वासुदेव के मन्दिर तथा गरुडध्वज स्थापित करने का उल्लेख उस समय के बैसनगर के लेखो मे मिलता है।[2] तीसरी से पाँचवी शताब्दी तक गुप्त सम्राट् भागवत धर्म के उपासक थे। इन्ही के समय श्रीमद्भागवत पुराण तथा श्रीविष्णु पुराण आदि की रचना मानी जाती है। अपनी मुद्राओ एव ताम्रपत्रो मे वे अपने नाम के सामने 'परम भागवत्' उपाधि बडे गर्व के साथ लिखते थे। मालव, मगध, कन्नौज, गौड, तथा गुर्जर मे इस धर्म का विशेष प्रचार हुआ। भगवद्गीता के समय श्रीकृष्ण वासुदेव की 'परम पुरुष' के रूप मे उपासना हो रही थी। घोसुण्डी मे मिले हुए शिलालेखो मे वासुदेव और सकर्षण के लिए 'पूजा शिला' और 'नारायण वाटिका' निर्माण करने का उल्लेख है।[3] इससे प्रकट होता है कि उस समय पाँचरात्र पद्धति स्थापित हो चली थी जिसमे वासुदेव के चतुर्व्यूहो की पूजा प्रचलित थी। अब भागवत धर्म ही 'पाँचरात्र' के नाम से पुकारा जाने लगा था। पाँचरात्र का सामान्यत अर्थ है 'पुरुष' द्वारा पाँच रात्रियो तक यज्ञ आचार। तदनन्तर 'पुरुष' और 'विष्णु' एक हो गये और तब श्रीकृष्ण वासुदेव और नारायण मे एक रूप होकर भागवत धर्म या पाँचरात्र के प्रधान आराध्य देव बन गये। मैकनिकल ने 'इण्डियन थेइज्म' नामक अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ६५ पर लिखा है कि श्रीकृष्ण पूजा का प्रभाव बौद्धधर्म एव जैनधर्म पर अत्यन्त स्पष्ट है।

राम कथा की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध मे बहुत लोगो को सन्देह है। अवश्य ही राम भक्ति कृष्ण भक्ति की अपेक्षा आधुनिक है।[4] ऋग्वेद मे राजा 'इक्ष्वाकु' का नाम आया है। इसी प्रकार अथर्ववेद मे भी 'इक्ष्वाकु' शब्द एक बार आया है।[5] वैदिक साहित्य मे 'दशरथ' का बस एक बार उल्लेख मात्र मिलता है। ऋग्वेद की एक दानस्तुति मे अन्य राजाओ के साथ-

---

१ भाण्डारकर—इण्डियन एण्टीक्वैरी।

२ देव देवस वासुदेवस गरुडध्वजो कारितो हिलिउडोरेन भागवतेन दिवसपुत्रेण तखसीलकेन।
—इपिग्राफिया इण्डिका वोल्युम० १०

३ जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसायटी १८७७ पार्ट १ पृ० ७८।

४ यस्यै इक्ष्वाकुरूप व्रते रैवानमारय्येधते (जिनकी सेवा में प्रतापवान् और धनवान् इक्ष्वाकु की वृद्धि होती है।)

५ त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं १९.३९.९

साथ दशरथ की भी प्रशसा की गई है।[1] परन्तु 'राम' शब्द का व्यवहार ऋग्वेद मे एक प्रतापी राजा के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।[2] इसी प्रकार वैदिक साहित्य मे सीता का नाम दो स्थलो पर उपयुक्त हुआ है। समस्त वैदिक साहित्य मे सीता ऋषि की अधिष्ठात्री देवी है। तैत्तरीय ब्राह्मण मे 'सीता सावित्री' सूर्य की पुत्री है।[3] सीता का उल्लेख ऋग्वेद की एक ऋचा मे हुआ है--

इन्द्र सीता निगृहणातु ता पूषा न यच्छतु।
सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा समाम्॥

ऋ० अ० ३, अनु० ८.४.८

यहाँ सीता के साथ इन्द्र शब्द आया है। कुछ लोगो का अनुमान है कि इन्द्र का ही नाम राम था। गृह्य सूत्रो मे राम और सीता का जहाँ - जहाँ उल्लेख है वहाँ सीता हल से बनी हुई पक्तियो का नाम है और राम पानी बरसानेवाले इन्द्र देवता का नाम है। सीता इन्द्र की भार्या है।[4] अभिप्राय यह कि ऋग्वेद से लेकर अथर्ववेद के कुछ मन्त्र ऐसे है, जिनमे सीता की देवी रूप मे प्रार्थना की है। यथा--

सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा न सुमना असो यथा न सुफला भुव॥
घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैदेवैरनुमता मरुद्भि.।
सा न सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत्पिवमाना॥[5]

हे सीते! हम तेरी वन्दना करते है। सौभाग्यवती! अपनी कृपा दृष्टि से हमारी ओर अभिमुख हो, जिससे तू हमारे लिए हिताकाक्षिणी होवे और जिससे तू हमारे लिए सुन्दर फल देने वाली होवे। घी और मधु से सानी हुई सीता विश्व मे देवताओ और मरुतो से अनुमोदित होवे।

---

१ चत्वारिंशद्दशरथश्च क्षोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति। --ऋग्वेद १.१२६.४

२ प्र वहुशीमे वृषवाने वने प्रण्ये वोचमसुरे ये युक्तवाय पंचशतास्मयु यथा मघवत्सु विश्राव्येषाम्।
--ऋग्वेद १०.९३१४

३ तैत्तिरीय ५.२.५.५।

४ यस्या भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवतिकर्मणाम्।
इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीतां सा मे त्वनपायिनी भूयात्कर्मणि कर्मणि स्वाहा।
--पारस्कर्य गृह्यसूत्र ११, १७, ३

इन्द्र पत्नी सीता का मे आह्वान करता हूँ जिसके तत्त्व में वैदिक और लौकिक दोनों प्रकार के कार्यो की विभूति निहित है। वह सीता सब कार्यों मे मेरी सहायता किया करे।

५ अथर्ववेद १७, ८, ६।

हे सीते ! ओजस्विनी और घी से सींची हुई, तू दूध के साथ हमारे पास विद्यमान रह। महाभारत मे राम-कथा विद्यमान है। द्रोणपर्व मे सीता का उल्लेख कृषि की अधिष्ठात्री देवी एव सब बीजो को उत्पन्न करनेवाली के रूप मे हुआ है।[1] हरिवंश मे दुर्गा की एक स्तुति है जिसमे कहा गया है, 'तू कृषको के लिए सीता है यथा प्राणियो के लिए धरणी। श्रीमद्भागवत् पुराण तथा श्री विष्णु पुराण मे राम-कथा है, परन्तु उसका सम्यक् सुव्यवस्थित रूप श्रीमद्वाल्मीकि रामायण मे ही मिलता है, फिर भी, यहाँ, सीता अयोनिजा है और उनका पृथ्वी मे ही तिरोधान हो जाता है जो वैदिक सीता के व्यक्तित्व से प्रभावित है।

अब हम यहाँ यह देखना चाहते है कि रामोपासना का क्रमविकास किस प्रकार हुआ तथा किस-किस काल मे किस-किस भाव की मुख्यता रही है ? भगवान के साथ दास्य, सख्य, वात्सल्य एव मधुर भावो मे किसी भी भाव से युक्त या सबधित होने पर उस भाव की रसात्मक अनुभूति का नाम 'भक्ति' है। दूसरे शब्दो मे यह भगवान के प्रति 'परमप्रेम' एव 'परानुरक्ति' है। भक्ति भक्त और भगवान् के बीच मधुर लीला-विलास है। भक्त के हृदय मे भगवान् के लिए और भगवान् के हृदय मे भक्त के लिए जो वासना, रति या वेदना है उसी का नाम है भक्ति। यह वेदना अथवा मिलन की वासना भगवान मे भी है और भक्त मे भी। अस्तु, जब एकान्त मे भक्त और भगवान् परस्पर लाड लडाते है और हृदय से हृदय लगाकर प्राण से प्राण मिलाकर दो 'एक' हो जाते है और फिर आनन्द-विलास के लिए दो हो जाते है उसे ही सामान्य भाषा मे भक्ति कहते है। यह कहना कठिन है कि भक्त और भगवान मे कौन है प्रेमी और कौन है प्रेमास्पद। दोनो ही परस्पर प्रेमी और प्रेमास्पद है, दोनो ही के हृदय मे विरह की व्यथा है मिलन की तीव्र अभिलाषा है और विरह का यह एक निमिष सहस्र कल्पों की तरह दीर्घ लगता है।

रामोपासना का क्रम-विकास

परमात्मा से ही यह सृष्टि विस्तार है। मूलत वही एक है, उसकी इच्छा हुई अनेक हो जाऊँ। उसकी इसी वासना से यह सारा प्रपच विस्तार हो गया।[3] अस्तु, एक से दो हुआ और

---

१ **मद्राजस्य शल्पस्यध्वनाग्रे भिशिखामिव।**
सौवर्णी प्रतिपश्याम सीताभप्रतिमां शुभाम्॥
सा सीता भ्राजते तस्य रथमास्याय मारिष।
सर्वबीजविरुढेव यथा सीता श्रिया वृता॥ ---महाभारत, द्रोण पर्व, ७.१०५.१८-१९

२ **कर्षकाणां च सीतेति**
भूतानां धरणीति च। हरिवंश २.३.१४

३ **स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते। स द्वितीयमैच्छत् स हैतावानास यथा स्त्रीयुवासौ संपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधातापयत्ततः पतिश्च पत्नी चापपतां तस्मादिदमर्धवृगलमिव स्व इति।** ---वृहदारण्यक ४, ३

दो से अनेक। परन्तु अनेक के मन-प्राण मे पुन अपने उद्गम उसी 'एक' से मिलने और मिलकर सर्वथा मिल जाने, उसी मे समा जाने की लालसा अत्यन्त उत्कट और अदम्य है और यही है जीव-जीवन की एकमात्र साध। 'हस' की 'परम हस' से मिल कर कुरैल करने की अदम्य लालसा ही जीव को यहाँ, इस मिट्टी की काया मे, बेचैन किये रहती है। अस्तु।

उपासना तत्त्व का आदि हेतु

आर्य जाति ने आरम्भ से सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड मे 'ईशावास्यमिद सर्व' 'सर्व खल्विद ब्रह्म', 'नेहनानास्ति किचन', 'वासुदेव सर्वमिति' 'तत्वमसि' की दिव्य भावना को ग्रहण किया और मत्रकाल मे भी इन्द्र, वरुण, यम, अग्नि, वायु आदिदेवो मे एक ही ब्रह्म का साक्षात्कार किया।[1] यह निर्विवाद है कि 'सुख' के लिए ही उपासना का आरम्भ हुआ। वह सुख प्रारभ मे तो लौकिक 'अभ्युदय' को दृष्टि मे रखता था, तदनन्तर उसमे पारलौकिक 'नि श्रेयस्' भी आ गया। दु ख की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्द की अभिप्राप्ति ही उपासना की प्रेरक भावना रही है। धीरे-धीरे इसमे लोकोपकार अथवा लोकहित की भावना भी सम्मिलित हो गई और यज्ञयाग का प्रवर्तन हुआ। अस्तु, सुख का 'लोभ', दु ख का 'भय' और स्वामी के उपकार के प्रति 'कृतज्ञता' का भाव ही पूजा का कारण हुआ। इसीलिए आरम्भ मे हृदय पक्ष का पूज्य के साथ पूरा योग नही था।[2] लोभ, भय और कृतज्ञता के साथ-साथ विशिष्ट मानव हृदय मे मनन और भावुकता की भी प्रवृत्ति विद्यमान थी और इसी का परिणाम है ऋग्वेद का पुरुषसूक्त। भगवान् को 'सहस्र शीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपाद्' के भव्य एव दिव्य रूप मे पाकर मानव हृदय के आनन्दोल्लास का कुछ वार-पार न था।

ऋग्वेद का यह विराट् 'पुरुष' ही 'सगुण' परमेश्वर नारायण' (नरसमष्टि का आश्रय) रूप मे गृहीत हुआ। अन्न, प्राण, मन, विज्ञान एव आनन्द आदि रूपो मे जिस अव्यक्त ब्रह्म की उपासना होती थी[3] उसी के सहज सान्निध्य का लोभ या उत्कण्ठा, उसके मनोहारी हृदयाकर्षक रूप नारायण के नराकार रूप मे हुई। बाहर और भीतर समानरूप से भगवान् की व्यापक सत्ता का अनुभव भक्ति मार्ग की प्रधान विशेषता है।

---

१ इंद्र मित्रं वरुणमग्निमाहरथो
दिकस्स सुपर्जो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ ——ऋग्वेद १-२, १६४-६६

२ दे० आचार्य शुक्ल जी——'सूरदास' पृ० ९।

३ तुलनीय——जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः।
सम्भूतं षोडशकलामादौ लोकसिसृक्षया॥——भागवत १, ३, १

४ अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनोब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।
——तैतिरीय उपनिषद्, भृगुवल्ली

ऊपर कहा गया कि उपनिषदो मे बोधिवृत्ति और रागात्मिका वृत्ति दोनो ही सम्मिलित है अर्थात् ज्ञान और उपासना, बुद्धितत्त्व और हृदयतत्त्व दोनो का मेल है।[1] जहाँ से हृदयतत्त्व को विशेष प्रधानता मिलने लगी, वही से भक्ति मार्ग का आरम्भ मानना चाहिए। महाभारत के शान्ति पर्व मे नारायणीयोपाख्यान मे वासुदेव की उपासना इस लोक मे कैसे चली और भागवत-धर्म का उदय कैसे हुआ, स्पष्ट वर्णन मिलता है। महाभारतकार ने भीष्म से कहलाया है कि भागवत धर्म के आदि प्रवर्त्तक मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु और वशिष्ठ तथा स्वायभुव मनु थे। फिर यह विद्या बृहस्पति को प्राप्त हुई और बृहस्पति से राजा वसु को मिली। राजा वसु ने अहिंसक अश्वमेध यज्ञ किया, जिसमे स्वय यज्ञपुरुष भगवान् श्री हरि ने आकर अपना भाग लिया। परन्तु भगवान् के दर्शन केवल वसु उपरिचर को हुए। बृहस्पति इस पर अप्रसन्न हुए तो प्रजापति के पुत्रो ने समझाया कि बिना भक्ति के भगवान् का दर्शन नही हो सकता।

इस नारायणीयोपाख्यान से कई बाते स्पष्ट सामने आती है। मुख्यत यह कि भागवत धर्म का मार्ग लोककल्याण पक्ष को लेकर चला हुआ प्रवृत्ति मार्ग था। दूसरा यह कि ब्रह्म का सगुण रूप इस मार्ग मे उपासना के लिए गृहीत हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति लोक रक्षा, पालन और रजन करनेवाले के रूप मे हुई होती है और उसी मे निर्गुण-सगुण, व्यक्त-अव्यक्त, मूर्त-अमूर्त सब अन्तर्भूत है। वही नारायण वासुदेव हरि है। ईश्वर के स्वरूप पर मन का आकर्षित होना या लुभाना ही भगवत्प्रेम या भक्ति है। यह प्रेम या भक्ति निर्हेतुक होती है।[2] अस्तु।

भागवत धर्म

इस नारायणी-उपाख्यान से यह भी स्पष्ट है कि महाभारत के समय मे नारायण या नारायणकृति भगवान् की गूढ भक्ति एक विशेष सम्प्रदाय मे परम्परा द्वारा प्रचलित थी। वही नारायण बासुदेव कृष्ण के रूप मे इस काव्य मे प्रकट हुआ और चूँकि नारायणी धर्म के इस पक्ष का प्रवर्तन सात्वतो-यादवो के बीच विशेष रूप मे हुआ, इसी से इसे 'सात्वत धर्म' भी कहते है। अभिप्राय यह कि प्राचीन नारायणीय धर्म के अनेक पक्ष थे, जो 'नारायण' रूप मे उपासना करते थे अथवा नरसिंह, वामन, दाशरथि राम की एकान्त उपासना ले कर चले। भगवान् राम की उपासना का आरम्भ कब से और कहा से हुआ है, इस सम्बन्ध मे निश्चित रूप मे कुछ भी कहना कठिन है, पर यह निर्विवाद है कि रामोपासना के आदि प्रवर्तक शिव है। स्वय वाल्मीकि को भी नारद ने भगवान् विष्णु के अवतार के रूप मे रामोपासना की विधि बतलाई।[3] इसका प्रचार पहले से भी दक्षिण भारत मे विशेष रूप मे मे था। पुरातत्त्व के विद्वानो के मत से रामायण का निर्माणकाल ईसवी

---

१ दे० आचार्य शुक्ल जी—'सूरदास' पृ० २०
दे० इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एंड एथीक्स —'भक्ति' 'भक्तिमार्ग' अध्याय

२ अहेतुव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे। —भागवत

३ पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः।
—बा० कां० वाल्मीकिय रामायण

सन् के पूर्व छठी शती से चौथी शती के मानते है। उस समय रामोपासना का प्रचार विशेष रूप से था। उसका कोई प्रबल प्रमाण नही मिलता। ईसवी सन् के दूसरी शती मे मौर्यवश के अनन्तर इस देश मे गुप्त वश का आधिपत्य हुआ और उसमे वैदिक धर्म की पुनर्जागृति हुई, रामायण महाभारत का प्रचार विशेष रूप से हुआ और राम-कृष्ण अवतार रूप मे विशेषत पूजित हुए।'राम-पूर्वतापनी' से भी यह सिद्ध होता है कि इसी समय से रामोपासना का विशेष प्रचार रहा।

'युद्धकाड' के पैंतीसवे अध्याय मे रावण के वध हो जाने पर सीता की अग्नि परीक्षा देखकर देवता कहते है—

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदा विभुः।
उपेक्षसे कथ सीता पतन्ती हव्यवाहने
कथ देवगणश्रेष्ठमात्मान नावबुध्यसे॥

अगस्त्य सुतीक्ष्ण सवाद मे भी रामोपासना का वर्णन है। वायुपुराण मे रामावतार का वर्णन है। रघुवश के दसवे सर्ग मे कालिदास ने 'सोऽह दाशरथि भूत्वा' के द्वारा राम के परमेश्वरत्व को स्वीकार किया है। ई० स० १०१८ से इसका विशेष विस्तार हुआ। भवभूति ने भी राम को परमोपास्य देवता के रूप मे माना है।

रामोपासना वैदिकी है या तान्त्रिकी, यह प्रश्न भी कम गभीर नही है। 'मत्र रामायण' मे नीलकण्ठ ने वैदिक मत्रो के उद्धरण देकर रामचरित का प्रतिपादन किया है। 'राम तापनी' उपनिषद् के उपक्रम मे राम का महाविष्णु का अवतार माना है।[1] अस्तु, यह वैदिकी है यह कहा जा सकता है। श्रुतियो मे अनेक स्थानो पर राम को पूर्ण ब्रह्म के रूप मे कल्पना है। 'नारद पाचरात्र' मे तथा 'शारदा तिलक' मे रामोपासना का वर्णन है, अतएव यह तान्त्रिक उपासना भी है। अतएव रामोपासना न केवल वैदिकी है और न केवल तान्त्रिकी, वरच वैदिकी तान्त्रिकी दोनो ही है। सन ईसवी की सातवी शताब्दी मे दक्षिण भारत मे वैष्णव भक्ति ने बडा जोर पकडा। यही अलवार वैष्णवो का समय है। भाण्डारकर का कथन है कि यद्यपि ईसवी सन् के प्रारभ मे ही राम विष्णु के अवतार माने गये थे तथापि उनकी विशेष रूप से प्रतिष्ठा ग्यारहवी शताब्दी के लगभग ही प्रारभ हुई। डा० भाण्डारकर के मत से रामभक्ति की विशेष प्रतिष्ठा भले ही ग्यारहवी शताब्दी मे हुई हो, परन्तु बीजरूप मे यह आलवार भक्तो के स्तोत्रो मे पाई जाती है। अत इसका उत्पत्तिकाल कम-से-कम सातवी शताब्दी माना जाना चाहिए। आलवारो की सख्या १२ है। इनमे कुलशेखर आलवार की रचनाओ मे प्रौढ रामभक्ति का प्राचीनतम निरूपण सुरक्षित है। इन्ही आलवार वैष्णवो की परम्परा मे सुविख्यात वैष्णवाचार्य श्री रामानुजाचार्य का प्रादुर्भाव

रामोपासना : वैदिकी या तांत्रिकी?

---

१ चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दाशरथे हरौ।

२ दे० डा० भाण्डारकर : वैष्णविज्म-शैविज्म।

हुआ। यह निर्विवाद है कि आलवार भक्तो ने भगवान् कृष्ण की ही प्रेमभक्ति के गीत गाये और इनमें 'अन्दाल' नाम की एक महिला भक्त मुख्य है, जो एक स्थान पर कहती है--'अब मै पूर्ण यौवन को प्राप्त हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त और किसीको अपना पति नही बना सकती।' परन्तु कतिपय आलवार भक्तो मे राम के प्रति भी बडे ही कोमल और मर्मस्पर्शी भक्ति अंकित है। इनमे कुलशेखर आलवार मुख्य है। श्री शठकोपाचार्य की 'सहस्र गीति' मे भगवान राम के प्रति एक बडी ही मधुर भावमयी प्रार्थना है, जिसका भावार्थ यह है, हे प्रभो, आप का वियोग-कष्ट मन मे इतना बढ गया है कि शरीर को लाह की तरह गलाकर पतला कर दिया है। हाय! आप इतने निर्दयी बन बैठे कि इसकी खबर भी नही लेते। आपने राक्षसो की पूरी लका को समूल नाश करके शरणागतरक्षक की प्रसिद्धि पाई है परन्तु आपकी इस निर्दयता को आज क्या करू? फिर भी यह स्वीकार करना पडता है कि कृष्णावतार की उपासना रामावतार की अपेक्षा पुरानी और व्यापक है। आरम्भ मे तो भगवान् श्री कृष्ण का दुष्टदलनकारी रूप ही मुख्य था, परन्तु आगे चलकर उनका मधुर रूप ही भक्तो के हृदय मे विशेष रमा। भागवत मे भगवान् माधुर्य-विभूति की प्रधानता दी गई, ऐश्वर्य, शक्ति, शील इत्यादि लोकरक्षा द्वारा होनेवाली विभूतियो को गौण स्थान प्राप्त हुआ। महाभारत मे प्रतिष्ठित श्री कृष्ण के शील और सौन्दर्य पर मुग्ध भक्त उनके ज्वलन्त तेज और ऐश्वर्य से स्तम्भित और महत्त्व से प्रभावित होकर थोडा दूर हटा हुआ भक्ति की दिव्य अनुभूति मे लीन होता था। भागवत ने कृष्ण की वह मधुर मूर्ति सामने रखी, जो प्यार करने योग्य हुई। उस ढग का प्यार जिस ढंग के प्यार की प्रेरणा से माता-पिता अपने बच्चे को दुलारते-पुचकारते है, उस ढग का प्यार जिस ढग के प्यार की उमग से प्रेमिका अपने प्रियतम का ललककर आलिगन करती है। भागवत ने भगवान् को प्यार करने के लिए भक्तो के बीच खडा कर दिया। इस सम्बन्ध मे प्रसगत कृष्णोपनिषद् की वे पक्तिया ध्यान मे रखने योग्य है।[४]

---

१ क्लेशादियं मनसि हन्त! विभाति चाग्नौ
लाक्षादिवद् द्रुततनुर्वत! निर्दयोऽसि।
लंकान्तु राक्षसपुरीं नितरां प्रणश्य
प्रख्यातमान किल भवान् किमु तेऽद्य कुर्याम्॥ --सहस्र गीति २, १, ४, ३

२ अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णाः मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्। --भागवत ६, ११, २६

३ आचार्य शुक्ल जी--'सूरदास' पृ० २७-२८।

४ श्री महाविष्णु सच्चिदानन्दलक्षणं रामचन्द्रं दृष्ट्वा सर्वांगसुन्दरं मुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूवुः। तं होचुर्नोऽवधमवतारान्वै गण्यन्ते यूयं गोपिका भूत्वा मामालिंगथ अन्ये येऽवतारास्तेहि गोपा न स्त्रीं च नो कुरु। अन्योन्यविग्रहं धार्य तवांगस्पर्शनादिह। शश्वत्स्पर्शीयता स्माकं गृह्णीमोऽवतारान्वयम्। --कृष्णोपनिषद् १

भगवान् राम का सौम्य मनोहर रूप देखकर दण्डकारण्य के तपस्वी मुनियो ने आलिगन करना चाहा, इसी पर भगवान् राम ने कहा कि कृष्णावतार मे प्रकट होकर आप लोग गोपी रूप मे प्रकट होगे तब आपको मेरा अग-सग मिलेगा। रामावतार मे तो भक्तो ने भगवान् का चरणामृत ही पाया था, कृष्णावतार मे भक्तो को भगवान् का अधरामृत पीने का सौभाग्य मिला। अस्तु,

रामभक्ति धारा मे मर्यादा की मुख्यता शरणागति : एकमात्र साधन

रामभक्ति की धारा मे 'मर्यादा' की ही मुख्यता है तथा प्रपत्ति अथवा शरणागति ही मुख्य साधना है। यह शरणागति छ प्रकार की होती है —

(१) आनुकूल्यस्य सकल्प——भगवान के सदा अनुकूल बने रहने का सकल्प, भगवान् का अकिचन दास तथा सेवक बने रहने का दृढ निश्चय।

(२) प्रातिकूल्यस्यवर्जनम्——भगवान् के प्रतिकूल भाव, भावना तथा चर्चा से सदा परागमुख रहना। भगवान् मे उलटी मति करनेवाली जो कुछ भी वस्तु हो, उसका दृढतापूर्वक परित्याग।

(३) रक्षिष्यतीतिविश्वास——भगवान् सदा सदैव एवं सर्वथैव अवश्यमेव हमारी रक्षा करेगे ही—इसमे सुदृढ विश्वास।

(४) गोप्तृत्ववरणम्——भगवान् को ही, एकमात्र भगवान् को ही अनन्य भाव से अपने गोप्ता या रक्षक रूप मे वरण करना।

(५) आत्मनिक्षेप आत्मसमर्पण——अपने-आपको तथा अपना सब कुछ समस्त कर्म, धर्म, आचरण आदि भगवान के चरणो मे अर्पित कर देना।

(६) कार्पण्यम् ——स्वामी की अपार अहैतुकी कृपा एव अपनी अपात्रता का स्मरण कर दैन्य भाव की स्फूर्ति——

राम सो बडो है कौन मोसो कौन छोटो।
राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो।।

अथवा

राम सुस्वामि कुसेवक मोसो।
निज दिसि देखि दयानिधि पोसो।।

तुलनीय——पद्मपुराण, उत्तरकांड, ६४-६५।

पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः।
दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमिच्छन् सुविग्रहम्।।
ते सर्वं स्त्रीत्वमापन्नाः समुदभूताश्च गोकुले।
हरिं संप्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात्।।

शरणागत भक्त के लिए भगवत्सेवा के अतिरिक्त और कुछ कार्य रह नही जाता। भगवान् की पूजा अर्चा मे ही उसका सारा जीवन लगता है। इसके लिए वैष्णव शास्त्रो मे समय के पाँच विभाग किये गये है जिन्हे 'पंचकाल' कहते है। वे है—(१) अभिगमन—मनसा-वाचा-कर्मणा जप ध्यान अर्चन के द्वारा भगवान् के प्रति अभिमुख होना। (२) उपादान—पूजा के लिए पुष्प, अर्घ्य, नैवेद्य आदि सामग्री का सग्रह करना। (३) इज्या आगम शास्त्रो के नियमो के अनुसार भगवान् की विधिवत् अर्चना। (४) अध्याय—वैष्णव ग्रन्थो का परिशीलन। (५) योग—भगवान के साथ किसी भाव मे युक्त होकर उसी स्थिति मे निरन्तर निवास। इस प्रकार वैष्णव उपासना के अनकानेक भेद-प्रभेद है और इसी के आधार पर वैष्णवो के प्रधान पाँच भेद माने जाते है—यती, एकाती, वैखानस, कर्म सात्वत और शिखी[1]।

वैष्णवों का पंचकाल

परन्तु यह प्रकरण प्रसंग से बाहर जा रहा है। अभीष्ट इतना ही है कि रामभक्ति की साधना आरम्भ से ही 'मर्यादा' को केन्द्र मे रखकर चली और दास्य भाव ही मुख्य भाव रहा और शरणागति ही एकमात्र साधन। राम-भक्ति की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए हम ऊपर कह आये है कि पहले-पहल आलवार भक्तो मे ही इसका बीजरूप मे दर्शन होता है। वस्तुतः शतपथ ब्राह्मण के नारायण ही राम रूप मे अवतरित हुए और लक्ष्मी ही सीता रूप मे।[2] यद्यपि गोस्वामी जी ने सीता जी का वर्णन करते हुए कहा है कि अगणित उमा, रमा, ब्रह्माणी इनसे ही निकली है और ये ही आदि शक्ति है, पर वस्तुत सीता जी महालक्ष्मी की अवतार है और श्री सम्प्रदाय मे इसी प्रकार महाविष्णु और महालक्ष्मी की उपासना प्रचलित है। आलवारो ने नारायण, विष्णु, हरि, वासुदेव, राम आदि सम्बोधनो से अपने इष्ट का स्मरण किया है। कुलशेखर आलवार ने प्रार्थना करते हुए कहा है, यदि पति अपनी पतिव्रता स्त्री का सबके सामने तिरस्कार करे, तो भी वह उसका परित्याग नही कर सकती। इस प्रकार तुम चाहे कितना भी दुतकारो, मै तुम्हारे उभय चरणो को छोड़कर अन्यत्र कही जाने की बात भी नही सोच सकता। तुम चाहे मेरी ओर आँख उठाकर भी न देखो, परन्तु हे राम! मुझे तो केवल तुम्हारा ही और तुम्हारी कृपा का ही आलम्बन

---

१ जराख्य संहिता, पटल २२ श्लोक ६५-७५।

२ रा शक्तिरिति विख्याता मः शिवः परिकीर्तितः।
शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म राम रामेति गीयते॥
रा शब्दो विश्व वचनो मश्चापीश्वर-वाचकः।
विश्वेषामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः।
रमते रमया सार्द्धं तेन रामं विदुर्बुधाः।
रमायां रमणस्थानं रामं रामविदो विदुः॥
रा चेति लक्ष्मी वचनो मश्चापीश्वरवाचकः।
लक्ष्मीपतिं गतिं रामं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

है। मेरी अभिलाषा के एक मात्र विषय तुम्ही हो। जो तुम्हे चाहता है उसे त्रिभुवन की सम्पति से कोई मतलब नही।

हे भगवान्! मै धर्म, धन, कामोपभोग आदि की आशा नही रखता, पूर्वकर्मानुसार जो कुछ होता हो सो हो जाय; पर मेरी यही बार-बार प्रार्थना है कि जन्म-जन्मान्तरो मे भी आपके चरणारविन्द युगल मे मेरी निश्चल भक्ति बनी रहे[1]।

ऊपर के उद्धरणो से दो बाते स्पष्ट है कि (१) भगवान् राम की उपासना सातवी शताब्दी के आस-पास इस देश में आरम्भ हो गई थी तथा (२) आरम्भ से ही इसमे दास्य भाव के साथ-साथ दाम्पत्य भाव या मधुर भाव का सन्निवेश हो गया था।

दास्य और मधुर का सन्निवेश

और सच तो यह है कि किसी भी उपासना-पद्धति मे किसी एक विभावशेष की प्रधानता रहती है, परन्तु अन्य भाव भी उसमें स्वत स्फूर्त होते रहते है। जहाँ दास्य है वहाँ वात्सल्य माधुर्य भी है, जहाँ माधुर्य है वहाँ भी दास्य, सख्य वात्सल्य है ही। ये भाव ऐसे घुले-मिले होते है कि इन्हें अलग अलग करना कठिन क्या असम्भव है, हाँ अलबत्ता किसी भी उपासना मे किसी एक ही भाव की प्रधानता रहती है और शेष भाव उसी एक भाव मे अन्तर्भुक्त अथवा अनुस्यूत होते है।

आगे चलकर रामभक्ति पर भागवत पुराण का बहुत गहरा और व्यापक प्रभाव पडा। वैष्णव पुराणो मे पाद्म, वैष्णव, भागवत और ब्रह्मवैवर्त मुख्य है। विष्णु पुराण से अनेक उद्धरण स्वामी रामानुजाचार्य ने दिया है और एक प्रकार से विष्णु पुराण श्री सम्प्रदाय मे आधार ग्रन्थ के रूप मे मान्य है। परन्तु इन सभी पुराणो मे श्रीमद्भागवत का प्रभाव बहुत ही व्यापक और हृदय-ग्राह्य हुआ। इसने रामावत और और कृष्णावत दोनों ही सम्प्रदायो पर अपनी अमिट छाप डाली। इसका मुख्य हेतु है—इसकी प्रेमाभक्ति का प्रतिपादन, वह भी अत्यन्त

भागवत पुराण का प्रभाव

---

१ प्रसिद्ध आलवार संत श्री शठकोप मुनि अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सहस्र-गीति' में आम्भ मे ही, लिखते है—

दीनात्वियं भ्रमवशाहि दिवानिशं चा-
प्यश्रुप्रवाह - भरितास्त्यसितायताक्षी।
लंकां प्रणश्य किल कण्टक - दुष्प्रभुत्वं
प्राध्वंसयो ऽ द्य परिपाहि कटाक्षमस्याः॥२.४.१०

यह बड़ी दीन है। यह भोलेपन में आकर दिन-रात अपने कजरीले नेत्रों से आँसू की धाराएं बहा कर उनको नष्ट कर रही है। आपने लंका को नष्ट कर के उसके दुष्ट राजा रावण को सपरिवार नष्ट कर दिया था। दयालो! इस विचारी के नेत्री की तो कृपा कर रक्षा कीजिए।

ऐसे भगवान् राम के प्रति विरह-निवेदन के कुछ और पद 'सहस्रगीति' में है।

ललित रसमयी शैली में। वल्लभ सम्प्रदाय, गौडीय सम्प्रदाय तथा निम्बार्क सम्प्रदाय तो स्पष्टत: ही भागवत से प्रभावित एवं अनुप्राणित है और यहाँ तक कि उपनिषद् ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्-गीता की तरह प्रस्थानत्रयी के साथ ही साथ श्रीमद्भागवत भी इन सप्रदायो मे उपजीव्य ग्रन्थ के रूप मे समादृत है। किसी ने यह अफवाह उडा दी कि भागवत बोपदेव की रचना है और यह बात अफवाह की तरह फैल भी गई, परन्तु बाद मे स्वस्थ शान्त अनाविल चित्त से अनुसंधान करने पर पता चला कि यह स्वयं भगवान् व्यास की रचना है और 'समाधि भाषा' मे लिखी गई है[1]। इसमे नारायण धर्म को ही गायत्री अथवा ब्रह्मविद्या माना गया है। इसी कारण इसे विविध पुराणो ने गायत्री का भाष्य माना है।[2] भारतीय जीवन एव साधनाओ पर श्रीमद्भावगत का प्रभाव बहुत ही व्यापक, गभीर एवं चिरस्थायी है। यहाँ तक कि रामावत संप्रदाय भी उससे प्रभावित हुए बिना न रहा और यहाँ भी मर्यादा के साथ-साथ लीला-विलास का प्रवेश हुआ और तदनुसार अनेक ऐसे संहिता ग्रन्थो का निर्माण हुआ जिनमे भगवान् राम की सहस्त्र-सहस्र सखियो के साथ नाना प्रकार के क्रीड़ा-विहार के बडे ही भव्य एव मनोहारी वर्णन अत्यन्त काव्यमयी भाषा मे मिलते है।

(१) 'शिवसंहिता'—एक विहंगम दृष्टि

ऐश्वर्य के श्रवण के बाद ही माधुर्य का स्फुरण होता है। भक्त के लिए पहले भगवद् ऐश्वर्य श्रवण करना चाहिए और जब ईश्वर भाव का अनुभव हो जाय तब माधुर्य मे प्रवेश संभव है। ऐश्वर्य ज्ञान से भक्ति होगी, पर पूरी भक्ति नहीं होगी जब तक माधुर्य भाव न हो। माधुर्य ज्ञान के विना पूरी भक्ति हो नही सकती। अगस्त्य ज्ञान-भक्ति के अधिकारी है, परन्तु हनुमान केवल भक्ति के अधिकारी है और इनका माधुर्य चरित के ऊपर ही अवलंब है। अगस्त्य मे ऐश्वर्य माधुर्य दोनो है, पर हनुमान मे केवल माधुर्य।

ऐश्वर्य और माधुर्य

रामायण कथा सुनते-सुनते चित्त निर्मल हो जान पर ही गुप्त लीला मे अधिकार होता है। पूर्ण रामायण के वक्ता केवल चतुर्भुज ब्रह्मा है, शेष उच्छिष्ट है। सब नाम राम-नाम मे निहित है।

माधुर्य अधिकार

सब देश, सब काल मे जितने जीवात्मा है, वे सब भगवान् के ही अनुजीवी है। पुरुष एक मात्र प्रभु रामचन्द्र है, शेष सब स्त्री है। इसी कारण एक ही काल मे एक प्रभु ही सबमें रमण कर सकते है। भगवान मे रमण करने की जितनी शक्ति, सामर्थ्य है, उतना जगत्रय में धारण करने की शक्ति ही नही है। एक भगवान् ही सभी स्त्रियो के पति है, भर्ता है। जार-बुद्धि से सेवन करने

भाव प्रकाशन

---

१ वेदाः श्रीकृष्ण वाक्यानि व्याससूत्राणि चैवहि।
समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तत् चतुष्टयम्॥ —श्री वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत मार्तण्ड

२ अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः।
गायत्रीभाष्य रूपोऽसौ वेदार्थपरिवृंहितः॥ —गरुड़ पुराण

पर भी प्रभु की प्रीति प्राप्त होती है। भागवान् का सौन्दर्य माधुर्य, यौवनारम्भ, सौगन्ध, सुकुमारता, लावण्य, परम कान्ति, सौशील्य, बल, सौहार्द, सौलभ्य, परम वात्सल्य, स्वभावत सदा प्रसन्न रहना ये सब गुण ही भक्तो के चित्त को हरनेवाले है। विमुग्ध बालाओ के लिए तो उनका नित्य किशोर, सर्वरसभोक्ता, रसिकेन्द्र युवराज नित्य ही पन्द्रह वर्ष की अवस्था वाला रूप स्फुरित रहता है। भगवान् के चरणो की सेवा के अतिरिक्त शेष सब विपत्ति है। एक मात्र भगवान् श्री राम ही भोक्ता है, शेष सब उनका भोग्य है। यद्यपि श्री भगवान् राम आनन्द स्वरूप है, स्वय ईश्वर है और सदा अपने ही आनन्द मे मग्न रहते है, फिर भी उनके जो परम अनुरागी है, वे अनुराग युक्त हो कर उनकी आराधना करते और भोग अर्पण करते है, उसे प्रभु श्री राम परम आह्लाद से ग्रहण करते है।

भगवान् राम और भगवती सीता दोनो रस के एक मूर्तिमान् विग्रह है—लीला के लिए ही एक से दो हुए है।

क्रिया-शक्ति, ज्ञान-शक्ति तथा उपासना-शक्ति वेद की य तीन प्रमात्मिका शक्तियाँ है। इनमे कैकयी क्रिया-शक्ति, सुमित्रा उपासना-शक्ति है और कौसल्या ज्ञान-शक्ति है। इन तीनो शक्तियो से युक्त वेद स्वरूप चक्रवर्ती महाराज दशरथ जी है।

स्वरूप प्रकाशन

क्रिया मे स्वभावत कुछ कलह, उपासना मे प्रीति और ज्ञान मे नित्य निर्हेतुक निर्मल आत्मसुख मिलता है। कैकेयी रूपी क्रिया से धर्म का जन्म होता है, भरत जी धर्मस्वरूप है। भक्त मे रत होने के कारण तथा विश्व का भरण-पोषण करने के कारण इनका नाम भरत हुआ। सुमित्रा रूपी उपासना शक्ति से लक्ष्मण जी सख्य भाव के आचार्य हुए। भगवान् श्री राम कौसल्या रूपी ज्ञान से कल्याण स्वरूप तथा विश्व को आनन्द देनेवाले हुए। शत्रुघ्न जी शत्रुओ को विनाश करनेवाले तथा अर्थ के अध्यक्ष है। शस्त्र और शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता है।

शत्रुघ्न जी का गौर शरीर तडित सुवर्ण वर्ण का है और उन्हे कुसुम रंग का वस्त्र विशेष प्रिय है। अरुण कमल दल के समान उनके नेत्र है और उनके शब्द दुदुभी की तरह है। लक्ष्मण जी कर्पुर के पुट के समान गौराग, अरुण कमल समान नेत्र और नीलाम्बर को धारण करते है। श्री भरत लालजी नीलरत्न के समान श्याम, पीताम्बर धारण करने वाले सबके मन को हरने वाले है। वे श्री भगवान राम के गृह, आराम, वाद्यादिको के राजा और भगवान् की सब क्रीडाओ में महाप्रवीण है।

कोटिकंदर्पलावण्य सीतापति भगवान् श्रीरामचन्द्र जी सर्वलोक मे रमण करनेवाले एवं रमाने वाले, मोक्ष के भर्ता है। आप ही शृंगार रस के देवता है और सब कामिनियों में अतिशय कामोन्माद बढानेवाले आप ही है।

जगत के प्राणभूत श्रीराम जी की भी प्राणेश्वरी श्री जनकनन्दिनी जी है। आप पतिव्रता शिरोमणि है।

श्रीराम जी की सेवा करनेवालो के दो भेद है—पुरुषवर्ग, नारीवर्ग। सभी दिव्य है

एक रस एक आकारवाले है। अपने गुणो मे श्री सीताराम जी का आराधना करना ही इन सबों का साधन है। बाहर के कार्य मे पुरुषवर्ग सदा स्थित रहते है और भीतर आनन्दवर्धक विहारादि कार्यों में देवीगण सदा संलग्न है। भगवान राम रस स्वरूप है--रसो वै स ।

राम सीता के विना और सीता राम के विना क्षणमात्र भी नही रह सकते --'रामो न सीतया शून्यः सीता राम विना न हि'।

शृंगार रस किसी फल का साधन स्वरूप नही है। यह नित्य सिद्ध स्वरूप है। दम्पति मिल गये और मैथुनोद्भूत आनन्द को प्राप्त हुए, यही शृगार है, ऐसा मानना महा भ्रान्ति है।

शृंगार साधना का स्वरूप प्रकाश

जिस शृगार रस को बडे-बडे सिद्ध शिव, सनकादिक उपासना कर आनन्द समुद्र, मे निमग्न रहते है, वह शृगार दिव्य और नित्य सिद्ध है। प्रिया प्रियतम श्री सीताराम जी नित्य इच्छा रूप है नित्य नाना प्रकार के केलिभेदो से शृगार रस के सुखानन्द प्रवाह के तरंग बढाया करते है। यह सच्चिदानन्द आत्मास्वरूप शृगार रस का अवतार शृगार रस के हर्ष और उत्कर्ष के बढाने मे स्त्री ही प्रधान है और यह आनन्द-भोग्य भी हम सबको स्त्री ही रूप से है।

सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होते हुए भी भगवान् राम प्रेमपिपासा से व्याकुल रहते है और नाना प्रकार की क्रीडाओ से अपने भक्तो मे प्रीति का सम्पादन करते रहते है। राम के परम भक्त वाह्य कार्य मे पुरुष है, पर आभ्यन्तर कार्य मे सभी देवी है। वास्तव मे एक रस ही खडित होकर सखा सखी रूप मे प्रस्फुटित हो गया है। अभ्यन्तर कार्य मे प्रेरणा करनेवाली प्रेरिणी है जानकी। स्वामिनी जानकी है, इसलिए सभी उनकी इच्छा का अनुसरण करते है, स्वय रामचन्द्र भी इनकी इच्छा के वशवर्ती है। राम जानकी मे सामरस्य है। स्वरूप एक ही हो तो रस न हो। इनका स्वरूप ही शृगार है। वहाँ भोक्ता भोग्य नही--एक ही लीला मे दो हो जाता है--लीला मे और लीला के रसास्वादन के लिए। यह अद्वैत मे द्वैत है-- एक मे ही दो का या एक ही का दो मे खेल है। एक आत्मा दो शरीर।

"रमन्ते रसिका यस्मिन् दिव्यानेकगुणाश्रये स्वय यद्रमते तेषु रामस्तेन पयुज्यते ।।"

रसिक भक्त दिव्य अनेक गुणाश्रय रूप श्री राम जी मे रमण करते है और उन भक्तो मे श्रीराम जी भी स्वय रमते है। इसी हेतु 'राम' कहे जाते है। जैसे समुद्र जलमय और मधु मिष्ठ-मय है, बाहर-भीतर रसमय है--वैसे ही भगवान् राम रसमय रसस्वरूप है। स्वय रस ही रस है स्त्रियो को कौन कहे, अपने रूपौदार्य के कारण पुरुषों को भी यह अभिलाषा होती है कि हम स्त्री होकर इनके साथ आलिगनादि सुख को प्राप्त करें।[1]

राम शब्द का अर्थ

---

१ 'पुंसामपि रामं पश्यतां स्त्रीभूत्वाऽहमनुभवे
रामित्यभिलाषो भवति।

'राम' शब्द ही रस राजत्व का बोधक है। शृगाररस विहार का पर्यवसान श्री राम में ही है।

श्री राम सीता का नित्य का रासस्थल अयोध्या है। यही भुक्ति क्षेत्र भी है, और मुक्ति क्षेत्र भी है। द्वारका, मथुरा आदि अयोध्या के ही अंशभूत है। अशोक बाटिका मे श्री सीताराम जी नित्य रास लीला करते है। यह अशोक वन ही रस रूप है।

पारमार्थिक तत्त्व

अयोध्या, नन्दिनी, सत्या, साकेत, कोसला, राजधानी, ब्रह्मपुर, अपराजिता इत्यादि नाम अयोध्या जी के है। पहले दिव्य धाम का ध्यान फिर शृगार रस की सर्वस्व मूर्ति तथा एकमात्र भोक्ता भगवान् राम का ध्यान करे और पुनः रासरचना करे।

(२) लोमश—संहिता की दृष्टि मे

इस शृंगार राज्य मे प्रवेश पाने के लिए श्री विदेहराज कुमारी जी की अंतरंग सखियो की कृपापूर्ण दृष्टि अनिवार्य है। यहाँ किसी साधना या अनुष्ठान स प्रवेश ही नही हो सकता।

शृंगार राज्य में प्रवेश

अस्तु इन अतरंग सखियो मे मुख्य है—चन्द्रकला, विमला, सुभगा, मदनकला, चारुशीला, हेमा, क्षेमा, पद्मगंधा, लक्ष्मणा, श्यामला, हसी, सुगमा, वंशध्वजा, चित्रलेखा, तेजोरूपा और इन्दिरावली। ये सोलह मुख्य यूथेश्वरी है।

इन सोलहों में चन्द्रकला, चारुशीला, मदनकला और सुभगा मुख्य है और इनमें चन्द्रकला जी सर्वश्रेष्ठ है। वाह्य कार्यों मे जैसे श्री भरतलाल जी का स्वतत्र सर्वाधिकार है,

चार मुख्य सखियाँ

अतरंग लीलाओ मे उसी प्रकार चन्द्रकला जी प्रधानता मे सर्वश्रेष्ठ है। जिस प्रकार ललिता जी राधा-कृष्ण का मिलन संघटन करती है, उसी प्रकार चन्द्रकला सीता-राम का मिलन संघटन करती है और इनका यहाँ ठीक वही स्थान है जो ललिता का वहाँ है।

लोमश संहिता मे चन्द्रकला जी का ही प्रसंग मुख्य है और फिर श्री अयोध्या जी के प्रमोद वन मे रासलीला का भव्य वर्णन है। श्री चन्द्रकला जी रासरस की आचार्या है और उन्ही की कृपा से साधक अपने सिद्ध देह से इस लीला मे प्रवेश पाता है। इस संहिता क अ० २० श्लोक

क्रीडा सम्पद्यते यैस्तु गुणै नैत्रगुणैःशुभैः
ज्ञेयोऽस्मिन्सततं 'राम' इत्याहुर्मुनयोमलाः।
यत्रास रामो रसरंगमूर्त्तो रासः सनाम्नोप्पथ केलिभेदः
रामाभिरामो रमणीश रामो रा शब्द रामो रसराजरामः

'राम' शब्द ही रसराजत्व का बोधक है। शृंगार रस विहार का पर्यवसान श्री राम में ही है।

१८६वें से १८९ तक रासनृत्य पर संचालित संगीत का बडा ही मनोहारी विन्यास हुआ है। यहा राम का प्रकरण ज्यों-का-त्यो श्रीमद्भागवत के रास पचाध्यायी के आधार पर है और स्पष्टत उसी से प्रभावित है। यहाँ भी इस महारास के समय गौ-मृग-पशु-पक्षी-मनुष्य गधर्व, देवादिक सभी के सभी अपनी सुधबुध खोकर अपने-आप मे न रहे, अचेत हो गये और इनके हृदय को महारास ने अपनी ओर खीच लिया। प्रिया-प्रियतम के दिव्य मिलन का एक दृश्य बडा ही मनोहारी है।[1]

(३) श्री हनुमत्संहिता—एक विहंगम दृष्टि

श्री हनुमत्संहिता मे 'प्रेमामृत महोत्सव' का बडा ही भव्य वर्णन है। अगस्त्य और हनुमान का संवाद है। जानकी-प्रेम-लपट रामचन्द्र अपनी प्राणप्रिया तथा असख्य रूपयौवन-शालिनी सखियो के साथ सरयूतट पधारते है और प्रेमामृतरसावेश मे हास्य, लास्य, कटाक्ष तथा मनोहर चाटुकारो से परस्पर प्रसन्न करते हुए कदब वन मे माध्वीक रस का पान करते है और फिर माधवी कुज मे पधारते है, तत्पश्चात् हरिचन्दन वन मे और तब अशोकवन मे। यह अशोकवन पुरुषो को नही दिखाई पड सकता, केवल स्त्री भावापन्न साधको को ही उपलब्ध होता है।[2] इस प्रकार कोटिकदर्पलावण्य भगवान् रामचन्द्र हास्य, लास्य, कटाक्ष से जानकी का मोदन और मादन करते हुए एक वन मे से दूसरे वन मे विचरण कर रहे है। ऐसी कमनीय किशोर मूर्त्ति को देखकर उन सखियो के मन मे रमण की अभिलाषा जगती है और भगवान् उन्हे नाना प्रकार से तृप्त करते है।[3] जैसे नक्षत्रो से घिरा चन्द्रमा शोभा पाता है, वैसे ही सखियो से घिरे रामचन्द्र। नाना प्रकार के लास्य नृत्यादि से सखियो के चित्त को आह्लादादि प्रदान करते हुए भगवान् उनके अधरामृत का पान

---

१ इत्युक्त्वा तं तदा देवी सीता प्रोत्फुल्ललोचना।
प्रियमालिग्य बाहुभ्यां चुचुम्बाधरमाधुरीम्॥
हृदयं हृदयेन मुखेन मुखं करमब्जकरेण सरोजनिभम्।
उरसा प्रिया वक्षसि संगमतो सुखमापमहोत्सवजन्यमता॥
—अ० २२, श्लोक १३६

२ पुंसामगोचरं स्थानं केवलं प्रेमदायकम्।
नारीभावसमायुक्तास्तेषां दृश्यं भवेद् ध्रुवं॥
—ह० सं० २-४३

३ आलोलपाणिचरणा स्मित वृग्विभंगी।
विभ्रच्चलद्वलयकंकणनूपुरादीन्॥
आश्लिष्टकंठकुचको जनकात्मजायाः
रामो रराज भवनाटक नाट्यवेशः॥ ह० सं० ४-१७
सरसनिकषे प्रेमजलैः परिपूर्णं स्वर्णग्याः।
विकसिताननकमलं पिवति यत्र मधुव्रतो राम :॥ ४-५१

करते है। इसके पश्चात् जल-क्रीडा होती है। इसके अनन्तर भगवान राम सीता के साथ एक परम दिव्य परम मनोहर कुज मण्डप मे विराजते है। चारो ओर पोडस कमल दल की भाँति वेदी है जिसपर सोलह मुख्य सखियाँ है—उनके नाम है—काचनी, चित्रा, चित्ररेखा, सुधामुखी, कमला, चन्द्रकला, चन्द्रानना, वरा, माधुर्यशालिनी, विशदाक्षी, सुदशका, उज्जला, हंसिनी, कर्पूरागी, वरारोहा, प्रशसी। (५-१७) ये तो मुख्य सखियाँ है, परन्तु उस पद्म के उपदलो पर शोभना, शुभदा, शाता, संतोषा, सुखदा, चारुस्मिता, चारुरूपा, चारुलोचना, हैमा, क्षेमा, प्रेमदात्री, माधवी, कामदा, मोहिनी, लीला आदि सखिया विराजमान है और बीच में कर्णिकार पर भगवान् राम और भगवती सीता। सभी सखियो के हाथ मे एक-एक वाद्य यत्र है। किसी के हाथ मे वीणा है तो किसी के हाथ मे वेणु, किसी के हाथ मे मृदंग तो किसी के हाथ मे मजीर। भगवान् का यह नित्य दिव्य विहार देखकर सभी मुग्ध है, आनन्दमग्न है। इस प्रकार साकेत मे परम रास सम्पन्न हुआ। यह चिर गोपनीय रहस्य है।[1] रहस्य लक्ष्य करने की बात यह है कि यहाँ सीता अपने ही शरीर से १०८ सखियो की सृष्टि करती है और इनके साथ भगवान् राम कृष्ण की भाति उतने ही उतने रूप धारण कर लेते है।

अगस्त्य जी ने पुनः हनुमान जी से पूछा कि इस भाव मे प्रवेश कैसे हो। इसपर हनुमान जी कहते है कि श्री राम से प्रीति सम्बन्ध होने पर ही इस भाव की प्राप्ति होती है और यह सम्बन्ध कोई गुरु ही करा सकता है। इसके अनन्तर शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव के भेदोपभेद तथा इनके विभावादि का सविशेष विवरण है। श्री हनुमान जी ने कहा है कि यह सम्बन्ध ही सहजानन्द प्रदान करनेवाला है और इसे प्राप्त कर ही जीव की भगवान् मे अचला अव्यभिचारिणी भक्ति होती है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य की वही व्याख्या है जो परम्परामुक्त है।[2] इस ससार मे देखा जाता है कि सम्बन्ध से कितनी प्रगल्भता आ जाती है तो भगवान्

अर्थ-पंचक

---

१ गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं च सर्वदा। ७-५

२ श्रीमद्रघुपतिं साक्षात् ब्रह्म सर्वपरात्परं।
ज्ञात्वा भजति यो नित्यं सर्व शान्तरसाश्रयः॥
श्री रामं करुणासिंधुं भक्तसंरक्षणं परे।
बुद्ध्वा भजति यो नित्यं स वै दास्य रसाश्रयः॥
श्री रघुनन्दनं मित्रं प्रेमपात्रं विबुध्य च -
स्नेहेन रमते नित्यं स हि सख्यः रसाश्रयः॥
बालं सौन्दर्यसहितं कोमलांगं प्रमोददं।
सर्वदा जीवनं मत्वा स वै वात्सल्यसंज्ञकः॥
मधुरं मनोहरं रामं पतिं संबन्धपूर्वकम्।
ज्ञात्वा सदैव भजते सा शृंगाररसाश्रया॥ —६. २३-२७

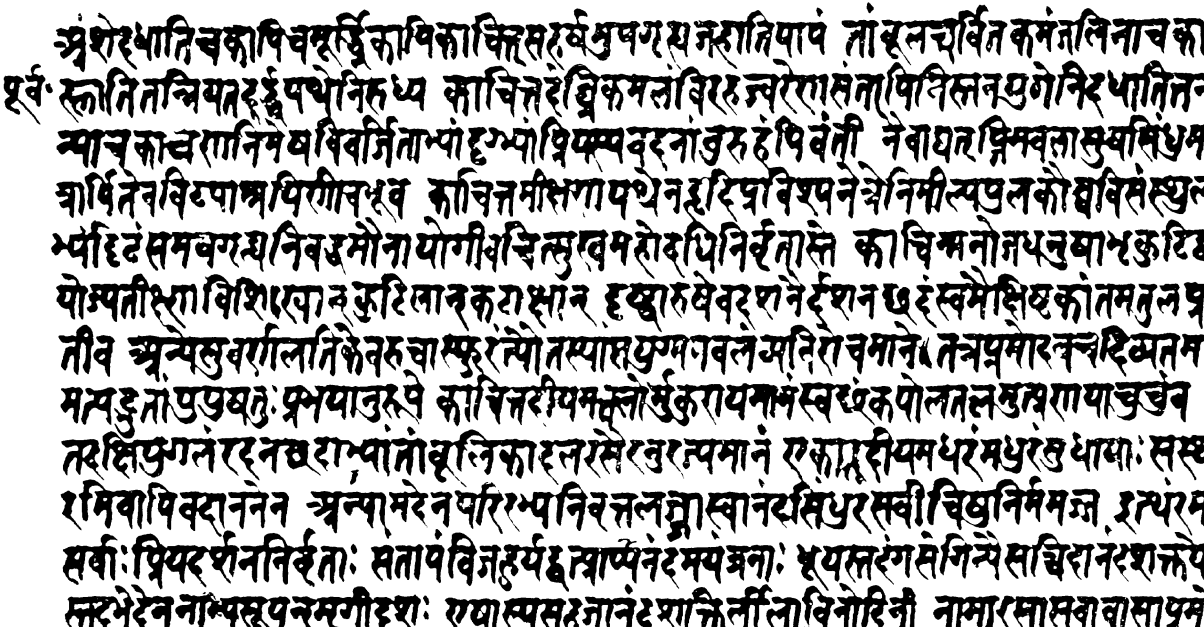

भुशुण्डी-रामायणका एक पृष्ठ

से जिनका संबंध हो गया उनका फिर कहना क्या ? स्थूल, कारण, सूक्ष्म इन तीनों देहों के विनाश हो जाने पर गुरुमुख से संबंध की योग्यता प्राप्त होती है। सबसे पहले अपनी (दिव्य) वास्तविक जननी और जनक का पता लगता है, आचार्य का पता लगता है, तब 'सेवा' मिलती है। तब इन पांच रसो मे जिस रस का अधिकार होता है उसके अनुरूप दिव्य नाम तथा दिव्यस्वरूप मिलता है यही 'अर्थ पंचक' है।

गुरु में ईश्वर बुद्धि रखते हुए 'अमायया' तथा 'अनुवृत्या' उसका सेवन करे। भगवान् की कृपा का अवलम्बन लेकर अपना सर्वस्व उन्ही के चरणो मे समर्पित कर प्रारब्धभोग समाप्त कर साधक सूर्यमण्डल को भेद कर 'विरजा' मे स्नान करता है। यहा वह वासना सहित अपने दोनो देहो का परित्याग कर 'विरज' हो जाता है। अत्यन्त प्रबल वेग से वह 'विरजा' पार साकेत में प्रवेश करता है और राजमार्ग से सप्तावरणसंयुत, नानारत्नमय दिव्य श्री रामभवन में प्रवेश करता है। अपनी भावना के अनुसार वह प्रभु श्री राम को प्राप्त कर समस्त आनन्द को प्राप्त होता है, स्वयं परानन्दमय हो जाता है। इस संहिता के अन्तिम अध्याय मे रस का प्रकरण है और उसका सागोपाग विन्यास है। इसमे उज्जवल भक्ति रस का विवेचन करते हुए लिखा है कि माधुर्यसिधु कमनीय किशोरमूर्ति श्री रामचन्द्र ही विषयालम्बन है, प्रेयसीगण आश्रयालम्बन है, सौशील्य, माधुर्य, कमनीय किशोरत्व, प्रियवचनत्व, भूषणालंकार, वसन्त, कोकिलाकूजन, उपवन आदि उद्दीपन विभाव है, कटाक्ष, स्मित, भ्रूविक्षेप, आदि अनुभाव है, रोमांच, वैवर्ण्य, प्रस्वेद आदि अष्ट सात्विक भाव है और आलस्य, निर्वेद आदि व्यभिचारी भाव है और प्रियता रति स्थायी भाव है।

उज्ज्वल भक्ति रस

ऊपर हमने 'शिव सहिता' 'लोमश संहिता' एवं 'हनुमत्सहिता' का संक्षिप्त उल्लेख इस लिए किया है कि हम यह अनुभव करे कि रामभक्ति में शृंगारोपासना हाल की नयी उद्भावना-नही है। अपितु इसका आरम्भ बहुत पहले हो चुका था। इन संहिताओ के निर्माण का काल-निर्णय वस्तुत: बहुत ही जटिल समस्या है। परन्तु ये उतनी 'आधुनिक' नही है जितनी समझी जाती है। और तो और, स्वयं वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाड में अशोकवन में राम सीता के विहार का वर्णन मिलता है।[1] वस्तुत: ईसवी सन् की आठवी शताब्दी से ही राम और सीता के पूर्वानुराग का चित्रण होने लगा[2] और महावीर चरित, जानकी हरण, प्रसन्न राघव तथा हनुमन्नाटक में राम सीता के विलास का बहुत ही व्यापक एवं सागोपाग वर्णन मिलता है, यहाँ तक कि कुछ लोगो की दृष्टि में अश्लीलता की सीमा तक पहुंच गया है।

इन संहिताओं तथा चरितों के अतिरिक्त प्राचीन ग्रन्थों में 'सत्योपाख्यान' एवं 'वृहद् कौशल खण्ड' आदि कुछ ऐसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ है, जिनमें भगवान् राम और भगवती सीता के नाना

---

१ दे० वाल्मीकि रामायण, सर्ग ४२।

२ दे० रामकथा पृ० ४८३, अनु० ६१९।

विध लीला विलास का बडा ही भव्य वर्णन है। सत्योपाख्यान में[1] भगवान् का सीता के साथ वन विहार तथा जलक्रीडा का बडा ही रसीला वर्णन है तथा होलिका मे राम और सीता का प्रणय विहार एवं पुन. सीता की मानलीला (क्रोध) का चित्रण है। 'आनन्द रामायण' के विलास काण्ड मे राम-सीता की जलक्रीडा एव वन-विहार का वर्णन है।[2] इसी खण्ड मे राम द्वारा सोलह हजार कामपीडिता देवियो को गोपी रूप मे अग-संग का आश्वासन मिलता है,[3] तथा एक दासी को पीकदान के अभाव मे अपना हाथ बढाने पर तथा ताबूल रस पीने पर अगले जन्म मे राधा बनकर अधरामृत पान का आश्वासन मिलता है।[4] इसी प्रकार 'महारामायण' मे राम की रासक्रीडाओ का बडा ही मधुर मनोहारी वर्णन है।[5] कामिल बुल्के ने 'चित्रकूट माहात्म्य'[6] शीर्षक एक हस्त-लिखित पुस्तक की चर्चा की है, जिसमे ऐसा वर्णन मिलता है कि चित्रकूट के मातानक वन में एक सरोवर है, जिसके मध्य मे एक रम्य मण्डप बना हुआ है, जहाँ एक वेदिका पर रामसीता और उनकी सखियो के साथ नित्य रासक्रीडा करते है।

शृंगारी रामभक्ति का आधार ग्रंथ : वृहत् कौशल खण्ड

शृंगारी रामभक्ति का आधार ग्रन्थ 'वृहत्कौशल खण्ड' अभी-अभी दो खंडो मे प्रकाशित हुआ है परन्तु है 'प्राइवेट सर्क्युलेशन' के लिए। श्री हनुमत् निवास अयोध्या के महात्मा रामकिशोर शरण जी महाराज की कृपा से मुझे इसकी जो प्रति प्राप्ति हुई है, उसके अध्ययन से रामभक्ति मे मधुरोपासना के अनेक परम गोपनीय रहस्यो का उद्घाटन होता है। इसमे राम लीला पूर्णत कृष्णलीला प्रतीत होती है। अपने विवाह के पूर्व राम अपने सखाओ के साथ, पुन गोपकन्याओ के साथ, फिर देव कन्याओं के साथ, फिर राज-कन्याओ के साथ रासलीला करते है। इसके अनन्तर देव कन्याओ के साथ परिहास एवं उपालभ का विषय है। इसके पश्चात् श्री मैथिली जी के पूर्वराग एव विप्रलभ का प्रकरण है और इसी के पश्चात् है विवाह रहस्य-प्रकरण। विवाहोत्तर देवकन्या, गधर्वकन्या, राजकन्या, साध्यसुता, गुह्यकदेव कन्या, यक्षकन्या, नागकन्या के साथ रास का वर्णन है। यह समस्त ग्रन्थ जो ३०७२ श्लोको मे समाप्त होता है पूरा-का-पूरा रास का ही प्रसग है और रासविलास के नाना प्रकरणों का इतना मनोमुग्धकारी वर्णन है कि काव्य और रहस्य का इतना सुन्दर सम्मिश्रण एवं मणिकांचन योग अन्यत्र दुर्लभ है। अवश्य ही रामावत भक्ति-धारा की शृगारी शाखा पर श्री हनुमत्संहिता तथा वृहद्कौशलखण्ड का ही विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है और

---

१ दे० सत्योपाख्यान उत्तरार्ध, अध्याय २०, २७।

२ दे० सर्ग २, ६।

३ तु० कृष्णोपनिषद्, पद्मपुराण।

४ दे० आनन्द रामायण ७, १९, २९।

५ दे० महारामायण अ० ५२।

६ दे० रामकथा पृष्ठ १७१।

इस सम्प्रदाय में इन ग्रन्थो का वेदवत् आदर होता है तथा अष्टयाम मे इनका विधिवत् पाठ होता है।

अभिप्राय यह है कि ग्यारहवी शताब्दी से लेकर सोलहवी शताब्दी तक साधना और साहित्य के क्षेत्र मे माधुर्य भक्ति का ज्वार उमड रहा था और परम गोपनीय होते हुए भी इसमे कृष्ण भक्ति शाखा की तरह माधुर्य साधना का पूरा-पूरा सन्निवेश हो गया था।

गोस्वामी जी मे माधुर्य भाव की झलक

गीता मे हम जिसे 'राम शस्त्रभृतामहं' क। दर्शन कर आये थे वे 'जानक्या सह सप्रीत क्रीडारसविलम्पट' तथा 'महारासरसोल्लासी विलासी सर्वदेहिनाम्' हो चुके थे और प्रेमी भक्तो के बीच उनका यह रूप ही विशेष प्रिय हुआ। हम अगले अध्याय मे विस्तार से देखेंगे कि साहित्य और साधना के क्षेत्र मे इस मर्यादा-प्रधान साधना का रूप माधुर्य प्रधान कैसे चुपचाप हो गया। यहाँ लक्ष्य करने की एक और बात है कि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस का प्रणयन करते समय अपने चारों ओर फैले हुए इस माधुर्योपासना के प्रचुर साहित्य को अवश्य देखा होगा और कुछ साहित्यकारो की यह भी मान्यता है कि स्वयं गोस्वामी तुलसीदास की उपासना भी ऊपर-ऊपर दास्य भाव की, पर अन्दर-अन्दर मधुर भाव की ही थी।[1]

श्री ब्रजनिधि[2] का कथन है—

रंग की बरखा करी बहु जीव सन्मुख करि लिए,
जनकनन्दिनी राम छबि मे भिजै दोनो जन-हिए।
बस निरन्तर रहत जिनके नाथ रघुवर-जानकी,
ते दास तुलसी करहु मोपर दया दपति दान की।।
सुन्दर सिया राम की जोरी, बारो तिहि पर काम करोरी।
दोउ मिलि रंग महल मे सोहै, सब सखियन के मन को मोहै।।
सकल सखियन मे सिरोमनि दास तुलसी तुम रहौ।
करौ सेवन रुचिर रुचि सो सुजस की बानी कहौ।
दास यह तब अनन्य तापर रीझि चरनन तर परी।
अहो तुलसीदास तुम्हरी कृपा करि अपनी करी।।

'ब्रजनिधि' ने 'तुलसीदास' नामका 'रहस्य' खोलते हुए कहा है—

जैजै श्री तुलसी तरु जगम राजई।
आनद बन के माँहि प्रगट छबि छाजई।।
कविता मजरि सुन्दर साजै।
राम भ्रमर रमि रह्यो तिहि काजै।

---

१ दे० चन्द्रवली पाण्डेय—तुलसी की गुह्य साधना, 'नया समाज' सितंबर १९५३।

२ ब्रजनिधि ग्रन्थावली ना० प्र० सभा, काशी पृ० २७५-२७६ पद—८९, ९०, ९१, ८६, ८७।

रमि रहे रघुनाथ अलि है मरम सोधो पाइ कै।
अलि ही अमित महिमा तिहारी कहौ कैसे गाइ कै।।
तुलसी सु बृन्दा सखी कौ निज नाम ते वृन्दा सखी।
दास तुलसी नाम की यह रहसि मैं मन मे लखी।।

'रामचरित मानस' मे तो सीता-राम की जोडी को छवि और शृगार की एकता कहकर गोस्वामी जी चुप हो गये है, परन्तु 'गीतावली' मे उनका आन्तरिक रूप कुछ-कुछ अनावृत हुआ, जब वे सीताराम तथा उर्मिला लक्ष्मण के 'केलिगृह' का वर्णन करते है—

जैसे ललित लषन लाल लोने।
तैसिये ललित उरमिला, परस्पर लखन सुलोचन कोने।
सुखमासागर सिगार सार करि कनक रचे हैं तिहि सोने।
रूप प्रेम-परिमिति न परत कहि, बिथकि रही मति मौने।
सोभा सील सनेह सोहावनै समउ केलिगृह गौने।
देखि तियनि के नयन सफल भए तुलसीदास हू के होने।[1]

'केलिगृह' का दर्शन किसी 'सखी' को ही मिल सकता है। तुमली के इस गुह्य रूप का, जो उनकी अत्यन्त अंतरंग साधना का वास्तविक रूप था, दर्शन 'गीतावली' के निम्न लिखित पद में होता है—

माई! मन के मोहन जोहन-जोग जोही।
थोरी ही बयस, गोरे सावरे सलोने लोने,
लोयन ललित बिधुवदन बटोही।।१।।
सिरनि जटा मुकुट मंजुल सुमन जुत,
जैसिये लसति नव पल्लव खोही।
किये मुनि वेषु वीर, धरे धनु तन तीर,
सोहै मग, को है लखि परै न मोही।।२।।
सोभा को साचो संवारि रूप जातरूप।
ढारि नारि बिरची बिरंचि सग मोही।
राजत रुचिर तनु, सुन्दर स्रम के कन,
चाहै चकचौधी लागे, कहौ का तोही?।।३।।
सनेह सिथिल सुनि बचन सकल सिय,
चितइ अधिक हित सहित ओही।
तुलसी मनहुं प्रभु कृपा की मूरति फेरि,
हेरिके हरषि किये लियो है मोही।।४।।[2]

---

१ गीतावली, बालकांड, १०५।
२ गीतावली, अयोध्याकांड, पद २०।

इसके ठीक पहले वाले पद मे गोस्वामी जी ने अपना 'रूप' स्वय प्रकट कर दिया है—

सखिहि सुमिख दई प्रेममगन भई,
सुरति बिसरि गई आपनो ओही।
तुलसी रही है ठाढी पाहन गढी सी काढी,
न जाने कहाँ ते आई है कौन की कोही ।।१।।[1]

यह 'ओही' स्वयं तुलसी ही है और वही है मानस के 'तापस' भी। 'गीतावली' मे शृगार के कई ऐसे पद है जो सिद्ध करते है कि गोस्वामी जी का वाह्य (साधक) रूप मर्यादावादी दास्य भाव का था, परन्तु आन्तरिक गुह्य (सिद्ध) रूप लीला विलासी सखी भाव का था।

फटिक सिला मृदु विसाल, मकुल सुर तरु तमाल,
ललित लताजाल हरति छबि वितान की।
मंदाकिन तारनि तीर मजुल मृग विहग भीर
धीर मुनिगिरा गंभीर सामगान की।।
मधुकर पिक बरहि मुखर सुदर गिरि निरझर झर
जलकन घन छाँह छन प्रभा न भान की।
सब ऋतु ऋतुपति प्रभाउ, सतत वहै त्रिविध बाउ
जनु बिहार वाटिका नृप पंचवान की।।
विरचित तहँ परन साल, अति विचित्र लषनलाल
निवसत जहँ नित कृपालु राम जानकी।
निजकर राजीव नयन पल्लवदल रचित स्रमन
प्यास परस्पर पियूष प्रेमपान की।
सिय अंग लिखै धातुराग सुमननि भूषन विभाग,
तिलक करनि का कहौ कलानिधान की।
माधुरी विलास हास गावत जस तुलसीदास
बसत हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की।। अ० का० पद ४४।

था

भोर जानकी जीवन जागे।
सूत मागध प्रवीन, बेनुबीन-धुनि डारे गायक सरस राग रागे।
स्यामल सलोने गात आलस बस जँभात पिया प्रेमरस पागे।।
उनीदे लोचन च।रु मुख सुखमासिग।र हेरि हारे मार भूरि भागे
सहज सुहाई छबि, उपमान लहै कबि मुदित विलोकन लागे।
तुलसी दास निसिबासर अनूप रूप रहत प्रेम-अनुरागे।।

---

१ वही पद १९।

इस प्रकार रामोपासना का प्रादुर्भाव 'दास्य'––सेवक-सेव्य भाव में हुआ तथा 'मर्यादा' ही इसकी मुख्य प्रेरणा एवं आधारशिला रही। परन्तु क्रमशः दास्य सख्य में, सख्य वात्सल्य में और वात्सल्य माधुर्य में परिणत होता गया और आज लगभग चार सौ वर्षों से रामभक्ति की माधुर्य धारा उत्तर भारत में प्रवाहित हो रही है; आरम्भ में तो गुप्त गोदावरी की भाँति अप्रकट रूप में परन्तु शनैः शनैः व्यक्त एवं प्रकट रूप में हो, अतएवत्ता यह स्वीकार करना होगा कि कृष्णभक्ति-शाखा की तरह इसमें 'सखी भाव' अत्यंत उन्मुक्त रूप में व्यक्त नहीं हो पाया है। यहाँ सखी भाव में भी मर्यादा की मुख्यता रही है। लक्ष्य करने की बात यह है कि आज अयोध्या में अधिकांश मन्दिर 'कुंज' और 'वन' नाम से अभिहित हैं और श्री कनक भवन के अतिरिक्त भी जितने मुख्य स्थान हैं, वहाँ भी युगलमूर्ति की 'मधुर उपासना' चल रही है। यहाँ के अधिकांश साधु संत एवं साधक या तो कोई 'लता' हैं, या 'प्रिया', या 'अली' या 'सखी'। संभव है यह आरम्भ की कठोर 'मर्यादाओं' एवं नियमों' की प्रतिक्रिया ही हो––जैसा अभिनव मनोविज्ञान के पंडित कहेंगे, परन्तु इसका अनुशीलन हम आगे किसी अध्याय में प्रस्तुत करेंगे और उसमें हम दिखलाने की चेष्टा करेंगे कि किन-किन प्रभावों के कारण रामभक्ति में माधुर्य का सन्निवेश हुआ है और आज उसका वास्तविक रूप क्या है, उसकी बहिरंग एवं अंतरंग साधना में क्या सम्बन्ध है तथा उसके सिद्धान्त पक्ष एवं साधना ने साहित्य को जिस सीमा तक प्रभावित किया है और करता जा रहा है।

यहाँ अवश्य ही लक्ष्य करने की बात यह है रामावत सम्प्रदाय के साहित्य में मधुर भाव का सन्निवेश या विकास केवल कृष्णभक्ति के अनुकरण पर नहीं हुआ है जैसा अधिकांश सुधी समालोचकों एवं मान्य विद्वानों का मत है। वहाँ स्वयं दास्य प्रस्फुटित होकर माधुर्य में पर्यवसित हुआ है और संभव है, उस पर उस समय की अन्य साधना पद्धतियों––कृष्णायत सखी सम्प्रदाय, वैष्णव सहजिया एवं बौद्ध सहजिया, तथा काश्मीर शैव और 'रसेश्वर' दर्शन का प्रकारांतर से कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। सच तो यह है कि मध्यकालीन समस्त साधनाओं में क्या वैष्णव, क्या शाक्त, क्या शैव, क्या बौद्ध, मधुर भाव की उपासना का ही स्वर मुख्य है और शेष समस्त भाव गौण हैं। प्रभाव जो कुछ और जैसा कुछ भी हो, रामावत मधुर उपासना अपने-आपमें से प्रस्फुटित, विकसित, पल्लवित––पुष्पित स्वतंत्र साधनाशैली के रूप में ही इस उत्तरा खण्ड में छा गई थी और फिर भी 'मर्यादा' की मुख्यता के कारण इसे खुलकर खेलने का अवकाश नहीं मिल सका। इसीलिए यह दबी हुई गुप्त परम गुह्य रूप में ही बनी रही और आज भी वह परम गुह्य ही है।

छठा अध्याय

रामोपासना की रसिक परम्परा

भगवान् राम की मधुर भाव से उपासना करनेवाले भक्तों को 'रसिक' कहते हैं। यहां इस साधना में 'रसिक' शब्द इसी भाव में रूढ हो गया है।[1] और इसीलिए यह सम्प्रदाय 'रसिक सम्प्रदाय' कहलाता है। रसिक सम्प्रदाय की परम्परा परम प्राचीन है। इसके आकर ग्रन्थों से पता चलता है कि इसके आदि प्रवर्त्तक श्री हनुमान जी हैं, जिनका आत्म सम्बन्धी नाम श्री चारुशीला जी है। इस संप्रदाय में व्यास, शुकदेव, वशिष्ठ, पाराशर--आदि ऋषि-मुनि भी आते हैं। अभी-अभी स्वामी श्री सियालाल शरण जी महाराज 'श्री प्रेमलता जी' का जीवन चरित्र प्रकाशित हुआ है, जिसमें इस सप्रदाय की परम्परा दी हुई है, वह इस प्रकार है--

नाम	रसिक साधना का नाम
श्री हनुमान जी	श्री चारुशीला जी
श्री ब्रह्मा जी	श्री विश्वमोहनी जी
श्री वशिष्ठ जी	श्री ब्रह्मचारिणी जी
श्री पराशर जी	श्री पापमोचना जी
श्री व्यास जी	श्री व्यासेश्वरी जी
श्री शुकदेव जी	श्री सुनीता जी
श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी	श्री पुनीता जी
श्री गंगाधराचार्य जी	श्री गांधर्वी जी
श्री सदाचार्य जी	श्री सुदर्शना जी
श्री रामेश्वराचार्य जी	श्री रामअली जी
श्री द्वारानन्द जी	श्री द्वारावती जी
श्री देवानन्द जी	श्री देवा अली जी

---

१ --श्री रामस्य माधुर्यरीत्यापि बहुस्त्री वल्लभत्वंसिद्धेः सर्वस्त्री स्वामिन्या श्री जानक्या तद्विरो धाश्रवणाच्च। ऐश्वर्यरीत्यातु श्री रामस्य सर्व चिदचिच्छेशित्वेन सर्वजीवभोक्तृत्वोपपत्या सर्वजीवभर्तृत्वनिष्पतेः ये भर्तृ भार्याभावेन श्री रामं भजते त्वेषामेव रसिकत्वमुपपद्यते।

--श्री हारिदासकृत भाष्य पृ० १६३

--श्री रामस्तवराज

श्री श्यामानन्द जी	श्री श्यामा अली जी
श्री श्रुतानन्द जी	श्री श्रुता अली जी
श्री चिदानन्द जी	श्री चिदा अली जी
श्री पूर्णानन्द जी	श्री पूर्णा अली जी
श्री श्रियानन्द जी	श्री श्रियाअली जी
श्री हरियानन्द जी	श्री हरिसहचरी जी
श्री राघवानन्द जी	श्री राघवा अली जी
श्री रामानन्द जी	श्री रामानन्ददायिनी जी
श्री सुरसुरानन्द जी	श्री सुरेश्वरी जी
श्री माधवानन्द जी	श्री माधवी अली जी
श्री गरीबानन्द जी	श्री गर्वहारिणी जी
श्री लक्ष्मीदास जी	श्री सुलक्षणा जी
श्री गोपालदास जी	श्री गोपाअली जी
श्री नरहरिदास जी	श्री नारायणी जी
श्री तुलसीदास जी	श्री तुलसी सहचरी जी
श्री केवल कूवा राम जी	श्री कृपा अली जी
श्री चिन्तामणिदास जी	श्री चिन्तामणि जी
श्री दामोदरदास जी	श्री मोददायका जी
श्री हृदयराम जी	श्री उल्लासिनी जी
श्री मौजीराम जी	श्री स्वच्छन्दा जी
श्री हरिभजन दास जी	श्री हरिलता जी
श्री कृपाराम जी	श्री करुणाअली जी
श्री रतनदास जी	श्री रत्नावली जी
श्री नृपतिदास जी	श्री नीतिलता जी
श्री शकरदास जी	श्री सुशीला जी
श्री जीवाराम जी	श्री युगलप्रिया जी
श्री युगलानन्यशरण जी	श्री हेमलता जी
श्री जानकीवरशरण जी	श्री प्रीतिलता जी
श्री रामवल्लभाशरण जी	श्री युगलविहारिणी जी
श्री मियालाल शरण जी	श्री प्रेमलता जी

पुरातत्त्वानुसधायिनी समिति अयोध्या ने सवत् १९७७ मे मत्रराज की परम्परा पर खूब अच्छी तरह जम कर विचार किया था तथा उस समय तक की प्रचलित भिन्न-भिन्न परम्पराओ की आठ सूचियां दी है।

आजकल के महानुभावों ने जो शुद्धता पूर्वक 'निजगुरु' नामक पुस्तक मे परम्परा छपवाई है उसका क्रम इस प्रकार से है—

(१)

१ श्री मन्नारायण	२ श्री लक्ष्मी जी
३ श्री विष्वक्सेन जी	४ श्री शठकोप जी
५ श्री नाथमुनि जी	६ श्री पुण्डरीकाक्ष जी
७ श्री राममिश्र जी	८ श्री यामुनाचार्य जी
९ श्री महापूर्णाचार्य्य जी	१० श्री रामानुज स्वामी जी
११ श्री गोविन्दाचार्य जी	१२ श्री पराशर भट्ट जी
१३ श्री वेदान्ती जी	१४ श्री कलिवैरी जी
१५ श्री कृष्णपाद जी	१६ श्री लोकाचार्य जी
१७ श्री शैलेश जी	१८ श्री वरवर मुनि जी
१९ श्री पुरुषोतमाचार्य जी	२० श्री गगाधराचार्य जी
२१ श्री सदाचार्य जी	२२ श्री रामेश्वराचार्य जी
२३ श्री द्वारानन्द जी	२४ श्री देवानन्द जी
२५ श्री श्यामानन्द जी	२६ श्री श्रुतानन्द जी
२७ श्री चिदानन्द जी	२८ श्री पूर्णानन्द जी
२९ श्री श्रियानन्द जी	३० श्री हर्षानन्द जी
३१ श्री राघवानन्द जी	३२ श्री रामानन्द जी
३३ श्री अनन्तानन्द जी	३४ श्री कृष्णदास पयहारी जी
३५ श्री अग्रदास जी इत्यादि।	

डाक्टर ग्रियर्सन की एक सूची का अनुवाद इण्डियन प्रेस इलाहाबाद मे छपे हुए रामायण मे छपा है, वह इस प्रकार है—

(२)

१ श्री मन्नारायण	२ श्री लक्ष्मी
३ श्री श्रीधर मुनि	४ श्री सेनापति मुनि
५ श्री कर्मसूनु मुनि	६ श्री सैन्यनाथ मुनि
७ श्री श्रीनाथ मुनि	८ श्री पुण्डरीक
९ श्री राम मिश्र	१० श्री पराकुश
११ श्री यामुनाचार्य	१२ श्री रामानुज स्वामी
१३ श्री शठकोपाचार्य	१४ श्री कूरेशाचार्य
१५ श्री लोकाचार्य	१६ श्री पराशराचार्य

१७ श्री वाकाचार्य	१८ श्री लोकाचार्य
१९ श्री देवाधिपाचार्य	२० श्री शैलेशाचार्य (लोकाचार्य) ?
२१ श्री पुरुषोत्तमाचार्य	२२ श्री गंगाधरानन्द
२३ श्री रामेश्वरानन्द	२४ श्री द्वारानन्द
२५ श्री देवानन्द	२६ श्री श्यामानन्द
२७ श्री श्रुतानन्द	२८ श्री नित्यानन्द
२९ श्री पूर्णानन्द	३० श्री हर्यानन्द
३१ श्री श्रियानन्द	३२ श्री हरिवर्यानन्द
३३ श्री राघवानन्द	३४ श्री रामानन्द
३५ श्री सुरसुरानन्द	३६ श्री माधवानन्द
३७ श्री गरीबानन्द	३८ श्री लक्ष्मीदास

(३)

उक्त डाक्टर साहेब को एक और सूची पटना से मिली है वह प्राय. इसके समान ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि रामानुज स्वामी तक परम्परा नही दी है और कही-कही नामो में कुछ अन्तर है तथा कोई-कोई नाम नही है जैसे न० १३, १५ का नाम ही नही है। नं० १७ श्री वाकाचार्य के स्थान पर श्री यतीन्द्राचार्य है। न० २३ श्री रामेश्वरानन्द के स्थान पर श्री राममिश्र, न० २७ श्री गरीबानन्द के स्थान पर श्री गरीब दास है। न० ३१ का नाम नही है।

एक सूची श्री तपसी जी की छावनी अयोध्या से प्राचीन हस्तलिखित मिली है। वह इस प्रकार है—

(४)

अथ[1] प्रनावलि लिख्यते। प्रथम ब्रह्म, ब्रह्म के मूल, मूल के प्रकृति, प्रकृति के बीज ओकार, बीज ओंकार के महातत्व महातत्व के आदिमूल नारायण आदिमूल नारायण के महालक्ष्मी महालक्ष्मी के ईक्षारूप ईक्षास्वरूप के विश्वकर्ण, विश्वकरण के उज्जासमुनि, उज्जासमुनि के जोतिमुनि, जोतिमुनि के लोकमुनि, लोकमुनि के प्रगटमुनि, प्रगटमुनि के गंभीर मुनि, गभीर मुनि के दीर्घमुनि, दीर्घमुनि के अचलमुनि, अचलमुनि के प्रकाशमुनि, प्रकाशमुनि के नारदमुनि के कोष्ठमुनि, कोष्ठमुनि के कृपालमुनि, कृपालमुनि के गोपालमुनि, गोपालमुनि के वैराग्यमुनि, वैराग्यमुनि के त्यागमुनि, त्याग-मुनि के श्रोत्रानन्द, श्रोत्रानन्द के अच्युतानन्द, अच्युतानन्द के पूर्णानन्द, पूर्णानन्द के दयानन्द, दयानन्द के श्रियानन्द, श्रियानन्द के हरियानन्द, हरियानन्द के राघवानन्द, राघवानन्द के श्री स्वामी रामानन्द स्वामी रामानन्द के अनन्तानन्द, अनन्तानन्द के कृष्णदास जी कृष्णदास पयहारी जी के स्वामी अग्रदास जी इत्यादि।

---

१ शुद्धाशुद्ध जैसा लिखा था वैसी ही नकल कर दी गई है।

(५)

जन्मस्थान के श्रीयुत रघुवरशरण जी ने 'रहस्यत्र' मे जो परम्परा लिखी है, वह इस प्रकार है—

१ श्री मन्नारायण	२ श्री लक्ष्मी जी
३ श्री विष्वक्सेन जी	४ श्री वोपदेव जी
५ श्री शठकोप जी	६ श्री नाथमुनि
७ श्री पुण्डरीकाक्ष	८ श्री राममिश्र जी
९ श्री यामुन मुनि	१० श्री पराकश जी के ५ शिष्य
११ श्रुतदेव, श्रुतप्राज्ञ, श्रुतधामा, श्रुतोदधि पचम श्री रामानुज स्वामी	१२ श्री कूरेश जी
१३ श्री पराशर भट्ट जी	१४ श्री लोकाचार्य
१५ श्री देवाधिपाचार्य	१६ श्री शैलेश जी
१७ श्री वरवर मुनि	१८ श्री पुरुषोत्तम जी
१९ श्री गगाधर जी	२० श्री सदाचार्य्य जी
२१ श्री रामेश्वर जी	२२ श्री द्वारानन्द जी
२३ श्री देवानन्द जी	२४ श्री श्यामानन्द जी
२५ श्री श्रुतानन्द जी	२६ श्री चिदानन्द जी
२७ श्री पूर्णानन्द जी	२८ श्री श्रियानन्द जी
२९ श्री हर्षानन्द जी	३० श्री राघवानन्द जी
३१ श्री रामानन्द जी	

उपरोक्त परम्परा श्लोकबद्ध है। इसको कितने ही विद्वान् मानते है। परन्तु इसकी व्यवस्था इस तरह की है कि श्रीनारायण से लेकर वरवर मुनि तक जो परम्परा गद्दीस्थ आचारी लोगो के पास है, उसमे श्री वोपदेव जी का नामोनिशान नही है। नही मालूम इसमे वोपदेव जी कैसे लिखे गये। और महापूर्णाचार्य के शिष्य श्री रामानुज स्वामी प्रख्यात है तो इसमे पराकुश दास जी के शिष्य दूसरे चार श्रुतदेव, श्रुतप्रज्ञ इत्यादि पंचम शिष्य श्री रामानुज स्वामी कैसे लिखे गये। और श्री रामानन्द स्वामी जी के पीछे ७१ वर्ष के बाद श्री वरवर मुनि का जन्म है। सो वरवर मुनि श्री रामानन्द स्वामी के पूर्व १४ वी पीढी के गुरु कैसे लिखे गये है। इस पर विद्वानो को विचारना चाहिए।

वोपदेव जी को छोड़कर इस तरह की परम्परा 'वैष्णव धर्म रत्नाकर' में भी लिखी है।

(६)

भाटों के पास जो परम्परा है उसकी नकल इस प्रकार प्राप्त हुई है—

१ श्री आदिसून
२ श्री महासुन
३ श्री निर्गुण
४ श्री निराकार
५ श्री बीजओंकार
६ श्री आदि मूलनारायण
७ श्री महालक्ष्मी
८ श्री विष्वक्सेन
९ श्री ईक्षास्वरूप
१० श्री उजासमुनि
११ श्री जोतमुनि
१२ श्री लोकमुनि
१३ श्री प्रगट मुनि
१४ श्री गम्भीरमुनि
१५ श्री धीरजमुनि
१६ श्री प्रलोकसमुनि
१७ श्री पुहुपदेव मुनि
१८ श्री रामेमुनि
१९ श्री महापुरना मुनि
२० श्री विद्याधर मुनि
२१ श्री सरवन मुनि
२२ श्री जज्ञासमुनि
२३ श्री रामानुज मुनि
२४ श्री सूर्य्यप्रकाश मुनि
२५ श्री सूतधाम मुनि
२६ श्री सूतपीपा मुनि
२७ श्री मंगल मुनि
२८ श्री श्रेष्ठगोप मुनि
३० श्री पद्मविलोचन

इति मुनि पदवी समाप्त।

३१ श्री पद्माचार्य्य १
३२ श्री कदमाचार्य्य २
३३ श्री देवाचार्य्य ३
३४ श्री दीपाचार्य्य ४
३५ श्री ऋषियाचार्य्य ५
३६ श्री वंशीधराचार्य्य ५
३७ श्री कृपालचार्य्य ७
३८ श्री सुखाचार्य्य ८
३९ श्री विपनाचार्य्य ९
४० श्री पुरुषोत्तमाचार्य्य १०
४१ श्री नरोत्तमाचार्य्य ११
४२ श्री श्यामाचार्य्य १२
४३ श्री पूर्णाचार्य्य १३
४४ श्री गंगाधराचार्य्य १४
४५ श्री धराचार्य्य १५

इति आचार्य्य पदवी समाप्त।

४६ श्री दोयानन्द १
४७ श्री देवानन्द २
४८ श्री सेवानन्द ३
४९ श्री सुसेतानन्द ४
५० श्री अचेतानन्द ५
५१ श्री श्यामानन्द ६
५२ श्री पूर्णानन्द ७

५३ श्री दरियानन्द	८	५४ श्री सीयानन्द	९
५५ श्री हरियानन्द	१०	५६ श्री राघवानन्द	११
५७ श्री रामानन्द	१२	५८ श्री अनन्तानन्द	१३

इति नन्द पदवी समाप्त।

५९ श्री पैहारी कृष्णदास जी	१	६० श्री अग्रदास जी	२

(७)

मौजे सतमलपुर, पो० समस्तीपुर जिला दरभगा के रहनेवाले श्री रसिकबिहारी शरण जी ने अपने 'मन्त्रराज परम्परा' नामक ग्रन्थ मे लिखकर परम्परा का निर्देश किया है। पुस्तक छपी है जो देखना चाहे मगाकर देख ले। वह उपर्युक्त पाचो प्रकार की परम्परा से विलक्षण है। क्योकि उसमे लिखा है कि श्री रामजी ने मन्त्रराज को श्री जानकी जी को दिया। उन्होने महाशम्भु जी को दिया। महाशम्भ् जी ने विष्णु जी को दिया इत्यादि।

इस प्रकार से हमारे सम्मुख ७ प्रकार की परम्परा-सूचियाँ उपस्थित है। इनमे जितनी भिन्नता या भेद है, उसे देखा जा सकता है।

इस परम्परा से यह बात मालूम होती है कि श्रीरामानन्द स्वामी जी महाराज श्री रामानुज स्वामी के परिवार मे से नही है।

यह परम्परा श्रीमन्नारायण से शुरू नही होती है, किन्तु श्रीराम जी से इसका आरम्भ होता है। जैसे कि——

(८)

१ सर्वेश्वर श्री रामचन्द्र जी महाराज	२ श्री जानकी जी
३ श्री हनुमान जी	४ श्री ब्रह्मा जी
५ श्री वशिष्ठ जी	६ श्री पराशर जी
७ श्री व्यास जी	८ श्री शुकदेव जी
९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य्य जी	१० श्री गगाधराचार्य जी
११ श्री सदाचार्य जी	१२ श्री रामेश्वराचार्य जी
१३ श्री द्वारानद जी	१४ श्री देवानद जी
१५ श्री श्यामानन्द जी	१६ श्री श्रुतानन्द जी
१७ श्री चिदानन्द जी	१८ श्री पूर्णानन्द जी
१९ श्री श्रियानन्द जी	२० श्री हर्य्यानन्द जी
२१ श्री राघवानन्द जी	२२ श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज

श्री राम जी से श्री रामानन्द जी के मन्त्रराज आता है। इस अग्रस्वामी जी की परम्परा का मेल सदाशिव सहिता के इस श्लोक से भली भाँति मिल जाता है——

राजमार्गमिम विद्धि रामोक्तं जानकीकृतम्।

अर्थात् श्री राम जी द्वारा कथित इस राममन्त्र को श्री जानकी जी ने प्रख्यात किया। इसको तुम राजमार्ग जानो। इसके अतिरिक्त एक बात और है। 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टार' इस निरुक्त वचन के अनुसार ऋषि वह होता है जो मन्त्र के अर्थ पर विचार और प्रचार करता है। राममन्त्र का ऋषि जानकी लिखा हुआ है। 'हारीत स्मृति' मे भी लिखा है कि "ऊँ अस्य श्रीरामषडक्षर मन्त्रराजस्य श्री जानकी ऋषि।" ऐसे ही समस्त पटलो मे भी छपा हुआ है। इससे भी विदित होता है कि श्री की भी श्री परात्परा शक्ति श्री जानकी जी को ही श्रीरामजी से इन मन्त्रराज का उपदेश प्राप्त हुआ है।

इस परम्परा मे आगे चलकर लिखा है कि श्रीजानकी जी ने श्री हनुमान जी को उपदेश दिया।

और 'श्रीरामविजय सुधाकर' मे हमारे पूर्वाचार्य्य श्री मधुराचार्य्य जी लिख गये है—'सीता-शिष्य गुरोर्गुरुम्।' इससे स्पष्ट हो गया कि श्रीहनुमान् जी श्रीजानकी जी के शिष्य है।

पुनः श्री हनुमान् जी ने श्रीराममत्र का उपदेश ब्रह्मा जी को दिया। प्रमाण 'सदाशिव सहिता—'

योऽय महाविभूतिस्थो हनुमान् रामतत्पर।
सऽप्रादाद् ब्रह्मणे तत्र मत्रराज षडक्षरम्॥

पुन अथर्वण—'श्री रामतापनी' का प्रमाण—

त्वत्तो वा ब्रह्मणोवापि ये लभन्ते षडक्षरम्।
जीवन्तो मत्रसिद्धा स्युर्मुक्ता मा प्राप्नुवन्ति ते॥

अर्थात् श्रीराम जी शिव जी से कहते है कि हे शकर! हमारी नित्य विभूति से पहले तुमको तथा ब्रह्मा को हमारा मत्र प्राप्त हुआ। अतएव तुम्हारी तथा ब्रह्मा की दो राममंत्र की परम्परा पृथ्वीतल मे प्रचारित हुई है। जो कोई इन दोनो परम्पराओ मे से किसी मे भी दीक्षित होकर राममत्र का अभ्यास करेगा वह जीते जी सिद्धि को प्राप्त होकर ससार समुद्र से तर जायगा।

अनन्तर ब्रह्मा, वशिष्ठ, पराशर, व्यास, शुकदेव द्वारा क्रमश. इस भूलोक मे मंत्रराज का प्रचार हुआ। प्रमाण, 'अगस्त्य सहिता'—

ब्रह्मा ददौ वशिष्ठाय स्वसुताय मनु तत।
वशिष्ठोपि स्वपौत्राय दत्तवान्मत्रमुत्तमम्॥
पराशराव रामस्य भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
स वेदव्यास मुनये ददावित्थं गुरुक्रमः॥
वेदव्यास मुखेनात्र मत्रौ भूमौ प्रकाशित।
वेदव्यासो महातेजा शिष्येभ्य समुपादिशत॥

परमहस शुकदेव जी ने सबसे पहिले परमहस पुरुषोत्तमाचार्य को राममंत्र का उपदेश दिया, यह बात सम्प्रदायाचार्य्य श्री अग्रस्वामी जी ने लिख दी है, यथा—

शुकदेवकृपापात्रो ब्रह्मचर्य्यव्रतेस्थित ।
नरोत्तमस्तु तच्छिष्यो निर्वाणपदवी गत ॥

अस्तु, परमहस पुरुषोत्तमाचार्य्य, गगाधराचार्य्य आदि महापुरुषो द्वारा क्रमश श्री राममंत्र श्री रामानन्द स्वामी जी को प्राप्त हुआ।

ये तो हुए शास्त्रीय प्रमाण, अब एक ऐतिहासिक प्रमाण भी। श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज के समकालीन काशीपुरी में मौलाना रशीद नामक एक मुसलमान सन्त हो गये है। उन्होने 'तज़की रतुलफ्क़रा' नाम से एक पुस्तक फारसी भाषा मे लिखी है जिसमें विशेषत: मुसलमान फकीरो की चर्चा है और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध हिन्दु सन्तो की भी कुछ महिमा गाई गई है। उसी पुस्तक में उक्त मौलाना ने स्वामी जी की लोकोत्तर आध्यात्मिक शक्ति का परिचय देते हुए स्पष्ट शब्दो मे लिखा है कि स्वामी जी आदि श्री सम्प्रदाय के आचार्य्य है, इस मार्ग की मूल प्रवर्त्तिका श्री सीता जी है, उन्होने सबसे पहले इस सिद्धान्त का उपदेश देवस्वभावी हनुमान जी को दिया और भगवान् आजानेय के द्वारा इस मत्र का प्रचार हुआ। इसीलिए इसका नाम श्री सम्प्रदाय है और उपदेश मत्र को रामतारक कहते है।[1]

श्री सम्प्रदाय की दो शाखाएँ—एक श्री शब्द वाच्या श्री जानकी जी के द्वारा श्री राममत्रराज की परम्परा प्रकट हुई और दूसरी (श्री शब्द वाच्या) श्री लक्ष्मी जी द्वारा प्रकट हुई। जानकी जी श्री शब्द वाच्या है, इसका समाधान यह है कि श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण युद्ध काण्ड सर्ग ११३ श्लोक २२ मे लिखा है 'वसुधा याहि वसुधा श्रिया श्रीर्भतृवत्सलाम् ।' पुन. अयोध्याकाण्ड सर्ग ४४ मे लिखा है—'श्रिय श्रीश्चभवेद्गया कीर्त्या कीर्ति. क्षमा शमा । अर्थात् श्री जानकी जी श्रियो की भी आद्याशक्ति सर्वेश्वरी है। 'पुन. श्री अग्रस्वामी जी ने भी अष्टाक्षर मन्त्र की व्याख्या में लिखा है कि 'श्री शब्देन भगवती सीतोच्यते ।'

अस्तु। उपर्युक्त दोनो शाखाओ का नाम 'श्री सम्प्रदाय' ही है क्योंकि दोनों की प्रवर्त्तिका श्री जी ही है और दोनों का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत ही है।

इनके अतिरिक्त श्री 'महारामायण' मे दी गई परम्परा इस प्रकार है—

१ श्री राम जी	२ श्री सीता जी
३ श्री हनुमान जी	४ श्री ब्रह्मा जी
५ श्री वसिष्ठ जी	६ श्री परासर जी
७ श्री व्यास जी	८ श्री शुकदेव जी
९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी	१० श्री गंगाधराचार्य

---

१ देखिये पुरातत्त्वानुसंधायिनी समिति अयोध्या सं० १९७७ की रिपोर्ट पृ० १३।

११ श्री सदाचार्य
१२ श्री सोमेश्वराचार्य
१३ श्री द्वारानन्दाचार्य
१४ श्री देवानन्दाचार्य
१५ श्री श्यामानन्दाचार्य
१६ श्री श्रुतानन्दाचार्य
१७ श्री चिदानन्दाचार्य
१८ श्री पूर्णानन्दाचार्य
१९ श्री श्रियानन्दाचार्य
२० श्री हर्यानन्दाचार्य
२१ श्री राघवानन्दाचार्य
२२ श्री जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य
२३ श्री योगानन्द जी
२४ श्री मयानन्द जी
२५ श्री तुलसीदास भागवती जी
२६ श्री नयनूराम जी
२७ श्रीखाम चौगानी जी
२८ श्री उधोमयदानी जी
२९ श्री खेमदास जी
३० श्री रामदास जी
३१ श्री लक्ष्मणदास जी
३२ श्री देवादास जी
३३ श्री भगवानदास जी
३४ श्री बालकृष्णदास जी
३५ श्री वेणीदास जी
३६ श्री श्रवणदास जी
३७ श्री रामवचनदास जी
३८ श्री रामवल्लभाशरण जी।

श्री 'विश्वभरोपनिषद्' की टीका (प० श्री सरयूदास जी कृत) मे गुरु-परम्परा इस प्रकार है--

१ श्री रामजी महाराज
२ श्री जानकी जी
३ श्री हनुमान् जी
४ श्री ब्रह्मा जी
५ श्री वशिष्ट जी
६ श्री पराशर जी
७ श्री व्यास जी
८ श्री शुकदेव की
९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी
१० श्री गगाधराचार्य जी
११ श्री सदाचार्य जी
१२ श्री रामेश्वराचार्य जी
१३ श्री द्वारानन्द जी
१४ श्री देवानन्द जी
१५ श्री श्यामानन्द जी
१६ श्री श्रुतानन्द जी
१७ श्री चिदानन्द जी
१८ श्री पूर्णानन्द जी
१९ श्री श्रियानन्द जी
२० श्री हरियानन्द जी
२१ श्री राघवानन्द जी
२२ श्री रामानन्द जी
२३ श्री अनन्तानन्द जी
२४ श्री गैसदास जी
२५ श्री खेमदास जी
२६ श्री पूर्णवैराठी (बैरागी) जी
२७ श्री गुजारदास जी
२८ श्री कृष्णदास जी
२९ श्री गोपालदास जी
३० श्री दामोदरदास जी
३१ श्री लक्ष्मीदास जी
३२ श्री आनन्दराम जी

३३ श्री तुलसीदास जी
३४ श्री विष्णुदास जी
३५ श्री हरिभजनदास जी
३६ श्री महादास जी निर्वाणी
३७ श्री अयोध्यादास जी
३८ श्री जानकीदास जी
३९ श्री मणिरामदास जी
४० श्री सरयूदास जी

श्री 'सीतोपनिषद्' मे स्वामी श्रीरामानन्द जी तक की गुरु-परंपरा इस प्रकार है—

१ सर्वेश्वर श्रीसीता रामचन्द्र जी महाराज
२ श्री हनुमान जी
३ श्री ब्रह्मा जी
४ श्री वशिष्ट जी
५ श्री पराशर जी
६ श्री व्यास जी
७ श्री शुकदेव जी
८ श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी
९ श्री गगाधराचार्य जी
१० श्री सदाचार्य जी
११ श्री रामेश्वराचार्य जी
१२ श्री द्वारकानन्द जी
१३ श्री देवानन्द जी
१४ श्री श्यामानन्द जी
१५ श्री श्रुतानन्द जी
१६ श्री चिदानन्द जी
१७ श्री पूर्णानन्द जी
१८ श्री श्रियानन्द जी
१९ श्री हर्यानन्द जी
२० श्री राघवानन्द जी
२१ श्री श्री रामानन्द स्वामी जी महाराज

श्री स्वामी रामचरणदास जी 'करुणासिधु' के 'श्री रामनवरत्न सार संग्रह' मे गुरु-परम्परा का प्रकरण इस प्रकार है—

१ श्री राम जी
२ श्री सीताजी
३ श्री हनुमान जी
४ श्री ब्रह्मदेव जी
५ श्री वसिष्ठ जी
६ श्री पराशर जी
७ श्री व्यास जी
८ श्री शुकदेव जी
९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य
१० श्री गगाधराचार्य
११ श्री सदाचार्य
१२ श्री रामेश्वराचार्य
१३ श्री द्वारानंदाचार्य
१४ श्री देवानन्दाचार्य
१५ श्री श्यामानन्दाचार्य
१६ श्री श्रुतानन्दाचार्य
१७ श्री चिदानंदाचार्य
१८ श्री पूर्णानन्दाचार्य
१९ श्रियानन्दाचार्य
२० श्री हर्यानन्दाचार्य
२१ श्री राघवानन्दाचार्य
२२ श्रीजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य
२३ श्री अनंतानदाचार्य
२४ श्री कृष्णाचार्य
२५ श्री अग्रस्वामी जी
२६ श्री रामभगवान जी
२७ श्री लक्ष्मणदास जी
२८ श्री मस्तराम जी

२९ श्री लक्ष्मीराम	३० श्री नन्दलाल जी
३१ श्री चरणदास जी	३२ श्री हरिदास जी
३३ श्री रामप्रसाद जी दीनबन्धु	३५ श्री रघुनाथ प्रसाद जी
३५ श्री रामचरणजी करुणा सिन्धु	३६ श्री सीताराम सेवक जी
३७ श्री जानकीवरशरण जी	३८ श्री लक्ष्मणशरण जी

श्री मथुरादास जी महाराज ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'कल्याण कल्पद्रुम' मे गुरुपरम्परा श्लोक-बद्ध दी है, जो इस प्रकार है—

परधाम्नि स्थितोरामः पुण्डरीकायतेक्षण.।
सेवया परया जुष्टो जानक्यै तारकं ददौ॥१॥
श्रिय. श्रीरपिलोकानां दु खोद्धरणहेतवे।
हनूमते ददौ मन्त्र सदा रामाघ्रिसेविने॥२॥
ततस्तु ब्रह्मणा प्राप्तो हनुमानेन मायया।
कल्पान्तरे तु रामो वै ब्रह्मणे दत्तवानिमम्॥४॥
मन्त्रराज जपं कृत्वा धाता निर्मातृतागत।
त्रयोसारमिमं धातुर्वशिष्ठो लब्धावान्परम्॥५॥
पराशरो वशिष्ठाश्च मुद्रा सस्कार सयुतम्।
मन्त्रराज पर लब्ध्वा कृतकृत्यो बभूव ह॥६॥
पराशरस्य सत्पुत्रो व्यास सत्यवती सुत.।
पितु षडक्षरं लब्ध्वा चक्रे वेदोपबृंहणम्॥७॥
व्यासोऽपि बहु शिष्येषु मन्वानो शुभ योग्यताम्।
परमहं सवर्याय शुकदेवाय दत्तवान्॥८॥
शुकदेवकृपापात्रो ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थितः।
नरोत्तमस्तु[1] तच्छिष्यो निर्वाणपदवी गत.॥९॥
स चापि परमाचार्य्यो गगाधराय सूरये।
मन्त्राणा परम तत्व राममत्र प्रदत्तवान्॥१०॥
गगाधरात्सदाचार्य्यस्ततो रामेश्वरो यति।
द्वारानन्दस्ततो लब्ध्वा परब्रह्मरतो ऽ भवत्॥११॥
देवानन्दस्तु तच्छिष्य. श्यामानन्दस्ततो ग्रहीत्।
तत्सेवया श्रुतानन्दश्चिदानन्दस्ततो ऽ भवत्॥१२॥

---

१ इनका दूसरा नाम है श्रीस्वामी १०८ श्री पुरुषोत्तमाचार्य्यजी।

पूर्णानन्दस्ततो लब्ध्वा श्रियानन्दाय दत्तवान्।
हर्य्यानन्दो महायोगी श्रियानन्दाघ्रिसेवकः ॥१३॥
हर्य्यानन्दस्य शिष्यो हि राघवानन्द इत्यसौ।
यस्य वै शिष्यतां प्राप्तो रामानन्द स्वय हरिः ॥१४॥
रामानन्दस्य सर्वज्ञ शिरोरत्नस्य धीमत.।
अनन्तानन्द इत्याख्य सच्छिष्य सद्गुणाश्रयः ॥१५॥
अनन्तानन्दमाचार्य्य गयादास उपेत्य च।
मन्त्ररत्नं समादाय लक्ष्मीदासाय दत्तवान् ॥१६॥
श्रीमन्माधवदासस्तु तस्माल्लेभे षड्क्षरम्।
द्वारः प्रवर्तक खोजी ततो मन्त्र गृहीतवान् ॥१७॥
दत्तवान् क्षेमदासाय श्री खोजीजी महामुनि।
श्रीनारायणदासश्च तत प्राप्त षडक्षरम् ॥१८॥
भक्तराजो महाधीमान् श्रीमन्त्रं करुणालयः।
ददौ नृसिहदासाय रामदासाय सोपि च ॥१९॥
हरिदासस्ततो लब्ध्वा कृपारामाय धीमते।
मन्त्ररत्नं पर प्रेम्णा दत्तवान् करुणानिधि ॥२०॥
स च श्रीकृष्णदासाय महामन्त्रं प्रदत्तवान्।
श्रीमत्सन्तोषदासस्तु ततो लेभे हि तं मनुम् ॥२१॥
ततो रघुनाथदास. पूर्णदासस्ततस्तुतम्।
प्रगृह्य ब्रह्मदासाय प्रददौ काष्ठधारिणे ॥२२॥
स च भगवान्दासाय दत्तवान् मन्त्रमुत्तमम्।
रामगलोलादासाय स ददौ करुणानिधि ॥२३॥
स श्रीनृसिहदासाय कमल्दासाय सो पि च।
दत्तवान्मत्ररत्नं तत्सर्वजीव हिऽतावहम् ॥२४॥
श्री मान्वज्रागदासस्तु तदीय परिचर्य्यया।
राममन्त्रमुपादाय कार्तार्थ्य समुपेयिवान् ॥२५॥
यः पठेच्छद्धयानित्यं पूर्वाचार्य्यपरम्पराम्।
मन्त्रराज रति प्राप्य सद्यो रामपदं व्रजेत ॥२६॥

श्री कान्तशरण ने 'प्रपत्तिरहस्य' में श्री अग्रस्वामी की दी हुई परंपरा का उल्लेख करते हुए उसे अद्यतन रूप दिया है जो इस प्रकार है—

रामानन्दमहं बन्दे वेद-वेदान्त-पारगम्।
राम-मंत्रप्रदातारं सर्वलोकोपकारकम् ॥१॥

शुभासने समासीनमनन्तानन्दमच्युतम् ।
कृष्णदासो नमस्कृत्य पप्रच्छ गुरुसन्ततिम् ॥२॥

कृष्णदास उवाच--

भगवन् यमिनां श्रेष्ठ प्रपन्नोऽस्मि दयां कुरु ।
ज्ञातुमिच्छाम्यहं सर्वा पूर्वेषां सत्परम्पराम् ॥३॥
मन्त्रराजश्च केनादौ प्रोक्तः कस्मै पुरा विभो ।
कथं च भुवि विख्यातो मन्त्रो यं मोक्षदायकः ॥४॥
कृष्णदासवचः श्रुत्वा ऽनन्तानन्दो दयानिधिः।
उवाच श्रूयतां सौम्य वक्ष्यामि तद्यथाक्रमम् ॥५॥
परधाम्निस्थितो रामः पुण्डरीकायतेक्षणः ।
सेवया परया जुष्टो जानक्यै तारकं ददौ ॥६॥
श्रियः श्रीरपि लोकानां सुःखोद्धरणहेतवे ।
हनूमते ददौ मन्त्रं सदा रामांघ्रिसेविने ॥७॥
ततस्तु ब्रह्मणा प्राप्तो मुह्यमानेन मायया ।
कल्पान्तरे तु रामो वै ब्रह्मणे दत्तवानिमम् ॥८॥
मन्त्रराजजपं कृत्वा धाता निर्मातृतां गतः ।
त्रयीसारमिमं धातुर्वसिष्ठो लब्धवान्परम् ॥९॥
पराशरो वसिष्ठाश्च मुद्रासंस्कार-संयुतम् ।
मन्त्रराजं परं लब्ध्वा कृतकृत्यो बभूव ह ॥१०॥
पराशरस्य सत्पुत्रो व्यासः सत्यवतीसुतः ।
पितुः षडक्षरं लब्ध्वा चक्रे वेदोपबृंहणम् ॥११॥
व्यासोपि बहुशिष्येषु मन्वानः शुभयोग्यताम् ।
परमहंसवर्याय शुकदेवाय दत्तवान् ॥१२॥
शुकदेव-कृपापात्रो ब्रह्मचर्यव्रतेस्थितः ।
नरोत्तमस्तु तच्छिष्यो निर्वाणपदवीं गतः ॥१३॥
स चापि परमाचार्यो गंगाधराय सूरये ।
मन्त्राणां परमं तत्वं राममन्त्रप्रशास्तवान् ॥१४॥
गंगाधरात्सदाचार्यस्ततो रामेश्वरो यतिः ।
द्वरानन्दस्ततो लब्ध्वा परब्रह्मरतो ऽभवत् ॥१५॥
देवानन्दस्तु तच्छिष्यः श्यामानन्दस्ततो ग्रहीत् ।
तत्सेवया श्रुतानन्दश्चिदानन्दस्ततो ऽभवत् ॥१६॥
पूर्णानन्दस्ततो लब्ध्वा श्रियानन्दाय दत्तवान् ।
हर्यानन्दो महायोगी श्रियानन्दांघ्रिसेवकः ॥१७॥

हर्यानन्दस्य शिष्यो हि राघवानन्द इत्यसौ।
यस्य वै शिष्यता प्राप्तो रामानन्द स्वयं हरि. ॥१८॥

यहा तक की परम्परा श्री अग्रस्वामि कृत श्लोकबद्ध है। इसके आगे कई शाखाएँ हुई है उनमे मै अपनी परम्परा आगे लिखते है—

तस्मात्सुरसुराख्यस्तु ततो माधवसज्ञक।
गरीबाख्यस्ततः प्राप्तो लक्ष्मीदासस्तत परम् ॥१९॥
तस्माद्गोपालदासस्तु नरहरिदासस्तत।
श्री मान्केवलरामश्च तत प्राप्त षडक्षर ॥२०॥[1]
श्री दामोदरदासाख्य· शिष्यस्तस्य महामते।
साधुसेवी दयायुक्त सदाचारेषु निष्ठित ॥२१॥
तस्माद् हृदयरामस्तु विरक्तश्च गुणालय।
कृपारामोपि वै तस्माद्रत्नदासस्ततो ऽभवत् ॥२२॥
तस्मान्नृपतिदासस्तु रामभक्तो नमूयक।
तस्माच्छंकरदासो हि राम-नाम-प्रकाशक ॥२३॥
तस्माज्जातो महाराजो जीवारामेतिसज्ञक।
शुभस्थाने चिराणाख्ये राजत रसिकाग्रणी ॥२४॥
तस्य सम्बन्ध सम्भूत महाराज प्रतापवान्।
साकेताख्य पुरे रम्ये विरराज महाप्रभु· ॥२५॥
सीतारामौ प्रददतु तस्य नाम विलक्षणम्।
युगलानन्यशरणाख्य विदित पृथिवीतले ॥२६॥
तस्यानन्तकल्याणगुणाख्यातो विलक्षण।
स्वभावं तस्य सौशील्य कारुण्य कटुवर्जितम् ॥२७॥
सौन्दर्य तस्य लावण्य माधुर्य रसवर्द्धनम्।
तस्मिन्नेव प्रकाशन्ते यथा सीतापते गुणा ॥२८॥

---

१ श्री केवल राम (कूवा) जी का जन्म सं० १५४५ में हुआ है। उन्होंने १८० वर्ष तक की आयु प्राप्त कर जीवों का उद्धार किया है। सं० १७२५ में उनकी परधाम यात्रा हुई है। उनकी शुभ जीवनी उनके समकालीन गुरुभाई श्री रघुनाथदास जी ने उत्तम रीतिसे संस्कृत में लिखी है। उसके बीच बीच में दोहे भी है। उसमें श्री नरहरिदासजी के प्रथम शिष्य श्री केवल राम (कूवा) जी है और द्वितीय शिष्य श्री गोस्वामी तुलसीदासजी लिखे गए है, तथा—'द्वितीये नरहरिदास के, भये जो तुलसीदास। रामायण शुचि ग्रंथ रचि, जग में कियो प्रकास।' उक्त जीवनी 'फीथड़ा' गादी में वर्तमान है, जिन्हें विशेष जानना हो, वें उसे देखें।

प्रवक्तु नाप्यल कोऽपि तस्य महात्म्यमुत्तमम्।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नम २९॥
तस्य शिष्यो महाप्राज्ञो रसिकः सर्वधर्मवित्।
जानकीवरशरण प्रख्यातो जगतीतले ॥३०॥
सदा गुरुपदेशेषु नैष्टिको बहुसाधुषु।
वक्ता बृहस्पति साक्षात्सहिष्णुत्वे मही सम ॥३१॥
सीतारामरसाना च वर्द्धको भेददायक।
छेदक सशयाना च रसराजप्रवर्द्धकः ॥३२॥
दयित सर्वभूताना राममन्त्रप्रदायक ।
गुरुवाक्यस्य तत्वज्ञ वास श्रीसरयूतटे ॥३३॥
लक्ष्मरणाख्यप्रकोटे तु सीतारामस्य सन्निधौ।
गुरुसन्निकटे तत्र क्षेत्रवासे च सुष्टुधी. ॥३४॥
तस्य शिष्यो गुर्रानिष्ठ कवि काव्यविशारदः।
नाम श्री रामवल्लभाशरणो रामसेवकः ॥३५॥
सद्गुरुसदने रम्ये शोभिते सरयूतटे।
तस्मिन्वसनि वै धीरो गान-विद्या-विचक्षणः ॥३६॥
तस्य शिष्यः समीपस्थ श्रीकान्तशरणो लघु।
श्री सद्गुरुकुटीरस्थो रामनाम-परायण ॥३७॥
सीतानाथसमारम्भा रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्ता वन्दे गुरुपरम्पराम्॥३८॥

अर्थात् प्रथम श्रीरामजी ने श्री जानकी जी को षडक्षर मन्त्रराज प्रदान किया है, फिर श्री जानकी जी ने श्री हनुमान जी को दिया है—ऐसा ही क्रम जानना चाहिए—

१ अनन्त श्री राम जी	२ अनन्त श्री जानकी जी
३ ,, श्री हनूमान जी	४ ,, श्री ब्रह्मा जी
५ ,, श्री वसिष्ठ जी	६ ,, श्री पराशर जी
७ ,, श्री व्यास जी	८ ,, श्री शुकदेव जी
९ ,, श्री पुरुषोत्तमाचार्य	१० ,, श्री गगाधराचार्य जी
११ ,, श्री सदाचार्य जी	१२ ,, श्री रामेश्वराचार्य जी
१३ ,, श्री द्वारानन्द जी	१४ ,, श्री देवानन्द जी
१५ ,, श्री श्यामानन्द जी	१६ ,, श्री श्रुतानन्द जी
१७ ,, श्री चिदानन्द जी	१८ ,, श्री पूर्णानन्द जी
१९ ,, श्री श्रियानन्द जी	२० ,, श्री हर्यानंद जी

२१ ,, श्री राघवानन्द ची	२२ ,, श्री स्वामी रामानन्द जी
२३ ,, श्री सुरसुरानन्द जी	२४ ,, श्री माधवानन्द जी
२५ ,, श्री गरीबानन्द जी	२६ ,, श्री लक्ष्मीदास जी
२७ ,, श्री गोपालदास जी	२८ ,, श्री नरहरिदास जी
२९ ,, श्री केवलराम कूवा जी	३० ,, श्री दामोदरदास जी
३१ ,, श्री हृदयराम जी	३२ ,, श्री कृपाराम जी
३३ ,, श्री रत्नदास जी	३४ ,, श्री नृपति दास जी
३५ ,, श्री शंकरदास जी	३६ ,, श्री जीवाराम जी (युगलप्रिय शरण जी)
३७ ,, श्री युगलानन्यशरण जी	३८ ,, श्री जानकीवर शरण जी
३९ ,, श्री रामवल्लभाशरण जी	४० ,, श्री कान्तशरण जी

श्री रूपकला जी (श्री सीतारामशरण भगवान् प्रसाद) ने श्री भक्तमाल के 'भक्ति मुधा स्वाद तिलक' मे अपनी परम्परा इस प्रकार दी है—

१ श्री सीताराम जी	२ श्री हनुमत जी
३ श्री राघवानन्दाचार्य स्वामीजी	४ श्री भगवान् रामानन्द जी
५ श्री भगवान् रामानन्द जी	६ श्री सुरसुरानन्द जी
७ श्री बलियानन्द जी	८ श्री सेउरिया स्वामी जी
९ श्री बिहारीदास जी	१० श्री रामदास जी
११ श्री बिनोदानन्द जी	१२ श्री धरनीदास जी
१३ श्री करुणानिधान जी	१४ श्री केवल राम जी
१५ श्री रामप्रसादीदास जी	१६ श्री रामसेवकदास जी परसा
१७ स्वामी श्री रामचरणदास जी 'करुणासिंधु'	१८ श्री सीताराम शरण भगवान् प्रसाद जी

इस परम्परा मे चौथा और पांचवा दोनो ही नाम भगवान् रामानन्द जी का है। यह कहना कठिन है कि यह दो व्यक्तियो के सम्बन्ध मे है या भूल से एक ही व्यक्ति के दो बार नाम आ गया है। जो हो श्री रूपकला जी की गुरु-परम्परा से तथा श्री प्रेमलता जी की गुरु-परम्परा से रसिक सम्प्रदाय के प्रायः सभी रामोपासको का परिचय मिल जाता है।

परन्तु इस रस साधना की एक प्रमुख धारा छूटी ही जा रही है जिसकी परम्परा का ज्ञान परमावश्यक है और वह है जयपुर में गालवाश्रम (गलता गद्दी) की परम्परा। रामोपासक रसिक सम्प्रदाय की यह मान्यता है कि स्वामी रामानन्द तो इस भाव के उपासक थे ही, उनके पूर्ववर्ती गुरुओं को भी मधुरभाव की साधना प्रिय थी और इस प्रकार वे श्री हनुमान जी से जिनका मधुर भाव का नाम श्री चारुशीला जी है, अपनी परम्परा का आरम्भ मानते है। एक बात यहां लक्ष्य

करने की यह है कि गलता (गालवाश्रम) पहले नाथी सिद्धो के हाथ मे था उस पर रामानन्दी वैष्णवो के अधिकार होने के बाद मधुर भाव की उपासना अधिक व्यापक हुई है। इस श्रेणी के भक्तो का विश्वास है कि श्री सिद्ध नाभादास जी और उनके गुरु अग्रदास तथा अग्रदास के गुरुभाई श्री कील्ह स्वामी जी मधुर रस के रसिक थे। मधुर रस का रसिक अपने मे श्री रामचन्द्र की प्रिया, सखी, श्री जानकी जी की सखी या दासी का अभिमान करता है और या तो श्री जानकी जी के सुख मे सुख मानता है या श्री रामचन्द्र जी की प्रीति का पात्र बन कर जीवन धन्य करता है। शृगार रसाश्रया मधुरभक्ति मे भक्त 'कदर्प कोटि कमनीय किशोर मूर्ति' मधुर मनोहर भगवान् रामचन्द्र को पतिरूप मे भजता है।[1]

इस भाव के रसिक भक्तो का विश्वास है कि श्री अग्रदास जी इसी भाव के साधक थे। उनका साधना का नाम 'अग्रअली' था। श्री रूपकला जी ने अपने 'भक्तमाल' के 'भक्ति सुधास्वाद तिलक' मे बताया है कि श्री अग्रदास जी शृगार रस के आचार्य श्री 'अग्रअली' के नाम से प्रसिद्ध है। आपका 'अष्टयाम', 'ध्यान मजरी', कुडलिया, पदावली आपके मधुर भाव को व्यक्त करती है।[2]

श्री रूपकला जी के उपर्युक्त तिलक मे श्री अग्रस्वामी की गुरु-परम्परा यो है—

भगवान् रामानन्द जी
|
श्री अनन्तानन्द जी
|
श्री कृष्णदास जी पयहारी
|
श्री अग्रदेव जी
|
स्वामी श्री नाभादास जी

किम्बदन्ती है कि श्री जानकी जी महारानी ने कृपा कर के श्री अग्रस्वामी को दर्शन दिया और आप अपनी इच्छा से शरीर त्याग कर श्री साकेत को पधारे। अस्तु। श्री अनन्तानन्द जी की पूरी शिष्य-परम्परा मधुरोपासक है। स्वामी श्री हरियानन्द आचार्य भी मधुरोपासक सत थे। श्री युगलप्रिया जी ने अपने 'रसिक भक्तमाल' मे आपका परिचय यों दिया है—

चरण कमल बन्दौ कृपालु हरियानन्द स्वामी।
सर्वसु सीताराम रहसि दशधा अनुगामी॥
बालमीक वर शुद्ध सत्व माधुर्य रसालय।
दरसी रहसि 'अनादि' पूर्व रसिकन की चालय॥

---

१ मधुरं मनोहरं रामं पतिसंबंध पूर्वकम्।
ज्ञात्वा सदैव भजते सा शृंगाररसाश्रया॥ —श्री हनुमत्संहिता

२ देखिये भक्तमाल का भक्तिसुधा स्वाद तिलक पृ० ३१२-३१४।

नित सदाचार में रसिकता
अति अद्‌भुत गति जानिये।
जानकिवल्लभ कृपा सहि
शिष प्रतिशिष्य बखानिये॥

ऊपर के पद मे 'दशधा अनुगामी' का अर्थ है मधुरोपासक। अभिप्राय यह है कि स्वामी श्री अनन्तानन्द जी की पूरी परम्परा मधुरोपासक है। इसी परम्परा में श्री 'बालअली' हुए, जिनका 'नेह प्रकाश', 'ध्यान मजरी' आदि ग्रन्थ इस परम्परा के प्रमुख आकर ग्रन्थ के रूप में समादृत है। जो हो, मधुर भाव के रामोपासक रसिक भक्तो का दावा है कि स्वामी अग्रदास जी स्वामी कीलदास जी अपने गुरु श्री कृष्णदास पयहारी के समान मधुरोपासक थे। अस्तु।

इस परम्परा के परम प्रभावशाली आचार्य एव साधक श्री मधुराचार्य जी हुए। कील स्वामी के शिष्य छोटे कृष्णदास जी, कृष्णदास जी के विष्णुदास जी, विष्णुदास जी के नारायण मुनि, नारायण मुनि के हृदय देव और हृदयदेव के शिष्य स्वामी रामप्रपन्न जी या मधुराचार्य जी हुए। रामानन्दीय मधुरासोपासक भक्तो मे मधुराचार्य जी का बडा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, लगभग वही जो गौडीय वैष्णवो मे श्री जीव गोस्वामी पाद का है। जिस प्रकार जीव गोस्वामी ने भक्ति, प्रीति आदि षट् सदर्भात्मक विशाल भक्ति-ग्रन्थ का निर्माण कर गौडीय साधना का दर्शन पक्ष परिपुष्ट किया उसी प्रकार श्री मधुराचार्य जी ने छः सदर्भो का विशाल ग्रन्थ लिखा था जिनमे केवल दो ही सदर्भ—(१)श्री सुन्दर मणि सदर्भ तथा(२)श्री वैदिक मणि सदर्भ प्रकाशित हुए है। श्री मधुराचार्य जी का लिखा एक और ग्रन्थ 'श्री रामतत्त्व प्रकाश' अभी हाल ही मे प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ मे राम रसिकोपासना को बडे ही उत्तम ढग से शास्त्रादि के पुष्ट प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया गया है। इसमे श्री राम का परत्व, श्री शुकदेव आदि ऋषियो का श्री रामोपासकत्व तथा श्री सीताराम की नित्य दिव्य लीलाओ का बडा ही भव्य एव मनोहारी वर्णन है। इनके अतिरिक्त आपके लिखे मुख्य ग्रन्थो मे 'श्री भगवद्‌गुण-दर्पण' तथा 'माधुर्य केलि कादम्बिनी' का इस सम्प्रदाय मे विशेष सम्मान है। श्री मधुराचार्य जी के ग्रन्थो का रसिकोपासना मे बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे आकर ग्रन्थ की भाँति पूजे जाते है तथा प्रमाण मे प्रस्तुत किये जाते है।

जिस प्रकार श्री जीवगोस्वामी ने अपने पक्ष के स्थापन के लिए श्रीमद्‌भागवत का आधार लिया है, उसी प्रकार श्री मधुराचार्य अपने पक्ष के स्थापन के लिए वाल्मीकीय रामायण का आधार लिया है। भले ही, अनेक स्थलो पर इनकी व्याख्या से आज का सुधी-समाज सहमत न हो, परन्तु श्री मधुराचार्य ने अपने पाडित्य एव तर्क के बल पर अपने मत का जो स्थापन किया है, वह साहित्य और दर्शन के विद्यार्थी के लिए अनुशीलन की वस्तु है, क्योकि इन ग्रन्थो ने परवर्ती 'रसिक' भक्तो को बहुत प्रेरणा दी है। 'श्री सुदर मणि सदर्भ' की भूमिका मे श्री पुरुषोत्तम शरण जी ने श्री मधुराचार्य जी की जो परम्परा दी है, वह इस प्रकार है—

माधुर्य रसमूर्ति श्री राम जी
आदि शक्ति श्री जानकी जी
अनन्य सेवी श्री हनुमान जी
श्री ब्रह्मा जी
श्री वसिष्ठ जी
श्री पराशर जी
श्री व्यास जी
श्री शुकदेव जी
श्री पुरुषोत्तमाचार्य
श्री गंगाधराचार्य
यती श्री रामेश्वराचार्य
श्री द्वारानन्द जी
श्री देवानन्द जी
श्री श्यामानन्द जी
श्री श्रुतानन्द जी
श्री चिदानन्द जी
श्री पूर्णानन्द जी
श्री श्रियानन्द जी
श्री हर्यानन्द जी
स्वामी श्री रामानन्द जी
श्री अनन्तानन्द जी
पयहारी श्रीकृष्णदास जी महाराज

(१) श्री कीलस्वामी
छोटे श्री कृष्णदास
श्री विष्णुदास
रसिकेन्द्र श्री नारायण श्रमुनीन्द्र
श्री हृदय देव स्वामी
मधुर रस विजयशिरोमणि श्री मधुराचार्य जी महाराज

(२) श्री अग्रस्वामी
श्री नाभा स्वामी
श्री प्रियादास

श्री मधुराचार्य जी के सम्बन्ध में चिरान के महन्त श्री जीवाराम जी (श्री युगल प्रिया) ने 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' मे लिखा है—

मधुराचारज मधुर मरस शृगार उपासी।
रगमहल रसकेलि कुज मानसी खवासी॥
निमिकुल जन्य उदार सुखद सबध प्रतापी।
पहारी रसिकेन्द्र कृपमाधुर्य अयापी॥
द्वादस वार्षिक राम रस लीला करि बहु सुख दिये।
विपुल ग्रन्थ रच रसिकता राम रान पद्धति किये॥

कहते है, आपने श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की एक लाख श्लोको मे मधुरमाधुरी टीका लिखी थी जो अब अप्राप्य ही है। आपने बारह वर्ष तक श्री रामरासोत्सव का सकल्प किया और स्वय उसमे दिव्य अली रूप मे भली भाँति श्री ललीलाल जू का लाड लडाया। श्री अग्र-स्वामी की शृगार रस पर एक कुडलिया है जो इस रस के उपासको के गले का हार है और जिसमे इस रस की महिमा और मर्यादा का वर्णन है, जो इस प्रकार है—

रस शृगार अनूप है तुलवे को कोउ नाहि।
तुलवे को कोउ नाहि सोइ अधिकारी जग मे॥
कचन कामिनि देखि हलाहल जानत तन मे।
जावत जग के भोग रोग सम त्यागेउ द्वन्दा।
पिय प्यारी रसमिधु मगन नित रहत अनदा॥
नहि अग्र सम सत के सरलायक जग माहि।
रस शृगार अनूप है तुलवे को कोउ नाहि॥

इस तरह ऐतिहासिक कालक्रम से देखने पर पता चलता है कि सोलहवी सदी से रामोपासना मे मधुर भाव की विवृत्ति स्पष्ट रूप मे मिलने लगती है। इसके पूर्व का साहित्य अभी उपलब्ध नही है। इस सम्प्रदाय को विद्वानो की घोर उपेक्षा अथवा तिरस्कार का शिकार होना पडा है और यही कारण है कि इसका बहुत-कुछ विकृत रूप ही हमारे सामने आया है। परन्तु इसका यह अभिप्राय कदापि नही कि इस साधना का स्वस्थ सबल एव सुग्राह्य रूप है ही नही। इसका साहित्य अपने-आप-मे सर्वथा सम्पन्न एव अनुभव तथा प्रतिभा के प्रकाश मे पूर्ण है। इस रसिक सप्रदाय की साधना और पच सस्कार का प्रसग हम यथास्थान प्रस्तुत करेगे। यहाँ प्रसगत इतना सकेत मे लिखना आवश्यक है कि—

१—इस सम्प्रदाय का नाम 'श्री सम्प्रदाय' है।
२—श्री लक्ष्मी जी आचार्य है
३—श्री हनुमान जी देवता है

४—श्री विश्वामित्र जी ऋषि है
५—श्री रामेश्वर जी धाम है
६—श्री अयोध्या जी धर्मशाला है
७—श्री चित्रकूट सुख विलास है
८—श्री रामानन्दी वैष्णव है
९—श्री दिगम्बर अखाडा है
१०—श्री कूवा जी का द्वारा है
११—श्री सीता जी इष्ट है
१२—मुख्य रस शृगार है
१३—अनन्त शाखा है
१४—उर्ध्वपुण्ड्र तिलक है
१५—श्री धनुष क्षेत्र है
१६—श्री गुरुद्वारा अयोध्या जी है।[1]

अब हम अगले दो अध्यायो मे रामावत मधुर उपासना के साहित्य का स्वरूप निर्देश प्रस्तुत करेगे—पहले सस्कृत ग्रन्थो के फिर हिन्दी के।

---

१ देखिये—श्री 'प्रेमलता' जी का जीवनचरित्र पृ० १०॥

सातवाँ अध्याय

रसिक परंपरा का साहित्य

(१)

संस्कृत में

रामोपासना की रसिक परम्परा साहित्य, साधना एवं दर्शन की दृष्टि से सर्वथा परिपुष्ट एवं इतस्ततः है। अवश्य ही इसको एक सुव्यवस्थित रूप नहीं मिला है और इसका अधिकांश साहित्य बिखरा हुआ, समृद्ध और उपेक्षित रहा है। इसका मुख्य कारण, जैसा पहले कहा जा चुका है, यह रहा है कि इस सम्प्रदाय का समूचा साहित्य एक बहुत छोटी परिधि की सीमा में सिमट कर रह गया है तथा दूसरा कारण यह है कि इसके प्रति विद्वानों का आदर भाव नहीं रहा है। वे इस सम्प्रदाय तथा इसकी साधना को अत्यन्त हेय दृष्टि से देखते रहे है। एक और कारण भी है। विज्ञान के नये-नये अनुसंधानो, बौद्धिक जागृति तथा देश में राजनीतिक आन्दोलनों एवं उथल-पुथल के कारण भी लोगों की दृष्टि इस ओर नहीं गई। बहुधा इसका अत्यन्त विकृत रूप ही देखने को मिला जिसके प्रति हेय भावना घृणा का होना स्वाभाविक ही था। परन्तु इसी कारण हम इसके स्वस्थ रूप से भी अपरिचित रह जायं, यह हमारा अभाग्य होगा।

किसी भी वस्तु के दो पक्ष होते हैं। शुक्ल और कृष्ण—यों देखा जाय तो क्या ईसाई धर्मसाधना, क्या सूफी साधना, क्या बौद्ध साधना और क्या कृष्ण-भक्ति की मधुर साधना में कम विकार आये ? और तो और अभी हम अपनी आँखों गाधीवादी साधना का भयकर पतन देख रहे हैं। सर्वोदयी इस पर यदि हम यह निर्णय कर बैठें कि ये सब-की-सब साधनाएं क्षयग्रस्त जीवन की प्रतीक है या मानव-मन की अस्वस्थता के लक्षण है तो हमारा निर्णय सही माना जायेगा ? यही बात रामावत सम्प्रदाय की मधुर उपासना के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। उसका एक स्वस्थ सबल पक्ष है और अस्वस्थ दुर्बल पक्ष भी। हम तो यहाँ साहित्य, साधना और सिद्धान्त की दृष्टि से उसके सबल स्वस्थ पक्ष का ही अनुशीलन करेंगे। उसके विकारों को देख कर उससे भाग खड़ा होना और उसके सही रूप से अपरिचित रह जाना साहित्य के अध्येता को शोभा नही देता। अस्तु ।

रामोपासना की मधुर साधना का साहित्य संस्कृत में परम समृद्ध और विपुल है। उसमें कतिपय प्रमुख ग्रन्थों की ही चर्चा की जा सकेगी। सब से पहले हम उसके उपनिषद् भाग को लेते है—

उपनिषद्

१ **श्री रामतापनीयोपनिषद्**––यह अथर्व वेद से लिया गया है। इसमे कुल ७५ मत्र है। आरम्भ मे भगवान् राम का परत्व सिद्ध किया गया है[1] और यह दिखलाया गया है कि यह समस्त जगत राममय है, अत सत्य है। फिर जीवात्मा परमात्मा का क्या-क्या सम्बन्ध हो सकता है, उसका निर्देश है। सेव्य-सेवक, आधार-आधय, नियाम्य-नियामक, शेष-शेषी, व्याप्य-व्यापक, शरीर-शरीरी, पिता-पुत्र, भर्तृ-भार्या––इन नव सम्बन्धो मे परमात्मा-जीवात्मा सम्बन्धित है। जैसे समस्त वृक्ष अपने बीज मे स्थित है वैसे ही ब्रह्मादि स्थावरपर्यन्त चर-अचर सम्पूर्ण जगत् राम बीज मे स्थित है।[2] वह श्री राम अपनी आह्लादिनी शक्ति सीता से सदा आश्लिष्ट सयुक्त है।[3] इसके अनन्तर तात्रिक साधना के आश्रय पर आसनासीन रामपचायतन का आसन इस प्रकार स्थिर किया गया है––

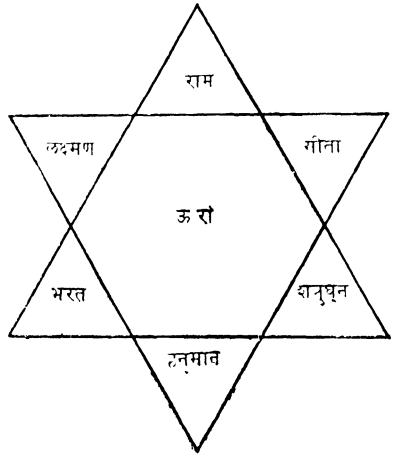

दो त्रिकोणो की यह पद्धति अवश्यमेव तात्रिक साधना का प्रभाव सूचित करती है क्योकि वहाँ त्रिकोण योनि मुद्रा का प्रतीक माना जाता है। इस दो त्रिकोण के परस्पर संयोजन को देखते हुए यह स्वीकार करणा पडता है कि रामावत मधुर उपासना मे तत्र का भी

---

१ रामं सत्यं परं ब्रह्म रामात्किंचिन्न विद्यते।
तस्माद्रामस्य रूपोऽयं सत्यं सत्यमिदं जगत्॥ सं० सं०

२ यथैव बटवीजस्थः प्राकृतश्च महाप्रभुः।
तथैव राम–बीजस्थं जगद्देतच्चराचरम्॥

३ हेमामया द्विभुजया सर्वालंकृतया चिता।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोसलजात्मजः॥

यत्किंचित प्रभाव है। षडक्षर मत्र की महिमा बतलाते हुए ऋषि कहते है कि चूंकि यह गर्भ, जन्म, जरा, मरण आदि ससार के समस्त महान् भयो से मनुष्य को तार देता है, इसलिए इसे 'तारक मत्र' कहते है।[1]

इस प्रकार इस उपनिषद् की प्रथम कडिका मे बृहस्पति जी के प्रश्नोत्तर मे याज्ञवल्क्य ने तारक ब्रह्म का निर्देश किया, द्वितीय कडिका मे तारक ब्रह्म का स्वरूप तथा प्रणव एव तारक की एकता तथा तृतीय कडिका मे तारक ब्रह्म का अर्थ, वाच्च-वाचक की एकता और उपासना का स्वरूप वर्णन किया। अन्त मे भगवान् राम ने शिव को प्रसन्न होकर षडक्षर मत्रराज प्रदान किया जिसके कारण भगवान् शिव काशी मे मुक्ति का सदाव्रत चलाते है।

२ **श्री विश्वंभरोनिषद्**—यह रामोपासना की मधुर उपासना के आकर ग्रन्थो मे सर्वसम्मान्य है। यह भी अथर्व वेद का अग माना गया है। 'श्री रामतत्त्व प्रकाशिका' टीका सहित यह अयोध्या से प्रकाशित हुआ है। इसमे भक्ति के प्रधान आचार्य शाण्डिल्य मुनि ने महाशभु से प्रश्न किया है—

(१) सब देवो मे श्रेष्ठ, सगुण-निर्गुण से परे वाणी मन-बुद्धि से अगोचर, ब्रह्मा, विष्णु और शिव के सर्वेश्वर कौन है?

(२) वह मत्र कौन है जिसके द्वारा जीव ससार से मुक्त होकर भगवान् के साथ सायुज्य लाभ करता है?

इसके उत्तर मे महाशभु ने भगवान् राम को ही निर्गुण-सगुण ब्रह्म से परे बतलाया है और कहा है कि वे अयोध्या मे केवल रासलीला ही करते है।[2] उनके अनेक मत्र है, पर उनमे भी तीन मत्र अत्यन्त श्रेष्ठ है—(१) रा रामाय नम (२) श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरण प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्रायनम और (३) ऊँ नम सीतारामाभ्याम्। श्री राम जी ही सबके कारण है। उनके दो स्वरूप है—१—परिछिन्न और २—अपरिच्छन्न। परिच्छिन्न स्वरूप से श्री राम जी साकेत लोक मे स्त्रियो के समूह मे रहकर केवल रासलीला करते है और अपरिच्छिन्न स्वरूप ससार की उत्पत्ति का कारण है। उनके दाहिने अग से क्षीर-समुद्रवासी अष्टभुजी भूमा पुरुष हुए है, बाये अग से रमा वैकुण्ठवासी हुए है, हृदय से परनारायण हुए है और चरणो से बद्रीवन निवासी नरनारायण हुए है। उनके शृगार से नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हुए है। सभी अवतार भगवान्

---

१ **गर्भ-जन्म-जरामरण-संसार महद्भयात् संतार्यतीति तस्मादुच्यते तारकमिति।**

—रा० ता० उ० २-३

२ **सर्वावतर लीला च करोति सगुणो यः अयोध्यायां स्वयं रासमेव करोति सः सगुण-निर्गुणाभ्यां परस्वयपरमपुरुषस्य दाशरथेर्मन्त्रस्य नाद-विन्दु वाङ्मनसोरगोचरौ तस्य मंत्राश्चानन्तास्तेषु षट्शत वरियांसस्तेषु च त्रयो मन्त्रा अतिश्रेष्ठानः।**

—विश्वंभरोपनिषद् ५

रामचन्द्र की चरण-रेखाओ मे उत्पन्न होते है।[1] परात्पर श्री राम नाम से ही नारायण आदि सब नाम उत्पन्न होते है।[2] अन्त मे श्री अयोध्या जी मे रतन-मण्डप मे श्री जानकी जी सहित भगवान् श्रीराम का मगलमय ध्यान है जहाँ सभी देवता और देवियाँ सामने हाथ जोडे खडे है।

३ **श्री सीतोपनिषद्**—अनन्त श्री श्री सीतारामपदकजमकरन्दमधुमधुप श्री स्वामी सीतारामीय परमहस परिव्राजकाचार्य युगलविनोद विहारी शरण कृत तत्त्वबोधिनी टीका सहित ओकार प्रेस प्रयाग मे सवत् १९२४ मे मुद्रित तथा सियावल्लभशरण श्री जानकी कुण्ड युगल विनोद कुज चित्रकूट से प्रकाशित यह छोटा सा उपनिषद् ग्रन्थ रत्न भगवती सीता का परत्व सिद्ध करता है और उन्हे ही आदि शक्ति महा महेश्वरी के रूप मे प्रतिष्ठित करता है जिनके अंशमात्र

---

१ **सर्वे अवताराः श्री रामचन्द्रचरणरेखाभ्यः समुद्भवन्ति तथा अन्त कोटि विष्णवश्चचतुर्व्यूहश्च समुद्भवन्ति एवमयपराजितेश्वरमपरिमिताः परनारायणादयः अष्टभुजा नारायणादयश्चानन्तकोटि संख्यकाः बद्धांजलिपुराः सर्वकालं समुपासक्ता।**

—वि० उ० ८

२ तुलनीयः—

विष्णुर्नारायणः कृष्णो वासुदेवो हरिः स्मृतः।
ब्रह्म विश्वंभरोऽनन्तो विश्वरूपकुलानिधिः॥
कल्मषध्नो दयामूर्तिः सर्वगः सर्तसेवितः।
परमेश्वरनामा संतिउनि नेकानि पार्वति॥
एकादश महास्वच्छं उच्चारान्मोक्षदायकम्।
नाम्नामेव च सर्वेषां राम नाम प्रकाशकः॥

—महारामायण सर्ग ५१

तथा च

भानुकोटि प्रतीकाशं चन्द्रकोटि प्रमोदकम्।
इन्द्रकोटि सदा मोदं वसुकोटि वसप्रदम्॥
विष्णु कोटि प्रतीपालं ब्रह्मकोटि निसर्जनम्।
रुद्र कोटि प्रमद वै मातु कोटि विनाशनम्॥
भैरव कोटि संहारं मृत्युकोटि विभक्षणम्।
यम कोटि राघर्ष कालकोटि प्रधावकम्॥
गंधर्व कोटि संगीतं गण कोटि गणेश्वरम्॥
काम कोटिकला नाथं दुर्गाकोटि विमोहनम्॥
सर्वसौभाग्यनिलयं सर्वानन्देकदायकम्।
कौशल्यानन्दनं रामं केवलं भवखण्डनम्॥

—सदाशिव-संहिता ५-७-१२

से अगणित महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, उमा, राधा, तारा, दुर्गा आदि निकली है।[1] सृष्टि, स्थिति और लय की नियामिका श्री जानकी जी है और भगवान राम भी आप के ही सकेत पर चलते है। भगवती सीता ही इच्छा शक्ति, कृपाशक्ति एवं साक्षात् शक्ति रूपो में हैं। इच्छा शक्ति के तीनभेद है —(१) श्री (भद्र रुक्मिणी), (२) भूमि (प्रभाव रूपिणी), (३) नीला (चन्द्र-सूर्य-अग्नि-स्वरूपा) इन्ही तीन शक्तियो के प्रतीक स्वरूप श्री से रुक्मिणी, भूमि से सत्य-भामा, नीला से राधा।[2] चन्द्र-स्वरूप होकर ओषधियो को उत्पन्न करती है, अमृत स्वरूपिणी होकर देवताओ को अत्युत्तम फल से सतृप्त करती हुई मनुष्यो को अन्न, पशुओ को तृण तथा समस्त जीवो को उनके योग्य आहार द्वारा सबका पोषण करती है। श्री सीता ही दिन में सूर्य और रात्रि मे चन्द्रमा के रूप मे चर-अचर को प्रकाशित करती है और इस प्रकार वे ही कालचक्र की मूल प्रवर्तिका है। अग्नि रूप मे वे ही जठराग्नि, दावाग्नि, वाड़वाग्नि, काष्ठ में विद्यमान अग्नि, देवताओं के मुख में विद्यमान अग्नि आदि है।

श्री रूप मे वे ही लक्ष्मी है, भूमि रूप मे भू भुव स्व आदि चौदहो लोको की आधार-आधेय प्रणव-स्वरूपिणी है और नीलारूप मे विद्युत् समूहो से परिपूर्ण सभी ओषधियो, बनस्पतियों एव प्राणिमात्र के प्राणो को पोसती है। क्रिया-शक्ति के स्वरूप परमात्मा के मुख से नाद हुआ, नाद से विन्दु और विन्दु मे ओकार। ओकार से परे श्रीराम। श्रीराम से चारो वेद, इनकी शाखा-प्रशाखा, उपनिषद्, कल्प, व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द आदि। यह क्रिया शक्ति साक्षात् ब्रह्म-स्वरूप है।

अब साक्षात् शक्ति के सम्बन्ध मे कहते है। यह साक्षात् शक्ति श्री भगवान् के स्मरणमात्र से रूप के आविर्भाव, तिरोभाव, अनुग्रह, निग्रह, शान्ति, तेज, सदा भगवान की सहचरी, निमेष-उन्मेष से सृष्टि स्थिति संहार करनेवाली सर्वसमर्था है।

इच्छा शक्ति प्रलय की अवस्था मे भगवान् के दक्षिण वक्षस्थल मे श्रीवत्स स्वरूप होकर विश्राम करती है। इसी प्रकार क्रिया और साक्षात् शक्तियाँ भी भगवान् के हृदय मे जाकर सो जाती है।

---

१ हर्षिता राधिका तत्र जानक्यंशसमुद्भवा।
रामस्यांशसमुद्भूतः कृष्णो भवति द्वापरे॥
——भुशुंडि रामायण में नारद के प्रति ब्रह्मा का वचन।
सीतोपनिषद् की उक्त टीका के पृ० ६ से उद्धृत।

२ सीतायाश्च त्रिविधांशाः श्री भूनीलादिभेदतः।
श्री भवेद् रुक्मिणी भूः स्यात् सत्यभामा दृढव्रता॥
नीलास्याद् राधिका देवी सर्वलोकैक पूजिता।
——ब्रह्माण्ड पुराण से उपर्युक्त सीतोपनिषद् की टीका पृ० ६ पर उद्धृत।

४ **श्री मैथिली महोपनिषद्**––श्री वाल्मीकि सहिता के पाँचवे अध्याय मे १८ वे श्लोक के अनन्तर एक छोटा-सा 'श्री मैथिली महोपनिषद्' है जिसमे आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक इन तीन तापो से मुक्ति के लिए 'ऊ राम' यह तीन अक्षरों का मंत्र आया है और इसमे परम प्राप्तव्य, परम ज्ञेय भगवान् राम ही बताये गये है।[1] इसके अन्त मे मत्र-परम्परा है जो यथापूर्व है।

५ **श्री रामरहस्योपनिषद्**––वैष्णव धर्म-प्रलेखक पं० सरयूदास जी ने अपनी 'साकेत सुषमा'[2] मे श्री राम रहस्योपनिषद् का एक उद्धरण दिया है जिसका अभिप्राय है कि अनन्त वैकुण्ठो का परम कारण श्री साकेतपुरी है।[3]

संहिता ग्रन्थ

रामोपासना मे मधुर उपासना को लेकर अनेक सहिताओ का निर्माण हुआ है। इन सहिताओ का कालनिर्णय इस प्रकार विवादग्रस्त है कि क्या अन्त साक्ष्य और क्या बहि साक्ष्य से किसी निर्णय पर पहुँचना बहुत कठिन है। ओटो श्रेडर ने सहिताओ की प्रामाणिकता के पक्ष मे जो उदाहरण दिये है, उनमे इन संहिताओ मे दो-एक के ही नाम मिलते है। परन्तु इसी आधार पर इन्हे श्रेडर का परवर्ती मानना भी भूल है। कारण यह है कि इन सहिताओ का प्रचार-प्रसार अत्यन्त सीमित क्षेत्र मे रहा है और इनमे से कुछ तो अबतक भी अत्यन्त गोपनीय रूप में रसिक सम्प्रदाय के अन्दर-ही-अन्दर चलती है और बाहर की हवा उन्हे लगने नही दी जाती।[4] परन्तु मेरे देखने मे इस सम्प्रदाय की लगभग बीस सहिताए आई है जिनमे रसिक परम्परा की साधना का बड़ा ही भव्य विन्यास हुआ है। अस्तु, साहित्य, साधना एव सिद्धान्त-सस्थापन की दृष्टि से इन सहिताओ का विशेष महत्त्व स्वीकार करना पडता है और इनके भीतर से साधना का जो स्रोत अखण्ड रूप से प्रवाहित होता आ रहा है, वह अनेकानेक मधुर रस के उपासको के लिए परम आश्रय एव आनन्द का कारण रहा है। इस सम्प्रदाय मे मान्य सहिता ग्रन्थो की सूची इतनी विशाल एव

---

१ **परात्परतरो निखिल गुणकरो जगतादिकारणभेमिततेजोराशिर्ब्रह्मादि देवैरप्युपास्यः श्री भगवान् दाशरथिरेव प्राद्योदाशरथिरेव प्राद्यः। सकलजगत् कारणवीजं भक्तवत्सलः स एव भगवान् ज्ञेयः स एव भगवान् ज्ञेयः।**

२ **सत्यनाम प्रेस, मैदागिन काशी से सं० १९८२ में मुद्रित।**

३ **याऽयोध्यापूः सा सर्ववैकुण्ठानामेव मूलधारा मूलप्रकृतेः परातत्सद् ब्रह्ममया विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोषा तस्यां नित्यमेव सीतारामयोः विहारस्थलमरत्तीति।**

––अथर्वणे उत्तरार्धे श्री रामरहस्योपनिषद् उत्तरखण्डे।

४ **उदाहरणार्थ––श्री हनुमत्संहिता, श्री शिवसंहिता, श्री लोमश संहिता।**

व्यापक है कि यह संभव नही कि उनका विस्तार से विवेचन हो सके, फिर भी यह ध्यान तो रहेगा ही कि कोई विशेष महत्त्व की उपयोगी वस्तु छूट न जाय। अस्तु ।

१. **श्री हनुमत्संहिता**––श्री हनुमत्सहिता की चर्चा पहले भी आ चुकी है । श्री लक्ष्मी-नारायण प्रेस, मुरादाबाद मे सन् १९०१ मे पत्राकार छपी प्रति प्राप्त है। इसमें हनुमान अगस्त्य का संवाद है और भगवान् राम की रासलीला तथा जल-विहार का बडे ही विस्तार से एव परम मनोहर शैली मे वर्णन हुआ है। सीता सभी सखियो की कायव्यूह हैं, क्योंकि सीता के शरीर मे ही १८१०८ सखियो की सृष्टि होती है जिनके साथ भगवान् राम उतने ही शरीर धारण कर रास करते है। इसमे कुल ६० श्लोक है। ग्रन्थ के अन्तिम भाग से रस-प्रकरण है जिसमे दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य रस के आश्रय विषय, उद्दीपन, अनुभाव आदि का संक्षेप मे विवरण है–जो रस-शास्त्र की दृष्टि से पूर्णतः परिपक्व है।

२. **श्रीशिवसंहिता**––श्री शिवसंहिता बीस अध्यायों का एक विशाल ग्रन्थ है जिसे महात्मा रामकिशोरशरण जी की प्रेरणा से शिवहर स्टेट की श्री सिया किशोरी सहचरी जी ने प्रकाशित कराया है। इसमें आरम्भ मे शिव-पार्वती-सवाद मे पुन अगस्त्य हनुमान के सवाद मे साधु समागम की महिमा, श्रीराम के अनेक गुणो और विभूतियो का वर्णन, ध्यान, वन-दर्शन और पुन वन-केलि का वर्णन आया है। रास-विलास के प्रसग में ठीक वैसा ही भव्य मनोहारी, वर्णन है जैसा श्रीमद्भागवत के रासपचाध्यायी में मिलता है। नदी-नद सब स्तब्ध हो जहाँ के तहाँ रुक गये। पशु-पक्षी-कीट-पतंग सब ब्रह्मानन्द मे मग्न हो आत्म-विभोर हो गये। आकाश मे देवताओ के विमान इस दृश्य को देखने के लिए छा गये। यहाँ तक कि इस दृश्य को देखकर शिव का हृदय भी विमोहित हो गया और वे अपना ताडव नृत्य भूल गये।[1] रासविलास के अनन्तर

---

१ तु०––कास्त्र्यंग ते कलपदामृत वेणुनाद।
सम्मोहितार्य चरितान्न चलेत् त्रिलोक्याम् ॥
त्रैलोक्य सौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं।
यद्गोमृगद्विजगणः पुलकान्य विभ्रन् ॥

तुम्हारे मधुर स्वन् वेणुनिनाद को सुनकर और त्रैलोक्यमोहन रूप को देखकर कौन स्त्री कुलधर्म नहीं छोड़ देगी, जिनसे गाये, मृग और पक्षी भी पुलक-कंटकित हो जाते है।

नद्यो निष्पंदवे गाश्च पशवश्च सरीसृपाः।
निश्चेष्टा अभवन्सर्वे मुक्ता इव निरामयाः ॥
नो चेलुः किंचिदाकाशे विमानानि दिवौकसाम्।
मोक्षो योगसमाधीनां शिवताण्डवविद्रुतः ॥ ––शि० सं० ११, १०।

'मान' का प्रकरण है और फिर 'मनुहार' का प्रसग। इसके बाद है कदली वन में सीता-राम का प्रेम-प्रसग। सस्वरूप प्रकाशन के प्रसग मे यह स्पष्ट आया है कि रसिक भक्त दिव्य गुणो से सम्पन्न श्रीराम जी में रमण करते है और उन भक्तो में स्वय श्रीराम जी रमण करते है।[1] सूक्ष्म अन्तः-दृष्टि खुलने पर सारा ब्रह्माण्ड ही अयोध्या-सा प्रतीत होने लगता है और वहाँ अशोकवन में रम्य रमस्थान मे नित्यलीला विहार मे मग्न श्री सीताराम के दर्शन होते है।[2]

३. **श्री लोमश संहिता**—श्री लोमश सहिता की पूरी प्रति उपलब्ध नही है। एक खडित प्रति मिली है जिसमे केवल १५ वे अध्याय मे लेकर २२ वे अध्याय तक कुल आठ अध्याय प्राप्त है। इसमे परमश्रेष्ठ मुनि पिप्पलाद तथा लोमश जी का सवाद है। कोटि कन्दर्पलावण्य रस-मूर्ति भगवान् श्रीराम का सीता जी के साथ और सीता जी की अनेक सखियो के साथ नानाविध रास-विलास का वर्णन है। यूथेश्वरियो मे चन्द्रकला, विमला, सुभगा, मदनकला, चारुशीला, हेमा, क्षेमा, पद्मगन्धा, लक्ष्मणा, श्यामला, हंसी, सुगमा, वशध्वजा, चित्ररेखा, तेजोरूपा, और इन्दिरावली जी ये सोलह मुख्य यूथेश्वरी सखियाँ है। इनमे चन्द्रकला की प्रमुखता है। वाह्य कार्यों मे जैसे श्री भरतलाल जी का स्वतन्त्र सर्वाधिकार है, अन्तरग लीलाओ मे उसी प्रकार चन्द्रकला जी प्रधानता मे श्रेष्ठ है। चन्दकलाजी श्री सीता-राम की सयोगलीला सघटित करती है। रास के समय का बड़ा ही भव्य सगीतमय वर्णन पढते ही बनता है—छन्द के माधुर्य एव ताल पर ध्यान बरबस खिच जाता है—

अखण्डरासमण्डले सखीसमूहकल्पिते
रराज राजनन्दनी विमोहयन् जगत्त्रयम्।
प्रकामकामकामुको मनोजमत्रभाविता
रणन्सुवल्लकी भृशं सुधासुधारया तदा॥
क्वचित्क्वचिद्वनान्तरे क्वचित्क्वचिल्लतान्तरे
क्वचित्क्वचित्कुचान्तरे प्रविश्य राजनन्दनः।
प्रदीपयन्मनोभव प्रदर्शयन्स्वलाघव
कलाकुतूहल मुहु प्रकामकामशास्त्रजम्॥

लो० सं० २० १८७-१८९

---

१ रमन्ते रसिका यस्मिन् दिव्यानेकगुणाश्रये।
स्वयं यद्रमते तेषु रामस्तेन प्रयुज्यते॥ —शि० सं० १८, ५

२ सर्वमेततदयोध्यैव सूक्ष्मदृष्टिसमर्पणे।
तत्राशोकवनं रम्यं रसस्थानं हि केवलम्॥
तन्मध्ये जानकी-रामौ नित्यं लीला रतौ स्थितौ।
सहितो वनिता यूथैः शतैरपि मनोहरैः॥ —शिव० सं० २०. १३-१४

और अन्त मे युगल मिलन महोत्सव का एक दृश्य है—

हृदय हृदयेन मुखेन मुख करमध्यकरेण सरोजनिभम् ।
उरसा प्रिय वक्षसि संगमतो सुखमाद्य महोत्सवजन्यमहो ।

लो० सं० २२ १३६ ।

इस सहिता के अन्तिम भाग मे ऋषि ने बारबार मना किया है कि जो लोग रूक्षज्ञानी है, शुष्क हृदय है, महामूढता-वश कुतर्क करनेवाले और रस खण्डन करनेवाले है, निन्दक है, रस की कथा मे लौकिक विषय वासना की दुर्गन्ध लाते है, ऐसे पुण्यहीनो को रास-रहस्य की यह कथा और चरित्र कभी नही सुनाना चाहिए ।

४. **श्री बृहद् ब्रह्म संहिता**—इस दस अध्यायो मे समाप्त बृहत् संहिता वैष्णवो की मधुर साधना का प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ है। इसमे राधा-कृष्ण और सीता-राम दोनो की युगल उपासना का विधान है। आरम्भ के पाँच अध्यायो मे वैष्णव-साधना का सामान्य विधान प्रस्तुत किया गया है। छठे अध्याय मे राधाकृष्ण की उपासना का कामबीज एवं कामकीलक और फिर तान्त्रिक शैली पर युगलोपासना की प्रक्रिया है। ठीक इसी के पश्चात्, सातवे अध्याय मे श्री रामावतार का हेतु तथा पुन षडक्षरात्मक, श्रीराम मत्र की महिमा का वर्णन है। 'श्री राम. शरण मम' पर इस अध्याय मे अनेक श्लोक है। यहाँ भगवान् राम का एक बडा ही भव्य ध्यान है।' आगे के शेष अध्यायो मे वैष्णवाचार एकादशी, ऊर्ध्व पुण्ड्र-धारण आदि का व्याख्यान है।

५. **श्री अगस्त्य-संहिता**—श्री अगस्त्य सहिता, जैन प्रेस, लखनऊ से सन् १८९८ मे पत्राकार तैतीस अध्यायो और १३१ पृष्ठो मे छपी मिलती है। यह श्री वैष्णवो की परम प्रामाणिक सहिताओ मे परमादरणीय है। अगस्त्य और सुतीक्ष्ण का सवाद है। आरम्भ मे वर्णाश्रमधर्म की प्रतिष्ठा है, फिर भिन्न-भिन्न फलो की प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न राममत्र का न्यास, विनियोग, कीलक, बीज आदि के साथ उल्लेख है। इसके अनन्तर इक्कीसवे अध्याय तक ब्रह्मविद्या का निरूपण है।'[२]

---

१ **श्यामं वारिजपत्रनेत्रमनिसं प्रज्ञानमूर्ति हरिम्।**
विद्युद्दीप्तपिशंग रम्यवसनं भास्वत्किरीटोज्ज्वलम्॥
कर्णालम्बित हेमकुण्डललसद् भ्रूवल्लिमत्यद्भुतं।
श्रीमन्तं भगवन्तमिन्दुसहितं श्री जानकीशं स्मरेत्॥

—वृहद् ब्रह्म संहिता, अ० ७ श्लोक ५९

२ **पश्य सर्वात्मना सर्वं सर्वत्रापि तपोनिधे।**
प्रकाशते स्वयं साक्षात्सच्चिदानन्दलक्षणः॥
राम एव परं ज्योतिः सच्चिदानन्द लक्षणम्।
इदं सत्यमिदं सत्यं सत्यं नैवाति वर्तयेत्।
रामः सत्यं परं ब्रह्म रामात्किंचिन्नविद्यते॥

—अं० सं० २४, १, २

इसके बाद के अध्याय मे हृदय-कमल मे सीताराम की आश्लिष्ट युगल मूर्ति का मंगलमय ध्यान है—

मेघजीमूतसकाश विद्युवर्णांवरावृतम्।
मतप्तकाञ्चनप्रख्या सीतामागता पुन ॥
अन्योन्याश्लिष्टहृद्वाहुनेत्र पश्यन्तमादरात्।
दक्षिणेन करायेण कुचाग्रे च चलालकम् ॥
स्पृशत च तनोत्मगै परिहासैर्मुहुर्मुहु ।
विनोदयन्त ताम्बूलचर्वणैकंपरायणम्।
सर्व रूपोज्वलद्वन्द्व योपितपुरुषयोरिव।
श्री रामसीतयो सर्वं संपत्करविधायकम् ॥

इसके अनन्तर षडक्षरमत्र की महिमा एव यन्त्रकवचादि का विस्तार मे वर्णन है और तत्पश्चात् षोडशोपचार पूजन का विधान है। इसमे लक्ष्य करने की एक बात है। भगवान् राम का जहां-जहाँ ध्यान आया है, वहाँ सीता मे आश्लिष्ट आलिगित मूर्ति का ही वर्णन है।

६ **श्री बाल्मीकि संहिता**—श्री वाल्मीकि सहिता पत्राकार आदर्श प्रिटिग प्रेस अहमदाबाद (गुजरात) स० १९७८ वि० मे छपी प्राप्त है। श्री रामानन्दीय वैष्णवो मे इस सहिता को परम श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। इसमे कुल पाँच अध्याय है और देखने से प्रतीत होता है कि अपेक्षाकृत नवीन है। जो हो, आरम्भ मे बृहस्पति सभी मुनियो के सम्मुख श्रवण-कीर्तनादि नवधा भक्ति का व्याख्यान करते है, फिर राममत्र की महिमा कहते है और उसकी गुरु परम्परा बताते है जो अन्यत्र दी हुई परम्परा के अनुरूप ही है[1]। इसके अनन्तर विरक्त वैष्णवो के लक्षण एव कुलकृत्य का वर्णन है, दीक्षा सस्कार कण्ठी धारण आदि वैष्णवाचारो का वर्णन है। इस सहिता मे लक्ष्य करने योग्य बात एक है और वह यह कि ऊर्ध्व पुण्ड्र के भेद-प्रभेद मे भगवान् राम का श्री हनुमान के प्रति वचन है कि मेरे अनुरागी भक्त श्री नही धारण करते और सीता जी

---

१ **इमां सृष्टिं समुत्पाद्य जीवानां हितकाम्यया।**
आद्यां शक्तिं महादेवीं श्री सीतां जनकात्मजाम् ॥
तारकं मंत्रराजं तु श्रावयामास ईश्वरः।
जानकी तु जगन्माता हनुमन्तं गुणाकरम् ॥
श्रावयामास नूनं स ब्रह्माणं सुधियां वरम्।
तस्माल्लेभे वसिष्ठर्षि ऋमादस्मादवातरत ॥
भूमौ हि राममंत्रो यं योगिनां सुखदः शिवः।
एवं त्रयं समादाय मंत्रराजपरंपरा।
भूमौ प्रचलिता नित्या सर्वलोकसुखप्रदा ॥ —वां० सं० ६, ३२

के भक्त बीच में बिन्दु श्री लगाते हैं[1]। इसके अन्त मे भी 'श्री रामः शरण मम' मत्र की महिमा का वर्णन है।

अब हम उन सहिताओ का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना चाहेगे जिनकी चर्चा रामावत सम्प्रदाय के मधुरोपासक सन्तो ने साम्प्रदायिक आकार ग्रन्थो के भाष्य मे मतस्थापन के लिए उद्धृत किया है।

७ **श्री शुक संहिता**––'उपासना त्रय सिद्धान्त' के पृष्ठ १२२ से १४३ पर उद्धत। आरम्भ मे गोलोक विहार भगवान् कृष्ण एव राधारानी के रास-विलास का वर्णन है, फिर 'लीला' रहस्य का वर्णन है जिसमे राधा और कृष्ण दोनो ही परम देवाधिदेव भगवान् राम के शरीर मे प्रवेश कर गये। ये राम पुरुषोत्तम मात्र नही है, वे सनातन परब्रह्म है।[2]

एकबार चित्रकूट पर्वत मे क्रीडा करते हुए भगवान् राम को मृगया मे रत एव श्रान्त देखकर श्री जानकी जी ने कहा––आप पसीना-पसीना हो रहे है तथा सूर्य भी तप रहा है, थोडा विश्राम कीजिए। इस प्रस्ताव पर प्रिया-प्रियतम श्री सीताराम जी दिव्य माधुरी कुज मे प्रवेश कर गये जो कामद गिरि के कंदरान्तर शोभित है। उस माधुरी कुंज की शोभा और सुगन्ध का क्या कहना? वहाँ सुन्दर पुष्पो की शोभा पर दर्शन, स्पर्शन, आलाप, प्रियासग के बाद सीताजी ने प्रस्ताव किया कि हम लोगो ने इस माधुरी कुज मे बहुत सुख पाया; परन्तु राधा-कृष्ण रूप मे भी हमारा लीला-विलास चलता रहे तो क्या?[3]

इसपर भगवान् श्रीराम ने बडे प्रेम से कहा––प्रिये! तुम्हारा ही अश वृंदावनेश्वरी राधा है और मेरे ही अंश गोपेन्द्र नन्दनन्दन श्रीकृष्ण है।[4] ऐसा कहकर भगवान राम ने वही पर दिव्य वृन्दावन दिखलाया, जिसमे नित्य यमुना, नित्य गोवर्धन, भिन्न-भिन्न वन, उपवन एवं विहार-स्थली, श्री राधिका जी के सहित श्री कृष्णचन्द्र जी रासरग मे उन्मत्त है। इस प्रकार युगल सरकार के नृत्य को दिखाकर श्रीराम जी ने सीता जी से कहा, प्रिये! तुम्हारा और मेरा स्वरूप यह दोनो प्रिया-प्रियतम श्री राधाकृष्ण लीलामय है। और सम्पूर्ण विश्व के प्यारे है। इतना कहते ही राधा-कृष्णात्मक दोनो स्वरूप श्रीसीतारामस्वरूप मे नमस्कार पूर्वक लीन हो गये–

---

१ मदनुरागिणो भक्ता धारयन्ती च न श्रियम्।
सीताभक्ताः प्रकुर्वन्ति मध्ये बिन्दुं श्रियंशुभाम्॥ ––वा० सं० ४, २३

२ न वै स पुरुषः कश्चिन्न वै स पुरुषोत्तमः।
श्री राम संज्ञितं धाम परं ब्रह्म सनातनम्॥

३ आवां प्रिय निकुंजेऽत्र सर्वर्तुसुखशोभितम्।
कश्चिन्न विहरिष्यावो राधाकृष्णाविवव्रजे॥

४ त्वदंशा एव राधा सा प्रिये वृन्दावनेश्वरी।
मदंश एव नियतः कृष्णो गोपेन्द्रनन्दनः॥

राधा जी सीता जी मे समा गई, कृष्ण जी राम जी मे।[1] तब भगवान् राम और सीता का दिव्य रास विहार हुआ।[1] यह नित्य रास-विलास आज के दिव्य चित्रकूट मे सदा होता रहता है। कृष्ण-भक्तो के लिए जैसे वृन्दावन है, रामभक्तो के लिए वैसा ही चित्रकूट है। भगवान् कृष्ण भगवान् राम मे प्रविष्ट होकर तल्लीन हो जाते है।[2] श्रीराम जी के रास मे कोटि-कोटि ब्रह्मा कोटि-कोटि ब्रह्माणी, कोटि-कोटि विष्णु और कोटि-कोटि लक्ष्मी, कोटि-कोटि शिव और कोटि-कोटि पार्वती प्रादु-र्भूत हुए तथा सब-के-सब गोपिका-भाव को प्राप्त हो गये और अपनी स्वामिनी (श्री सीता जी) के साथ रासमण्डल मे नृत्य करने लगे। उसी समय ६० हजार दण्डकारण्यवासी ऋषि भी गोपिका भाव को प्राप्त होकर श्री जू के साथ रासमण्डल मे प्रकाश करने लगे। काल और श्रुतियां भी गोपीभाव मे रासमण्डल मे सम्मिलित हुई और छः महीने की वह पूर्णिमा की रात्रि हो गई और

---

१ प्रिये तव ममासौ च द्वाविमौ सह दंपती।
माधुर्यलीलाकलिका ललितौ विश्ववल्लभौ॥
ततस्तद्युगलं श्रीमद्राधाकृष्णात्मकं महत्।
सीतारामात्मकं युग्मं प्राविशन्नतिपूर्वकम्॥
ततः प्रवृत्तिं रासश्च सीतारामप्रधानकः।
गोपीजनकरोद्भूतमृदंगानककाटलः॥
मिथः सहचरीवृन्दकरतालविराजितः।
झर्झरशंखभेर्यादिवादित्रविततध्वनिः॥
युगलानुनया नंदी युगलो वयदीपितः।
मिथो युगलनाट्यैक्य तुष्टाऽखिलसखीजनाः॥
श्रीराममुरलीनाद वर्द्धितानि स कौतुकः।
सीताऽकल्पस्वरालापमुद्धत्सहचरीगणाः॥
कामोत्साहप्रदात्वाप चुंबनात्पिंगनादिभिः।
नर्मस्पर्शैः नर्म हासैः भावैश्च बहुरूपकैः।
अनेकैर्मधुरालापैर्भूषितश्च महोत्सवः॥

—शुक संहिता प्रथम अध्याय

२ एवं नन्दात्मजः कृष्णस्वविताररसमापनम्।
रामं प्रविशति श्यामं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥
सोऽद्यापि क्रीडति गिरौ चित्रकूटे मनोहरे।
नित्यं वृन्दावने एव माधुरीकुंजमध्यगे॥
एवं कृष्णो विशद्रामे पूर्णस्वानन्दविग्रहे।
दृष्टो रामः परं तत्त्वं यत्र चापि न गोचरः॥

—शुक संहिता, प्रथम अध्याय, तृतीय पाद

चित्रकूट में रासलीला होती रही। इस दिव्य चित्रकूट का निर्माण श्रीराम जी ने श्री सीता जी की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए किए था।[1] फिर यहाँ प्रश्न यह उठाया गया है कि श्री सीता जी की अभिलाषा पूरी करने के लिए श्रीराम जी ने गोलोक का निर्माण क्यों और कैसे किया? इसपर श्री शुकदेव जी का समाधान है—'कल्प के आरम्भ मे भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने अपनी इच्छा की प्रेरणामात्र से तीनो लोक अपने शरीर से उत्पन्न किये तहाँ प्रथम अमोघ वैष्णवी वीर्य तेजयुक्त इच्छा से जल प्रकट कर उसमे छोड दिया। वह वैष्णवी वीर्य कोटि-कोटि सूर्यो के प्रकाश के समान प्रकाशित सुवर्ण कान्तिवाला एक गोलाकार अड हो गया, उस अण्ड में से सर्वलोको को रचनेवाले हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा रूप से प्रकट हुए। उसी से चराचर प्रकट हुआ, उसी मे चैतन्य स्थापन कर कोटि-कोटि ब्रह्माड रचना किया।[2]

---

१ तत्र रासे प्रादुरासीद् ब्रह्माणी ब्रह्मकोटयः।
वैष्णवी विष्णु कोटयश्च रुद्राणि रुद्रकोटयः॥
सर्वाश्च देवतास्तत्र गोपिका भावभाविताः।
रासमण्डलमध्यस्था ननतुः स्वामिना सह॥
तथा षष्टिसहस्त्राणि दण्डकारण्ययोगिनाम्।
गोपीभावं समासाद्य रेजुः श्रीसहमण्डले॥
श्रुतयश्चैव कालश्च रासमण्डलमध्यगा।
गोपीरूपधरा रेजुर्महिः सौभाग्यभूषिताः॥
सीता च सुंदरी यत्र सर्वलीलाधिदेवता।
चित्रकूटाद्रिके रम्ये यद्वृन्दावनमद्भुतम्॥
गोलोको यं सस्वात्र दृश्यते प्रणतस्तव।
सीताभिलाषसंभूत्यै श्री रामेण विनिर्मितिः॥

२ कल्पादौ भगवान्रामः स्वेच्छामात्रेण चेदितः।
त्रैलोक्यं कृतवान् चांगादाविर्भावं प्रदर्शयन्॥
अमोघयुक्तवान् बीजमंशु सप्ताणऽविषु सः।
हिरण्यगर्भसंकाशः सूर्यकोटिसमं प्रभः॥
ततश्चराचरस्यादौ तत्त्वसृष्टिं विनिर्ममे।
तेषु चैतन्यमाधाय ब्रह्माण्डं संजघटा सः॥
उच्चवाचानि भूतानि रचयामास विश्वकृत।
महीं रचितवान् देवः सप्तसागरसंवृताम्॥
पर्वतान्विविधानुरम्यान्देवगन्धर्वभोगवान्।
सरांसि रम्यरूपाणि राजहंसाश्रयाणि च॥

इस महान रचना पर भी सीता जी को हार्दिक आह्लाद नही हुआ और उन्होंने रासोल्लास के लिए एक नवीन रचना का आग्रह किया। इसी पर श्रीराम जी ने सब लोको के ऊपर अपने लोक साकेत के अंश मे गोलोक का निर्माण किया जहाँ सबकुछ अयोध्या का प्रतिविम्ब है।[1] वह प्रतिविम्बरूप मे कैसा हुआ, इसका वर्णन करते है। श्री सरयू जी यमुना बन गईं, गोवर्धन मणि पर्वत बन गया, कल्पवृक्ष वशीवट वना, दशरथ नन्द हुए, कौसल्या यशोदा हुई, लीला के सब परिकर गोप हुए, जानकी जी राधा हुई, अशोकवन की देवी वृन्दा देवी हुई, उनके साथ श्रीराम जी राधाकृष्ण हो वशीनाद मे निपुण, परम कोतुकी नित्य रास विलासादि की, सुन्दर लीला करने लगे। इस नूतन स्थान को देखकर जानकीजी का चित्त रम गया और वे श्री राम जी के साथ इस सच्चिदानन्द रूप मे बहुत दिन तक काम-केलि विहार करती रही।[2]

उत्फुल्लकमलामोद वारीणिरुचिराणि च।
मेरु रचितवॉस्तत्र स्थानानि त्रिदिवौकसाम्॥
एवं कृत्वा जगत्सर्वं सदैवासुरमानुषम्॥
देवानामपुराणां च मनुष्याणां च सौख्यदम्।
वासं प्रकटयामास गृहारामादिशोभितम्॥

१ एवमभ्युदितो राम प्रियया साभिलाषया।
सर्वेषां चैव लोकानामुपरिस्थानमद्भुतम्॥
गोलोकं कल्पयामास प्रादुर्भाव्यस्वलोकतः।
अयोध्यायाः प्रतिकृतिर्यत्रसर्वापि दृश्यते॥

२ यमुनायाः परिणता सरयू सरसा सरित्।
अभूदगोवर्धनत्वेन दिवि रत्नमयोगिरिः॥
प्रमोदवनं अत्रासीद्दिव्यं वृन्दावनं वनम्।
पारिजाततरुजीतो वंशीवटतरुर्हि सः॥
ते च रासविलासाद्याः प्रादुरासुः समंततः।
आभीरो सुरिवनो नाम रामधात्री पतिः पुरा॥
स एव समभून्नंदो मांगल्या च यशोदिका।
त एव गोपीगोपाद्याः लीलापरिकराश्च ते॥
सैव श्री जानकी देवी वृषभानुसुताऽभवत्।
अशोकवनगा तत्र ह्यथ वृन्दावनेश्वरी॥
तया सह बभौ रामो वंशीवादन कौतुकी।
नित्यरासविलासादि कुर्वाणः सुमनोहरम्॥
गोलोकमखिलं वीक्ष्य लीलापरिकरान्वितम्।
सद्यः प्रसन्नहृदया प्रोवाच निजवल्लभम्।

८. **श्री वसिष्ठ संहिता**—इस सहिता का नामोल्लेख एवं विषय विवरण 'उपासना-त्रय सिद्धान्त' मे आया हे । इसमे दिव्य अयोध्या का वर्णन है। इसके ३६ वे अध्याय में लिखा है कि सर्वोपरि वैकुठ हे, वैकुण्ठ से भी परे गालोक है, गोलोक के मध्य मे साकेत लोक है, साकेत लोक के पूर्व मिथिला है, दक्षिण मे चित्रकूट है, पश्चिम मे वृन्दावन है, उत्तर मे महावैकुण्ठ है, जहाँ सब पार्षदो के सहित श्रीमन्नारायण रहते है। यही नारायण सृष्टिकर्ता २४ अवतारो के कारण है और ये ही श्री रामचरित के मुख्याचार्य है।

साकेत लोक सप्तावरणो के भीतर है। इन आवरणो का सविशेष वर्णन ही इस सहिता का मुख्य विषय है।[1] दिव्य अयोध्या तथा उसके सप्तावरणो का विवरण यथास्थान 'धामतत्त्व' मे आयेगा। इसके भीतर बारह वन है—शृगारवन, विहारवन, तमालवन, रसालवन, चम्पकवन, चन्दनवन, पारिजातवन, अशोकवन, विचित्रवन, कदबवन, कामवन,नागकेसरवन। उस प्रमोदवन के चारों ओर पर्वत है, शृंगार पर्वत, मणिपर्वत, लीलापर्वत, मुक्ता पर्वत। इन चारो पर्वत पर चार शक्तियाँ निवास करती है।

दृष्ट्वैदमद्भुतं स्थानं संपूर्णा मे मनोरथा।
अयोध्यायाः प्रतिकृतिः क्वचित्तावत्ततोधिकाम्॥
आवां अत्रैव रंस्यावः सुचिरं कामकेलिभिः।
अतीव सुन्दरे स्थाने सच्चिदानन्द मन्दिरे॥
एवमुक्तस्तया सार्द्धं रेमे वृन्दावने प्रभुः।
यथा गायन्ति मुनयो महाभावविभूषिताः॥

—शुक संहिता, प्रथम अध्याय चतुर्थ पाद

१ सर्वेभ्यश्चापि लोकेभ्यश्चोध्वं प्रकृतिमण्डलात्।
विरजायाः परे पारे कुण्डं यत्परं परम्॥
तस्मादुपरि गोलोक सच्चिदिंद्रियगोचरम्।
तन्मध्ये रामधामस्ति साकेतं यत्परात्परम्॥
परान्नारायणाश्चैवकृष्णात्परतरादपि॥
यो वै परतमः श्रीमान् रामो दाशरथिः स्वराट्॥
यस्यानंतावताराश्च कला अंशविभूतयः।
आवेशा विष्णु ब्रह्मेशाः परं ब्रह्मस्वरूपमाः॥
सीतया सह रामस्य लीलारसविवर्द्धनः।
चिद्रूपा कांचनी भूमिः समारत्नै र्विचित्रिता॥
वाङ्मनोगोचरानीतं प्रमोदारण्यसंज्ञकम्।
रामस्याति प्रियं धाम नित्यलीलारसास्पदम्॥

परात्पर ब्रह्म राम ही सबके आदि कारण हैं। ब्रह्माविष्णु महेश आदि जिनके अश के आवेश है। वे राम श्रीसीता जी के साथ दिव्य प्रमोदवन मे नित्य विहार करते है।[1]

९. **सदाशिव संहिता**—स्वामी रामचरण दास 'करुणासिधु' ने श्री रामनवरत्न सार सग्रह–ग्रन्थ तैयार किया था, जो प० रामवल्लभा शरण जी की लिखी रत्नप्रभा टीका सहित स० १९८५ मे गोकुल प्रेस अयोध्या मे मुद्रित हुआ। इसमे कई स्थानो पर नाम-महिमा के सम्बन्ध मे सदाशिव सहिता का उल्लेख है।[2] इसके अनन्तर दिव्य अयोध्या एव उसके सप्त आवरणो का विशेष विस्तार से वर्णन कर साकेत विहारी भगवान राम और भगवती सीता का बड़ा ही भव्य ध्यान है।[3]

१०. **श्री महाशंभु संहिता**—श्री रामनवरत्न के पृष्ठ ११ पर महाशभु सहिता के दो श्लोक उद्धृत है जो जानकी जी ने श्री रामचन्द्र के प्रति कहे है। यहाँ 'राम' नाम की महिमा का विषय है। श्री जानकी जी कहती है कि कोई प्रणव को श्रेष्ठ कहते है, कोई और मत्र को; परन्तु प्रणव या अन्य बीज मत्र भी रकार मकार से ही सिद्ध होते है। राम मत्र का प्रभाव पूरा-का-पूरा समझ लेना कठिन है। वेद अनादिकाल से 'राम' के नाम की थाह नही पा रहे है तो औरो की क्या कथा ?[4]

---

१ तुलनीयः—

यस्यांशेनैव ब्रह्माविष्णुमहेश्वरापि जाता महाविष्णुर्यस्य दिव्यगुणाश्च। स एव कार्यकारणयोः परःपरमपुरुषो रामो दाशरथिर्बभूव। स श्री रामःसविता सर्वेषामीश्वरःयमेवैष वृणुते स पुमानस्तु यमेवदस्माद्भूर्भुवः स्वः त्रिगुणमयो बभूव इतीम नरहरिःस्तौतीमं महाविष्णुः स्तौतीमं विष्णुः स्तौतीमं महाशंभुः, स्तौतीमं द्वैतं मण्डलं तपति यत्पुरुषं दक्षिणाक्षं मण्डलो वै मण्डलाचार्यः मण्डलस्थमिति सामवेदे तैत्तिरीयशाखायाम्।

—श्री रामोपासना, पृ० १६३ पर उद्धृत

२ **सर्वसौभाग्यनिलयं सर्वानन्दैकनायकम्।**
कौसल्यानन्दनं रामं वंदेऽहं भवखण्डनम्॥

श्री रामनवरत्न, पृ० १९, लक्ष्मण का वेदों के प्रति कथन

३ **स्निग्धमिन्दीवरश्यामं कोटीन्दुललितद्युतिम्।**
चिद्रूपं परमोदारं जानकीप्रेमविह्वलम्॥
दोर्दण्डचण्डलोछण्डं शरच्चन्द्रं महाभुजम्।
सीतालिंगितवामांकं कामरूपं रसोत्तमम्॥
तरुणारुणसंकाशं विकचांबुजपादकम्॥

४ **प्रणवं केचिदाहुर्वै वीजं श्रेष्ठं तथापरे।**
तत्तु ते नाम वर्णाभ्यां सिद्धिमाप्नोति मे मतम्॥

११. हिरण्यगर्भ संहिता.—श्री रामनवरत्न के उक्त सस्करण के पृष्ठ ४१ पर हिरण्य-गर्भ सहिता का उल्लेख है और अगस्त्य जी ने सुतीक्ष्ण जी से कहा है कि अद्वैत आनन्द शुद्ध चैतन्य सात्वैकलक्षण श्री रामचन्द्र जी सब के भीतर-बाहर इस ब्रह्माण्ड मे प्रकाशित हो रहे है।[1]

१२. महा सदाशिव संहिता—श्री रामनवरत्न के उक्त सस्करण के पृष्ठ ५७-५९ तक महा सदाशिव सहिता का उल्लेख है जिसमे यह कहा गया है कि नाना प्रकार के मत्रो, नामो, चिह्नो मे भरमना और भटकना व्यर्थ है। सबसे श्रेष्ठ श्री रामनाम है जिसके परमाचार्य श्री हनुमान जी है, शेष सभी नाम श्री रामनाम के अश-मात्र है, परम धाम श्री रामधाम है, रामभक्ति ही राजमार्ग है। श्री मैथिली जी के सहित श्रीराम जी का मत्र, श्री हनुमान जी को महान् गुरु तथा श्री सीताराम जी के प्रति सखी भाव यही सदा मुक्ति देनेवाला है।[2]

१३—ब्रह्म संहिता—श्री रामनवरत्न मे पृष्ठ २६ पर ब्रह्मसहिता का एक ही श्लोक उद्धृत है—

पूर्ण पूर्णावतारश्च श्यामो रामो रघूद्वहः।
अशानृसिहकृष्णाद्या राघवो भगवान् स्वयम्॥

भगवान् राम जी पूर्णावतार पूर्ण ब्रह्म है, कृष्ण, नृसिंहादि अवतार अश है, श्री राघव स्वय भगवान् है।

१४, १५, १६, १७. पुराण सहिता, आलमंदार सहिता, बृहत्सदाशिव सहिता, तथा सनत्कुमार सहिता श्रीराधाकृष्ण की लीलाओ के सबध मे होते हुए भी श्री सीताराम की मधुर उपासना को हृदयगम करने के लिए परम उपयोगी है।[3]

रामेति नाममात्रस्य प्रभावमतिदुर्गमम्।
मृगयन्ति तु यद्वेदाः कुतो मंत्रस्य ते प्रभो॥

१ अद्वैतानन्दचैतन्यं शुद्धसत्त्वैकलक्षणम्।
बहिरंतः सुतीक्ष्णोऽत्र रामचन्द्रः प्रकाशते॥

२ श्री राममंत्रस्यांशानि मंत्राण्यन्यानि विद्धि च।
हनुमताचार्येणाहो रामधाम सतां पदम्॥
श्री जानक्याः पतिं सर्वे भजस्व मंगलायनम्।
राममंत्रेणायुधाभ्यां युक्ताः शशुभिरे भुवि॥
आद्याचार्यहनुमंतं त्यक्त्वाहृन्यमुपासते।
क्लिश्यंति चैव ते मुग्धा मूलगा पल्लवाश्रिताः॥
श्री मैथिल्याश्च मंत्रं हि श्री गुरुं मारुतं महत्।
सखीभावं दंपतीष्टं भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा॥

३ इन चारों संहिताओं का बहुत ही सुन्दर तथा शुद्ध संस्करण चौखंभा-संस्कृत-सिरीज, विद्या-विलास प्रेस से प्रकाशित हुआ है, जो परम संग्रहणीय है।

स्तवराज और गीति

१. **श्री रामस्तवराज**—इसकी एक प्रति सनत्कुमार संहिता से संकलित श्री हरिदास कृत भाष्य से समलंकृत श्री सीताराम मुद्रणालय अयोध्या से वि० संवत् १९८६ में मुद्रित उपलब्ध है। एक और प्रति रसराममणि श्री सीतारामशरण जी के भाष्य से भूषित वि० सं० १९५८ में बम्बई से प्रकाशित प्राप्त है। पहली टीका बहुत ही विद्वत्तापूर्ण एवं वैष्णव साधना के आकर-ग्रन्थों के प्रमाणों से परिपुष्ट है। यह स्तवराज कुल ९९ श्लोकों का है और राम का परात्परत्व, श्री रामनाम की महिमा तथा श्री सीताराम का युगल ध्यान का विषय ही इसमें आया है। इस स्तवराज के सनत्कुमार ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, श्रीराम देवता है, श्रीसीता बीज है और श्री हनुमान जी शक्ति हैं। आरम्भ में ध्यान के दो श्लोक (११, १२) हैं।[1]

अन्त में भी ध्यान के दो श्लोक हैं।[2] भाष्यकार श्री हरिदास ने शास्त्रों के वचनों द्वारा अनेक स्थलों पर यह सिद्ध किया है कि राम का रूप ही ऐसा है कि जो भी देख ले, वह मुग्ध हो जाय और इसी पक्ष में दण्डकारण्य के मुनियों का प्रसंग प्रस्तुत किया है। कहते हैं कि राम का रूप देख-कर जब तपस्वी पुरुषों की यह स्थिति है तब स्त्रियों की क्या कही जाय।[3] ऐसा रमणीय है राम का रूप। श्री हरिदास ने बड़े ढंग से एक स्थान पर, ५२ वें श्लोक का भाष्य करते हुए कहा है कि जैसे पिता द्वारा कन्यादान के अनन्तर वह कन्या अपने पति की भार्या हो जाती है और अपने पिता

---

१ अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डप मध्यगे।
स्मरेत्कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनं शुभम्॥
तन्मध्ये षड्दल पद्म नानारत्नैश्च वेष्टितम्।
स्मरेन्मध्ये दाशरथिं सहस्रादित्यतेजसम्॥

२ वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने संस्थितम्।
अग्रे वाचयति प्रभंजनसुते तत्त्वं च सान्द्रं परम्।
व्याख्यातं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम्॥ —रा० स्त० श्लोक ९५

रामं रत्नकिरीट कुण्डलयुतं केयूरहारान्वितम्।
सीतालंकृतवामभागममलं सिंहासनस्थं विभुम्॥
सुग्रीवादिहरीश्वरैः सुरगणैः संसेव्यमानं सदा।
विश्वामित्रपराशरादिमुनिभिः संसेव्यमानं प्रभुम्॥ —रा० स्त० श्लोक ९६

३ पुंसामपि स्त्रीभावेन श्री रामभजनमुपपद्यते किमुत स्त्रीणाम्?
न रामरूपादीनां केवलं स्त्रीपुरुषाणामेव दृष्टिचित्तापहारक-
त्वमुपपद्यते, किन्तु स्थावरजंगमात्मकस्य सर्वं जगतोऽपि।

—श्री रामस्तवराज भाष्यम्, श्री हरिदासकृत, पृ० ६८

का गोत्र छोडकर पति के गोत्र मे सम्मिलित हो जाती है, उसी प्रकार सद्गुरु की कृपा से जीव भगवान् श्रीराम का प्रपन्न होकर अपने माता-पिता का गोत्र छोडकर अच्युत भगवान् राम के गोत्र मे चला जाता है।[1]

लक्ष्य करने की बात यह है कि रामस्तवराज के भाष्यकार श्री हरिदास सभवत गाल-वाश्रम के श्री मधुराचार्य के शिष्य श्री स्वामी हर्याचार्य ही है।

२. **श्री जानकी स्तवराज**—जैसे रामस्तवराज सनत्कुमार सहिता से लिया गया है, वैसे ही श्री जानकी स्तवराज अगस्त्य सहिता से सकलित है। इसमे कुल ६९ श्लोक है। यह सवत् १९८५ मे वेकटेश पुस्तकालय, अयोध्या से प्रकाशित हुआ है। आरम्भ के ४५ श्लोको मे भगवती सीता का नखशिख ध्यान बडी ही भव्य एव उदात्त कवित्वमयी शैली मे हुआ है। श्री जानकी जी के अग-प्रत्यग का ऐसा मनोहारी वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। उनके तलवो की लाली क्या है कि भक्तो का अनुराग ही पुजीभूत होकर चरणो मे लिप्त है। मस्तक पर लाल बिन्दी भी भक्तो की प्रीति का प्रतीक है। जो श्री रामजी को प्रसन्न करना चाहते है, उनके लिए यह सर्वथैव अनिवार्य है कि श्रीसीता जी चरणो का सेवन करे और उनमे रति हो।

श्री जानकी गीत

श्री जानकी गीत रसिक रामोपासको का परम प्रिय ग्रन्थ है। इसका प्रणयन श्री गाल-वाश्रम (गलता गदी) के पीठाधीश्वर, स्वामी श्री हर्याचार्य ने किया और अब सवत् २००९ मे श्री सीतारामशरण जी की 'रसबोधिनी' टीका सहित श्री हनुमत्प्रेस, अयोध्या से मुद्रित हुई है। यह ग्रन्थ राममधुररसोपासको मे उसी स्थान का अधिकारी है जो कृष्णमधुरोपासको मे 'गीत-गोविन्द' और 'राधा-विनोद' को प्राप्त है। बडे ही रसभरे छदो मे पूरे छह सर्गो मे यह समाप्त है। श्री हर्याचार्य श्री मधुराचार्य के पट्टशिष्य थे। इस ग्रन्थ मे उनका मधुररसप्लावित हृदय,

---

१ **किन्तु संकल्पयित्रसमर्पिता कन्या यथा स्वपतेर्भार्या भवति स्वपितुर्गोत्रं विहाय स्वपतिगोत्रीया च भवति, तथैव सकृद् गुरुसमर्पितो यो जीवः श्री रामस्य प्रपन्नो भवति स्वपितुर्गोत्रं विहाया-च्युतगोत्रश्च भवतीति।**

—श्री हरिदासकृत श्री रामस्तवराजभाष्यम्, पृ० १९९

२ **यावन्न ते सरसिजद्युतिहारि न स्याद्रतिस्तरुनवांकुरखंडितांशे।**
तावत्कथं तरुणिमौलिमणेर्जनानां ज्ञानं दृढं भवति भामिनि रामरूपे॥

—श्री जानकीस्तवराज, श्लोक ४९

योगाधिरूढमुनयो हरिपादपद्मे ध्यायन्ति ये चरणपंकजयुग्ममंतः।
वांछंति विघ्नशतशो ह्यनिवार्यमाणां भक्तिं भवाब्धितरणाय कृपापयोधेः॥

—श्री जानकीस्तवराज, श्लोक ५१

अगाध पाण्डित्य, लोकोत्तर कवित्वशक्ति, सगीत की अलौकिक प्रतिभा का एक साथ दर्शन होता है। मगलाचरण का ही श्लोक मधुरोपासना का दिव्य सकेत है—

नवरागभरा चिताप्तवृत्ते
सरयूकुजगृहेषु राघवस्य।
जनकात्मजया सम समन्ताद्
विजयन्ते रति केलयोऽनवद्या ॥

—भावार्थ यह कि नितनूतन प्रीतिराग से परिपूर्ण श्री राघव जी श्री श्री जानकी जी के साथ श्री सरयू कुजगृहो मे होने वाली सच्चिदानन्दमयी केलियाँ निरन्तर विजय को प्राप्त हो।[1] श्री चन्द्रकला जी द्वारा वसन्त की वन शोभा का वर्णन सुनकर श्री जानकी जी तुरन्त उस शोभा को देखना चाहती है, परन्तु चन्द्रकला जी वन की शोभा के साथ-साथ वहाँ अन्य सखियों के साथ राम की क्रीडा का वर्णन करने लगती है।[2] अब जानकी जी इस पर प्रणयक्रोध से भर जाती है। इस प्रकार मान-विधान मे प्रथम सर्ग समाप्त होता है।

अब श्री जानकी जी के हृदय मे भगवान् 'राम' से मिलन के लिए उत्कठा जगती है और श्री चन्द्रकला जी से वे अपना विरह निवेदन करती है। उन्हे यह आशका है कि किसी अन्य भाग्य-शालिनी नायिका के साथ रामचन्द्र एकान्त विहार कर रहे है। प्रणय-कलह एव विरह-पीड़ा से खिन्न जानकी के म्लान हृदय का करुण चित्रण दूसरे सर्ग मे है।

---

१ तुलनीय :

हेमामया द्विभुजया सर्वालंकारयभूषित।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोशलजात्मजः॥ —रा० पू० ता० उ०

अर्थात् स्वर्ण की कान्ति के सदृश गौर वर्णवाली, सभी आभूषणों से भूषित चिद्रूपा, कमल धारण करनेवाली श्री जानकी जी से आलिंगित श्री रामचन्द्र जी आलिंगनजन्य आनन्द से पुष्ट हैं।

२ **क्रीडति रघुमणिरिह मधुसमये**
पश्य कृशोदरि भूपतितनये।
जानकि हे वर्द्धितयौवन मानमये॥
कापि विचुम्बति तं कुलबाला,
गायति काचिदभ्रं धृतताला
कामपि सोऽपि करोति सहासां।
कलयति कांचन कामविकाशाम्॥
हरिर्वर्णितमिदमनुरघुवीर
निवसतु चेतसि सरस गभीरम्॥

तीसरे सर्ग मे श्री रामचन्द्र जी श्री जानकी जी की कोपशान्ति का उपाय सोच ही रहे हैं कि श्री चन्द्रकला जी आ जाती है। चौथे सर्ग मे श्री चन्द्रकला जी भगवान् रामचन्द्र जी से श्री जानकी जी की ओर से मनुहार करती है और ऐसा करते हुए श्री जानकी का विरह-विदग्ध एव विभ्रान्त चित्त का एक मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करती है। इस पर श्री रामचन्द्र जी दोनो हाथ जोडकर निवेदन करते है कि यह वसन्त का समय है और इस समय सीता जी का मान करना उचित नही है। इतना ही नही, श्री जानकी जी का मान शमन करने के लिए श्री रामचन्द्र जी ने उनके चरणो मे प्रणाम करते हुए उन्हे नाना प्रकार से प्रसन्न किया।[1]

पाचवे सर्ग मे मानलीला का शमन हो चुका होता है और प्रिया-प्रियतम को धूलिधूसरित देखकर सखियाँ जलक्रीडा का प्रस्ताव उपस्थित करती है और सीताराम नाना प्रकार की जल-क्रीडाओ मे मग्न है। यह जलक्रीडा बडी देर तक चलती है और इसमे अन्य सखियाँ भी सम्मिलित है। इसके अनन्तर भोजन होता है और तब श्री किशोरी जी के साथ श्री कोशलराजकिशोर जी सुखपूर्वक सिहासन पर विराजमान है। इसके अनन्तर रास शुरू होती है दो-दो सखियो के बीच एक-एक राम। बीच मे सीताराम। नित्य निकुजविहारिणी दिव्य वस्त्रधारिणी श्री किशोरी जी ने रासरग की उमग मे भरकर हृत् हास्यमय रसभरे कटाक्ष से प्राणवल्लभ को देखा। श्री प्रिया जी तथा प्रियतम जी रासमण्डल से निकल-निकल कर नृत्य करते है और पुनः मण्डल मे यथास्थान आ जाते है। यही पाँचवाँ सर्ग समाप्त होता है।

छठे सर्ग मे रास-नृत्य के अनन्तर रासकेलि का प्रसग है। श्रीराम जी के अग की जैसी मेघ-कान्ति है उसी रग की साडी श्री जानकी जी ने धारण किया है और श्री जानकी जी के अग की जैसी विद्युत कान्ति है उसी रग की धोती श्री राम जी ने पहनी है। इसी सर्ग मे साम्प्रयोगिकी लीला का भी निरूपण है।[2] इस प्रकार इस युगल मिलन मे श्री जानकी-गीत की परिणति है।

---

१ प्रणम्य पादौ जनकात्मजायाः
प्रसादनं कुर्वति रामचन्द्रे।
द्विपस्तथा प्रांशु जगर्ज वक्ष-
स्तटीं यथासौ सहसाऽस्य भेजे॥

—जानकीगीतम् ४, ३

२ रामस्य जानुपरिसेवितसन्नितम्बा,
वक्षस्युपाहितकुचास्यभुजोपधाना।
कण्ठे समर्पितभुजा वदने धृतास्या,
श्री जानकीकुसुमचापधृतापि शेते॥

—श्री जानकीगीतम् ६, १

श्री सहस्रगीति

श्री सहस्रगीति श्री-सम्प्रदाय के प्रथमाचार्य प्रपन्नजनकूटस्थ श्री शठकोप मुनि द्वारा रचित मधुरोपासना का परम प्रामाणिक ग्रन्थ है। शठकोप मुनि दक्षिण के आलवार भक्तों मे प्रमुख थे। आलवारो की उपासना मुख्यत: मधुर भाव की ही है, यद्यपि उसमे दास्य भाव भी मिला हुआ है। ये आलवार कुल बारह हुए, इनमे शठकोप, कुलशेखर और अन्दाल का नाम अधिक विख्यात है। सहस्रगीति मे अधिकाश पद नारायण, कृष्ण, गोविन्द, हरि, माधव को सबोधित कर लिखे गये है, परन्तु मधुर-भाव से ओतप्रोत दो-एक पद श्री राम को सबोधित करके भी लिखे मिलते है।[1] जो हो, यह सम्पूर्ण ग्रन्थ मधुरोपासक साधको के गले का हार है और वे बड़े ही भाव से इसका अनुशीलन करते है।

यह सातवी शती का ग्रन्थ माना जाता है। इसमे १० शतक है और प्रत्येक शतक मे १० दशक है, प्रत्येक दशक मे ११ गाथाएँ है। केवल द्वितीय शतक के सातवे दशक मे १३ और पचम शतक के छठे दशक मे २२ गाथाएँ है। इस प्रकार दश शतक और सौ दशक तथा १११३ गाथाओ मे यह ग्रन्थ पूरा हुआ है। सक्षेपत इस ग्रन्थ का विषय-विवेचन इस प्रकार है—

प्रथम शतक मे—भगवत्कैङ्कर्य ही परम पुरुषार्थ है।
द्वितीय शतक मे—ईश्वर ही परम भोग्य रूप है।
तृतीय शतक मे—अर्चावतार की स्तुति एव सेवा ही कल्याण का हेतु है।
चतुर्थ शतक मे—भगवच्चरण-युगल ही प्राणियो के सर्वविध रक्षक है।
पंचम शतक मे—नारायण ही जीवो के लिए मोक्षदाता है।
षष्ठ शतक मे—लक्ष्मी जी की शरण लेकर भगवत्शरण होना चाहिए।
सप्तम शतक मे—सासारिक सुख ईश्वर-प्राप्ति के विरोधी है।
अष्टम शतक मे—ससार के विषय, अह, मम के त्याग का उपाय।

---

१ क्लेशादियं मनसि ह वा! विभाति चाग्नौ
लाक्षादिवद् द्रुततनुर्वत! निर्दयोऽसि।
लंकान्तु राक्षसपुरी नितरां प्रणाश्य
प्रख्यातिमान् किल भवान् किमु ते प्रकुर्याम्॥

—सहस्रगीति, शतक २, श्लोक ३

तथा च—

वीनात्विमं भ्रमवशा हि दिवानिशं चा-
प्यश्रुप्रवाहभरिता स्तिमितायताक्षी।
लंकां प्रणाश्य किल कण्टकदुष्प्रभुत्वं
प्रध्वंसयाद्य परिपाहि कटाक्षमस्याः॥

—सहस्रगीति, २-१०

नवम शतक मे—भगवद्गुणों के सम्यक् अनुभव के उपाय।

दशम शतक मे—नित्यानन्द का भोग।

श्री स्वामी पराकुशाचार्य शास्त्री महोदय ने गलता कुज, प्रयाग घाट, मथुरा से इसे वि० सं० १९९५ मे प्रकाशित कराया।

रामायण

१. श्री वाल्मीकीय रामायण—गलता गद्दी के स्वामी मधुराचार्य के 'श्री सुन्दरमणि सदर्भ' ग्रन्थ के अनन्तर वाल्मीकीय रामायण भी अवध की मधुरोपासना का एक प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ हो गया है। सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामायण की शृगारपरक व्याख्या करते हुए श्री मधुराचार्य जी ने अनेक वचनो को उद्धृत करके बताया है कि पुरुष किस प्रकार भगवान् के कमनीय मुख को देख कर उसी प्रकार रमणेच्छुक हो जाते है जिस प्रकार सती स्त्री अपने कान्त को देख कर हो जाती है। श्री मधुराचार्य जी ने 'जार' और 'उपपति' का भी अपना विलक्षण अर्थ किया है, क्योकि उनका मानना है कि भगवान् के साथ जार-भाव नही चल सकता। वहा तो सती नारी और पति का ही सम्बन्ध चल सकता है। श्री मधुराचार्य जी मानते है कि ससार बीज को जीर्ण करे अर्थात् नाश करे उसको 'जार' कहते है और इसी प्रकार अन्तर्यामी रूप से वा प्रत्यक्ष रूप से स्थित होकर अपने प्रेमी उपासको का पालन रक्षण करे उसका नाम 'उपपति' है।[1] 'जार' और 'उपपति' का यह अर्थ अपनी विलक्षणता मे सर्वथा मौलिक है। इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण के अनेक उद्धरणो से श्री मधुराचार्य ने यह सिद्ध किया है कि भगवान् श्रीकृष्ण तो वशीवादन से स्त्रियादिको का मोहित करते थे, परन्तु श्री राम जी तो अपने स्वाभाविक सौन्दर्य मे स्त्रीपुरुष साधारण जन्तुओ को मोहित करने वाले है।[2]

वाल्मीकीय रामायण मे शृगार के कई स्थलो का निर्देश करते हुए श्री मधुराचार्य जी ने इसे रसिक-सम्प्रदाय का आधार ग्रन्थ सिद्ध किया है और जैसे कृष्णायत मधुर उपासना का प्रधान आधार ग्रन्थ श्रीमद्भागवत है वैसे ही श्री रामोपासना की रसिक शाखा का प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ श्री वाल्मीकीय रामायण माना जाता है। श्री वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड मे राम के अशोक-वन का वर्णन मिलता है, जहाँ राम-सीता के विहार का भी उल्लेख मिलता है।[3]

---

१ परोपभुक्तायाः सर्वागुभोक्तु भगवदनहत्वात् जारयति संसारवीजं नाशयतीति जारः। उप समीपे ऽन्तर्यामिरूपेण ऽव्यक्तरूपेण वा स्थित्वा पाति रक्षति पुष्णातीति उपपतिः॥
—सुन्दरमणि संदर्भ, पृ० ४४

२ श्री कृष्णस्तु वेणुरणनैः स्त्रियादिमोहनः। अयं तु स्वसौन्दर्येण स्त्रीपुं साधारण सर्वजन्तुमोहकः
—सुन्दरमणि संदर्भ, पृ० १० ६

३ दे० वा० रा० सर्ग ४२।
सीतां...मधुरैकं...पाययामास

२. **आनन्द रामायण**—आनन्द रामायण रामभक्ति के रसिकोपासको का एक प्रधान ग्रन्थ है। अनुमानत. इसकी रचना १५ वी शताब्दी मे हुई होगी। अध्यात्म रामायण के कई उद्धरण इसमे मिलते है। इसमे कुल १२२५२ श्लोक और ९ काण्ड है। पहला काण्ड **सारकाण्ड** है, जिसमे १३ सर्ग है। इसमे राम-जन्म से लेकर सीताहरण तक का प्रसग है। दूसरा **यात्रा-कांड** है, जिसमे ९ सर्ग है। इसमे राम की तीर्थयात्रा का प्रसग है। तीसरा काण्ड **यागकाण्ड** है, जिसमे ९ सर्ग है। इसमे रामाश्वमेध का वर्णन है। चौथा काण्ड **विलास-काण्ड** है, जिसमे ९ सर्ग है। इसमे सीता का नखशिख वर्णन, सीता के नानाविध शृगारो एव अलकारो का वर्णन, राम-सीता की जलक्रीडा,[1] नाना विहार-विलास तथा उनकी दिनचर्या का बडे विस्तार से वर्णन है। इसी काण्ड के सर्ग ७ से १९ तक मे राम के एकपत्नीव्रत रखने के कारण अगले अवतार मे बहुत ही पत्नियो को प्राप्त करने का आश्वासन मिलता है। तथा कामपीडिता देव-पत्नियो को कृष्णावतार मे गोपिकाएँ बनने का आश्वासन मिलता है। आठवे सर्ग मे गुणवती तथा पिगला को क्रमश सत्यभामा तथा कुब्जा बनने का आश्वासन राम देते है। नवे सर्ग मे राम सीता-सहित कुरुक्षेत्र की यात्रा करते है।

पाँचवाँ काण्ड **जन्म-काण्ड** है, जिसमे ९ सर्ग है। इसमे राम द्वारा सीता-त्याग की कथा आती है, फिर लव-कुश का जन्म। फिर कुश-लव का राम की सेना से युद्ध, उर्मिला, श्रुतिकीर्त्ति तथा माडवी के दो-दो पुत्र उत्पन्न हुए।

छठा काण्ड **विवाह-काण्ड** है, जिसमे ९ सर्ग है। इसमे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के आठ पुत्रो के विवाह का प्रसग है।

सातवाँ काण्ड **राज्य-काण्ड** है, जिसमे २४ सर्ग है। इसमे राम की अनेक विजय-यात्राओ का वर्णन है। राम के रूप को देख कर स्त्रियाँ प्राय कामातुर हो जाती है और राम अपने अगले (कृष्ण) अवतार मे उनकी लालसा पूरी करने का आश्वासन देते है। इसमे लगभग १६१०८

---

१ **मुष्टिभ्यां जानकी रामं ताडयामास कौतुकात्।**
सोऽपि तां ताडयामास मुष्ट्या पुष्पसमानया॥
चुचुम्ब तस्या बिंबोष्ठं चूर्णयामास तत्कुचौ।
मुक्त्या तत्कंचुकीबंधमालिग्य हृदयेन ताम्॥
मुमोच कच्छं श्रीरामः सीतायाः स्वकरेण सः।
उड्डीय वस्त्रं हस्तेन तद्रम्भोरू ददर्श सः॥
ततः करेण तन्नीवीं रामश्चाकर्षयन्मुदा।
सीता चाकर्षयद्वेगाद्रामनीवीं स्मिताननाः॥
एवं परस्परं क्रीडां चक्रतुर्दम्पती मुदा।
कः समर्थस्तयोः क्रीडां सविस्तारां निवेदितुम्॥

—आनन्द रामायण, सर्ग ६, श्लोक ५२-५६

स्त्रियो को राम अपने कृष्णावतार मे अगमग का वचन देते है। इक्कीसवे सर्ग में राम का ताम्बूल-रस उनकी एक दासी पी जाती है, जिसके पुरस्कारस्वरूप उसे अगले जन्म मे राधा बन जाने का वरदान मिलता है। इस काण्ड के अनेक स्थलो मे यह सिद्ध किया गया है कि कृष्णावतार की अपेक्षा रामावतार श्रेष्ठ है।

आठवाँ काण्ड **मनोहर-काण्ड** है, जिसमे १८ सर्ग है। इस काण्ड मे रामोपासना विधि, राम-नाम-माहात्म्य, चैत्र-माहात्म्य, रामकवच आदि है।

नवाँ काण्ड **पूर्ण-काण्ड** है, जिसमे ९ सर्ग है। इसमे कुश के अभिषेक तथा रामादि के वैकुण्ठारोहण की कथा है।

३. **महारामायण**—महारामायण श्री जानकीजीवन दास-कृत भाषातिलक के साथ अयोध्या से वि० स० १९८५ मे छपा है। यह एक खण्डित प्रति कुल पाँच सर्गो की है। कहते **हैं,** इसकी पूरी प्रति काश्मीर राजकीय पुस्तकालय मे सुरक्षित है। जो हो, जो प्रति प्राप्त है उसमे कुल पाँच सर्ग है। प्रथम सर्ग मे ८९ श्लोक है और इसमे भगवान् राम के चरणचिह्नो का सविशेष वर्णन है। दूसरे सर्ग मे २७ श्लोक है और इसमे राम-भक्ति-प्राप्ति के उपाय, रामभक्तो का लक्षण तथा धनुषबाण-धारण की विधि का प्रसग है। तीसरे सर्ग मे २६ श्लोक है, इसमे भगवान राम क्षर, अक्षर, निरक्षर आदि से परे परात्परतम ब्रह्म बताये गये है। एकमात्र सखी-भाव से उनकी उपासना हो सकती है। चौथे सर्ग मे २० श्लोक है और इसमे श्री जानकी जी की आज्ञाकारिणी, आह्लादिनी आदि तैतीस शक्तियो का वर्णन है। और, उनमे से एक-एक की सहस्रश उपशक्तियो का वर्णन है। पाँचवे सर्ग मे ११० श्लोक है, इसमे श्रीराम-नाम की महिमा का वर्णन है। इसी सर्ग मे रम् धातु से रमणार्थ मे 'राम' शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध करते हुए राम की रासक्रीडा का उल्लेख है। श्री रामदास गौड़ ने अपने 'हिन्दुत्व' नामक विशाल ग्रन्थ मे अनेक ऐसे रामायणो का नामोल्लेख किया है जिसके विषय मे निश्चित रूप से कुछ भी पता लगना कठिन है। 'हिन्दुत्व' मे 'महारामायण' मे ३,५०,००० श्लोक बताये जाते है और उसमे कनकभवन-विहारी भगवान् राम की सीता तथा अन्य सखियो के साथ ९९ रासलीलाओ का वर्णन है।

४. **आदि रामायण**—इसकी एक हस्तलिखित प्रति मणिपर्वत अयोध्या मे श्री रामकुमार दास के सरक्षण मे है। इसमे मंजरी, मुग्धा, मध्या, प्रौढा आदि का प्रसग है। कामिल बुल्के ने अपने ग्रन्थ राम-कथा मे 'चित्रकूट-माहात्म्य'[1] नामक एक हस्तलिखित ग्रन्थ की चर्चा की है जो उन्हे इण्डिया आफिस से मिला है। उसे वे आदि रामायण का ही एक अश बताते है। उनका कथन है कि इस हस्तलिखित प्रति मे चित्रकूट का मातानक वन मे एक सरोवर का वर्णन है, जिसके मध्य मे एक रम्य मण्डप बना हुआ है, जहाँ एक वेदिका मध्य पर भगवान् श्री राम जी सीता और उनकी सखियो के साथ नित्य रासक्रीडा करते रहते है।

---

१ देखिए रामकथा, पृष्ठ १७१, अनुच्छेद १९०

५. **रामायण मणिरत्न**—इसका भी उल्लेख श्री रामदास गौड के 'हिन्दुत्व' मे है। यह वसिष्ठ-अरुन्धती-सवाद है और इसमे कुल ३६,००० श्लोक है। इसमे मिथिला तथा अयोध्या मे राम का वसन्तोत्सव मनाने का विवरण है।

६. **मैन्द रामायण**—मैन्द रामायण की चर्चा भी 'हिन्दुत्व' मे है। मैन्द-कौरव-संवाद मे कुल ५२,००० श्लोको मे यह पूरा हुआ है। इसमे जनकपुर की वाटिका मे राम-सीता के लीला-विलास का प्रसंग विशेष रूप से वर्णित है।

७. **मंजुल रामायण**—उपर्युक्त 'हिन्दुत्व' मे उल्लेख। सुतीक्ष्ण-कृत कहा जाता है। इसमे शबरी के प्रति राम ने नवधा भक्ति का वर्णन किया है और उसी प्रसग मे रागमयी प्रीति-पराभक्ति का सविशेष वर्णन है। इनके अतिरिक्त भी रामदास गौड़ ने अपने 'हिन्दुत्व 'में सवृत रामायण, लोमश रामायण, अगस्त्य रामायण, रामायण महामाला, सौहार्द रामायण, सौर्य रामायण, चान्द्र रामायण, स्वायभुव रामायण, सुब्रह्म रामायण, सुवर्चस् रामायण, देव रामायण, श्रपण रामायण, दुरत रामायण और रामायण चम्पू की चर्चा की है।

८. **भुशुंडी रामायण**—भुशुडी रामायण भी इस रसिक-सप्रदाय का एक सर्वमान्य ग्रन्थ माना जाता है। इस ग्रथ की हस्तलिखित प्रति श्रावणकुज अयोध्या मे देखने को मिलती है। उसमे मनुष्य छन्द मे कुल छत्तीस हजार श्लोक है। गीता प्रेस गोरखपुर ने इस ग्रन्थ का फोटो स्क्रिप्ट लिया है। इसका एक श्लोक यों है—

हर्षिता राधिका तत्र जानक्यंशसमुद्भवा।
रामस्याशसमुद्भूत कृष्णो भवति द्वापरे॥

नाटक, उपाख्यान, लीलाचरित-काव्य

१. **महानाटक अथवा हनुमन्नाटक**—महाकवि हनुमान द्वारा रचित यह नाटक रसिकोपासको का एक परम प्रिय ग्रन्थ है। इसके दो सस्करण उपलब्ध है। एक है गिरीश प्रिण्टिंग वर्क्स कलकत्ता का सन् १९३९ का प्रकाशित, दूसरा है मुवई वैभव-मुद्रण-यन्त्रालय बबई मे सवत् १९८१ का प्रकाशित। इस नाटक मे पूरा रामचरित है। दूसरे अक मे रामजानकीविलास का बहुत ही रोमाटिक वर्णन है जो कतिपय विद्वानो की दृष्टि मे अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया है। जो हो, राम जानकी का विलास दूसरे अक मे देखने ही योग्य है।[1]

---

१ अंके कृत्वा जनकतनयां द्वारकोटेस्तटान्तात्।
पर्यंकांके विपुलपुलकां राघवो नम्रवक्त्राम्॥
बाणान् पंच प्रवदति जनः पंचबाणो प्रमाणैः
बाणैः किं मां प्रहरति शतैर्व्याहरन्नानिनाय॥
अन्योन्यं बाहुपाशग्रहणरसभराशीलिनोस्तत्रयूनो
भूयो भूयः प्रभूताभिमतफल भुजोर्नन्दतोर्जात एषः।
संसारो गर्भसारो नव इव मधुरालापिनोः कामिनो मां
गाढं चालिग्य गाढं स्वपिहि नहिनहीति च्युतो बाहुबन्धः॥

परिपूर्ण काम भगवान् राम ने सीता के साथ वह लीला-विलास किया, जो त्रिभुवन मे न कोई कर सका है न कर सकेगा।[1]

वक्त्रे ततः फणिलता दलवीटिकां स्वे।
विन्यस्य चन्दनघनावृतपूगगर्भाम्॥
रामोऽब्रवीदयि गृहाण सुखेन बाले!
तृच्छद्मना तदधरं मधुरं प्रपातुम्॥
मंदं मंदं जनकतनया तां चतुर्धा विधाय।
स्वैरं जह्वे तदधरमधुप्रेमतो मीलिताक्षी॥
मेने तस्यास्तदनुकवलात् धर्मकामार्थमोक्षान्।
रामः कायं मधुरमधरं ब्रह्म जीत्वापि तस्याः॥

सुप्तायां सीतायां रामः--

भातिस्म चित्तस्थितरामचन्द्रं संरुन्धती निर्गमशंकयेव।
स्तनोपरि स्थापितपाणिपद्मा छद्माप्तनिद्राहरिणायताक्षी।

तत्र सीतावक्षःस्थलस्थभ्रमरमवलोक्य--

मदनदहनशुष्यत् क्लान्तकान्ता कुचान्त
र्हृदि मलयजपंके गाढबद्धाखिलांकिः।
उपरि विततपक्षो लक्ष्यते ऽलिर्निमग्नः
शर इव कुसुमेषोरेष पुङ्खा वशेषः॥

अत्रावसरे

पृथुलजघनभारं मन्दमान्दोलयन्ती।
मृदुचलदलकान्ता प्रस्फुरत्कर्णपूरा।
प्रकटितभुजमूला दर्शितस्तन्यलीला।
प्रमदयति पतिं द्राक् जानकी व्याजनिद्रा॥

जानकी प्रबुद्धा

स्पृहयति च बिभेति प्रेमतो बालभावा-
न्निलति सुरतसंगादंगमाकुचयन्ती।
अहह! नहि नहीति व्याजमप्यालपन्ती
स्मितमधुरकटाक्षैर्भाविमाविष्करोति॥

--महानाटक, अंक २, श्लोक ४५-५२

१ सीतां मनोहरतरां गिरमुद्गिरन्ती-
मालिंग्य तत्र बुभुजे परिपूर्णकामः।

२. **प्रसन्नराघवम्**—महामहोपाध्याय पक्षधर मिश्र उपनाम जयदेव कवि-विरचित यह नाटक सात अंकों में पूरा हुआ है। अनुमानतः इसकी रचना १२ वी या १३ वीं शताब्दी मे हुई होगी। इसके दूसरे अंक मे राम और सीता का चण्डिकायतन मे मिलन तथा पूर्वराग का चित्रण बहुत ही मनोहारी शैली मे हुआ है। श्री रामचन्द्र वाटिका मे श्री जानकी जी को अचानक देखकर विस्मय से अभिभूत हो जाते है और पूछते है—'नीलम पर खिची स्वर्ण रेखा के समान, कनक-कदली के अभ्यन्तर भाग की तरह स्वच्छ, हरिद्रा-जल की तरह कान्तिप्रवाहवाले अगो से सुन्दरी यह कौन कन्दर्प की क्रीडाभवन-दीपिका की ऐसी दीख रही है।'[1] श्री राम कहते है—'कन्दर्प ने तुम्हारे शरीर को अपना धनुप समझ कर तुम्हारे मध्यदेश को अपनी मुट्ठी मे पकडा, जिसके फल-स्वरूप त्रिवलि के छल से तीन अगुलि सधि-रेखाएँ त्रिभुवन-वशीकरण-मुद्रा के समान दीख रही है।'[2] सीता राम को कटाक्ष मे लीलापूर्वक देखती है। राम उसका देखना देखकर कहते है—'नव यौवन का सर्वस्व, भोग का भवन, आँखो का सौभाग्य, मद का गौरव, जगत् का सार, जन्म लेने का फल, कन्दर्प का अभिप्राय, राम का हृदय, रति का तत्त्व, शृगार का रहस्य, कुछ ऐसी ही उस कमलनयनी को देखना है।'[3] इस प्रकार पूरा-का-पूरा दूसरा अक राम-सीता के परस्पर आकर्षण, उत्कंठा, प्रीति, एव सभोगेच्छा के भाव से परिपूर्ण है। इस प्रकार भवभूति के उत्तर रामचरित मे

रामस्तथा त्रिभुवनेऽपि तथा न कोऽपि
रामां भुनक्ति बुभुजे न च भोक्ष्यतीशः॥

—महानाटक, अंक २, श्लोक ६०

१ **केयं श्यामोपलविरचितोल्लेखहेमैकरेखा**
लग्नैरंगैः कनककदलीकन्दलीगर्भगौरैः।
हारिद्राम्बुद्रवसहचरं कान्तिपूरं वहद्भिः
कायक्रीडाभवनवलभी दीपिकेवाविरस्ति

—प्रसन्नराघव, अंक २, श्लोक ७

२ **यत्वा चापं शशिमुखि निजं मुष्टिना पुष्पधन्वा**
तन्वीमेनां तव तनुलतां मध्यदेशे बभार
यस्मादत्र त्रिभुवनवशीकारमुद्रानुकारा-
स्तिस्रा भान्ति त्रिवलिकपटादंगुलीसंधिरेखाः॥

—प्रसन्नराघव, अंक २, श्लोक १७

३ **सर्वस्वं नवयौवनस्य भवनं भोगस्य भाग्यं दृशां**
सौभाग्यं मदविन्दुमस्य जगतः सारं फलं जन्मनः।
साकूतं कुसुमायुधस्य हृदयं रामस्य तत्त्वं रतेः
शृंगारस्य रहस्यमुत्पलदृशस्तत् किंचिदालोकितम्॥

—वही, अंक २, श्लोक २६

राम का सीता के विरह मे तड़पना[1] तथा महावीर चरित मे सीता-राम का पूर्वानुराग इस सम्बन्ध मे लक्ष्य करने की वस्तु है। 'महावीर-चरित' के प्रथम अंक मे विश्वामित्र सीता तथा उर्मिला को अपने आश्रम मे बुलाते है, जहाँ राम और लक्ष्मण उनको देख कर आकर्षित हो जाते है। इन नाटको के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि आठवी शताब्दी से लेकर राम-सीता के सम्बन्ध मे शृगार-भावना तथा उनके पूर्वानुराग का वर्णन विशेष रूप मे होने लगा था।

३ **मैथिली कल्याण**[2]—जैन कवि हस्तिवल्लभ का यह नाटक तेरहवी शताब्दी के अन्तिम दशक मे लिखा बताया जाता है।[3] आरम्भ के चार अको मे राम तथा सीता के पूर्वानुराग का वर्णन किया गया है। दोनो स्वयवर के पूर्व मिथिला के कामदेव-मन्दिर मे और माधवी-वन मे मिलते है। अनन्तर चन्द्रकान्तधर गृह मे अभिसारिका सीता का चित्रण किया गया है। अन्तिम अंक मे राम-सीता का विवाह है।

४ **उदार राघव**—उदार राघव की रचना १४ वी शताब्दी के मध्य मे हुई बताई जाती है। लेखक है साकल्वमल्ल। इसके कुल १८ सर्गो मे केवल नौ सर्ग सुरक्षित तथा प्रकाशित है। राम के वन जाते समय सीता का तर्क यह है कि मैने बहुत-से रामायण सुने है, लेकिन उनमे राम कही भी सीता के विना वन नही जाते है।[4] इसके तीसरे सर्ग मे मिथिला की स्त्रियो का वर्णन तथा नवे सर्ग मे वनवास मे राम-सीता का वन-विलास विशेष रूप मे द्रष्टव्य है।

५. **जानकी हरण**—कुमारदास कृत 'जानकी हरण' मे विवाह के पहले ही राम-सीता के पारस्परिक आकर्षण तथा सीता के विरह का वर्णन मिलता है।[5] विवाह के उपरान्त राम और सीता के सभोग का वर्णन है।[6] 'जानकी हरण' के तीसरे सर्ग मे दशरथ की क्रीड़ा का वर्णन विशेष विस्तार से किया गया है।

६ **सत्योपाख्यान**—सत्योपाख्यान पत्राकार मे वेकटेश्वर प्रेस बम्बई से छपा उपलब्ध है। आरम्भ मे राम विष्णु के, लक्ष्मण शेष के, भरत सुदर्शन के और शत्रुघ्न शख के अवतार है—

---

१ **किमपि किमपि मंदं मन्दमासात्तयोगा-**
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भ व्यापृतैकैकदोष्णो--
रविदितगतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत्॥ --उ० रा० च०

२ **माणिकचन्द दिगंबर जैन ग्रन्थमाला सं० ५।**

३ **रामकथा पृ० १९७, अनुच्छेद २४४।**

४ **रामायणानीह पुरातनानि पुरातनेभ्यो षडशः श्रुतानि।**
न क्वापि वैदेहसुतां विहाय रामो वनं यात इति श्रुतं मे॥
--उदार राघव सर्ग ५.४८

५ **देखिए जानकीहरण, सर्ग ७।**

६ **देखिए जानकीहरण, सर्ग ८।**

ऐसा वर्णित है। फिर दशरथ-कैकेयी का विवाह, मंथरा के पूर्व जन्म की कथा और फिर राम की बाललीला का वर्णन है। उत्तरार्द्ध मे सीता जी का स्वयवर, राम सीता का विवाह, जल-विहार, वन-विहार[1] सीता की मानलीला, होलिकोत्सव आदि का रसमय विवरण है।

यहाँ लक्ष्य करने की बात यह है कि जिस प्रकार श्रीमद्भागवत मे 'रासपंचाध्यायी' के अनुशीलन से हृद्रोग के नाश होने का फल है, उसी प्रकार सत्योपाख्यान मे राम-सीता के विहार का अनुशीलन भी सभी पापो को नष्ट कर विमल भक्ति को जन्म देता है। अतएव रसिकों-रसभावुको को इसका बार-बार प्रीतिपूर्वक श्रवण-मनन-अनुशीलन करना उचित है।[2]

७ **वृहद् कौशल खण्ड**—वृहद् कौशल खण्ड अभी-अभी दो खडो मे प० रामवल्लभाशरण जी महाराज की 'रसवर्धिनी टीका' सहित लाहौर के सेठ रोशनलाल अग्रवाल तथा रामप्रियाशरण जी द्वारा प्रकाशित हुआ है। परन्तु है यह 'प्राइवेट सर्क्यूलेशन' के लिए ही। जनसाधारण मे इसका अन्यथा अर्थ भी लग सकता है, इसीलिए यह सर्वसुलभ नही है। कहते है, इस ग्रथ को श्री वेदव्यास जी ने श्री सूत-शौनक-सवाद रूप मे निर्माण किया है। श्री शौनक जी ने श्री सूत जी से श्री रामजी के रहस्य-चरित्र की जिज्ञासा की। उत्तर मे श्री सूत जी ने सक्षेप मे श्री राम-जानकी (प्रिया प्रीतम) का लीला-रहस्य बतलाया। भगवान् श्री राम और भगवती सीता के युगल ध्यान के अनेक श्लोक है, तदनन्तर जलविहार, मृगयाविहार आदि की झाँकी का वर्णन कर के श्री सरयू-पुलिन मे सखाओ के साथ रसविहार का वर्णन है और यही प्रथम अध्याय समाप्त होता है। द्वितीय अध्याय से पचम अध्याय तक गोपकन्या, देवकन्या, नागकन्या, गधर्वकन्या, राजकन्या आदि के साथ भगवान् के रासविहार का बडी मार्मिक भाषा मे वर्णन किया है। छठे अध्याय मे श्री जानकी जी के पूर्वराग का उल्लेख कर सातवे अध्याय मे विवाह का प्रसग है। इसके अनन्तर नवे अध्याय से पन्द्रहवे अध्याय तक विवाहोत्तर देवकन्याओ के साथ गधर्व-कन्याओ के साथ, किन्नर-सुताओ के साथ, विद्याधर-कन्याओ के साथ सिद्धकुमारियो के साथ, राजकन्याओ के साथ, साध्य सुताओ के साथ, गुह्यक देव कन्याओ के साथ, यक्ष कन्याओ के साथ नाग कन्याओ के साथ रास का प्रकरण सविस्तार विशेष रूप से बडी ही भावमयी प्रभावमयी भाषा मे प्रस्तुत

---

१ **कुचद्वयेन रामस्य हृदयं स्पृशतीव सा।**
कण्ठे लग्ना तदा भाति मालेव स्वर्णवल्लरी॥ —सं० २१.२३

तथा च

तस्यैवांके तथा सीतां लज्जया सस्मिताननाम्।
रामचन्द्रं घनश्यामं सीतां विद्युल्लतोपमाम्॥ —सं० २६.१०

२ **श्रोतव्यं रसिकैः सर्वैर्भावुकैः प्रीतिपूर्वकम्।**
श्रुत्वा पापानि नश्यन्ति रामे भक्तिः प्रजायते॥

—सत्योपाख्यान, उत्तरार्द्ध २५-५०

किया गया है। यों यह समस्त ग्रन्थ ही श्री जानकीराघवरासविलास का अपूर्व ग्रन्थ है और रसिकोपासको मे इसे वेदवत् पूज्य एव परम गुह्य मानते है। श्री हनुमत् निवास के सतत प्रिया-प्रीतम की अष्टयामसेवा मे परायण, अनन्योपासक, मधुर रस के परम रसिक एवं रसज्ञ मर्मज्ञ महात्मा रामकिशोर शरण जी महाराज की कृपा से ही यह दुर्लभ ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है।

८. **माधुर्य केलि कादम्बिनी**—जैसा नाम से ही स्पष्ट है स्वामी श्री मधुराचार्य द्वारा रचित मधुर रस का एक परम आदरणीय ग्रन्थ है। इसकी पूरी प्रति अभी उपलब्ध नही हुई है। 'शिव सहिता' की 'रसबोधिनी टीका' मे प० रामवल्लभाशरण जी महाराज ने इस ग्रन्थ के कुछ श्लोक उद्धृत किये है।[1]

भावार्थ यह कि जब जड पदार्थ तक राम के रूप पर मुग्ध हो जाते है तो उन प्रमदाओ का क्या कहना, जिनके हृदय मे मन्मथ का प्रवेश हो चुका है।

श्रीराघव परमहस यतीन्द्रमुख्या
नार्यो ऽभवन् सखि विमोहवशाश्च दृष्ट्वा।
ते राक्षसाश्च मुमुहु किल कामिनीना
पुसा कथैवननु का रसराजमूर्त्ति.॥
कन्दर्पकोटि समकान्तिरल च रामः
श्याम सुपश्यति तरुं ह्यथ पक्षिणश्च।
वृक्षाः खगा कुसुमवाणवशा भवन्ति
काम सदैव विनय क्रियते रसज्ञे॥
दृष्ट्वा सुरम्य निजरूपमद्भुत
शिलातले काचन ज्योति निर्मले।
मुमोह राम रघुवशभूषणः
सीतेव स्वालिगनभावमश्नुते॥
अहोति रूप परमं मनोहर
ममापि यन्मोहकर सुखावहम्।
मन्ये प्रिया भाग्यमतीव गौरव
या लिगनामन्दमवाप दुर्लभम्।
निजे सुरूपे लतिकादिमोहने
यदायुमोहाशु मनोज सुन्दरः।
तदा कथा का प्रमदागणाना
चित्तेषु यासा प्रविशेच्च मन्मथः॥

---

१ देखिए 'शिवसंहिता' की पं० रामवल्लभाशरण जी कृत 'रसबोधिनी टीका' में पन्द्रहवें अध्याय के ५२ वें श्लोक का भाष्य (पृ० १६८)।

जबतक 'माधुर्य केलि कादम्बिनी' पूरी प्राप्त नही होती, तबतक इन पाँच श्लोको से ही सतोष करना पड़ेगा। अस्तु।

९. **रामलिंगामृत**—रामलिंगामृत की रचना बनारसनिवासी 'अद्वैत' नामक कवि द्वारा १६०८ ईसवी मे हुई थी। इसकी हस्तलिपि लदन मे सुरक्षित है। (दे० इडिया आफिस कैटलॉग न० ३९२०)[1] आरम्भ प्रथम सर्ग मे देवताओ द्वारा विष्णु से अवतार लेने की प्रार्थना है, दूसरे सर्ग-राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का जन्म जानकी-स्तन-पान, वन-क्रीड़ा, अध्ययन, यज्ञोपवीत-सस्कार, तथा विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का जाना। तीसरे सर्ग मे विश्वामित्र के साथ लक्ष्मण राम का सीता स्वयवर मे पहुँचना। राम के सौन्दर्य का सीता की सखियो द्वारा वर्णन, राम द्वारा धनुर्भग। चौथे सर्ग मे सीता स्वयवर है। राम को देखने की उत्सुकता मे स्त्रियो की दशा का अनुमान इस शार्दूल छद से लग सकता है—

काचिन्मगलघोषहृष्टहृदया गेहात्सखी सवृता
व्यग्रा व्यस्तसमस्तभूषण गणान्शीघ्र दधारा ध्वजा।।
सीताराम मुखारविन्दज रसोन्मत्ता गलन्मालती
केशे ककतिका चलत्कुचयुगा द्वारोर्ध्वभागे स्थिता।।

इसी सर्ग मे लक्ष्मी सीता को रामावतार का रहस्य बताती है। पाँचवे सर्ग वा छठे सर्ग मे राम-वनगमन का वर्णन तथा पचवटी निवास और बंदरो से मैत्री का वर्णन है। सातवे मे राम-विभीषण-मिलन, आठवे मे लकायुद्ध है। नवे सर्ग मे ही रावण महीरावण का वध है और दसवे मे रामनाम की महिमा और रावण द्वारा सर्वत्र राम के रूप के दर्शन का उल्लेख है। ग्यारहवे सर्ग मे रावण-वध एव विभीषण का अभिषेक है, बारहवे मे राम का राज्याभिषेक और तेरहवे सर्ग मे प्रचुर विस्तार से राम और सीता के सभोग का वर्णन है, उनके प्रात शृंगार भोजन, शयन, केलिक्रीडा आदि का उल्लेख है। चौदहवे सर्ग मे वाल्मीकि आश्रम मे लवकुश का जन्म एव शिक्षा तथा तदनन्तर राम का सीता और लवकुश सहित अयोध्या लौटना वर्णित है। सोलहवे सर्ग मे राम द्वारा श्री रग जी का पूजन और सत्रहवे मे राम के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है, जिसमे देवता आकर राम तथा सीता की स्तुति करते है। यही राम-सीता समस्त अयोध्या-समाज सहित परलोक गमन करते है। अन्त मे अद्वैतमंजरी मे जीव, ब्रह्म, ईश्वर, माया का निरूपण है। अठारहवे सर्ग मे राम पूजा की विधि, राम शिव, तथा रामकृष्ण की अभिन्नता का प्रतिपादन है।[2]

लक्ष्य करने की बात यह है कि अद्वैत कवि गोस्वामी तुलसीदास जी के समकालीन थे और रामलिंगामृत तथा रामचरितमानस की कथा मे बहुत अधिक साम्य है।

---

१ 'राम कथा', पृष्ठ १६८, अनुच्छेद २३० से उद्धृत।

२ देखिए 'रामकथा', अनुच्छेद २५९, पृ० २०३-२०८।

प्रमाण अथवा सिद्धान्त-ग्रन्थ

रामावत मधुरोपासना के कतिपय विशिष्ट सिद्ध साधको ने अपने सम्प्रदाय को शास्त्रीय प्रमाणो से परिपुष्ट किया। ठीक जिस प्रकार जीव गोस्वामीपाद, सनातन गोस्वामी, बलदेव विद्याभूषण तथा कृष्णदास कविराज ने गौडीय वैष्णव-साधना को शास्त्र प्रदान किया, उसी प्रकार श्री मधुराचार्य जी, श्री परमहस रामचरण जी तथा श्री स्वामी युगलानन्द शरण जी ने अपने पाडित्य तथा अनुभव के आधार पर कतिपय विशिष्ट ग्रन्थो की रचना की जो इस रस-साधना मे प्रमाण रूप मे प्रस्तुत किये जाते है। अस्तु।

श्री सुंदरमणि संदर्भ

श्री मधुराचार्यरचित श्री सुदरमणि सदर्भ की चर्चा पहले भी आ चुकी है। वस्तुत गौड़ीय वैष्णव-साधना मे जो स्थान श्री जीवगोस्वामी पाद का है, वही स्थान रामावत मधुर उपासना मे श्री मधुराचार्य जी का है। जिस प्रकार श्री जीवगोस्वामी ने भक्ति, प्रीति, आदि पट् संदर्भ द्वारा गौडीय वैष्णव-साधना के रहस्य का उद्घाटन एव विश्लेषण किया, ठीक उसी प्रकार मधुराचार्य जी ने भी छह सदर्भो का विशाल ग्रन्थ लिखा था जिसमे केवल एक ही सदर्भ 'सुन्दर-मणि सदर्भ' मिलता है। शेष पाँच सदर्भो मे 'वैदिक मणि सदर्भ' का कुछ अश उपलब्ध है। इस ग्रन्थरत्न को 'रहस्य रत्न प्रभा' टीका के सहित स्वामी रामवल्लभाशरण जी महाराज की आज्ञा से श्री पुरुषोत्तमशरण जी ने सवत् १९८४ मे प्रकाशित कराया। जिस प्रकार श्री गोस्वामीपाद ने अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए श्रीमद्भागवत का आधार लिया है उसी प्रकार श्री मधुराचार्य जी ने वाल्मीकीय रामायण को लिया है। यह दूसरी बात है कि श्री मधुराचार्य की व्याख्या को ज्यो का त्यो स्वीकार करने मे आज के पडित समाज को कुण्ठा होगी, पर इससे घबराने या बिचकने की क्या बात है? प्रत्येक दार्शनिक मत ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, भगवद्गीता (बृहत्त्रयी) का अपने-अपने ढग से अर्थ करता है। इसलिए यदि मधुराचार्य ने वाल्मीकीय रामायण की मधुराश्रयी व्याख्या करने मे कुछ खीचतान की भी हो, तो उसका अपना विशिष्ट महत्त्व है और उसे उसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

मधुराचार्य जी ने सुदरमणि सदर्भ के मगलाचरण मे ही अपने सिद्धान्त का सार रख दिया है—

प्रोद्यद्भानुसपत्नरत्ननिकरैदेदीप्यमाने महा,
मोदे दिव्यतराति मंजुवनितावृन्दै सदा सेविताम्॥
रासोल्लासमुखैश्च व्याकृततम दिव्ये महामण्डपे-
ऽयोध्यामध्य प्रमोदशुभ्रविपिने राम ससीत भजे॥

अयोध्या के मध्य मे स्थित सूर्य के समान प्रभा विस्तार करने वाले रत्नसमूहो से आलोकित शुभ्र प्रमोदवन मे मजु वनितावृन्द से सवित रासोल्लास के आरम्भ मे दिव्य महामण्डप मे आसीन सीता सहित राम की वन्दना करता हूँ।

भगवान् राम में 'परत्व' और 'सौलभ्य' दोनों ही गुण प्रचुर होने के कारण इष्टदेव है। परत्व इष्टदेव की महानता का और सौलभ्य उनकी उदारता का परिचायक है। श्री वाल्मीकीय रामायण को मधुराचार्य जी ने 'निरतिशय निर्दोष नित्य रसमय' माना है।[1] यह सपूर्ण ग्रन्थ पूर्णत. श्री सीता जी का चरित्र है।[2] हनुमान जी ने सुन्दर काण्ड के १६वे सर्ग में यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि सीता के लिए ही रामचन्द्र ने सारे दुष्कर कार्य किये।[3] इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ सीताहेतुक है और नारीप्राधान्य के कारण शृगाररसात्मक है।[4] जिस प्रकार श्री रामचन्द्र अन्य सभी अवतारो के कारण है, उसी प्रकार श्री रामायण भी समस्त वाङ्मय काव्य पुराणादिको का कारण है। यह स्वत प्रमाण है।[5] अवतारो मे केवल श्री रामचन्द्र ही है जो शृंगार रस की पूर्ण मूर्त्ति है, कारण कि श्री कृष्ण तो श्रीराम के अशावतार है। वस्तुत सभी अन्य अवतार अवतारमात्र है, श्रीराम ही 'अवतारी' है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, श्री मधुराचार्य जी ने जार भाव या परकीया भाव को प्रेमोत्कर्ष का कारण नही माना है। गौड़ीय वैष्णवो ने परकीया भाव को इसलिए श्रेष्ठ माना,

---

१ कृत्स्नस्यापि श्रीमद्रामायणस्य निरतिशयनिर्दोष नित्यरसमयत्वम्।

——सुंदरमणि संदर्भ, पृष्ठ १०

२ कृत्स्नं रामायणं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्।

——वही, पृष्ठ ११

३ अस्याः हेतो विशालाक्ष्याः हतो बाली महाबलः।
रावणप्रतिमो वीर्ये कवन्धश्च निपातितः॥
अस्यानिमित्तं सुग्रीवः प्राप्तवान् लोकसत्कृतम्।
विराधश्च हतः संख्ये राक्षसो भीमदर्शनः।
अस्याः हेतोर्महद्दुःखं प्राप्तं रामेण धीमता।
परा सम्भावनास्याभिरस्यान्दिशि निवेशिता॥
सागरश्च मदाक्रान्तः श्रीमान् नदनदीपतिः।
अस्याः हेतोर्विशलाक्ष्या विचितेयं महामही।
अस्या कृते जगत्सर्वमणुमन्येत केवलम्॥

——वही, पृष्ठ १४-१५

४ रामायणं नारीप्रधानमिति प्राधान्येन शृंगाररस एवात्र प्रतिपाद्यते।

——वही, पृष्ठ २०

५ यथा श्री रामचन्द्रः स्वेतर सर्वकारणं तथा श्रीमद्रामायणमपि स्वान्य सर्ववाङ्मयकारणमिति वेदादिबोधस्य प्रामाण्यमवगन्तव्यम् तेन श्रीमद्रामायणस्य प्रमाणान्तरापेक्षा नास्त्येति। तद्विसंवादि प्रामाण्यमुपेक्ष्यमिति निर्मत्सरतयांगीकार्यं विद्वद्भिरिति।

——वही, पृष्ठ २३

क्योकि अनेक विघ्न-बाधाओ के भीतर से जो प्रच्छन्न कामुकत्व है, वही प्रेम को निरतिशय आनन्द-मय बना देता है। इस पर श्री मधुराचार्य का कथन है कि यह तो प्राकृत जन के लिए है। भगवत्पक्ष मे बिल्कुल बेमतलब की चीज है। वस्तुत स्वकीया प्रेम ही उत्तम प्रीति सुख का हेतु है। विघ्न-बाधाएँ इसमे भी क्या कम है ? गुरुजनो की सेवा और प्रियजनों की आँख बचाकर स्वकीया पत्नी जो प्रेम दे सकती है वह किसी अन्य विधि से नही प्राप्त हो सकती है।[1] इसी प्रकार 'जार' और 'उपपति' शब्द का भी अर्थ मधुराचार्य ने अपना स्वतत्र किया है। 'जार'का अर्थ है ससार-बीज को जीर्ण अर्थात् नाश करनेवाला और 'उपपति' का अर्थ है अन्तर्यामी रूप से प्रीतिदाता।[2] प्रेम शारीरिक होता ही नही मानसिक होता है तब शारीरिक अगसग का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? वस्तुत परात्पर भगवान् को शृंगार या मधुर रस का आलबन कहा जाता है तब यह राम प्राकृत जनो मे परिचित शरीर सुखमूलक शृगार रस नही है, प्रत्युत दिव्य आनन्द रस है। इस प्रकार श्री मधुराचार्य ने शृगार रस को बहुत ऊँची आध्यात्मिक भूमिका पर रखा है और मर्यादापालन पर बहुत अधिक जोर दिया है। शरीर-सुख को तो उन्होने घृणित कहा है। वस्तुत मधुराचार्य के मत मे चित्त का परम प्रीति रूप ब्रह्मावगाहन करनेवाला जो परिणाम है, जिसको श्रुतियो ने 'आनन्द' नाम दिया है, वही शृगार, रस है।[3] इस ग्रन्थ मे श्री मधुराचार्य जी ने वाल्मीकीय रामायण से अनेक उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि पुरुष भी किस प्रकार भगवान् के कमनीय मुख को देखकर उसी प्रकार रमणेच्छुक हो जाते है, जिस प्रकार सती स्त्री अपने कान्त को देखकर हो उठती है। ऐसे स्थलो पर मधुराचार्य जी प्राय मानसी प्रीति की चर्चा कर दिया करते है, ताकि 'लोकवेदकिकर' भक्तजन भ्रान्ति मे न पडे। अपनी व्याख्या मे वे प्राय 'रहस्य' शब्द का आश्रय लेते है। रामायण के प्राय: सभी पात्रो के वचनो की श्री मधुराचार्य जी ने कुछ ऐसी व्याख्या की है कि रामायण के प्राय: सभी मुख्य पात्र भगवान् को कान्त रूप मे पाने की लालसा करते है।

---

१ किं च शृंगारोत्कर्ष प्रच्छन्नकामुकत्वं जारत्वं च कारणं नोपद्यते। नापि परकीयात्वं बलीयस: स्फुटं परदाराभिमर्शनात्। दौर्लभ्यमिहापि मातृ पितृ गुरु शुश्रूषण, मित्र बन्धु जनसमागम राजानुरोध सेवा विप्रवास मान कलहोपवास यागरोगादिषु व्यक्तं। धर्माधर्म साक्षिभूतेषु करणाधिपेषुच सर्वत्र सर्वदा सर्ववश्यत्सु प्रच्छन्न कामुकत्वमपि जारे नास्ति श्वशुरादि संनिधाने पत्युरपि कामुकत्वस्य सत्वात्।

——वही, पृष्ठ ३९-४०

२ परोपभुक्तायाः सर्वागु भोक्तृ भगवदनहत्वात् जारयति संसारबीजं नाशयतीति जारः। उप समीपं अंतर्यामिरूपेण व्यक्तरूपेण वा स्थित्वा पाति रक्षति पुष्णातीति उपपतिः।

——वही, पृष्ठ ४४

३ नहि मिथुनमेव शृंगारः तस्य घृणित्वप्रसिद्धेः अपितु आनन्दापरनामकः परमप्रीतिरूपः चित्तस्य ब्रह्मावगाही परिणामः प्रसिद्धः।

——वही, पृष्ठ ५९

इतना ही नही, श्रीकृष्ण तो केवल स्त्रियो को आकृष्ट कर सके थे, परन्तु राम के रूप और माधुर्य का ही यह गुण था कि उन्होने पुरुषो को तत्रापि तपोनिरत ऋषियो को भी रमणेच्छु बना दिया। यह रामावतार की श्रेष्ठता है।[1] मधुराचार्य ने भगवान् राम के रासविहारी रूप को ही वाल्मीकि रामायण से प्रतिष्ठापित किया है।[2] जो लोग भगवान् राम के एकपत्नीत्व व्रत एवं मर्यादापुरुषोत्तमरूप की दुहाई दिया करते है, उन्हे श्री मधुराचार्य ने 'लोकवेदकिंकर' कहा है और कहा है कि वे लोग इस रस को नही समझ सकते, अपनी सीमा मे आप ही बँधे हुए है। यही श्री मधुराचार्य जी ने वाल्मीकि का एक वचन उद्धृत किया है— 'सुखैश्वर्यरसज्ञ सन् कामिनी-कामवर्धन'। श्रीरामचन्द्र सुख ऐश्वर्य के रसज्ञ है कामिनियो के कामवर्धक है।

मधुराचार्य ने बताया है कि अयोध्या मे कामद, केलि, कल्हार, कला, कौशिक, कौमुद, कौभ, कौशेय, कालिक, तालिक, सिद्ध साध्य, सुसिद्ध, दीर्घ, शौक, सौरभ, शाभव, श्रीमदन, बार्हस्पत्य, वसिष्ठ, शाण्डिल्य, कात्यायन, गणेश्वर आदि अनेक वन है जहाँ श्री सीता जी के साथ श्रीरामचन्द्र विहार करते है। सीता जी की सहस्रो सखियाँ है जिनके नाम चन्द्रा, चन्द्रकला, चाद्री, चन्द्रकान्ता आदि है। इनमे रूप, शील, वय मे जो सीता जी के समान है वे 'सखी' कहलाती है, जो न्यून है 'दासी' कहलाती है। इनके सौ मुख्य गण है। मुख्य सखियो के नाम से इन गणो का नाम है, उनमे से कुछ गणो के नाम यों है—शान्तागण, कृष्णगण, धृतिगण, प्रकीर्त्तिगण, ज्ञानागण, कान्तिदागण, विशारदागण, बुधागण, भाववेत्रीगण इत्यादि।

श्रीरामचन्द्र के एक पत्नीव्रत का प्रश्न भी अत्यन्त महत्त्व का है। मधुराचार्य जी ने कई स्थलो पर इस ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। यहाँ इस प्रश्न का समाधान भी बडे सुन्दर ढग से हुआ है। आदि शक्ति श्री जानकी जी ने अपने पिता श्री जनक जी को जो ध्यान बताया है वह अत्यन्त रहस्यमय है।[3] श्री जानकी जी ने कहा है कि पुरुषोत्तम श्रीराम जी मे रस रूप शक्ति

---

१ पुरुषोऽपि श्रीरामं दृष्ट्वा स्त्री भूत्वानेन मिथुनी भवेयमिति निवारवेगो मनोभवो भवति। श्री कृष्णस्तु वेणुरणनैः स्त्र्यादिमोहनः अयं तु स्वसौन्दर्येण स्त्रीपुंसाधारण सर्व जन्तुमोहकः।

—वही, पृष्ठ १०६

२ रामस्तु सीतया सार्द्धं विजहार बहूनृतून्।

३ कामपूर्णं कामवरं कामास्पदमनोहरम्।
कन्दर्पकोटिलावण्यं रमणीगणमनोहरम्॥
रसरूपां विजानीहि शक्तिं मां पुरुषोत्तमे।
भोक्ता स तु महादेवः श्री रामः सदसत्परः॥
यमेक्षणकलाक्षेप विक्षिप्त राघवीतनुः॥
ईक्षया राघवस्यापि मामकी तनुरुत्तमा।
तयोरैक्यात्समुत्पन्नो सब्रह्म ततः परम्॥
सुखमात्यंतिकं तस्माद्येन विश्वं सुखायते॥

—सु० मणि संदर्भ, पृष्ठ ४३२-३३

मैं (श्री सीता जी) हूँ। श्रीराम महादेव है, वे सत् असत् से परे भोक्ता है। मेरी ईक्षण-कला के आक्षेप से श्रीरामचन्द्र शरीर धारण करते है और उनकी इच्छा से मेरा शरीर है, ऐसा समझिए। श्रीरामचन्द्र जी और मेरे शरीर के ऐक्य भाव से यह रसरूप परब्रह्म है। इसी से विश्व सुखी होता है। इसी रस से बहुत से रस—वीर, करुण, हास्य, भयानक आदि उद्भिन्न हुए है। सभी शक्तियाँ मुझसे निकली है, जो शुद्ध सत्त्वरूप और विकाररहित है। वागीशा, माधवी, नित्या, विक्षा, अविक्षा, हरिप्रिया, कूटरूप, मनोजीवन आदि मुक्ति-मुक्ति-प्रदात्री शक्तियाँ ऐसी ही है। वे सब श्री रामचन्द्र जी को भोग्यरूपा है, सदानन्दा और रसमोदविहारिका है। ये मेरे ही समान है, इन सब के भोक्ता रघुनन्दन ही है।

मधुराचार्य ने बडे जोरदार शब्दो मे अपने पक्ष का स्थापन करते हुए कहा है—'वस्तुत· लीला-रस के लिए अद्भुत अप्राकृत मनुष्य रूपी भगवान् पर ब्रह्मस्वरूप श्री रामचन्द्र मे प्राकृत के समान आभास देखना उन्हे विधि-निषेध का किकर मान लेने के समान है और उनकी अनीश्वरता बताना है। इस बात को तत्त्वज्ञ लोग ही समझ सकते है। लौकिक आचार मे ही लोक को प्रमाण मानना चाहिए, भगवद्रहस्यात्मक अलौकिक अर्थ में नही।'[1]

इस प्रकार, बडे ही आकर्षक ढग से इस ग्रन्थ मे मधुर रस का प्रतिपादन हुआ है और इस ग्रन्थ से परिवर्त्ती मधुर रस की साधना को बहुत प्रेरणा और शक्ति मिली है।

श्री रामतत्त्वप्रकाश

श्रीरामतत्त्वप्रकाश श्री मधुराचार्य जी का दूसरा ग्रन्थ है, जिसे प्रमाण ग्रन्थ के रूप मे मानते है। यह ग्रन्थ सं० २००३ वि० मे विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय से मुद्रित तथा श्री अखिलेश्वर-दास कृत 'उद्योना' टीका सहित श्री हनुमत् निवास-निवासी श्री रामकिशोर शरण जी के कृपापात्र श्री रामप्रियाशरण द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसमे कुल त्रयोदश उल्लास है। प्रथम उल्लास मे अवतारो के अशाशित्व का निरूपण है, दूसरे मे अन्य अवतारो की अपेक्षा श्रीराम की उत्कृष्टता

तादृशं बहुधा भिन्नं रामश्चैव तथाविधाः।
वीर करुणा शृंगार हास्य वीभत्स भीतयः।
रसभेदा बहुविधाः शक्तयोर्मे विनिःसृताः॥
शुद्ध सत्त्वात्मिकाः सर्वा निर्विकारा रसोत्सवाः॥
वागीशा माधवी नित्या विक्षाविक्षा हरिप्रियाः।
कूटरूपा मनोजीवा भक्ति मुक्तिफलप्रदाः॥
एता भोग्याः सदानन्दा रसमोदविहारिकाः।
अहं यथा तथेयाश्च भोक्ता देवो रघूद्वहः॥

१ देखिए 'कल्पना', वर्ष, अंक ५ मे प्रकाशित आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी का निबंध—'मधुराचार्य और उनका मणिसंदर्भ'।

सिद्ध की गई है। इसमे मधुराचार्य ने शास्त्रो के अनेक वचनो के उद्धरण लेकर यह प्रमाणित किया है कि राम अवतारी थे, शेष अन्य अवतार। अर्थात् 'एते चाशकला पुसा रामस्तु भगवान्स्वयम्।' 'स्वयं भगवान्' की एक कला के विलास है भगवान्।' जैसे समस्त अवतारो मे अवतारी श्रीराम जी ही है उसी प्रकार श्रेष्ठ नदियो मे कारणरूप परमपवित्रा सौम्या श्री सरयू जी है। सर्वावतारी भगवान् राम ही द्विभुज से चतुर्भुज हो गये। विष्णु पुराण मे जाम्बवान् ने श्रीकृष्ण से कहा है कि हमारे स्वामी श्री राम के अश जैसे श्रीनारायण है, वैसे ही सकलजगत् के परायण श्रीनारायण के आप अश है। चतुर्थ उल्लास मे भगवान् राम के तथा श्री जानकी जी के चरण-चिह्नो का सविशेष वर्णन है तथा भगवान् राम के रूप का माहात्म्य है। पाँचवे उल्लास मे यह दिखलाया है कि रामायण भी भागवत की भाँति समाधि-भाषा मे लिखा, समाधि मे प्राप्त ज्योति से ज्योतिर्मान् आप्त ग्रथ है। छठे उल्लास मे यह सिद्ध किया गया है कि शुकदेव आदि के उपास्य श्रीराम ही है। सातवे उल्लास मे रामोपासना के परस्पर विरोधी वचनों का परिहार तथा समन्वय दिखलाया गया है। आठवे उल्लास मे राम-सीता का नित्य संयोग सिद्ध किया गया है और नवे मे रसिक शिरोमणि राम का अनेक नायिकाओ के साथ नृत्य तथा रास विलास प्रतिस्थापित किया गया है। मधुराचार्य ऐसे स्थलो पर अपने पाडित्य और प्रतिभा का प्रचण्ड प्रयोग करते है और लगता है अपने मन की बात रामायण के सभी पात्रो से कबुलवा लेते है।[२] शब्दों के ऊपर श्री मधुराचार्य जी का विशेष प्रभाव दिखता है और वे अपने पाण्डित्य के बल पर उन्हे एक नई दिशा मे मोड़ लेने मे सर्वथा समर्थ है। 'स्नुषा' शब्द को लेकर ही उन्होने एक श्लोक वाल्मीकीय

---

१ यथा सर्वावताराणामवतारी रघूत्तमः।
तथा स्रोतसां सौम्या पाविनी सरयू सरित्॥

--अगस्त्य संहिता, उतरार्द्ध

तथा च

सर्वावतारी भगवान् रामश्चतुर्भुजोऽभवत्।--कोश-खण्ड
अस्मत्स्वामिना रामस्येव नारायणस्य सकल जगत्परायणस्यांशेन भवता भवितव्यम्।
श्री विष्णु पुराण में कृष्ण के प्रति जाम्बवान् का वचन ४.३.५३।

२ उपानृत्यन्त राजानं नृत्यगीतविशारदाः।
अप्सरोगणसंघाश्च किन्नरी परिवारितः॥
दक्षिणा रूपवत्यश्च स्त्रियः पानवशंगताः।
उपनृत्यन्त काकुत्स्थं नृत्यगीतविशारदाः॥
मनोभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः।
रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषिताः॥

--वा० रा० उ० स० ४२, २०-२२ श्लोक

रामायण का उद्धृत कर यह सिद्ध किया है कि राम ने अनेक नायिकाओ के साथ रासरंग किया।[1] इस प्रकार, अनेक नायिकाओ के एकमात्र नायक श्रीराम है, इसके लिए अनेकानेक प्रमाण मधुराचार्य ने इस उल्लास में प्रस्तुत कर दिये है ।

यदि राम और सीता का नित्य संभोग है तो विरह और वियोग के वचनो का क्या अर्थ है, इसी का समाधान दशम उल्लास का मुख्य विषय है। इस सम्बन्ध में श्री मधुराचार्य ने 'जानकी विलास' के उद्धरण दिये है जिससे यह सिद्ध होता है कि राम सीता के बिना और सीता राम के बिना एक क्षण भी नही रह सकते।[2] एकादश उल्लास मे रामलीला की वर्ष-गणना है जिससे स्पष्ट है कि मधुराचार्य ज्योतिष के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। बारहवे उल्लास मे लवकुश सदेह का निवारण हुआ है। और तेरहवे में लीला का नित्यत्त्व प्रमाणित हुआ है। और इसके लिए स्कन्द पुराण के अयोध्या माहात्म्य से कुछ श्लोक दिये है।[3] इस प्रकार श्री मधुराचार्य का 'रामतत्त्वप्रकाश, भी 'सुन्दरमणि संदर्भ' की भाँति एक परम मान्य ग्रन्थ है।

श्री रामनवरत्नसार-संग्रह

श्री रामनवरत्नसार संग्रह परमहंस स्वामी रामचरणदास 'करुणासिधु' द्वारा संगृहीत तथा पं० रामवल्लभाशरण जी कृत 'रत्नप्रभा' टीका सहित सं० १९८५ मे गोकुल प्रेस अयोध्या द्वारा मुद्रित तथा श्री जानकीघाट के श्री अवधशरण जी द्वारा प्रकाशित है। इसमें नौ अध्याय है और भिन्न शास्त्रो से प्रमाण एकत्रित कर रसोपासना के विविध अंगो को परिपुष्ट किया गया है । इस ग्रन्थ से पता चलता है कि श्री रामचरणदास 'करुणा सिन्धु' बडे ही सुलझे विचार के संत पुरुष थे और उन्हें किसी प्रकार का आग्रह नही था और न अर्थ करने में विशेष खीचतान ही उन्होने की है। शब्दो की अपेक्षा भाव पर उनकी दृष्टि विशेष है और भावग्राहिणी प्रतिभा का बहुत ही सुन्दर सुसमजस परिचय आपके इस ग्रन्थ से मिलता है। इन नवरत्नो में

---

१ दृष्ट्वा खलु भविष्यन्ति रामश्च परमाः स्त्रियः।
अपदृष्टा भविष्यन्ति स्नुषास्ते भरतक्षये॥

——वा०, अयोध्या, सं० ८, श्लोक १२

२ रामो हि न भवेज्जातु सीता यत्र न विद्यते।
सीता नैव भवेत्सा हि यत्र रामो निदीघति॥
सीता रामं विना नैव नैव सीतां विना हरिः।
जानकीरामयोरेषः संबंधः शाश्वतो मतः॥

——जानकी विलास से रामतत्त्व प्रकाश, पृष्ठ २०६ पर उद्धृत

३ चतुर्धा तु तनुं कृत्वा देवदेवो हरिः स्वयम्।
अत्रैव रमते नित्यं भ्रातृभिः सह राघवः॥

——रामतत्त्वप्रकाश, पृष्ठ २९४ पर उद्धृत

सर्व प्रथम भगवन्नाम है। विविध शास्त्रो में—जैसे हनुमन्नाटक, वाराहपुराण, पद्मपुराण, अध्यात्म रामायण, नृसिंह पुराण, ब्रह्मयामल, काशीखण्ड, सनत्कुमार संहिता, हिरण्यगर्भ संहिता, महाशंभु संहिता, अध्यात्म रामायण, भरद्वाज संहिता, हनुमत् संहिता, अगस्त्य संहिता आदि-आदि ग्रन्थो से नाम-महिमा पर प्रमाण वाक्यों श्लोको का उद्धरण देकर श्री करुणा सिन्धु ने श्री रामनाम की अपार महिमा को प्रतिष्ठापित किया है। उन्होने इसमे सखियो के नाम भी पूरे विस्तार से दिया है।[1] अनेकानेक शास्त्रो के उद्धरण से श्री करुणासिन्धु ने यही प्रमाणित किया है कि परात्पर ब्रह्म श्रीराम ही है और उनसे भिन्न कुछ भी नही है।[2] रूप के अनन्तर धाम की चर्चा है

---

१ तत्र वागीश्वरी देवी माधवी प्रियवल्लभा।
असिता च सिता चैव प्रकृतिर्गुणसंभवा॥
उमादेवी महामाया श्रुतिजात विशारदा।
पद्महस्ता विशालाक्षी कमला हरिवल्लभा॥
सुमुखी प्रेमदा नित्या वृन्दा देवी मनोरमा।
चिदात्मकं सदाभासं नयनानन्ददायकम्॥
स्वकान्तहृदयारामं रामं राजीवलोचनम्।
निर्विकारं पृथुश्रोण्यो राघवं पर्युपासते॥
उर्वशी मेनका रंभा राधा चन्द्रावली तथा।
हेमा क्षेमा वरारोहा पद्मगंधा सुलोचना॥
हंसिनी पालिनी पद्मा हारिणी मृगलोचना।
रामस्य परिनृत्यंति गीतावादित्रमोहिताः॥
कर्पूरांगी विशालाक्षी शक्तिप्रियरसोत्सवा।
चारुनेत्रा चारुगात्रा चार्वंगी चारुलोचना॥
गोपकन्या सहस्रैस्तु गोपबालैश्च तादृशैः।
गोकुलैरावृतं सम्यक् पद्मशंखादिभिः सदा॥
अंगादिपरिसंकीर्णं आत्मादिशक्ति रंजितम्।
वेष्टितं वासुदेवाद्यैः सेवितं हनुमदादिभिः॥ —श्री रामनवरत्न, पृष्ठ २०-२१

२ रामः सत्यं परं ब्रह्म रामात्किंचिन्न विद्यते।
तस्माद्रामस्य रूपोयं सत्यं सत्यमिदं जगत्॥ —सनत्कुमार संहिता,पृष्ठ २६ पर उद्धृत

तथा च—

शंभु विरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंश ते नाना।
सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। विधि हरिहर बंदित पदरेनू॥
उपजहिं जासु अंश गुनखानी। अगनित लक्षि उमा ब्रह्मानी।
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बामदिसि सीता सोई॥ —रामचरित मानस, बालकाण्ड

और बडे विस्तार से। शैली वही है, शास्त्र वचनों का प्रमाण। साकेत लोक मे भगवान् राम सीता के साथ तथा अन्य अनन्त सखियो के साथ राम विलास करते रहते है। ये सब सखियाँ श्री जानकी जी के अंश से उत्पन्न है ।[1] वह साकेत लोक अथवा दिव्य अयोध्यापुरी सब वैकुण्ठो की मूलाधारा है, मूल प्रकृति से परे है, तत्सद् ब्रह्ममयी है, विरजा से उत्तर है, दिव्य रसमय कोपो से युक्त है और वही है श्री सीताराम का नित्य विहार स्थल।[2] इसके अनन्तर सच्चे वैराग्य का लक्षण है। वैराग्य का अर्थ है भगवान् मे अतिशय प्रीति-अनुराग, आसक्ति। ऐसा होने से स्वत ही जगत् से वैराग्य हो जाता है।[3] इसके बाद है साधु लक्षण तथा सत्सग का माहात्म्य कहते है कि गगा पाप का हरण करती है, चन्द्रमा ताप का हरण करता है, कल्पतरु दैन्य का हरण करता है परन्तु साधु समागम से पाप ताप तथा दैन्य एक साथ नष्ट हो जाते है।[4] साधु वे है जिनका हृदय भगवान् मे रमता है और क्षण भर के लिए भी जो भगवान् से पृथक् नही होते। ऐसे वैष्णव साधु से कुल पवित्र हो जाता है, माता कृतार्थ हो जाती है और पृथ्वी धन्य हो जाती है।[5] इतना ही नही, वैष्णवो

---

१ अनन्ताभिः सखीभिश्च सार्द्ध रामः स सीतया।
स्वेच्छया कुरुते रासं ताः कुजागात्र संभवा॥
——श्री रामनवरत्न, पृष्ठ ४० पर श्री महारामायण से उद्धृत

२ अयोध्यापुरी सा सर्व वैकुण्ठानामेव मूलाधारा प्रकृतेः परा तत्सद् ब्रह्ममय विरजोत्तर दिव्य रत्नकोषाढ्या तस्यां नित्यमेव सीतारामयोर्विहारस्थलमस्तीति। अथर्वण उत्तरार्द्ध से
——श्री रामनवरत्न, पृष्ठ ४२ पर उद्धत

३ नाराधितो यदि हस्तिपसां ततः किम्।
आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
——श्री रामनवरत्न, पृष्ठ ८० पर उद्धृत

४ गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापं तापं तथा दैन्यं हन्ति साधुसमागमः॥ आदि पुराण से
——श्री रामनवरत्न, पृष्ठ १-२ पर उद्धृत

५ साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहं।
मदन्यान् नहि जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥
——श्री मद्भागवत से रामनवरत्न, पृष्ठ १०६ पर उद्धृत

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुंधरा भागवती च धन्या।
स्वर्गे स्थिता ते पितरश्च धन्या येषां कुले वैष्णवनामधेयम्॥
——पद्मपुराण से, पृष्ठ १०७ पर उद्धृत

के चरणोदक से बढ़कर कोई भी तीर्थ नही है, क्योकि वैष्णवो का चरणोदक नित्य गंगा को भी पवित्र करता है।[1] अन्तिम भाग मे है भगवान् श्रीराम के रूप, गुण, प्रताप तथा शरणागति का रहस्य और भेद का वर्णन। यह इस ग्रन्थ का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है और वैष्णव रस-साधना पर विशेष प्रकाश डालता है। इससे यह स्पष्ट है कि स्वामी रामचरणदास जी गुह्य रसिक साधना के अनुभवी भी थे और मर्मज्ञ भी, दूसरे शब्दो में श्रोत्रिय भी थे और ब्रह्मनिष्ठ भी। इस खण्ड के आरम्भ मे ही उनका अपना रचा हुआ एक दोहा है। बीच मे अनेक स्थलो पर श्री करुणासिंधु जी ने स्वरचित पद दिये है जिससे उनकी अन्तर्धारा का अनुमान किया जा सकता है। वह दोहा इस प्रकार है—

नखसिख सीताराम छबि जब लगि हृदय न बास,
रामचरण सब साधना तब लगि लखब निरास।।

और अन्त में श्री करुणासिन्धु जी ने इष्ट ध्यान के स्वरचित दो श्लोक दिये है जो अद्वितीय है—

राम सान्द्रघनस्वरूपममल सच्चिद्घनानन्दकम्।
विद्युद्व्यदुकूलपीतयुगलं श्रीदामवक्षःस्थलम्॥
मजीरागद रत्नकंकणरणत्काचीलसन्मुद्रिकम्।
मुक्ताहार किरीट कुण्डल धनु सचित्र वाणोज्वलम्॥
काश्मीरी तिलकालकावृतमुख साचीक्षण सस्मितम्।
ताम्बूलाधर पल्लवं रसमय नासाग्रमुक्ताफलम्॥
ध्यायेच्छत्र सुदिव्यचामरयुतं साकेतरत्नासने।
जानक्यशभुज सखीगणवृत नित्य निकुजे स्थितम्॥

इस प्रकार रामनवरत्न मे स्वामी रामचरणदास करुणासिंधु जी ने रामभक्ति की रसमयी साधना के सम्बन्ध मे अनेक आवश्यक ज्ञातव्य बातो को बडे ढग से सजाकर रख लिया है। शास्त्र के वचनो को ठीक-ठीक तारतम्य से सजा देना ही उनकी अलौकिक समन्वयी प्रतिभा तथा प्रकाण्ड पाण्डित्य एवं प्रशस्त अध्ययन का सूचक है। अर्थ मे कही भी खीचतान अथवा दूरारूढ कल्पना से काम नही लिया है।

श्री सीताराम नाम प्रताप-प्रकाश

श्री सीताराम नाम प्रताप प्रकाश श्री स्वामी युगलानन्दशरण जी महाराज द्वारा श्रुति, स्मृति, पुराण, उपपुराण, सहिता, तंत्र, नाटक, रहस्य और श्रीमद्रामायण आदि सद्ग्रन्थो के प्रमाणो द्वारा श्रीरामनाममाहात्म्य विषय पर सगृहीत तथा सन् १९२५ ई० मे लखनऊ स्टीम प्रेस

---

१ नातः परतरं तीर्थं वैष्णवांघ्रिजलात् शुभात्।
तेषा पादोदकं नित्यं गंगामपि पुनाति हि॥ —पद्मपुराण से, पृष्ठ १०७ पर उद्धृत

से मुद्रित (पाँचवाँ संस्करण) भाषा-टीका सहित उपलब्ध है। इसमे कुल २१८ पृष्ठ है। श्री रामनाम की महिमा पर इतना भव्य प्रामाणिक ग्रन्थ और नही है और इसीलिए बात की बात मे इसके कितने संस्करण हुए। इसकी लोकप्रियता का स्वय यह एक प्रबल प्रमाण है। स्वामी युगलानन्दशरण जी रसिक उपासना के एक सर्वमान्य आचार्य है। यह ग्रन्थ इनके अनुभव और पाण्डित्य के प्रकाश से जगमग है। इस ग्रन्थ मे बीच-बीच मे, स्वामी श्री युगलानन्दशरण जी के रचे हुए दोहे, कवित्त, सवैये भी मिलते है जो काव्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनका विवेचन यथास्थान मिलेगा। नाम-साधना मे युगलानन्दशरण जी ने प्रेम को ही विशेष महत्त्व दिया है और प्रीतिपूर्वक, इष्ट के ध्यान के रस मे लीन नाम-स्मरण को ही सर्वश्रेष्ठ ठहराया है, जैसा इनके इस दोहे से स्पष्ट है—

बडभागी रागी रसिक, ज्ञान ध्यान रसलीन।
भजे जानकी जानि निज, नाम महा रसमीन॥

इस दोहे मे रसिकोपासना मे नामसाधना की सपूर्ण प्रक्रिया आ गई है। अस्तु श्री युगलानन्दशरण जी का 'श्री सीताराम नाम प्रताप प्रकाश-ग्रन्थ नाम' साधना का एक अनुपम कोष है जिसमे समस्त शास्त्रो का निचोड इस विषय पर एक स्थान पर सुन्दर ढग से सजाया हुआ मिलता है। यह ग्रन्थ इसी कारण रसिकोपासको मे नाम साधना मे रसलीन भक्तो के गले का हार है और सदा रहेगा।

श्री रामतत्त्व-भास्कर

श्री रामतत्त्व-भास्कर श्री हरिहरप्रसाद का रचा हुआ और शृगार भवन, अयोध्या के श्री प्रमोदवन विहारीशरण जी के तत्त्वावधान मे लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादाबाद से स० १९७२ मे मुद्रित तथा प्रकाशित हुआ है। पूर्वार्द्ध मे अनेक मतो का खण्डन है और अपने मत का स्थापन। उत्तरार्द्ध मे श्रीराम का 'परत्व' तथा अन्य देवताओ से श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है। प्रसगत षडक्षर-माहात्म्य भी आ गया है। नामतत्त्व के प्रकरण मे विष्णु, नारायण, हरि, गोविन्द, वासुदेव, जगन्नाथ, कृष्ण, राम आदि नामों का अलग-अलग माहात्म्य वर्णित है। फिर नामापराध की चर्चा है और पुन श्री रामनाम की महिमा का सविशेष वर्णन है। रामनाम सभी नामों से श्रेष्ठ है, मधुर है, आनन्ददाता है, यही ग्रन्थकार ने भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रमाणित किया है, प्रतिपादन की शैली प्रभावशाली है।

उपासनात्रय सिद्धान्त

उपासनात्रय सिद्धान्त भी प्रमाण ग्रन्थो मे एक आदरणीय स्थान का अधिकारी है। इस कनक-भवन, अयोध्या के महत परमहस सीताशरण जी के शिष्य श्री सरयूदास जी 'वैष्णवधर्म प्ररोचक' ने बड़े परिश्रम से वेद, शास्त्र, पुराण, संहिता, तंत्र, रहस्य, नाटक, रामायण तथा और भी अनेकानेक रहस्य-ग्रन्थो के प्रमाण देकर एम्० एन्० प्रेस, बनारस से छपवाया तथा सेठ छोटे-लाल लक्ष्मीचद अयोध्या से प्रकाशित कराया है। 'उपासनात्रय सिद्धान्त' मे श्री रामानुजीय

वैष्णवो के मतानुसार श्रीमन्नारायण की उपासना, श्री वृन्दावन-वासियो के मतानुसार श्री कृष्णोपासना तथा श्री अयोध्यानिवासियो के मतानुसार श्री रामोपासना का सिद्धान्त बड़े ही प्रामाणिक ढग से शास्त्रो के प्रमाणो से परिपुष्ट वर्णित है। सग्रहकर्त्ता की उदारता एव समन्वय बुद्धि का पता पग-पग पर मिलता है। अपने इष्ट के प्रति विशेष अनुराग एव आस्था होते हुए भी अन्य उपास्य के प्रति आदर एव श्रद्धा का भाव कथमपि खण्डित या दूषित नही होने पाया है। यही ग्रन्थकार की विशेषता है। साम्प्रदायिक आग्रह तो इस ग्रन्थ मे लेशमात्र भी नही है।

इस ग्रन्थ मे एक स्थान पर (पृ० १२०) स्वामी रामानन्द को राम का अवतार माना है तथा उनके साथ ही ब्रह्मा का अवतार अनन्तानन्द, नारद के अवतार सुरसुरानन्द, शकर के अवतार सुखानन्द-सनत्कुमार के अवतार नरहर्यानन्द, कपिल के अवतार योगानन्द, मनु के अवतार पीपा जी, प्रहलाद के अवतार कबीर, जनक के अवतार भावानद, भीष्म के अवतार सेना जी, शुकदेव के अवतार गालवानन्द योगिराज, यमराज के अवतार रमादास अथवा रैदास, लक्ष्मी का अवतार पद्मावती हुई। इस कथन का क्या आधार है या क्या प्रमाण है इसका उल्लेख नही मिलता। जो हो, कुल मिला कर यह ग्रन्थ त्रिविध उपासना का तुलनात्मक रहस्य समझने के लिए तथा रामोपासना की रसिक धारा की विशेषता समझाने के लिए परम उपयोगी है।

एक बार श्री जानकी जी ने भगवान् राम से रास का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इस पर भगवान् राम ने कहा कि तुम्हारा ही अश वृन्दावनेश्वरी श्री राधा जी है और मेरे ही अश श्री गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण जी है। श्रीराम का ऐसा कहना था कि सपूर्ण गोलोक अपने पूर्ण रास मण्डल के साथ सामने प्रत्यक्ष हो गया तथा राधाकृष्ण श्री सीताराम मे लीन हो गये—राधा जी सीता जी मे और श्रीकृष्ण श्रीराम मे।[1] सग्रहकर्त्ता ने कई स्थलो पर विभिन्न शास्त्र-वचनो से यह प्रमाणित किया है कि भगवान् राम नारायण मे भी, श्रीकृष्ण से भी श्रेष्ठ है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भगवान् राम के आवेशावतार है।[2] इसमे साम्प्रदायिक आग्रह न समझकर साम्प्रदायिक निष्ठा ही मुख्य

श्री जानकी उवाच--

१ आवां प्रियो निकुंजोऽत्र सर्वर्त्तुसुखशोभितम्।
कश्चिनौ विहरिष्यावो राधाकृष्णाविव व्रजे॥

श्री राम उवाच--

त्वदंशा एव राधा सा प्रिये वृन्दावनेश्वरी।
महेश एव नियतः कृष्णो गोपेन्द्रनन्दनः॥
ततस्तद् युगलं श्रीमद्राधाकृष्णात्मकं महत्।
सीतारामात्मकं युगमं प्राविशन्नतिपूर्वकम्॥

२ परा नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि।
यो वै परतपः श्रीमान् रामो दाशरथिः स्वराट्॥

मानना चाहिए । आग्रह एक चीज है, निष्ठा और । कोई भी अपनी अनन्य निष्ठा में अपने इष्टदेव को सर्वोपरि मान सकता है और ऐसा मानने मे किसी को कथमपि आपत्ति या विरोध नही होना चाहिए।

श्री रामपटल

श्री रामपटल हिन्दी-टीका के साथ स० १९७९ मे आनन्द प्रेस, बनारस से मुद्रित तथा छोटेलाल लक्ष्मीचद, अयोध्या द्वारा प्रकाशित उपलब्ध है । इसमे वैष्णवो के आचार-विचार, उनके पच सस्कार, दश लक्षण, मुद्रा, जपविधि, षोडशोपचार पूजापद्धति, नाम, संस्कार, तिलक-धारण आदि पर बडे विस्तार से विचार किया गया है। इसे चारो वैष्णव मतों के आचार-विचार का कोष ग्रन्थ या 'रेफरेस बुक' माना जा सकता है, क्योंकि प्राय सभी उपयोगी साधना शैलियो तथा आवश्यक उपादानों का सविशेष सप्रमाण विवरण इस ग्रन्थ मे एक स्थान पर एकत्र मिलता है ।

शृंगारिक खण्ड काव्य

राम-सम्बन्धी शृगारिक खण्ड काव्य की सृष्टि विशेषकर 'मेघदूत' तथा 'गीतगोविन्द' के अनुकरण पर हुई है। 'मेघदूत' के अनुकरण पर निम्नलिखित ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है—

१. हस-सदेश अथवा हस-दूत । इसमे हस-द्वारा सीता के पास लाये हुए राम-सदेश का वर्णन मिलता है । यह तेरहवी शताब्दी का ग्रन्थ माना जाता है और इसके रचयिता के कई नाम पाये जाते है—वेकटदेशिक, वेकटनाथ, वेदान्ताचार्य, श्री वेदान्तदेशिक ।

२. भ्रमर दूत—नैयायिक रुद्र वाचस्पति की २८८ छदो की इस रचना मे सीता के पास भ्रमर को भेजने का वर्णन किया गया है ।

३. भ्रमर संदेश—वासुदेव कृत ।

४. कपिदूत—हनुमान जी द्वारा सदेश वाहन ।

५. कोकिल सदेश—वेकटाचार्य कृत ६०० छन्दो की १७ वी शताब्दी की रचना ।

६ चंद्रदूत—कृष्णचन्द्र तर्कालंकार कृत ।

गीत-गोविन्द के अनुकरण पर भी बहुत से राम-सीता-सम्बन्धी काव्यो की रचना हुई है । उदाहरणार्थ—

१. रामगीत गोविन्द जो मूल से जयदेव कृत माना जाता है।

२. गीता राघव नाम से दो रचनाएँ प्रचलित है, एक हरिशकर कृत तथा अन्य प्रभाकर कृत ।

यस्यानन्तावताराश्च कला अंशविभूतयः ।
आवेशा विष्णु ब्रह्मेशाः परं ब्रह्म स्वरूपभाः ।।
स एव सच्चिदानन्दो विमूर्तित्रयनायकः ।

—श्री उपासनात्रय सिद्धान्त, पृष्ठ १४७

३. जानकी गीता—श्री हर्याचार्य कृत।

४. राम विलास-हरिनाथ कृत।

५. संगीत रघुनन्दन १८ वी शताब्दी—विश्वनाथ सिह जू की रचना मे गीतगोविन्द के अनुकरण पर साथ-साथ सीताराम की युग्म भक्ति का भी प्रतिपादन किया गया है।

६. राघवविलास—साहित्यदर्पण कार विश्वनाथ कृत।

७ रामशतक—सोमेश्वर कृत।

८ समार्याशतक—मुद्गलभट्ट कृत।

९ आर्यारामायणः—कृष्णेनु कृत।

इनमे रामकथा की कोई विशेष सामग्री नही मिलती, परन्तु इनसे रामकथा की लोकप्रियता तथा समस्त काव्य-शैलियो मे व्यापकता का प्रमाण मिलता है।[1]

---

१. देखिए रामकथा—पृष्ठ २००-२०१ अनुच्छेद २५२-२५३-२५४।

आठवाँ अध्याय

रसिक परम्परा का साहित्य

हिन्दी में

अष्टयाम

'अष्टयाम' में अष्टप्रहर की सेवा का वर्णन है। इसमें वाह्य सेवा और मानसी सेवा दोनों का ही वर्णन होता है। मधुरोपासना में अष्टयाम सेवा मुख्यतम अंग है। इस समय भी श्री अवध में अष्टयाम उपासना चलती है। मंगला आरती से लेकर शयन तक की विविध लीलाओं को अष्टयाम कहते हैं। भगवान का स्नान तथा शृंगार, भिन्न-भिन्न समयों की लीला, भोजन और शयन ये ही पाँच काल होते हैं।

सबसे पहला अष्टयाम श्रीकृष्णदास जी पयहारी के शिष्य [illegible]गुस्वामी का है। अभी-अभी चैत्र शुक्ल ६ वि० संवत् १९९५ मे पं० श्री रामवल्लभाशरण जी महाराज श्री जानकी घाट अयोध्याजी की व्याख्या के सहित अंमावा-टेकारी की राजराजेश्वरी श्रीमती रानी भुवनेश्वरी कुँवरि द्वारा प्रकाशित हुआ है।

श्री अदग्रस्वामी कृत

भगवान राम के सखा और सखी

१. सुलोचनमणि, २. सुभद्र मणि, ३. सुचन्द्रमणि, ४. जयसेन मणि, ५. बलिष्ठमणि, ६. शुभशीलमणि, ७. अनंगमणि और ८. रसकेतुमणि ये आठों काम को लज्जित करनेवाले सुन्दर कुमार आठों मन्त्रियों के पुत्र हैं। श्रीरामजी के सखा हैं। सदा ही श्रीरामजी की सेवा में तत्पर रहते हैं।

स्त्रियः पुंसस्स्वरूपेण मख्यमात्रेण सेविताः॥ पा० टि०॥

पुनः १. श्री लक्ष्मणा जी, २. श्री श्यामल जी, ३. श्री हंसी जी, ४. श्री सुगमा जी, ५. श्री वंश-ध्वजा जी, ६. श्री चित्ररेखा जी, ७. श्री तेजोरूपा जी, ८. श्री इन्दिरावली जी ये आठ सखी हैं। समय-समय पर पुरुष रूप धारण कर श्री सीतारामजी की सेवा करती हैं।

पुनः आठ दासियाँ हैं—१. निगमा जी, २. सुरसा जी, ३. वाग्मी जी, ४. शास्त्रज्ञा जी, ५. बहुमंगला जी, ६. भोगज्ञा जी, ७. धर्मशीला जी, ८. विचित्रा जी। ये सब नित्य ही सेवा विधान करनेवाली हैं।

ध्यान

अशोक वन के मध्य एक कल्पवृक्ष है। यद्यपि सभी वृक्ष देव-तरुवरों को लज्जित करने

वाले है, तथापि यह विलक्षण है। उस कल्पवृक्ष के पास ही अधोभाग मे मणिमय मनोरम मण्डप है, मन्दिर बना हुआ है, जिसके चारो दिशाओ मे द्वार है। उसके बीच मे रत्नमयी वेदी है, उस वेदी के मध्य सिहासन है। सिहासन के मध्य मणिमय अष्टदल कमल है। कमल के मध्य कर्णिका है। उस कर्णिका मे प्रथम मकार चन्द्रबीज है, पुन अकार भानुबीज है, पुन ऊपर के भाग मे रकार वह्नि अग्नि बीज है। उसी अग्निमण्डल मे श्री सीताराम जी का निवास है।

उसी कर्णिका पर आठ सखियो से सेवित श्री सीताराम जी विराजमान है। दक्षिण मे चमर, पश्चिम मे छत्र, उत्तर मे व्यजन लिए श्री भरतादि भ्राता तथा अन्य सेवक परिकर सब ताम्बूल, पुष्पमाला इत्यादि लिए सेवा कर रहे है।

ईशान कोण मे श्री लक्ष्मणा जी है, पूर्व मे श्री श्यामला जी है अग्निकोण मे श्री हसी जी है और दक्षिण मे श्री सुषमा जी है। नैऋत्य कोण मे श्री वशध्वजाजी है, पश्चिम मे श्री चित्ररेखा जी है, वायव्य कोण मे तेजोरूपा जी है और उत्तर मे श्री इन्दिरावली जी है। इस प्रकार, सेवा का वर्णन करके अब कुञ्जो के स्थानो का कथन करते है कि किस दिशा मे किसका कुञ्ज है।

उत्तर मे, सेवा के सब उपकरणो से पूर्ण, परम रम्य श्री लक्ष्मणा जी का कुञ्ज है। इसी तरह ललित कुण्ड से पूर्व श्री श्यामला जी का कुञ्ज है, और ललित कुण्ड से दक्षिण श्री हसी जी का कुञ्ज है। पश्चिम मे नाना पुष्पो से मण्डित श्री सुषमा जी का कुञ्ज है, पश्चिम और उत्तर के बीच मे अर्थात् वायव्यकोण मे श्रीमती वश-ध्वजाजी अपने कुञ्ज मे विराजती है। इसी तरह ईशान कोण मे श्री चित्ररेखा जी है और पूर्व-दक्षिण के मध्य अग्निकोण मे श्री तेजोरूपा जी अपने कुञ्ज मे प्रतिष्ठित है। नैऋत्यकोण मे श्री इन्दिरावली जी है। इसी तरह, सखियो के नाम और उनके स्थान कुञ्ज कहे गये है। जैसे – ललितकुण्ड के आठो तरफ आठ सखियो के कुञ्ज है, वैसे ही, माधवी कुण्ड के आठो तरफ आठ सखाओ के कुञ्ज है। माधवी-कुण्ड के उत्तर कुञ्ज मे श्री सुलोचन जी है, ईशान-कोण मे श्री सुभद्रा जी का कुञ्ज है और पूर्व मे श्री सुचन्द्र जी का कुञ्ज है। अग्निकोण मे श्री जगयन जी का कुञ्ज है, दक्षिण मे श्री वरिष्ठ जी का कुञ्ज है, नैऋत्य मे श्री जयशील जी का कुञ्ज है और पश्चिम मे श्री अनगजित् जी अर्थात् जिनको श्री अनगमणि कहते है, वे इस कुञ्ज मे स्थित है। वायव्यकोण मे श्री रभकेतु जी का कुञ्ज है। इस प्रकार, अपने-अपने कुञ्जो मे आठो सखा रहते है।

प्रफुल्लकमलप्रख्ये मरन्दामोदमेदुरे।
तत्र प्रसूनशयने समासीनान्तु जानकीम् ॥पा० टि०

सौरभ, आमोद और मकरन्द से भरे खिले हुए कमल के समान ही (ऐसे) कमल दलो की शैया पर (जिनमे सरोवर के नवविकसित कमलो की पक्तियो मे तनिक भी अन्तर नही है, जो तनिक भी नही मुर्झाए है) श्री विदेहराजनन्दिनी जी विराजी हुई है। ऐसा चिन्तन करे।

नानाऽलकारसयुक्ता सर्वसौन्दर्यशालिनीम्।
आसिक्ताङ्गी च हरिणा सर्वाङ्गी रामवल्लभाम् ॥पा० टि०

श्री राम जी से आश्लिष्ट हैं। प्रात काल जागकर दोनों प्रिया-प्रियतम, स्नेह भरे, परस्पर मिले हुए हैं – नायिका-शिरोमणि आपका मुग्ध भाव ही, सब शोभा का तथा गुणोद्रेक के गौरव का सूचक है।

रतिलीलासमाकृष्टारफुरदलकसयुताम् ।
ध्यात्वादेवी वरारोहा साधकस्तत्परोभवेत् ॥

परस्पर की स्नेहमयी रतिलीला से समाकृष्ट होने के कारण अलके बिथुर रही हैं, उनसे सयुक्तवरारोहा देवी, दिव्यगुण लीला-सम्पन्ना श्री रामवल्लभा जू का ध्यान कर साधक अपनी सेवा मे तत्पर होवे।

लक्ष्मणा श्यामला हसी सुगमाश्च चतुर्विधाः।
स्त्रिय पुस स्वरूपेण सख्यमात्रेण सेविता ॥पा० टि०

श्री लक्ष्मणा जी, श्री श्यामला जी, श्री हसी जी और श्री सुगमा जी, ये चार प्रकार की परम चतुर सखियाँ, समय-समय पर, पुरुष-स्वरूप को धारण कर, अर्थात् कभी स्त्री रूप से कभी पुरुष रूप से सेवा करती है।

'यादृशी रामवाछास्यात्तादृशाहिभवन्ति ते'।
'जानक्यासहित राम नित्य सेवेत्तु मानसे' ॥पा० टि०

सखियों की सेवा का वर्णन––

लक्ष्मणा ताम्बूलसेवा श्यामला गन्धमोदकम्।
हसी चन्दनलिप्तागं सुगमा चन्द्रवासकम् ॥पा० टि०

श्री लक्ष्मणा जी ताम्बूल से सेवा करती है, श्री श्यामला जी अतर आदि सुगन्धित वस्तुओं से एव मोदक आदि पक्वान्नो से सेवा करती है, श्री हसी जी कोमल करकमलो से मृदु अगो मे चन्दन आदि लेपन करने की सेवा करती है।

निगमा चामरसेवा च सुरमा वस्त्रक तथा।
वाग्मी पादाब्ज सेवा च शास्त्रज्ञा वाद्यमगला ॥पा० टि०

श्री निगमा जी चामर की सेवा, श्री सुरमा जी वस्त्र की सेवा, श्री वाग्मी जी चरण कमलों की सेवा और शास्त्रज्ञा जी मगलमय अनेक प्रकार के सुरीले बाजो को बजाकर मगलमय गान के द्वारा सेवा करती है।

आलापे बहुमगला भोगज्ञा गायने रता।
धर्म्मशीला पादसेवा नित्य सेवा शयाह्निकम् ॥पा० टि०

श्री बहुमंगला जी अनेक तरह के रागो का आलाप करती हैं, श्री भोगज्ञा जी भी गान करने मे तत्पर रहती है और धर्मशीला जी चरण सेवा करती है।

जब वाटिकादिक बिहार करके श्री रामजी लौटते हैं, उस समय सखियों को संग लेकर गोपुर के गवाक्ष नाम झरोखों में बैठकर श्रीरामजी के मुख कमल को श्री रामवल्लभा जी अवलोकन करती हैं।

एव विचिंतयेद्दृष्ट प्रेमानन्देन साधक ।
सीतारामविहारच प्रेमामृतरसार्णवम् ।।पा० टि०

इस तरह से हर्षित होकर प्रेमानन्द से प्रेमावृत्त रस का समुद्र श्री सीताराम जी का विहार मन में साधक को चिन्तन करना चाहिए।

सोलह शृंगार

स्नान नासाग्र मुक्ता च नील कौशेयवस्त्रकम् ।
स्वर्ण सूत्रा दिव्य वेणीमगरागानुरंजितम् ।।पा० टि०

स्नान और नासाग्र मुक्ता का धारण करना और नील रंग की रेशमी साडी धारण करना जिसमें सुवर्ण के सूत्रों की मनोहर चमकदार किनारी बनी है, दिव्य वेणी का सवारना और अंगराग से अनुरंजित करना।

काची गुणलसल्नीवी मणिस्रगवतसिकाम् ।
कराग्रे धृतपद्मा च नागवल्ली दलान्विताम् ।।पा० टि०

सुवर्ण की मणिजटित काची अर्थात् छुद्र घण्टिका और उसके मनोहर गुण से नीवी का अग्र भाग शोभित होता है और मणियों की माला तथा कर्णफूल आदि सबसे शृंगार होता है, पुन कर-कमल में पद्म को धारण करती है और ताम्बूल को ग्रहण करती हैं।

सिन्दूर विन्दु तिलका कस्तूरी चिबुकाचिताम् ।
अजनेना रंजिताक्षी वलयादिविभूषिताम् ।।पा० टि०

सिन्दूर का विन्दु तिलक स्थान पर धारण करती है। कस्तूरी का अति सूक्ष्म विन्दु चिबुक के ऊपर धारण करती है जिससे अति शोभित होती है। पुन अंजन आदि से नेत्र कमल रंजित होते हैं और वलयादि अर्थात् चूडी आदि मणि-रचित दिव्य भूषणों से कर-कमल शोभित होते हैं।

यावकै रक्तपादा च सिंजन्मंजीरभूषणाम् ।
शृंगार षोडशयुता सीता ध्यायेद्धृदम्बुजे ।।

फिर यावक अर्थात् महावर से आपके चरण-कमल अति शोभित किये जाते हैं और सुन्दर मनोहर नूपुरादि मंजीर भूषणों से शोभित होती है। इस तरह षोडश-शृंगार से युक्त सर्वेश्वर श्री रामजी की वल्लभा श्री जानकी जी को हृदय कमल में ध्यान करे।

ध्यान मंजरी

श्री अग्रस्वामी या अग्रदासजी

नाभादास जी के गुरु अग्रदास जी की यह 'ध्यान मञ्जरी' रामरसिकोपासको की परम प्रिय पोथी है। एक बहुत प्राचीन प्रति कामेन्द्रमणि जी के शिष्य रसरगमणि जी की 'मकरन्द माधुरी' टीका के साथ प्राप्त है। टीका स्वयं अपने आप मे रसिकोपासना का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसमे स्थान - स्थान पर शंकाएँ की गई है और विस्तार से जमकर, उनका समाधान प्रस्तुत किया गया है। टीका की शैली पुरानी है और 'किभ्ती' है, पर तत्त्व-निरूपण बडा ही प्रभावशाली है। सम्पूर्ण ग्रन्थ कुल ८० पदो का है। आरम्भ मे श्री अवधपुरी का ध्यान है, फिर वहाँ के निवासी धर्मशील नर-नारियो का वर्णन है। पुन अन्त पुर निवासिनी युवती सेविकाओ का उल्लेख है। सरयू जी के वर्णन मे अग्रदास जी ने कमाल कर दिया है। वहाँ, श्री सरयू तट पर, अशोक वन है जहाँ एक कल्पवृक्ष है। उसी कल्पवृक्ष की स्वर्ण वेदिका पर एक रत्न सिहासन है जिसपर दिव्य पद्मो का एक शुभासन है। उसके बीच मे दिव्य कर्णिका है जो एक तेज से आवेष्ठित है। उस पर युगल सरकार श्री सीताराम सुशोभित है।

अब स्वय श्री अग्रदास जी के शब्दो मे ही इस दिव्य ध्यान का आनन्द लीजिए——

श्री राम का ध्यान——

कल्प वृक्ष के निकट तहाँ यह धाम मणिन युत।
कचन मय सब भूमि परम अति राजत अद्भुत॥

स्वर्ण वेदिका मध्य तहाँ यह रतन सिहासन।
सिहासन के मध्य परम अति पदुम शुभासन॥

ताके मध्य सुदेस कर्णिका सुन्दर राजै।
अति अद्भुत तहँ तेज वन्हि सम उपमा भ्राजै॥

तामधि शोभित राम नील इन्दीवर ओभा।
अखिल रूप अमोघि सजल घन तन की शोभा॥

शिर पर दिव्य किरीट जटित मजुल मणि मोती।
निरखि रुचिरता लजित निकर दिन कर की जोती॥

कुण्डल ललित कपोल जुगल अति परम सुदेशा।
तिनको निरखि प्रकाश लजित राकेस दिनेशा॥

मेचक कुटिल सुचारु सरोरुह नयन सुहाए।
मुख पंकज के निकट मनहुँ अलि छौना आये॥

भृकुटी त्रय पद सगुन मनहुँ अलि अवलि विराजै।
नासा परम सुदेश बदन लखि पंकज लाजै॥

चितवनि चारु कृपाल रसिक जन मन आकर्षन।
मन्द हास मृदु बयन जनन को आनन्द वर्षन॥

दीरघ दीप्त ललाट ज्ञान मुद्रा दृढ़ धारी।
सुन्दर तिलक उदार अधिक छवि शोभित भारी॥

परम ललित मणिमाल हार मुक्ता छवि राजै।
उर श्रीवत्स सुचिन्ह कण्ठ कौस्तुभ मणि भ्राजै॥

यज्ञोपवीत सुदेश मध्यधारा जु बिराजै।
उभै भुजा आजानु नगन जटि कंकन राजै॥

चूनीरतन जराय मुद्रिका अधिक संवारी।
शोभित अद्भुत रूप अरुण की छबि अनुहारी॥

भूषण विविध सदेश पीत पट शोभित भारी।
लसत कोर चहुं ओर छोर कल कंचन धारी॥

रोमावलि बनि आइ नाभि अस लगति सुहाई।
त्रिवलि तामधि ललित रेख त्रय अति छबि छाई॥

कटि परदेश सुढ़ार अधिक छबि किंकिन राजै।
जानु पुष्ट बनि गूढ़ गुल्फ अति ललित बिराजै॥

नूपुर पुरट सुचारु रचित मणि माणिक सोहै।
रविकल सुरसंगीत सुनत परिजन मन मोहै॥

युगल अरुण पद पद्म चिन्ह कुलिशादिक मंडित।
पद्मा नित्यनिकेत शरण गत भव भय खंडित॥

दक्षिण भुज शर सुभग सुहावन सुन्दर राजै।
दिव्यायुध सुविशाल बाम कर धनुष विराजै॥

षोड़स बरस किशोर राम नित सुन्दर राजै।
राम रूप को निरखि बिभाकर कोटिक लाजै॥

अस राजत रघुबीर धीर आसन सुखकारी।
रूप सच्चिदानन्द बाम दिशि जनक कुमारी॥

श्री सीता जी का ध्यान

नगन जरे छबि भरे विविध भूषण अस सोहै।
सुन्दर अक उदार विदित चामीकर कोहै॥

अलक झलकता श्याम पीठ सोभित कल बेनी।
सुन्दरता की सीव किधौ राजति अलि श्रेनी॥

रचित सु विविध प्रकार माग जरतार सवारी।
मनहु, सरसरी धार बनी शोभा अस भारी॥

पाटन की लर और बडे बडे उज्ज्वल मोती।
मघन तिमिर के मध्य मनो उड़गण की जोती॥

रतन रचित मणि जटित शीस पर विन्दा छाजै।
ललित कपोत सु युगल करन ताटंक विराजै॥

उज्ज्वल भाल सुचारु अमित उपमा अस सोहै।
राजत परम सोहाग भाग को भवन किधौ है॥

गोरोचन को तिलक ललित रेखा बनि आई।
उन्नत नासा सुभग लसत वेसरि जु सुहाई॥

भृकुटी नयन विशाल सौम्य चितवनि जग पावन।
मानहु विकसित कमल बदन अस लगत सुहावन॥

अरुण अधर तर दसन पाति अस लगति सुहाई।
चारु चिबुक बिच तनक बिन्दु मेचक छबि छाई॥

कठ पोति मणि जोति सु छबि मुक्ता बरमाला।
पदिक रचित कलधौत बिराजत हृदय विशाला॥

हेम तन्तु कर रचित अरुणा सारी रग झीनी।
कचुकी चित्रित चतुर विविध शोभित रंग भीनी॥

बर अंगद छबि देति बाहु अस लगति सुहाई।
करन चुरी रंगभरी ललित मंदरी बनि आई॥

पद्मराग मणिनील जटित युग कंकण राजै।
मनहुं वनज के फूल दुरेफनि पंक्ति बिराज॥

लहगा कटि परदेश भाति अति शोभित गहिरी।
अरुण अमित सित पीत मध्य नाना रंग लहरी॥

हरित नगन कर जरित युगल जेहरि अस राजै।
तिन पर घुघुरु और अग्र विछिया सुबिराजै॥
तिन पर नग जु अमोल ललित चूनी गण लाये।
चरण चारु तल अरुण सहज ही लगत सुहाये॥
अतुलित युगल स्वरूप कवन अस उपमा जिनकी।
जेतिक उपमा दीप्ति शक्ति करि भासित तिनकी॥
यहि विधि राजत राम अवधपुर अवध बिहारी।
दम्पति परम उदार सुयश सेवक सुखकारी॥

पार्षदों का ध्यान

दक्षिण भुज रिपुदलन गौर तन तेज उदारा।
उभय हेतु अनुसार धरे बृत खंडित धारा॥
शेष लिये कर छत्र भरत लिये चंवर दुरावै।
अनि सुवन करजोरि सु प्रभु की कीरति गावै॥
अपनी अपनी ठौर नित्य परिकर बनि भारी।
सुरति शक्ति विमलादि रहत नित आज्ञाकारी॥
जो जो जेहि अधिकार सचितव सेवा मन बासै।
बीनाधर सुरतान गान करि प्रभुहिं उपासै॥
यही ध्यान उर धरै स्वयं तन सुफल करेवा।
भव चतुरानन आदि चरन बन्दै सब देवा॥
यह दम्पति बर ध्यान रसिक जन नितप्रति ध्यावै।
रसिक बिना यह ध्यान और सपनेहुं नहिं पावै॥
पौरि द्वार अतिचारु सुहावन चित्रित सोहै।
चंपतार मंदार कल्पतरु देखत मोहै॥

रामाष्टयाम

श्री नाभादास जी

द्वादश वन वर्णन

प्रथमहि वन शृंगार सुहावन। वन विहार तमाल अति पावन॥
वन रसाल चंपक चन्दन वर। पारिजात अशोक मंगल तर॥

वन विचित्र कवि कहत कदंबा। वन अनग रस अलि अवलंबा॥
नवल नाग केसरि वन नीको। ललित लालि तो रघुवर सीको॥
तृदिशि नगर सरयू सरि पावनि। मणिमय तीरथ अमित सुहावनि॥
विकसे जलज भृग रस भूले। गुजत जल समूह दोउ कूले॥
परिषा त्रिविध सुधा सम वारी। विकसे विविध कज मनहारी॥
विच विच महल पक्ति बनि आई। स्वर्ण रत्न मणि सुभग सुहाई॥

परिषा प्रति चहु दिशि लसत, कचन कोट प्रकास।
विविध रग नग जगमगत, प्रति गोपुर पुर पास॥

दिव्य फटिक मय कोट की, शोभा कहि न सिराय।
चहु दिशि अद्‌भुत ज्योति मय, जगमगात सुख पाय॥

महल की शोभा

भीतर कोट वोट अति पावन। चिता मणि मय भूमि सुहावन॥
चहु दिशि योजन चार सुहावा। सो अवधैद्र भवन श्रुति गावा॥
पच चौक राजत अति नीके। कौशलसुता राजमहिषी के॥
पूरव चौक सखी बहु राजै। वेत पाणि रक्षण हित काजै॥
दक्षिण राज किंकरी दासी। महल टहल नित निकट सुपासी॥
पश्चिम चौक सैन की शाला। राजति तहा सुमगल बाला॥
रघुवर धाय पुत्र सब पाले। पान पान सुख बहु विधि लाले॥
उत्तर चौक करत सब सेवा। राजत रग राज कुल देवा॥

कुल गुरु नृप पुत्रन सहित, वधुन सहित रनिवास।
ज्ञाति वर्ग मत्री मुदित, पूजत सहित हुलास॥

अन्तःपुर का वर्णन

पुनि तहं ते षोडश सहचरी। गाइ उठी प्रीतम रग भरी॥
तिन ते अलि नव अष्ट सुहाई। निज निज थल गावत छबि छाई॥
अत पुर जह सिय पिय राजै। शोभा कहत शेष श्रुति लाजै॥
रतन जडित परयक सुहावा। स्वर्ण रत्न मणि खचित सुपावा॥
विविध विचित्र चित्र रग राजै। निरखत अलिवलि सहित समाजै॥
अति अद्‌भुत उपमा छबिछाये। श्रुति सहिता पुराणन गाये॥
तेहि ऊपर अति ललित बिछोना। क्षीर फेन सम कोमल लोना॥
तेहि ऊपर सुमनन की शोभा। कहत न बनै देखि मन लोभा॥

चित्र विचित्र अनी न रचि, सेज सुमन पच रंग।
लाल लाड़िली रस भरे, सोवत दोउ हित संग॥

छतुरी ललित ललाम, राजत वर परयंक कर॥
चहुंदिशि मुक्ता दाम, विशद कांति झालरि ललित॥

कनक दंड वर चारि सुहावन। रचित अरुण मणि अति मन भावन॥
अति सुंदर सनेह सुख खानी। कहत सुकरि मद ग्रन्थ बखानी॥
अद्भुत रंग कांति सुखरासी। कुंज महल छवि प्रभा प्रकासी॥
गज मुक्तन की झालरि झमकै। मणिमय दीप ज्योति मधि चमकै॥
झीने पट अति परदा परे। पवन प्रसंग व्यजन शिर ढरे॥
तेहि चारिउ दिशि फरस बिछाये। कनक तारमणि जड़ित सुहाये॥
कहुं अति कोमल बिछे गलीचा। सुमनन की रचना बिच बीचा॥
कहुं कंचन की चौकी धरी। झारी श्री सरयू जल भरी॥

शीतल मधुर सुगंध सुख, स्वाद विशद रस रूप।
तृषा हरन मंगल करन, आनंद भरन अनूप॥

रत्न जड़ित बहु धरे कटोरा। बहु मेवन युत स्वाद न थोरा॥
पान दान वीरिन ते भरे। अगिणित भांति सुरभि कहुं धरे॥
पुनि तेहि पीछे परदा डारे। तहं नृत्यत उठि सखी सवांरे॥
प्रथम वरन अरु अष्टम जोरी। पुनि जहं ते षोडस सहचरी॥
तेहि पीछे ललना बहु राजै। निज निज सौ जलि ये सब भ्राजै॥
कोउ ताम्बूल लिये कोउ झारी। कोउ सुमनन शृंगार सवांरी॥
रंग रंग के गजरा लीन्हें। प्रीतम मग चितवति चित दीन्हे॥
अन्तहपुर की धुनि सुनि पाई। निज निज थलनि नचौ सब जाई॥

कुंज कुंज ते अलि अमित, विविध सौज के साज।
चन्दन अगर सुगंध सुभ, सुमन सुमंगल काज॥

युगल लाल प्रिय कुंज सुख, नित नव विमल विहार।
पंच भावरति युगल मति, वर्णत लहत न पार॥

यहि विधि लखि जागे रघुराई। पुनि परदा इक दीन उठाई॥
जागे प्रीतम निशि रंग भीने। अरसपरस शृंगार सब कीन्हें॥

लसत लड़ैती लाल दोउ, सिथिल सनेह सुअंग।
दंपति संपति परस्पर, समर समर रसरंग॥

मंगल थार अनेक विधि, लाल लाड़िली पास।
आगे धरि मगल अमित, गावहि सहित हुलास॥
सुहृद सुजान सुशील सब, जे प्रभु रूप अपार।
कोउ न राम सम दूसरो, नेह निबाहन हार॥

राम कुवर छबि देखन लागी। अग अग श्याम रूप अनुरागी॥
त्रिदश वर्ष मुग्धा को श्यामा। मध्या काम केलि विश्रामा॥
कोउ वय सधि केलि प्रिय नारी। युगल रग रमु रूप विहारी॥
कोउ निन नवल लाल मुख चाहे। यहि विधि प्रीति रीति निरबाहे॥
गद गद कठ रोम सुरभगा। लहत अष्ट सात्विक कोउ अगा॥
सबकी प्रीति रीति जिय जानत। तन मन वचन लाल सन मानत॥

अन्तःपुर में सखियो की सेवा

अन्त पुर की गली सुहाई। तेहि मग बहु ललना चलि आई॥
चतुर शिरोमणि सिय सुख पाई। भगिनी सब समीप बैठाई॥
जरकस पट परदा अति झीनो। स्वर्ण सूत्र मणि खचित नवीनो॥
तेहि भीतर बैठी सब राजहि। रति शत कोटि देखि छवि लाजहि॥
सब समाज देखहि सुख पाई। श्रवण वचन सुख सुनत सुहाई॥
रस अगम्य मुख बरणि न जाई। युगल ललित वात्सल्य सुहाई॥
पिय मुख लखि सिय सग विराजी। निज निज परिकर युत सुख साजी॥
अग्र भाग सुभगा अति सोहै। सहजा हास बिलासन मोहै॥
श्री सरयू झारी लिये ठाढी। पान दान सुख तुलसी बाढी॥
कमला विमला चमर ढुरावै। चन्द्र कला कछु तान सुनावै॥
और सबै निज टहल सुधारै। ठाढी दपति चमर सवारै॥

जेहि जेहि अग की माधुरी मे मन लाग्यौ जास।
साइ सोइ अग निरखत सकल, मन मे परम हुलास॥

कोउ दंपति चितवनि को निरखै। मद हसनि मनु आनद बरखै॥

यहि विधि सबके नयन थकि, रहे माधुरी माहि॥
सो लखि दपति कोर दृग, अरस परस मुस्क्याहि॥
कुज कुज प्रति सहचरी, आवत नावत माथ।
सन्मानत मृदु वचन कहि, लखि छबि होत सनाथ॥

भोजन के समय

प्रथम मधुर रस पच ग्रास करि। भोजन करन लगे आनद भरि॥

सिय निज कर पिय मुख में देही । मन्दस्मित करि लालन लेहीं ॥
पुनि पिय सिय मुख ग्रास देत हंसि । व्रीड़ा युत लै होत प्रेम वसि ॥
जेहि व्यंजन पर सिय कर देही । सो प्रीतम पहिले धरि लेही ॥
लैकर ग्रास सीय मुख माही । देत लेत सुधि सुधा कि नाही ॥
प्रीति परस्पर अघटित दोऊ । सखि सुख निरखि लखत मुख कोऊ ॥
नैन सयन करि आपुस माही । एक एक ते लखि मुसुकाही ॥
युगल रूप रति गरब सनेही । भोजन की सुधि रहत न केही ॥
कहुं जल शोभा सिय कर लेही । लालन मुख पंकज महं देही ॥
पुनि सोइ लै पिय सिय मुख लावैं । हित सों प्रियहि पान करवावैं ॥
जब पिय धरैं सीय तेहि टारैं । पिय सोइ लै निज वदन संवारैं ॥
तब सिय औ रनवीन उठावैं । लाल तौन लै सिय मुख प्यावैं ॥
लाल चहैं निज कर कछु पावैं । तब सिय निज कर शीघ्र पवावैं ॥
गूढ़ प्रेम लखि पिय मुसकाही । प्रेम क्षुधा कहि सकत न नाही ॥

नृत्य संगीत

छंद गीत बहु रागन करही । निज निज गुण नृत्य न संचरहीं ॥
संगीतादि नृत्य बहु कीन्हे । कला अनेक राग रस भीने ॥
जिनहिं देखि रंभादिक नारी । अचरज पाय करत मनुहारी ॥
दंपति एक सिंहासन राजैं । चमर छत्र लिये अली विराजैं ॥
देखि देखि दंपति मुसक्याहीं । रीझ देत बहु तिनहिं सराही ॥
पान दीन्ह तिन्ह शिर धरि लीन्हा । निज परिकर कहं आयसु दीन्हा ॥
श्री सहजा उठि यंत्र सुधारैं । चंद्रकला निज वाद्य संवारैं ॥
रस मंजरी शृंगार करि आई । अमित कला गुण निपुण सुहाई ॥
करि प्रणाम तेहि राग अलापी । निज निज सदन रागिनी थापी ॥
परिकर युत सब रूप सुनाये । मानहुं रागमहल भरि छाये ॥

शयन

जाय पलंग बैठे रस भीने । शयन करन की दिशि रुप कीन्हे ॥
पौढे लाल प्रिया पद लालत । रस मंजरी चमर शिर चालत ॥
रस मंजरी चरण तब लागी । सिय आयसु शिर धरि अनुरागी ॥[1]

श्री कृष्णदास अवतार, शिष्य अनंतानंद के ।
भये शिष्य सब पार, पयहारी परसाद ते ॥
अंस परस्पर भुज धरे, निशि दिन पूरण काम ।
प्रेम सखी हिय में बसें, सियाराम छवि धाम ॥

अलंकार, छंद, रस और पिंगल के प्रेमियो के लिए भी यह ग्रंथ बड़े ही महत्त्व का है। रूपकातिशयोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनन्वय, अलंकारो की जैसे हाट लग गई है। रस की दृष्टि से तो नाभादास जी का यह 'अष्टयाम' एक आकर ग्रंथ है।

नेह-प्रकाश

महात्मा बाल अलीजी

'नेह-प्रकाश' मे कुल १४८ दोहे है, पर सब-के-सब अनमोल है। भाषा बडी साफ-सुथरी, और भाव बडे ही रसमय और प्रगाढ है। आरभ मे आह्लादिनी शक्ति का स्वरूप विचार है जो आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वथा परिपुष्ट एव साधना की दृष्टि से सम्पन्न है। इसके अनन्तर सखियो की नामावली और उनकी विशिष्ट सेवाओ का प्रकरण है जो रसोपासना के सिद्धान्त के आधार पर प्रतिपादित है। यह पक्ष सब प्रकार से शास्त्र एव अनुभव के आधार पर अवलबित है। तदनन्तर श्री रामजी का सीताजी के प्रति प्रणय-निवेदन है। तब आता है— रस-विलास, प्रेम विलास, रूप विलास। तदन्तर है सखियो के वचन श्री जानकी जी के प्रति, फिर श्री राम के प्रति। अन्त मे सीता की छबि का बडा ही भव्य वर्णन है जो एक साथ उनके रूप और प्रभाव की महिमा से सम्पन्न है। यह छोटी सी पोथी रसिकोपासना मे विशिष्ट गौरव की सहज ही अधिकारिणी है।

(रहस्य प्रमोद भवन, श्री जानकी घाट अयोध्या मे हस्तलिखित प्रति प्राप्त है।)

'सिद्धान्त तत्त्वदीपिका' मे परम तत्व की व्याख्या कथानक के रूप मे समासोक्ति और रूपकोक्ति के सहारे वर्णित है। आरभ मे राजा विश्वकाय की पुत्री प्रभावती के रूप गुण यौवन शील सौन्दर्य का वर्णन है—

प्रभावती इति नाम अनूपा। बरनि न परै अलौकिक रूपा॥
शची उर्वशी मदन पियारी। सुर किन्नर पन्नग नर नारी॥
जाके रूप ओप सो पगी। जहँ तहँ रहत सबै जगमगी॥

प्रभावती के निसनवीन रूप और जगमनमोहनी कान्ति से शची, उर्वशी, रति आदि रूपवती एव कान्तिमती है। इस प्रकार प्रथम प्रकाश मे प्रभावती का स्वरूपनिरूपण है। अब स्वभावत विश्वकाय के मन मे योग्य वर खोजने की चिन्ता होती है। वह परम भजनीय को खोजना चाहते है—उसे जिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव भजते है। दूसरे प्रकाश मे इसी वर-वरण का प्रसग है। इतने मे ही 'सुसभ्रमा' नाम की एक नटी का प्रवेश होता है जो प्रभावती को विश्व प्रपच की मोहिनी मे उलझा लेती है और प्रभावती पर उसका सम्मोहन बहुत व्यापक रूप मे पड़ जाता है। चौथे प्रकाश मे इसी का वर्णन है। परन्तु एक बार मन मे परम भजनीय को वरण कर लेने के कारण ही 'कृपावती' का समागम होता है और वह सहज भाव से प्रभावती को प्रेम मार्ग पर लाना चाहती है। पचम प्रकाश मे इसी का वर्णन है। 'कृपावती' राम के रूप, यौवन, माधुर्य, आनन्द सदोहता, सुखमूर्त्ति, वशीकरणता आदि का वर्णन करती है और रामभक्ति की महिमा का वर्णन करती है।

यही छठा प्रकाश है। सातवे प्रकाश मे ध्यान, जप, सेवा, साधन का वर्णन है। आठवे मे तीर्थयात्रा, पाखड मतो का वर्णन है। सब से पहले नवे प्रकाश मे अभेदवाद का कस कर खंडन किया है। अब प्रभावती का ध्यान राम की प्रेमाभक्ति की ओर उन्मुख होता है और अब उसका नाम 'सुमुखी' हो जाता है। यहाँ अब कृपावती श्री तत्व का विश्लेषण सुमुखी को सुनाती है। यहाँ 'कृपावती' थोड़ी देर के लिए गायब हो जाती है और उससे मिलने के लिए सुमुखी के मन मे चटपटी जगती है और वह बहुत ही व्याकुल हो जाती है। एक-एक क्षण कल्प की तरह बीत रहा है। कुछ काल के अनन्तर कृपावती का दर्शन होता है और कृपावती 'सम्बन्ध' का वर्णन करती है—संबंध की महिमा का बडा ही भव्य वर्णन है। यहाँ पच काल, पच संस्कार, अर्थ पञ्चक का वर्णन नारद पञ्चरात्र तथा पद्मपुराण के आधार पर है। (कण्ठी, तिलक, मत्र, आश्रय और नाम) तदनन्तर भगवान राम के रूप, लीला, प्रभाव आदि का भगवान श्रीकृष्ण की अपेक्षा श्रेष्ठ बतलाया गया है और पुनः युगल दपति रस विहार की दिव्य शोभा का वर्णन है।

प्रिय को निज स्वामी पुनि जानै। सिय सहचरि आपन को मानै॥
निस दिन निरखै रास बिलास। ते सिगार भक्त नित पास॥

इस प्रकार परमा भक्ति का सविस्तर वर्णन सुन कर 'सुमुखी' कृतार्थ हो गई और फिर पच सस्कार ग्रहण कर दीक्षित हो गई। दशम प्रकाश मे पञ्च सस्कारो का ही वर्णन है। यहा से तत्व निरूपण का प्रकरण शुरू होता है। अर्चा, विभु, विग्रह आदि के भेद, सप्तावरण का रहस्य, नित्य सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वाश्चर्यमयी मिथिला पुरी का वर्णन। 'विरजा' इस पार एक आचरण मे गोकुल वृन्दावन, नन्द-यशोदा, राधा-माधव का लीला विलास वर्णन है। 'विरजा' पार सप्तावरण भेद कर दिव्य साकेतधाम तथा वहाँ राम-जानकी के दिव्य लीला विहार का विस्तार मे वर्णन सुन कर 'सुमुखी' के हृदय मे उस लीला मे प्रवेश पाकर उस परम सुख की उपलब्धि की अभिलाषा जगती है। 'सुमुखी' का प्रवेश इस लीला मे होता है—

चले रमन रमिया रस ख्याल। निरखि सखी सब भई निहाल॥
चली सग मिलि छवि सौ भरी अति अनूप रस केलि निदरी॥
सुन्दर केस मन्द मुसुकाही। वर नितम्बिनी उरु दृढ माही॥
पीन पयोधर भूषण भूरी। गान वाद्य कुशला छवि मूरी॥
जिनकी कला कला कौ अस प्रगटी तिय रमादि अवतंस॥
सिय परिचारी पिया पियारी ऐसी सखी अनन्त निहारी॥

इस प्रकार 'स्वरूप-निरूपण' का प्रसग द्वादश प्रकाश मे आया है। इसके अनन्तर चार-पाँच अध्यायों मे विभव, अर्चा, विग्रह आदि अवतारों का वर्णन, तथा 'अर्थ पञ्चक' का विवेचन है। इसके पश्चात दास्य, सख्यादि पञ्च भाव का सविशेष वर्णन है। इसके पश्चात् 'शृंगार भाव' का वर्णन है। यहाँ भगवान् राम और भगवती जानकी के अंगों का बडे ही आनन्दोल्लास पूर्वक वर्णन है—

पियवस प्रिया प्रियावस पीय, उरझे रहत रैन दिन हीय।
सिय हिय के जीवन है पीय, पीय के प्रान जीवन धन सीय॥

जब लगि लाल सियहिं ढिग निरखै, तब लगि चहुँ दिसि आनन्द बरखै।
यह लखी ढिग से प्रान पियारी पिय ते पल न होत कहुँ न्यारी।
इक टक पिय सिय रूप निहारै अपना सरबस तापर वारै।
ज्यों-ज्यो वह छवि पीवै त्यो वह तृषा अधिक उपजावै॥
निसि दिन रहत तहाँ सुख भीनौ सिय छवि जल करिके मन मीनौ।
'सुमुखी' कहे हरि पूरन काम सब सुखधाम आत्माराम।
नहिं कहुँ परते सुख की चाही क्यों तिय रमन संभवै ताही।
तेहि कह्यौ सिय हरि भिन्न न और, एक स्वरूप द्विधा तनु गोर।
एकाकी नहिं रमन सुहाई पति पत्नी सु भयो प्रभु सोई॥

इस प्रकार संभ्रमा का जाल काट कर प्रभावती अपने परम इष्ट को प्राप्त कर लेती है। यहाँ इतना स्मरण रखने योग्य है कि प्रभावती सुमुखी ही साधन है, संभ्रमा माया है, कृपावती गुरु है और भगवत्प्राप्ति इष्ट मिलन है। इस प्रकार यह ग्रन्थ कुल ३६ प्रकाशों मे समाप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त महात्मा बाल अली जी की बड़ी 'ध्यान मंजरी' भी रसोपासना का एक मुख्य प्रामाणिक ग्रंथ है।

अब यहाँ 'नेह-प्रकाश' मे कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

गूढ वेद वेदान्त को निज सिद्धान्त स्वरूप।
जयति सिया आह्लादिनी शक्ति शक्ति गन भूप॥

सो वह परम उपासना वहै जु परम उपासि।
एकाकी नहिं रमन ह्वै चहत सहायहि सोइ।
रमत एक ही ब्रह्म यह पति पत्नी तनु होइ॥

जग जिनके सुख सिन्धु के लय उपजीवत जीव।
पगे प्रेम रस स्वाद सौ रमत प्रीय तम पीव॥

सीचे विविध सुगन्ध नव मुक्ता बन्दन माल।
चहुँ दिशि अगणित नगन युत बने झरोखा जाल॥

सुन्दर गादी गेडुवा विविध खेल के साज।
युगल चरण सेवै तहाँ प्रमुदित सखी समाज॥

सखियन की नामावली और सेवा

श्री विमला रुचि शारदा विजया बामाबाम।
कमला कान्ति मती कला केलिकोविदा नाम॥

कामा केशि किशोरिका कांचि कोशला कालि।
कञ्जा क्षीर कलावती कञ्जलोचना आलि॥

कुञ्जा कलिका कोकिला काशि कृपाला जानि।
कल्याणी गम कुंकुमा कृपा पूरणा मानि॥

कृष्ण शारिका कामदा कृपावती सुखरूप।
चन्द्रा चन्द्रकला अली चन्द्राननी अनूप।

चम्पक बरणी चन्द्रिका चारु दरशना बाल।
चारुद तीरु चकोरिका पुनि गण चम्पक माल॥

देव वर्णिनी देविका देव रूपिणी नारि।
देवी दुर्गा दामिनी दैवज्ञा उरधारि॥

गनि ज्ञाना गुण सागरा ज्ञप्ति गुणज्ञातीय।
नन्दा नवला-सी नवल नागरि अति कमनीय॥

प्रेमा परमा पावनी प्रेमप्रदा तिहि ठौर।
प्रियंबदा प्रज्ञा परा भनि प्रौढ़ा अलि और॥

भाव विदा भावनि भवा भासि भावरा भीरु।
मुग्धा मुदा मनोरमा सखि मृग सावा छीरु॥

मोद दायिका माधवी मृग नाभी शिर नाइ।
मानिनि माधुरि मंगला मान कोविदा गाइ॥

रहसज्ञा रस रूपिणी रम्या रामा लेखि।
और रमा रतिवर्द्धिनी रोहा उर्णि विशेखि॥

शान्ता सुखदा स्वच्छता सीमन्तिनि उर आनि।
श्यामा सती सु मध्यमा साधु मतीहि बखानि॥

शृंगारा चतुरा सुरा सेसा हसिका केशि।
सुरा सुन्दरी शारदा मनि सांभवी सुदेशि॥

सुरभि सरूपा सारगा संज्ञा नारु सुनामि।
शान्ति रूपिणी शंकरी सुप्रिया सुच्छा भामि॥

सखी और दासी में भेद

तुल्य वेश गुण रूप सखि न्यून किंकरी जानि।
गति बल धन सुख सबनि को एक मैथिली मानि॥

दया दृष्टि सर्वेश्वरी दइ सेवा जो जाहि।
भरी प्रेम आनन्द रस सखी करत सो ताहि॥

केश प्रसाधन करहि कोउ सुरभि सुतेल चटाइ।
पहिरावहि धूपति बसन कोऊ उबटि नहवाइ॥

कोउ अलि विविध सुगन्ध युत रचहि वेष शृंगार।
उष्ण असन बहु रसन दै वारि सुरभि हिम सार॥

बीरी ललित संवारि अलि दुहू ललन कर देहि।
बड़ भागिन ताम्बूल कोउ झुकिय सारि कर लेहि॥

गहे सो चामर छत्र कोउ क्रीड़न गन्ध रसाल।
बसन विभूषण आदि रस कोउ कुसुमन की माल॥

ठाढी अलि चहुँ ओर को रचहिं बिछौना बान।
धरहिं वाद्य पुनि करहिं कोउ उघटि मृत्य सुर गान॥

रीझि अली दुहु ललन छवि निरखि बलैया लेहिं।
राई लोन उतारि पुनि वारि अपन पौ देहिं॥

अन गनती गनतीन मैं निपटहु कपट निहारि।
सिय कीनी चेरी चरन नारि नवावत नारि॥

तिन मधि बिहरत रंग भरे नवल किशोर किशोरि।
नेक न न्यारे होत कहुँ बंधे प्रेम की डोरि॥

मुख छवि मिलि इक मुकुर मैं करूँ निरखत दृग कोर।
कबहुँक इक टक परसपर ह्वै रहे चन्द्र चकोर॥

असुवन अन्तर करत लखि पिय दरशन बिच आइ।
निन्दत दोउ आनन्द को ललन हिये अकुलाइ॥

कबहुँ नेह के भार भरि लपटि लटकि रहे दोउ।
छके प्रेम मादक पिये रहत न तन सुधि कोउ॥

कबहुँ कुंवर दोउ परसपर जिनकर करत सिंगार।
बीरी खात खवात पुनि बहु विधि करत बिहार॥

कबहुँ केलि कन्दुक गहत कहुँ पासिन सतरंज।
कबहुँक हित बतिया करत बटत मञ्जुरस पुञ्ज॥

श्री रामजी के वचन सीताजी के प्रति

किये सपथ कहुँ तोहिं प्राणप्रिया निज हीय की।
अस न अपन पौ मोहिं जैसे प्रिय तुम लगति हौ॥

मिलौ कोटि ब्रह्मांड हूँ अस न मोहिं आनन्द।
होतु जु तब मुख कमल को पान करत मकरन्द॥

श्रवण नैन मन तुम बसे और न कछू सुहात।
तेरी हित चितवनि उपर वारे सब सुख जात॥

मेरे हिय आनन्द को तुम ही प्रिये निदान।
हौ जिय की जीवन जरी प्रानन हू के प्रान॥

निरखत तुव मुख कंज छवि पलक न परत सुहाइ।
धन्य अपन पौ गनत हौ हौ तुमसों धन पाय॥

तेरे किंकरि वर्ग को हौ हौ सदा अधीन।
देउ अपनपौ दीन ह्वै मैं न गनौ कछु दीन॥

प्रेम भरे प्रिय वचन सुनि प्रिया मधुर मुसुक्याय॥
वारि विभूषण बचन पर लिये लाल उर लाय॥

रस-विलास

रंग रंगीले लाल रंग रंगीली लाड़िली।
बिहरत नैन बिशाल रंग रंगीली अलिन मैं॥

बहु सुगन्ध कुसुमन रची दुग्ध फेन सम सैन।
ऐन मैन मन अलिन यह रचै मैन को ऐन॥

सैन साल मोहित भरे तापर पौढ़त आइ।
रस मन बचन अगम्य सो कहौ कौन पै जाइ॥

नील पीत छवि सो भरे पहिरे बसन सुरंग।
जनु दम्पति यह रूप ह्वै परसत प्यारे अंग॥

नील पीत नव बसन छवि हिलि मिलि भय यक रंग।
हरे हरे अलि कहत है यह धरि सिय पिय अंग॥

रस बिलसत पीतम सुखहि चिर निशि चाह प्रवीन।
चन्द्रकला चन्द्रहि निरखि मधुर जन्त्र सुरकीन।

सुख निद्रा पौढ़ै अरध नारी स्वर से होय।
प्रेम समाधि लगी मनौ सखि जानत सुख सोय॥

अलि कुर कुट धुनि सुनि डरो रविहि देत यह टेर।
अहि गुरुजन ऐहैं इहाँ भलो नही यह वेर॥

अमल सेज पर कमल से दृगन सलोने गात।
निशि हुलसे बिलसे लसे अलसे उठे विभाति॥

जगे कुवर रस रग मगे पगे परस्पर प्रेम।
उमगे गलबहिया लगे पगे कि मरकत हेम॥

कहि पिय पिय प्यारी बिबस नहि तम बसन सम्हार।
धुर्मित दृग दोउ झुकि रहे रस मतवारे लाल॥

महा प्रेम आवे सते भय तन मय आकार।
हौ प्रीतम हौ ही प्रिया यह रहि गयो विचारि॥

ा-विलास

उलटि बढ़ी तब प्रीति नवल लडैती लाल हिय।
कै बहुरचौ वह रीति प्रेम स्वाद बहु विध लहे॥

नेह सरोवर कुवर दोउ रहे फूलि नव कज।
अनुरागी अलि अलिन के लपटे लोचन मञ्जु॥

दम्पति प्रेम पयोधि मैं जो दृग देत सुभाइ।
सुधि बुधि सब बिसरत तहाँ रहे सु विस्मै पाय॥

कबहुँक सुन्दर डोल महि राजत युगल किशोर।
अद्‌भुत छवि बाढी तहाँ ठाढी अलि चहुँ ओर॥

हिलि मिलि झूलत डोल दोउ अलि हिय हरने लाल।
लसी युगल गल एक ही सुसम कुसुम मय माल॥

सुन्दर गलबहियाँ दिये लालन लसे अनूप।
तन मन प्रान कपोल दृग मिलत भये इक रूप॥

गौर श्याम बिचरत पये मनहुँ किहैं इक देह।
सौहैं मन मोहैं ललन कोहैं हरतिय नेह॥

पिय कुण्डल तिय अलक सो कर ककण सौ माल।
मन सो मन दृग दृगन सों रहे उरझि दोउ लाल॥

यद्यपि दम्पति परसपर सदा प्रेम रस लीन।
रहे अपन पौ हारि कै पै पिय अधिक अधीन॥

श्याम बरण अम्बरन को सुकृत सराहत लाल।
छराहरा अग राग भो चाहत नैन बिशाल॥

जो हिमहूँ को नाम सी कोउ उचरत सुख कन्द।
तिहि मुख की निसि दिवस हित चितै रहत रघुनन्द॥

जनक नन्दनी नाम नित हित हिय भरिजो लेत।
ताके हाथ अधीन ह्वै लाल अपन पौ देत॥

प्राण पियारी ललित पग धरत फिरत जिहि ठौर।
ताहि दृगन हित बिवश ह्वै लावत नवल किशोर॥

हार पदिक कुण्डल तिलक कबहुँ अंक तन तीय।
छिन छिन विनही टरे रहत आय संवारत पीय॥
कबहुँ उड़ावत भ्रमर पिय हांकत कबहुँ बयार।
प्राण पिया हंसि गहत कर कहत अली बलिहार॥

रूप-विलास

कुंवर सांवरे गौर हिय हरन दोउ लाड़ले।
नवल रसिक सिरमौर रूप भरे बिहरत रहत॥

अंग राग दै अलिन मिलि किये ललन तन गौर।
इक छवि ह्वै प्रीतम प्रिया ललित लसे इक ठौर॥

कुसुम क्रीट कवरी गुही रंग कुम-कुम मुख कंज।
अंजन अंजित युगल दृग नाशा बेसरि मञ्जु॥

श्रुति कुण्डल भल दशन दुति अरुण अधर छवि ऐन।
हित सौ हंसि बोलहि पिय हिय हरने मृदु बैन॥

भुज गर उर कटि कुसुम मय धरि भूषण पट पीत।
पांयन नव नूपुर कहे ललित लसे दोउ मीत॥

एक चित्त कोउ एक बय एक नैह इक प्राण।
एक रूप इक वेश ह्वै क्रीड़त कुंवर सुजान॥

रीझि चितै चित चकित ह्वै रूप जलधि सी बाल।
वारत लाल तमाल द्विति अंक माल दै माल॥

सब अपने भूषण बसन अपने ही कर लाल।
लाड़िलि अंग बनाइ छवि निरखहिं नैन बिशाल॥

कबहुँ अचानक आय दृग मूरति नवल किशोर।
छल से गहि लीनो मनो निज हिय हरने चोर॥

कबहुँ निहारत नृत्य सुख ललन आइ तिहि गेह।
जहँ चातुर आतुर अली गावत पिय नव नेह॥

कबहुँ तहाँ हिय उमगि दोउ कुवर करत कल गान।
अली रूप रागिनि तहाँ वारत अपने प्राण॥

कबहुँ चितै दोउ परसपर रूप जलधि से गात।
रीझत वारत अपन पौ कहत बिवस ह्वै जात॥

सखियों के वचन जानकी के प्रति

करहि अली रस पान जिनके जीवन कुवर दोउ।
वारहि तन मन प्रान निरखि निरखि नव नेह छवि॥

इहि विधि बिलसै रैनि दिन युगल कुवर रस रासि।
दिव्य अमल आनन्द मय परे प्रेम की पासि॥

समय पाय सिय मिलन हित आइ गुरु पुर नारि।
रहसि कहत चित चकित ह्वै छवि सौ भाग्य निहारि॥

एरी सिय बरणौ कहा तव सौभाग्य अपार।
लग्यौ रहत बहु रूप धरि हरि जाने आधार॥

नयन मीन कच्छप उरज अरु नृसिह कटि ठौर।
कृष्ण केश हिय राम बलि बावन तो सम और॥

कोटि कोटि ब्रह्मांड को एकै ईश्वर जोइ।
तेरी हित जीवन सिये चहे निरन्तर सोइ॥

ब्रह्म शक्र शिव मुनिन के जो जीवन धन पीय।
ताकी तू जीवन जरी शील सागरी सीय॥

ब्रह्म रुद्र सुर गण सबै रहत जासु बस दीन।
सो पिय मुख निरखत रहे सिय तेरे आधीन॥

बात कहत रसकेलि की ढिग गुरजन लजि जीय।
दे निज भूषण नगन मुख कह्यौ मौन शुक सीय॥

सखी वचन राम के प्रति

तब आनन दृग अर्पि सिय आनन जागत तीय।
तेरी आनजु कहत हौ भल बस कीन्हे पीय॥

तेरी छवि देखत बिबस वारि सुसर्व सुसीय।
आतुर चितवत और कुछ इत उत चितवत पीय।।

सिय जानी रानी तुहीं सुख खानी व प्रवीन।
मानी छवि पानी किये रस दानी दृग मीन।।

हौ वारी सौभाग्य पर जनक दुलारी बाल।
चेरी चेरी कौ चहै मुख तेरी को लाल।।

सर्वस अर्पो तोहिं पिय तूं चित लियो चुराय।
तौ तौ बिन उनके अली नहिं कछु सीय सुहाय।।

म्याइ प्रेम मान्दक प्रबल ते प्रिय सुधि बिसराइ।
करि बस बांधे गुनन सों तऊ तुही मन भाइ।।

बंधे एकहू ठौर कोउ सो परबस ह्वै दीन।
सब अंगन लालन बंधे क्यों न होइ आधीन।।

बन्ध्य जीवत रसन सो बंध्यो हृदय बल तैन।
अलि जानकित्वच परस रस रूप बंधे दृग नैन।।

सीता की छवि

अरुण वरण तब चरण नख हैं कि तरुणि शिर मौर।
अनुरागी दृग लाल के बसे आय इहि ठौर।।

तो वक जावक रंग छवि निरखति अलि अनुराग।
मनु मन भावन प्रेम रस पावत पायन लाग।।

गति गायनि पायनि परसि करि नूपुर झनकार।
पिय हिय हरने मन्त्र को करत सुचारु उचार।।

जंघ युगल तब जनक जे अकि ग्रह उत्सव रम्भ।
पिया प्रेम कै भवन कै किधौ सुन्दर बरखम्भ।।

गुरु नितम्ब कटि सिंह मिलि पट गौतमी प्रवाह।
किंकिण मुनि गण अमर निज मन अन्हवावत नाह।।

नाभि गंभीर कि भ्रमर यह नेह निरजगा माहिं।
तामहं पिय मन मगन ह्वै नेकहु निकरचौ नाहिं।।

है अलि सुन्दरि उरज युग रहे नव उरजु प्रकाश।
नवल नेह के फन्द द्वै अतिपिय सुख की रासि।।

लस्यो श्याम तब तन कस्यो कंचुकि बसन बनाय।
राखे हैं मनो प्राण पति हिये लगाय दुराय॥

सिय तेरे गोरे गरे पोति जोति छवि झाय।
मनहुँ रंगीले लाल की भुजा रही लपटाय॥

कुसुमति भूषण नगन युत भुज वल्लरी सुवास।
लालन बीच तमाल के कन्ध पर कियो निवास॥

चकत तरौना भौंह युग अलिबलि दृग मृग जोर।
रदन अमी कण बदन तब शशिरथ पीय चकोर॥

रघुवर मन रंजन निपुण गंजन मद रस मैन।
कंजन पर खंजन किधौं अंजन अंजित नैन॥

नथ मुक्ता झलकत पगे नाशा स्वास सुबास।
उरझि परचौ यह पीय मन मनहुँ प्रेम के पास॥

तब अलि छलकत अलक अकि रस शृंगारिक धार।
श्याम भये रंग भीजि तिहि प्रीतम प्राण अधार॥

सब दिशि कंचन मय करत तव तन जोति अनूप।
मनु झरिझरि अंगन परै अंग रमावै रूप॥

सिय तब रूप अपार पिय पियत न नैन अघाय।
भये चहत सुर राज से सियरै अति अकुलाय॥

रूप भाग्य गुण भार नव योवन मारहि पाइ।
क्यों सहिहै दृग भार तो निरखत नाह डराइ॥

वारि अपन पौ दृगन तैं डरि अलि कछू कहून।
रहत उतारत हीय महिं पियहू राई लून॥

सर्व संवारत बिवश ह्वै तेरी छविहि निहारि।
बारि बारि पीवत रहत बारि बारि पिय बारि॥

तू सिय पिय के रंग रंगी रंगे पीय तव रंग।
रहे अली इक रूप ह्वै ज्यों जल मिले तरंग॥

कबहुँ कहत पुर बधुन सों निज हिय हित की बात
स्वामिनि के गुण गुण सुमरि किंकरि गात न मात॥

प्रभाव वर्णन

धरैं सीय पद ध्यान यहि विधि मञ्जु समाज सुख।
बसहि पीय के प्राण प्रेम प्रगट तेहि भक्ति मैं॥

सिय मूरति जेहि हिय बसी तापहि नैन बिशाल।
उर राने आवत चले पारावत से लाल॥

जनक सुता सम देवता कहो कौन जग और।
जाके बस रघुवीर पिय ब्रह्म रुद्र शिर मौर॥

योग यंत्र तप नेम ब्रत त्याग त्यागिये दूरि।
होय अनन्य सो सेइये श्री जानकि पद धूरि॥

होब अल्प कृशसेव बिनु दीन जानि करुनेह।
सकल सुकृत मिलि सीय पद धूरि भूरि फल देह॥

उमा रमा सरस्वति सची जिहि विभूति के रूप।
जयति सिया आह्लादिनी शक्ति शक्ति गण भूप॥

ए अलि 'नेह प्रकाशिका' बचन हिये मैं राखि।

ध्यान-मञ्जरी

बाल अली जी

सामान्य परिचय—जैन प्रेस लखनऊ मे ई० स० १९०८ मे मुद्रित तथा सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बई वाले द्वारा प्रकाशित। स० १७२६ के फाल्गुन शुक्ल पञ्चमी को यह ग्रन्थ लिखा गया—जैसा नीचे लिखे पद से स्पष्ट है—

सत्रह मै षडविश वरष मास फाल्गुनि।
शुक्ल पक्ष पञ्चमी अमर शुभवार लग्नप्रति।
तेहि अवसर यह 'ध्यान मञ्जरी' प्रगट भई है।
परम सुमंगल करनि बरनि बर मोदमयी है।

विषय—'ध्यान मञ्जरी' काव्य और साधना दोनों ही दृष्टियों से रामावत शृंगारोपासना का एक परम मूल्यवान ग्रन्थ है। विशुद्ध साहित्य की दृष्टि से भी यह प्रथम कोटि की एक विशिष्ट रचना है। ऐसी साफ-सुथरी मुहावरेदार भाषा का प्रयोग, भावना की ऐसी तीव्रता और सूक्ष्मातिसूक्ष्म रस-साधना का विवेचन अन्यत्र दुर्लभ है। यह नि.संकोच कहा जा सकता है कि युगल सरकार श्री सीताराम के ध्यान का ऐसा ग्रन्थ दूसरा है नही, है नही। कनक भवन बिहारी त्रैलोक्यसुन्दर भगवान् राम तथा उनकी प्राणेश्वरी जानकी के रूप, रंग, वेश, अलंकार

का ऐसा सजीव वर्णन इतनी सजीली भाषा मे देखने को नही मिलता। यही कारण है कि शृंगार उपासना के रसिक साधको मे इस ग्रन्थ का विशेष आदर है, और बड़ी श्रद्धा भक्ति और प्रीति से इसका अनुशीलन एव अभ्यास होता है। इसमे कुल २७३ पद है।

उदाहरण—

पहिरै तट हरियार वसन सुन्दर तन सोहै।
प्रतिबिम्बित बिधु बदन कञ्ज लोचन मन मोहै॥

कनक भीत नग लगे सघन जगमगे सुहाए।
मनहुँ अगार अपार नैन पाये मन भाये॥

ह्वै लोचन प्रभु रूप निरखि हिय तृप्ति न होई।
ताते त्यागि निमेष सहस दृग देखत सोई॥

तिन पर पानिप भरे जरे कारन मुक्ता अस।
प्रेमानन्द उदोत होत नयनन अंसुआ जस॥

नग नग प्रति प्रतिबिम्ब युगल झलकत छवि पावै।
मनहुँ भवन निज अंग सुखद विस्व रूप दिखावै॥

तहँ इक परम प्रकाश रत्नमय बर सिहासन।
तहँ सहस्र दल कमल कोटि तम तोम बिनासन॥

लसत चारु चहुँ ओर करणिका अति छवि छाजै।
तहँ सुन्दर रघुवीर रसिक सिरमौर बिराजै॥

सुद्ध सच्चिदानन्द कन्द बर बिग्रह जाको।
देही देह बिभाग आहि सो नाहिन ताको॥

ताही तनकी प्रभा ब्रह्म व्यापक जग जोहे।
घनीभूत जिमि तरनि तेज सब तिमिर विपोहे॥

श्याम बरन तन सीस जरकसी पाग रही फवि।
नव नीरद तै निकसि प्रात जनु प्रगट भयो रवि॥

श्री मुख पर लिय झलक अलक असल में घुघरारे।
रहे घेरि नव कञ्ज मधुप सौरभ मतवारे॥

चित चितवत हरि लेहि सोह अस सावर भौहे।
दृग दीपन के ऊपर परति जनु काजर सोहै॥

केसरि तिलक ललाट पट न छवि परत विशेख।
ललित कसौटी उपर मनहुँ नव कुन्दन रेखै॥

पलक किधौ सिय रूप पिबन के अधरहिं सोहै।
तहँ सुन्दर रघुवीर बरन बरुणी मनमोहै॥

मनहुँ पीय की जीह बरणि नहिं सकति सीय छवि।
सहस सर नय धरि कहन सो चहत नैन कवि॥

पलक मोहिनी पखा बाटि मखतूल छोरहै।
प्राण प्रिया पर करत पवन जनु नव किशोर है॥

बड़रे नैन चकोर जोर सदृश छवि पावै।
श्री जानकि मुख चन्द्र चन्द्रिका पींन जघावै॥

उन्नत नाशा मनहुँ स्वास श्रुति सिद्ध दरी है।
नागरि अंग सुबास रमन को विमल गरी है॥

अग्र सुमुक्त मञ्जु अधर अमृत अधिकारी।
मनहुँ प्रिया मन किधौ कञ्ज पर कवि छवि भारी॥

श्रवण कि भाजन युगल अमल मरकत मणि राजै।
लिये लड़ैती वचन अमृत पीवन के काजै॥

तहँ कुण्डल छवि भरे विविध मणि जड़े लसत है।
जनु युग मदन मयूर नीलगिरि सिखर बसत हैं॥

झलकत ललित कपोल गोल अस सांवर पिय के।
मनहुँ अमल आदरश परम मन भावते सिय के॥

तिन मधि कुण्डल जुगल ज्योति जगमगत लसत अस।
चपल जमुन जल मांझ भानु प्रतिबिम्ब परत जस॥

अधर सुरंग समीप दन्त पंगति नवली है।
जपाकुसुम पर लसत मनहुँ मुक्ता अवली है॥

कोमल अमल अलोल सरस रसना मन मोहै।
मनहुँ कमल दल तुल्य रमा मन्दिर मैं सोहै॥

किधौं चतुर सिय सखी मोद सिय मन उपजावति।
मधुर भावती बात बहत हंसि तिनहिं रिझावति॥

गिरा गंभीर कि गरज होत आनन्द मेह की।
सींचि बढ़ावत बेगि बेलि हिय नव सनेह की॥

हंसत लसत ताम्बूल बदन सों गन्ध सकेलें।
जनु फूल्यो हृद कमल उठत सौरभ की रैलें॥

चिबुकारुण सुखमा अपार झलकत मुखझांई।
मनहुँ कि व्यापक ब्रह्म ज्योति यह वेद न गाई॥

कम्बु कण्ठवर रेख लसत अवधेश सुवन की।
करी जानि छवि सीव लीक जनु त्रय त्रिभुवन की॥

अल्प उदर पर ललित रोम राजी राजत अस।
सुन्दर मूरति रचत दई विधि सूत रेख जस॥

उलही किधौं सिंगार बेलि चह मदन सुहाई।
नाभि कूप के सो सलिल सों सींचि बढ़ाई॥

अकि अतिहीं कटि छीन जानि आधारहि दीनी।
बहुरि सुता पर त्रिवलि बन्ध दैके दृढ़ कीनी॥

जन दुख हरन नितम्ब चक्रवर लसत सुदरसन।
उपरि झलक कटि बसन तासु पर तेज पुञ्ज मनु॥

सोहत जानुर जंघ अंघ्रि सब अंग रस भीने।
मानहु करि कर जुगल नाल बिनु कमल नलीने॥

चरन अंगुरिनख सोह देखि कबि रहै मुख मूदे।
कमल दलनि पर अमल लगी जनु स्वाति कि बूंदे॥

पीत बसन तन लसत परत दृगहू रपटी है।
नव घन पीतम अंग मनहुँ चपला लपटी है॥

किधौं सिय रूप तरंग रंग रंगि पीत भयो है।
छिन न तजत यह जानि प्रेम पथ रसिक नयो है॥

बाम अंग नव रंग भरी जानकि सुठि सोहै।
रूप अलौकिक बरनि कहन को कविवर कोहै॥

जा बिनु रघुवर ध्यान कल्प भरि जो नर करही।
प्रभु नहिं होत प्रसन्न बृथा श्रम करि पचि मरही॥

जा रस की अनुमात्र छीट जाके हिय लागी।
वसीभूत तिहि संग रहत प्रभु रस अनुरागी॥

ता रस मय अंग अंग अमल सुन्दर बर सिय के।
परम उपासक गम्य प्रान जीवन धन प्रिय के॥

जंघ जुगल किधौं रँभ खँभ किधौं सोह धामको।
चिदानन्द घन मात्र ध्यान इक गम्य राम को॥

गुर नितम्ब कटि छीत मनहुँ मृगराज नयो है।
यह गुर सिंह मिलाप बारहे वरष भयो है॥

विविध चरन को सेय बसन कटि तट परिधाने।
मनहुँ कि थिय अभिलाष कोटि तन सों लपटाने॥

त्रिवली अमल अनंग सरित त्रय धार समानहिं।
अकि छवि जलधि तरंग किधौं योवन मोयं नहिं॥

अलप उदर पर अमल रोम राजी छवि पाई॥
जनु उत ते इक सरल अलक की झलकत झांई॥

अकि तकि अमृत कुम्भ चली करि पांति पपीली।
उमगि श्रवत शृंगार धार हिय में कि रँगीली॥

किधौं पिय मन खंजरीट रमत भूवनि नष रेषनि।
किधौं हरि मन बस करन मन्त्र लिखि सूक्षम लखनि।

तिहि मिलि मुक्ता माल लाल गुन पोहि बनाई।
नागरि अंग जगमगति भिन्न रंग सोह सोहाई॥

जनु सरस्वति सुर सरित मिलि रवि जा छवि दैनी।
मय पावन पिय नयन न्हाइ इहि ललित त्रिबेनी॥

अगिनित हार हमेल और उर चौकि जरी मनि।
कनक विविध मणि भाल माल बर कुसुम रही बनि॥

तुग उरोजनि बनी नील कंचुकि कसि भारी।
काम वाज सिर कुलहकि जोवन गजकि अंध्यारी॥

करतल अचल सुहाग भाग की राजत रेखै।
बांचत है नित नाह नेह सों त्यागि निमेखै॥

सौरभ सुरंग सुठौनि लसत अंगुरी अस करकी।
काम नृपति सर पञ्च कली किधौं नव केसरि की॥

गौर चिबुक पर तनक चिन्ह देखियत मेचक छवि।
जनु कंचन के पीठ बैठि रसराज रह्यौ फवि॥

किधौ निश पति निशि सुवन मोद सों गोद खिलावें।
किधौ मधुप सुत कञ्ज गन्ध पीवत न अघावें॥

सुधा सदन के माझ रह्यौ किधौ राहु दन्त चभि।
किधौं रसिक मनि पीय सीय को लोभ लग्यो खुभि॥

अरुण सुधाधर अधर जग न उपमा कोउ तिन सम।
पल्लव जया बिगन्ध कठिन बिद्रुम कहिये किम।।
बर्तुल ललित कपोल नाह मन नैंन बसही।
मनु मूरति धरि रूप भूप के आसन लसही।।

लगन पचीसी

श्री कृपानिवास जी कृत

सामान्य परिचय—१. लगन पचीसी—ज्ञाना अली के शिष्य रामकिशोर शरण जी की प्रेरणा से सेठ लक्ष्मीचन्द छोटेलाल बम्बई वाले ने सन् १९०१ मे लखनऊ प्रिंटिग प्रेस मे छपवाया। इसमे विहाग, सोरठा, काफी, जैजेवन्ती, टोडी, खम्भाच, झिझौटी आदि रागो मे श्री सीताराम की परस्पर प्रणय प्रीति का वर्णन है। यह सवत् १९५७ मे लिखी गई, ऐसा इसकी पुष्पिका से पता चलता है। कुल ४० पद और पृष्ठ २९ है। भाषा मे पञ्जाबीपन है।

विषय—लगन की पीर, लगन की चोट ही इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है। प्रीति से प्रीति का ही शोधन होता है। जगत की वासनाओ मे मन की जो सहज आसक्ति है, उसका परिमार्जन भगवान् के चरणो मे गहरी ममता-प्रीति-आसक्ति से ही हो सकता है। और कोई उपाय है नही, हो नही सकता। पदों मे इश्क, आशिक, माशूक, महबूब, जुल्फ, दरद, लगन, दिवाना, दिल, दिलदार, ख्वाब आदि शब्द प्रचुर मात्रा मे व्यवहृत हुए है। सम्भव है सूफी प्रभाव के कारण ही अथवा उर्दू फारसी का ज्ञान होने के कारण। परन्तु सारी पद्धति आशिक-माशूक वाली है जो ध्यान देने की वस्तु है। बार-बार इस बात का सकेत है कि इश्कमजाजी ही पलट कर इश्कहकीकी हो जाता है। कतिपय उदाहरण—

(१)

सुन री सखी उस इश्क की कहानी।
दिल दरदी दिलदार दरश बिन देखि नजर भर करत दिवानी।
दिन अरु रात बात प्यारे की जात गई पर हाथ बिकानी।
कृपानिवास श्री राम सजन की सूरति हेरि मैं हार हिरानी।।

(२)

कोइ सूनो दरद दिवाने।
बेदरदी सों लगन लगी है चले दरद को घाते।।
दरद उठत बैठत मे दरद हि, दरद हि दिन अरु राते।
बोलनि चितवनि दरद भरी सी दरदमान मुसकाते।।

दरद मेखला पहिर फकीरी अब सुख होय कहाँ ते।
दरद गये से कौन काम की दरदहि भरे कुशलाते॥
दरद वंदीनी दरद सुनावा दरद हमारे हाथे।
कृपानिवास दरद सों जीवनि ये ही लगन की हाते॥

(३)

लगन निगोड़ी मेरे पैड़े माई क्यों परी री।
काटत कलेजो काती धरकत निसु दिन छाती।
नाथी कर के हालो मानो तांती शूली पै धरी री॥

नाहिं नगर में न्यावरी कोइ नेही जन को।
बंधे लगन के फंदन में उत करत कैद फिर मन को॥
मृदु नवनीत अनल धरतावत कुलिश किठन नहिं छेरै।
मेरे मृगन के वान चलावे गज रिपु उर नहिं नेरै॥
भ्रमर बास बसि बसै केतकी पुनि कुस कंटक फोरे।
भरे लगन की सारग रस सौ फिर क्यौ सारस रौरै॥
लगन पेंच सो खेच लियो मन फिर हा हा क्यों कूकै।
लगन अगन जर भय कोयले फिर अहिरन क्यों हूकै।
प्रीति पाय भर के फिर कैसे बिरह बलाय बढ़ावै॥
करै घायल प्यारी चितवनि लगि दुग्गि क्यों जहुर लगावै॥
मित्र सुधाकर अग्नि चबावे लगन चकोर बिचारै।
कृपा निवास निशाफल बिन नित नेही हाय पुकारै॥

लगन निबाहे ही बनि आवै।
भाव कुभाव खवाब जान दे नेही नाम कहावै॥
दृग अटके मन सौंपि दियो जब पीतम हाथ बिकावै।
अपनो मन न रह्यो भयो परबस कैसो ही न्याव चुकावै॥
तन दहु द्रवन पवन हंसि उघरे तदपि लगन ललचावै।
शीश उतारि चरण ठुकरावै तब निज भाग सिहावै।
अवगुण बहुत सुगुण नहिं रंचक तौ उनके गुण गावै।
नेहु निसोत नवल प्यारे को लाज दाग क्यों लावै।
कौड़ी प्राण गये कछु हानि न लाल रतन जो पावै॥
कुल सुख मुक्ति सुजात जान दै लगन न तनक गवावै।
कृपानिवास प्रीत प्यारो को छोड़िन लोग हंसावै॥

चोट लगी है री राम लगन की।
प्राण सुध न तन सुध न सुध न रही बदन प्रगट कर प्रीत अगन की।
औचकि उचकि चषन मग पैठी मूरति अति बर बरण गगन की॥
छीन सुथान बिरान करी मोहिं निपट अटपटी बान ठगनि की।
लाज जरी मरजाद टरी सब छाय परी अनुराग दृगन की।
कृपानिवास उसास हाय के पगन कहाँ जहाँ पगन दगन की॥

कोई प्यारे फकीर दिवाने।
इश्क अमल दो प्याला पीवत आठ पहर मस्ताने॥
घूमत खरे चलति मतिवारे बोलत मन बौराने॥
कहर मेहर में सदा खुशाली दिलभर देखि लुभाने॥
चस्म भरी सूरत सांवलदी साजन हाथ बिकाने।
गई हंसै रौवे बर रावे चुप ज्यों रहत अपाने॥
वे महिरम घर बार के सब हंसि हंसि दै दै ताने।
कृपा निवास हुए दुनियाँ बिच कोइ घायल पहिंचाने॥

लगन निगोड़ी मेरे पैड़ै माई क्यों परी री॥
काटत कलेजो काती धरकत निसु दिन छाती।
नाथी कर के हाल्यो मानों तांती शूली पै धरी री।
जहर मिलावत नीकै नई नई बात बनावति।
खैचति कठोर हलावति बंधुवासी में करीरी।
कुल शुद लाज भागी दुख भर पीर जागी॥
अंदिया लगोही लागी महा विष सों भरी री।
कृपानिवासी कही घर की न बन की भई गई।
नहिं वारे गरने प्रीतम प्यारी संग गरी री॥
माई काहू के न लागो हेली चोट लगन की।
सीरी सीरी लागै आगी धिरी धीरी सुलगत पागे।
फिर जागै भारी जरनी अगिनि की।
जरे पै लगावत लोन बरजत चारा कौन मौन
धरि मोहन बैठे जानत न मनकी।
जानी को जनाये जी की कहत सराहे नीकी
पीकी रुचि ऐसी ही की फीकी कहै मन की।
लगति न मानी बैरनी निपट कठिनता अहिरनता
पुनि कुटावती मेहरन दुख सुख घन की।

तीखी तीखी छैनी छौलै फिर फिर फूके तौले
पर हांथ बेचति मौले जौले चेरी जिनकी।
करखनि फन्दनि बाधी लै धन ब्रत नियमादि
लगन लहर उदमादी दादी है ठगन की।
जब लगि लागति नाही तब लगि कुशल विहाई
कृपानिवास बिकाई पगन द्रगन की।

लगन निगोड़ी लगत सुखारी फिर पाछे दुखदाई री।
अखियन सो मिल गढ़ मे पैठे सब घर ले अपनाई री॥
लाज मर्याद नेम ब्रत धीरज थाने सबल सिपाही री।
छीनै शस्तर पकरि निकाई आपु करे ठकुराई री॥
मन सों भूप सुबस कर गर्वित फेरे देश दोहाई री।
आपु चहू दिशि निडर किलोलत नेही को दुबराई री॥
लड़ुवा के मिस देत धतूरा बहुत करै मितताई री।
कृपानिवास प्रीत बश स्यानी को नाही बिकलाई री॥

लगन जाल है काल प्रगति कहो उलझी किन सुरझाई री।
सबंस खोइ होय मन बिहरनि जिन यह लगन लगाई री॥
मति चेतन बवरी करि राखे नेही मन बिकलाई री।
यौवन जुरमे जाय मिलै जनु सीरी पवन सुहाई री॥
बाढै रोग कहा कहौ सजनी भटकि मरै तनुबाई री।
घन लौ गरजनि लागति प्यारी मोर सुमन ललचाई री॥
पावै मारति औलनि गोलनि सो जानी निठुराई री।
देत जुवॉ क्यों दॉव पहिल की फिर लूटकुल तल गाई री॥
करत फकीर अमीरन के सुत घर घर भीख मंगाई री।
कृपानिवास परी गर मेरे दुख दो भा सुख दाई री॥

लगन गरीबी गर्व गमायो भई दीन मतिहारी री।
चलिन सकौ थकि द्वार सजन के सुख दुख चाह बिसारी री॥
काम क्रोध मद मोह बिसर गये काज लाज कुल डारी री।
मातु पिता सुत बन्धु मित्र सों घरबर तजि भई न्यारी री॥
कर्म करो नहि मर्म भुलावो योग भोग जग टारी री।
प्रीतम बिन उझको नहि औरन गांठी लगन हमारी री॥
मन की दौर जहा लगि सिमटी अटकी इक सों यारी री।
जने जने सो प्यार करै सो जन्म जन्म की ख्वारी री॥

औरन को आदर विष जानों सुधा सजन किरकारी री।
और मिले घरदौर न मिलि हो प्रीतम पौरि पुकारी री॥
हा हा खाई हाइ फिर हो हो हारि हारि हिय हारी री।
कृपानिवास उपास राम सिया तन मन धन सब हारी री॥

लगन जरी कर प्यार सुघाई सूघत भई दिवानी री।
लहर चढी कछु ख्वाब जनाया दिल भर गर लिपटानी री॥
लपटनि कपट निपट दुखदाई तवाबुद ज्यो पानी री।
जहर कहर मे देत सुन्योरी दियो मेहर दिलजानी री॥
जानि पियो मन सजन हाथ को झीने स्वाद लुभानी री।
लालन के घर लगन कमाई लग बारनि उरझानी री॥
जौन लगे चित कौन करे कृत नेही यह गुजरानी री।
कृपानिवास दुकान लगन की स्यानी कौन बिकानी री॥

मिली तन प्यार सो प्यारी खुली मन इश्क गुलजारी।
सखी सों श्याम की बाते । कही है जो हुई राते॥
मिला था ख्वाब मे अलमस्त धरा था रीझ छाती दस्त।
उठी मैं चमक मन बहरमत देखा सेज का मरहम।
हुआ मन हाल दरहाला मिलै जालम जुलुफ वाला।
न जानों चश्म दु.खदाई खुशी मे डाल फिकराई।
लगे बेदर्द मासूका परी मै दर्द बस कूका।
कृपानिवास दिन रतिया लगी है राम की बतिया॥

लगन लगी जब जोर पियारे और मिलन मे लहना क्यारे।
दिल मिला दिलदार के दिल सो और मिलन मे लहना क्यारे।
लाख छोड़ खाक तन मे पाक हवै मन चहना क्यारे।
कृपानिवास राम आशिक ह्वै फेर दुनिया मे रहना क्यारे॥

अनन्य चिंतामणि

श्री कृपानिवास जी कृत

अनन्य चिन्तामणि

हस्तलिखित प्रति 'प्रमोद रहस्य वन' अयोध्या मे प्राप्त। आरभ मे सभी प्रकार के साधनों के फल का निर्णय किया है। यम, नियम, आसन, षड्चक्रभेदन तथा अमृतपान का वर्णन है। फिर ज्ञान-वैराग्य का उल्लेख है। फिर द्वैत, अद्वैत, विशिष्ट मत-मतान्तरो का निर्णय है। योग, ज्ञान

आदि साधनों से माया नही छोडती। फिर पञ्च भाव और पञ्च रहस्य का प्रकरण है। इसके उपरान्त 'स्वसुख' और 'तत्सुख' का प्रसग है और उसके जीने का वर्णन है। हनुमान जी गुरु है। उनके सूक्ष्म रूप का नाम कृपा महचरी है। इसके अनन्तर 'प्राप्ति' का आनन्द विधान है और स्थूल-सूक्ष्म का विवेचन। इसके पश्चात् तमो गुण नाश का उपाय वर्णित है। इसके बाद भूत प्रेत, देवादिको की उपासना का फल है। फिर 'अनन्य' का लक्षण है। 'अनन्यता' मे श्री हनुमान जी उदाहरण है। पट् प्रकार की अनन्य निष्ठा के द्वारा ही इष्टि प्राप्ति होती है। जैसे चातव स्वाती, अनन्यता के नामानन्यता, वेशानन्यता, इष्टानन्यता, वागनन्यता, प्रसादानन्यता वृत्ति अनन्यता।

ऐश्वर्य और माधुर्य मे ऐश्वर्य के आस्वदन के उपरान्त ही माधुर्य का आस्वादन होता है इसके उपरान्त है 'युगल स्वरूप निर्णय'। युगल स्वरूप मे सीता-राम-तत्त्व का भाव निरूपण है इसके अनन्तर विश्व रूप की नित्यता का निरूपण है। इसके अनन्तर अनन्य शरणागति के स्वरूप का निरूपण है। आदर्श भक्त के लक्षणों मे प्रीति, प्रतीति, अचाह, अशकाशील, सचाई, सरलता सुबंक, गुरुमुख, दृढता, सुवद, सवाद (साराहरी) चतुर, सत्यवाद, सुरमिकता, रोचकता, अनालस, आनन्दी, अनसोची, दयालुता, प्रतिपालक, उदार, कृपालु, अमानी, मानद, दानी, अमद अकोही, एकानी, अदभी, भावुक, निर्मलता, त्यागी, अनुरागी, प्रिय, मोहममता-शून्य, मुक्त है विशेष विस्तार से इन लक्षणो का वर्णन है। 'शृगार' के सुख का वर्णन अन्त मे विस्तार से वर्णन है। विरह की दस अवस्थाओं का वर्णन है।

रामरसामृतसिंधु

अन्त मे 'परा भक्ति' आती है। कुल मिला कर १६ प्रवाह है, आदि।

पूर्वरचित भगवान् राम के चरित्र का विशेष वर्णन—हनुमान जी जनकपुर मे पुष्पवाटिका मे साथ है। चित्रकूट प्रसग मे किशोरीजी के आग्रह पर वन-विहार के लिए चले है देवताओ ने वहाँ प्रार्थना की कि दुष्टो का वध कैसे होगा ? कलह की वार्ता नही। केवट का प्रसग भी मिथिला जाते ही आता है।

(हस्तलिखित प्रति श्री हनुमत्-निवास (अयोध्या) मे महात्मा श्री रामकिशोर शरण जी के निजी पुस्तकालय मे प्राप्त।)

खुले पत्रों मे

प्रथम	प्रवाह	७२	पन्ने
द्वितीय	,,	४२	,,
तृतीय	,,	९४	,,
चतुर्थ	,,	२४	,,
पंचम	,,	२८	,,

रामभक्तिके रसिकोपासक

श्रीआण्डाल (रंगनायकी)

स्वामी श्रीअग्रदासजी

श्रीरामचरणदासजी महाराज

स्वामी श्रीयुगलानन्यशरणजी

गीताप्रेस, गोरखपुर

षष्ठ	प्रवाह	२०	पद्य
सप्तम्	,,	१८	,,
अष्टम्	,,	२४	,,
नवम्	,,	२४	,,
दशम्	,,	२१	,,
एकादश	,,	३२	,,
द्वादश	,,	१४	,,
त्रयोदश	,,	१४	,,
चर्तुदश	,,	२४	,,
पचदश	,,	२३	,,
षोडश	,,	११	,,

प्रत्येक प्रवाह मे अनेक तरंगे है। छद अनेक प्रकार के है--वैताल, हरिगीतिका, मनोरमी, कवित्त, दोहे, चौपाई, सोरठा आदि है।

'रामरसामृत सिधु' मे रसिको की उपासना तथा सुख का स्वरूप के ही विशेष रूप से वर्णन है। युगल राम विलास के आह्लाद, सुखानुभूति का विशेष वर्णन है। आठवे प्रवाह में चित्रकूट का लीला-विहार और रास का वर्णन बड़ा ही भव्य है। चित्रकूट मे योगमाया के चमत्कारी प्रभाव से सभी देवता सखीरूप मे रास मे सम्मिलित होते है। युगल महारस के पिलाने-वाले परम गुरु श्री हनुमत लाल जी है।

रास-पद्धति

महाराज कृपानिवास जी कृत

सामान्य परिचय--लखनऊ के प० घासीराम के देशोपकारक प्रेस मे सन् १९१० मे मुद्रित तथा सेठ छोटे लाल लक्ष्मीचद द्वारा प्रकाशित। इस ग्रथ मे कुल पृष्ठ ५५ और लगभग १५० पद है जो भिन्न-भिन्न रागो मे लिखे हुए है।

विषय--ठीक श्रीमद्भागवत की रासपचाध्यायी के आधार पर श्री राम रास के प्रसग का वर्णन हुआ है। लगता है श्री कृपानिवास जी ने ठीक राधाकृष्ण रास के आधार पर सीताराम रास का प्रकरण बाँधा है और प्राकृतिक शोभा का वर्णन भी अपने ढग का अद्वितीय है। भाषा साफ-सुथरी और कई स्थानो मे पजाबी पुट लिये हुए है। फिर भी इस प्रकार राम-रास का सागोपाग वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। रसिक साधना मे कृपानिवास जी के पदो का बडा सम्मान है। अवश्य ही ये अनुभवी रासरसिक सत थे। श्री जानकी जी का मान-वर्णन करने मे कई अपूर्व सफलता मिलती है।

राम रस रंग सों संग सिया प्यारी रास मंडल मधि सोहै।
बनि ठनि रूप सिरोमनि सोहनि कोटि मदन रति मोहै॥
जैसी ये सरद निसा छकि चांदनी जुगल चंद छबि जोहै।
कृपानिवास विलास मगन मन कहनि कुशल कवि कोहै॥

नवल रसीले लाल रास रस में खरे।
सहचरि अंसनि धरि भुज झमकनि कबहु ठमकि पै गलै धरै।
रूप झौक झुकि परति सखी जन झमकि धरै मद में भरै॥
बंक बिलोकनि चपला चौकनि कोमलता छिन में न हरै।
अलिअवलि छबि कलित चहों दिस कवि को मिस उपमा न सरै।
कृपानिवास श्री जानकीबल्लभ नैननि तें न टरै।

निरषि छबि अटकि रहे दृग मेरे।
छकित छबीली छबिन छबीले मगन रसीले हेरे।
मंद हसन टुक लसन दसन की कसन परै उर झेरे।
तिरछी झांकनि बड़ी बड़ी आँखनि लाखनि के मन घेरे।
रास बिहारी बिहारनि प्यारी घूमत मदन घुमेरे।
कृपानिवास श्री जानकीबल्लभ नीके नैन अएरे॥

निर्तत री रंग भीने रास में।
मदन गहल मद महल बिहारी दोउ गरबहियां दीन्हे॥
उघटत छंद प्रबंध गीत गति नटवर कला प्रवीने।
नूपुर नवल नवल मुख गावत तान मधुर स्वर झीने॥
अलकनि हलनि चलनि पलकनि की मलकनि अंगन गीने।
कृपानिवास नवल कुंजनि रम सिय जू राम नवीने॥

रंग भरे राम रसिक रसबस करि प्यारी रास भवन रस माते।
सुरति बिहार उमंग अनंगति अंग अंग सरसाते॥
किंकनी नूपुर वलय मुखर कर लोचन रति इतराते।
कृपानिवास बिलास बिलासी सुंदर संग सुहाते॥

हरि बिन को जाने मेरे मन की।
आठ पहर मोहि कल न परत है प्यास बढ़ी दरसन की।
लगन चोट लागी तन बल की हलकी चोटै घन की।
कृपानिवास श्री राम रसिक अब सुधि लीजै बिरहन की॥

उर में उठत रैन दिन हूकै।
लगन अगनि जरि भई हो कोयला जरी बरी फिर फूकै॥
मरम मारसों मरी रही मैं नई मार नहिं चूकै।
कृपानिवास श्री राम रसिक सुनि मो बिरहनि कूकै॥

द्रुम द्रुम बूझ थकी बन हेरत प्यारी बैठी आय पुलनिपर।
तरु बिन कल्पलता मानो मुरझी झुकि झुकि परति सिथल धर॥
सखि जन धारि संभारि पबन ढर श्रम कण हर कोई गहि पट कटिकर।
कृपानिवास कहति कहा दुरिया राम रसिक मेरो मनहर॥

मेरो मन हरी लीनो हेली रसिक साँवरे चोर।
चतुर दृगन सों मिलि उर धसि करि कसि कसि लगनि मरोर॥
हसि करि बसि करि रसि करि मो सन लाज सबनि की रोर।
कृपानिवास राम छैला के फेल फसाई मे जोर॥

प्यारी ऐसे अन बोलनो कबहुं न कीजिये ललन मनावै हंसि बोलिए।
अपने चित सों प्रीतम के चित नित नयो हित क्यों न तोलिए॥
बिना दोष कहा रोप बढ़ावो रग मे विष नही घोलिए।
कृपानिवास सिया मन अटके पिया घूंघट पट खोलिए॥

पिय प्यारी बसि प्यार राम रस झुलेरी।
रहसि हिंडोरै लसन जुगल छबि जन उपमा झूलैरी।
चंद्रकलादि झुलावति गावति फरकत अंग दुलैरी।
कृपानिवास जानकीवल्लभ निरखि जुगल छबि फूलैरी॥

राज कुंवर मेरे संग लग्योरी।
जहां जहां जाउं तहां तहां लखाउं प्रेम बिबस रस रहत पग्योरी॥
सोय रहौ स्वपने चमकावै जागि उठौ तो मृदु मुसकावै।
हसि हेरों तब फूल मगल तन रोस करौ तब हाहा खावै॥
बेस दुराय दुरो परिबन में दिष्ट चुराय बदन पट खोलै।
पग परसत अपराध छिपावत मन हरनी मधुबीनी बोलै॥
भवन छिपों खिरकी खरकावै पाय अकेली अंक भरै री।
सरजू जाऊ न्हान मिस पीछै आयसु ना न्हान कौतिक करेरी॥
हारिब सों गृह आगे मेरे गुन गावै हसि बीन बजावै।
कृपानिवास राम रसिया वर रसिकनि हित नित रस बरषावै॥

उरझ रहे वा रसि कर पेचन सों।
राम रसिक पिया प्यारी के।
नाहिं संभारत रस मतवारो बस मे पन्यो मतिवारी के।
नासा चढनि बिलोकनि तिखी भीज गये रसवारी के।
कृपानिवास मान मनोरथ उघरत प्रान बिहारी के।
मोहि सोवन दै रैन रही थोरी प्यारे।
सब निस सग अनंग रमाई अंगनि आलस भारे।
प्रीतम प्रीत की रीत न जानों स्वारथ मीत निहारे।
कृपानिवास सिया सु कुवारी हस कछु नैन ततारे॥

भावना-पचीसी

कृपानिवास कृत

कृपानिवास जी कृत भावना पचीसी सिद्धान्त और साधना की दृष्टि से एक अनमोल पुस्तक है। संपूर्ण ग्रंथ दोहों मे है। आरभ मे श्री जानकी जी की सखियो के नाम और उनकी सेवा तदनन्तर श्री रामजी की सखियो के नाम और उनकी सेवा का विवरण है। पहला १२ दोहो मे और दूसरा २१ दोहो मे है। इसके पश्चात् प्रात शृगार का वर्णन भोग, षोडशोपचार पूजा तथा फिर भावना अर्थात् मानसिक पूजा का प्रकरण है।

श्रीजानकी जी की सखियाँ और उनकी सेवा

प्रथमहि श्री प्रसाद जू, सकल सखिन सिरमौर।
जिनके कर विहरत सदा, दपति श्यामल गौर॥

चन्द्र कला गुन आगरी, रहस विचक्षन जान।
सुरुचि लाडिली लाल की, सेवत समै समान॥

विमला विमल विहार मै, रहत सदा लवलीन।
रहस संपदा लाल की, प्रगटति चाह नवीन॥

मदन कला रस मदन को, सदन जुगुल रस हेतु।
वदन प्रशसा को करै, अडिग भाव रस खेत॥

विश्व मोहनी एक रस, मोहि रही पद कंज।
सिय वल्लभ की माधुरी, भरी धरी दृग पुज॥

उर्मिला उर अति सुख लसै, पिय प्यारी अनुकूल।
जुगुल वदन निरखत खिले, चन्द्र कमोदनि फूल॥

चम्पकला रस चौपकी, मानौ भरी भंडार।
लाल लाडिली सुख सदा, देखत नित्य विहार॥

रूप लता विधि रूप की, पर्म उपासक एक।
राम जानकी महल की, टहल जु करन विवेक॥

अष्ट सखी ये मुख्य है, ओर सखी कह अन्त।
इनकी कृपा कटाक्ष ते, शुद्ध भये बहु जन्तु॥

जो चाहैं सिय लाल की, रहस माधुरी केल।
तौ सब आस विहाय कै, कीजै इनकी मेल॥

श्री प्रसाद प्रमाद करि, अष्ट सखी गुन गाय।
अलि निवास जिनकी मया, महल माधुरी पाय॥

प्रथम पाठ इनको करै, पीछै और कराय।
रहसि माधुरी उर फुरै, सहल महल कौ जाय॥

श्रीरामजी की सखियाँ और सेवा

प्रथम चारु शीला सुभग, गान कला सु प्रवीन।
जुगुल केलि रसना रमित, राम रहस रसलीन॥

हेमा कर वीरी सदा, हसि दंपति मुख देत।
सपति राग सुहाग की, सौभागिनि उर हेत॥

क्षेमा समै प्रबन्ध कर, वसन विचित्र बनाय।
सुरुचि सुहावन सुखद सब, पिय प्यारी पहिराय॥

सखी पद्म गंगा सुभग, भूषन सेवत अग।
सदा विभूषित आप तन, जुगुल माधुरी रग॥

अलि सुलोचना चित्रवित, अंजन तिलक संवारि।
अग रासि सिय लाल के, करि जीवति शृगार॥

सखी वरारोहा हरषि, भोजन युगल जिमाय।
प्रान प्राननी प्रान सुख, राखति प्रान लगाय॥

लक्षमणा मन लक्षगुन, पुष्प विभूषन साजि।
बिहसि बिहसि पहिरावही, सिय वल्लभ महाराज॥

सुभगा सुभग सिरोमनि, सेज सोहाई सेव।
सिय वल्लभ सुख सुरति रस, सकल जानि साभेव॥

अष्ट सखी ये लाल की मुख्य जनाई जानि।
अलि निवास इनकी मया, महल माधुरी पानि॥

सेज सदन मनि सेज रचि, समय सरिस सुख साज।
हसि जनाय पधराय दोउ, सुमिरहु सुरति समाज॥

पिअ प्यारी मुख रस रसै, वसै सखी चहुओर।
दृग भोगी तत्सुख लहै, कृपा रहसि मतिवौर॥

भोजन भोग विहार सुख, सद्गुरु सेस अहार।
सदा भावना भाव वस, समै समै अनुसार॥

सुरति प्रान दृग ध्यान धरि, जौ लौ प्रीति विहार।
सुरुचि समुझि सामीप झुकि, पुनि सब सौज सम्हार॥

लाड सुभोग जिमा वही, आर्त्त आरती साज।
लाड लडावात सेज सजि, पौढावै महाराज॥

जुगुल चरन सेवै सुखद, दृग प्राननि सो लाय।
कोमल पद प्रीतम प्रिया, कोमल करमन भाय॥

सदा भावना लीन यह, मीन जथा जल प्यार।
और साधना सब तजै, भजै कृपा सुख सार॥

भोग पचीसी पर्म सुख, पढि निति प्रीति प्रकास।
भाई मन पाई रसहि, गाई कृपानिवास॥

श्री कृपानिवास जी की

पदावली

श्रीज्ञाना इसी के शिष्य महात्मा रामकिशोरशरण जी की प्रेरणा से छोटे लाल लक्ष्मीचद बबईवाले ने प्रकाशित किया। इस सग्रह मे लगभग चार सौ पद है और प्रात जागरण से ले कर शयन तक के भिन्न-भिन्न समयों और लीलाओं के पद है।

रसिकोपासक कवियो मे कृपानिवास जी विशिष्ट पद के अधिकारी है। इन्हे उतने हलके ढंग से नही लिया जा सकता जिस ढग से आचार्य शुक्ल जी ने अपने इतिहास मे लिया है। अपने निजी आग्रह (दुराग्रह ?) के कारण भी कभी-कभी उत्तम से उत्तम वस्तु कुरूप और अभद्र दीखती है। इसीलिए यह वैज्ञानिक एव निष्पक्ष दृष्टि नही कही जा सकती। अस्तु श्री कृपानिवास के पदो से स्पष्ट है कि वे इस रस रहस्य के एक परम अनुभवी सत एव सफल कवि है। भाषा बहुत ही सुथरी, भाव बड़े ही सरस।

उदाहरण—

सुभग सेज सदन रंग राजत सियलाल संग रस अनग जीत जंग प्रात लसे प्यारे।
मन स्वरूप मोहनिशि चंद किधौ रोही मि ललनि छटा सोहा सिसुदर उपहारे॥
दोऊ लाल गसि रसाल प्रातकाल नहि संभाल उभै चद्र प्रेमजाल सोवै मतवारे।
चहुओर सखि चकोर उझकै छबि ठौर ठौर चमचमात नैन भोर शर्द रैनितारे॥
छूटे दरि परद बन्द अगर सुरभि अति सुगंध गुजत अलिबृद बृद सुख समन्द सारे।
सकल सखि चौप चमकि चाहि छकित रस कि रहति बार उझकि उछकि द्वार लगि सभारे।
औसर सुख समझि खरी रसविनोद विफुलभारी आलस तन देखि डरी मधुर भाव पारेउ सिमटी।
श्री प्रसाद आगे सब समाज पाय लगे कृपानिवास भाग जगे पलक कछु उघारे॥
जागे जब युगुल लाल आलस बसि छबि रसाल निरखि दृगनि सब सिहाल प्रात सुख बधाई।
बिथुरन कल कुंचित कच सुमन विविध लसत सुरुचि उडगण लै तिमर कल चंद शरनि आई।
आलस मद अरुण नैन घुरनि तन पंकज अपन लैन वास भ्रमर माल भृकुटी सुधराई।
बदन मदन मद सु निधन रदन छदन बिंब कदन मगन अग मुरत तुरत सुरति मुख जभाई।
दोऊ जन भुज अंशधरी शिथल अगालिंगन करी मनु तमाल कनक लता शाखा लपटाई।
दशन छद कपोल कलित चुबनि शशि मध्य ललित मनहुं सुरति शारद की प्रगटी चतुराई।
नखन चिह्न श्याम अग शोभा मथि अति अनंग मनु तमाल ललमुनी रैनि की बसाई।
बिगलित गलमाल ठरनि मुक्ता झरि सेज परनि स्वाति बूद प्रात शरद धरति सिधुमाई।
सारी शिर पैच ढरे विविधि बसन फरकि परे परस्परनि प्यार भरे रति शृगार छाई।
बर उरोज नगन खरे देखि दृगनि श्याम हरे मदन कलश सुरस भरे लालन ललचाई।
मधुर बैन श्रवत मैन अलसानी अलि चलति सैन रैन की कमाई प्रिय नैननि बतराई।
गोर रग श्याम रग शारद प्रतिबिब गगनि कालीदी जनु दीप दाम श्याम गौरताई॥
प्यार निरार भरि सुमोद करि बिनोद पिया गोद रगरसिकरैनि क्रिया साधि अंक ल्याई।
प्राणपति सुजीव निरस पीवनि अनुराग भरी हरी रूप सुखमा सुख पाय तन समाई।
कछुक लाज सुरम काज निरखि निकट सखी समाज छबि बिराज नवल दोउ मुरकि दृग नवाई।
श्री प्रसाद जानकी जु बल्लभ सुख दानकी जु कृपानिवास प्राण की जु पारस निधिपाई॥

रंग रगीले दोउ सोय जगेरी। ✓
बिथुरी अलकै अलसी पलकै रंग सनेह सुरंग पगेरी।
मद रस छके बिराजत लालन ललना के रस रंग ठगेरी।
कृपानिवास श्री जानकी बल्लभ सखियन के दृग निरखि परोरी॥

नवल छबीले दोउ सोय जगेरी।
अकथ कथौं कछु छबि सुघराई।
गौर श्याम भद्र श्याम गौरि मैं बिंवतनु तरत बरन पर छाई॥
दृग अंजन अधरन पर सोहैं कुच केसरि पिय उर लपटाई।
कचबर पेच औ चिरति झुलन बेसरि सरस समै बलखाई॥
सुरति समर बरबीर बिजय परलोचन घूमत युत अरुनाई।
कृपानिवास विलासनि सिया जू वल्लभ सों मृदुकहि मुसकाई॥

भोरहिं छबि प्रीतम के मन भाई।
सब रस भरी उमंग बढ़ावति हंसि हंसि लाल जगाई॥
अंजन खंजन सुकर बनावत बसन सुगंध भिगाई।
चोलसकेर सुभग तजु बैठी कुच दै पानि लजाई॥
पोछत बदन मदन रस सरसे प्रीतम प्रीत सवाई।
कुच कुमलाई कली उठावत चुटकी चटक जभाई।
अलक संवारत पलक उधारत सकल सौज अलसाई॥
पिया की गोद बिनोद बिहारनि चमकि अंग अंगराई।
नैन उघारि सखिन सों बोलति लालन सों मुसक्याई।
कृपानिवास श्री जानकी प्यारी प्यार प्रिया उर लाई॥

सखी कछु कहि नहिं जात री।
जब देखौं तब लाल लालची छिन छिन हाहा खात री॥
रस लंपट संपुट कर मोही भोई मधुरी बात री।
जो बीती चितमित नहिं पइये हित हिय मांझ समात री॥
सुख सों दुख दुख सों सुख जानों हाहा लाल सिहात री।
कृपानिवास बिलासनि चंचल अंचल दै मुसक्यात री॥

कुछ अकथ कथा है आजु की।
हंसि प्रीतम चोली कस खोली बोली नाहिंन लाज की॥
बोलत हित चित यतन उपावै गावै बिनय स्वकाज की।
अंक निशंक बंक करधारी हारी हाहा हाज की॥
भुज भरी लई दई दई करिते पति पोषी रतिराज की।
कृपानिवास बिलास रमाई भाई सुरति समाज की॥

पिय के नैन प्रिया छबि उरझे सिया दृग पिय छबि लागे।
मनु द्वै रूप सरोवर मीनन सदन पलटि सुख रागे॥

प्रीतम प्राण बसै प्यारी बश प्यारी पिया के आगे।
कहि लालन मैं सर्वसु तुम्हरो मैं तुम्हरी बड़ भागे।
तुम्हरी मया बड़ भाग बिलासनि बिलसहु सुख मन मांगे॥
लाल रावरो हित सु अमोलक मन सब हेतन त्यागे।
तुमसों लाल निहाल चरण लगि मानों भाग सुभागे॥
राज रावरी वस्तु प्राण तन पगे रहो जिमि पागे।
यह सुख सुधा सदा कोई पीवै कोई भूले विष दागे।
कृपानिवास प्रसाद स्वाद सों प्यायो जन निशि जागे॥

महारस भीनी रंग भरी जोरी।
सिय अनुराग पगे पिय सुन्दर पिय सिय राग निबोरी॥
सिय की मया बिचारत घूमै पिय की रहमि समुझ मन मोरी।
मिली श्यामता गौर युगल तन मृग मद केसरि घोरी॥
छबि की छटा सी दमक दमकनि दामिनि हंसनि मनोरी।
रस आनन्द मधुर झर इक रस सखि मन भर सरसोरी॥
गर भुज माल सु लाल लड़ावति अली लड़ावति प्रिय लड़कोरी।
कृपानिवास श्री जानकी बल्लभ मोहिय ते न कदापि टरोरी॥

सदा चिरजीवो रंग भरी जोरी।
सदा बिहार करो रंग मंदिर रंग किशोर किशोरी॥
सदा सुहागनि के अनुरागनि रंगे रहो बड़भाग बटोरी।
पिय को प्राण बसो सिय सुन्दरि सिय मन श्याम बसोरी॥
पिया की चाह सुचात्रि कलों रहो सिया की मया स्वाति बरसोरी।
सिय मुख चंद सुधारस द्रवो नित पिय की चांदि चकोरी॥
हमरे नैन प्राण की सर्बसु अधिक अधिक सुख रस सरसोरी।
कृपानिवास उपास महल की टहल लगी सो लगोरी॥

सिय राम जु को ध्यान मेरे निशिदिन रह माई।
युगल बदन सुखमा सदन मदन अति लुभाई॥
क्रीट मुकुट चंद्रकोर जटि मणि मुक्ताई।
कुंडल कल करनफूल झूमक झुमकाई॥
भाल युगल दुतिय चन्द्र श्री अमन्द छाई।
बिकट भृकुटि मदन चाप चारि चरि चढ़ाई॥
युग कपोल अलक झलक मेंचक बलखाई।
मनु दुरेफ मालकंज मकरंद लुभाई॥

खंजन दृगन मैन दैन मैन मद चुराई।
नवल नथ सुहाग युगल नासिका सुहाई॥
अधरारुन बिंब लजित दशन पांति पाई।
कल कपोल बोल मधुर सुमन मनु झराई॥
चिबुक बिंदु मिथुन मिंदु लसत श्यामताई।
जनु मिलाप कियो राहु वसी मित्रताई॥
सुभग भाल पदिक हार कंठो तिमनाई।
ग्रीव ललित सीव सुभग भूषण सघनाई॥
श्याम भुजा अंगदादि कंकनि जटनाई।
गवरि भुजनि वल यादिक भूषण सुघराई॥
जावक युत जान हस्त पान अरुनताई।
पुष्प लिये गौर श्याम बीरी जु बनाई॥
उर सुगन्ध कर्पूरादि मलय केसराई।
युगल उदर सुघर सकत कहि न सुभगताई॥
रोम पांति मधुप अवलि लै सुबास धाई।
गंग ययुन धार बही नाभि अलि घुमाई॥
किंकिनी नवीन छुद्र घंटिका सजाई।
मधुर मुखरबीन मनौ कामरति बजाई॥
नूपुर वर पायल पद गुल्फ वर्तुरताई।
युगल पद सरोज अलिनि मनु सुर सरसाई॥
गौर श्याम सुरस धान काम रति लजाई॥
अंग अंग नवल रंग नवलहि तरुनाई।
कृपानिवास आस सुमति खास टहल लाई॥

सेज सुख सोये सावर गोरि।
प्राण बपुष मन लगन गोद मुख मिमटि भये एक ठौरि॥
लपटि भुजातन सोहति मानो नेह लती सुख द्रुम निसकोरि।
पलक लगी वर बदन मनोहर मीन सुधासर बोरि॥
सीतल मन्द सुगन्ध सुचित मै समय समझ गुन कोरि।
कृपानिवास सियापद पंकज सेवनि नैन निहोरि॥

युगल रस को रति गाय सुनावै।
प्रेम भरी सुख भरी सो सहचरी निज हेत जनावै॥
कबहुं सुनै न बैन मन तनसों कबहुं मुकर पद पावै।

समय समय सुख टहल महल की हितु सब लाड़ लड़ावै ।।
अगम अगोचर गोचर करि हैं अवक बचन दरसावै ।
चिनमय रस चिर पिय प्यारी को रसिक उपासिनु प्यावै ।।
सिय पिय सुख जन गुन प्रतिपालन अपने भाय बढ़ावै ।
कृपानिवास अली अलबेली सबकी चाह बढ़ावै ।।

समय सुहावनि सुन्दर जोरी ।
सजी नवल तन सुरुचि सखी जन धन लों श्याम सिया दुति गोरी ।।
नव भूषण नव बसन मनोहर नवल किशोर किशोरी ।
प्राणन माल सजी अलबेली फूल फरैं फल जनक ररोरी ।।
रूप सिंहासन बिछे बसन पर गरबहियां पद टोरी ।
परम उदार उपासिन के हित छबि शृंगार सदा यक ठोरी ।।
अष्ट भवन की सखी सिमटि सब बनि ठाढ़ी चहुंओरी ।
पीवत युगल माधुरी नैननि मतिवारी रंग बोरी ।।
कोई बोलनि कोई चितवनि सों रति कोई मुसकन कियोरी ।
कृपानिवास पिय सिय सों लगि आंखें मुरी नहिं मोरी ।।

सदा सुहागनि जनक किशोरी ।
आनंद कन्द चन्द कैरव कुल बरपाये भल भाग करोरी ।।
भव धनु भंजन जे नृप गउर बन बन बनेह निहोरी ।
अंड अनेक चंड यश गावत सो नागर बस प्रेम ठगोरी ।।
काल करास कंप भुव फेरन अनुहर देव अकोरी ।
जो गुन निर्गुन सगुन गुन सागर सिय गुन रसित रसिक मनि सोरी ।।
शारद उमा शची रति कमला चरन सेव सकोरी ।
ज्यों हुतास कनिका रबि ऊपर बात मिलै धवै गति ओरी ।।
पति की प्रान प्रान की सर्बसु सर्वसु की बसतोरी ।
ते जन मन क्रम बचन सिया पद रति प्रसंस तिन निगम बढ़्योरी ।।
शील स्वरूप सहज गुन मंदिर अंतर श्याम लसै तन गोरी ।
कृपानिवास राम प्यारी छबि मो नैन ते छिन न टरोरी ।।

आज बने राम सिया सुंदर सुघर बर रसके रसिक रसदान ।
रस की प्रवीण लिये बीन नवीन सिया पिया रस पुलकि ले तान ।।
रसही की रीझ रस भीज भेजाय रहे रस भरि जै जै धूनि रसकर गान ।
रस के विलास रसहास निवास अली रसभरी जोरी पर वारों तन प्रान ।।

हेली री रंग धाम रंगीले प्यारे शोभित सिया संग राम।
सुरंग सिंहासन पर रंग राजे दोउ अंग अंग ये वारों कोटि सतकाम ।।
सुरंग समाज बन्यो रंग सो वितान तन्यों रंग रसराज राज रंग ददाम।
कृपानिवास प्यारे रंग रस रासभरे रंग मिल गवर सुरंग घनश्याम ।।

देखो भाई रंग भरे पिया सोहत रंग भरी सिया अंगबाम।
रंग भरी बतियां रिया रंगीली नरबर रंग कोटिक रंग अभिराम ।।
रंग सो अभंग सर भवन तरंग ढरि चरसों सहेलि पर रंग ललाम।
रंग बिलास निवास अली मिलि झिलि रहे रंगरि भुज दाम ।।

रंग महल दोउ राजत रंग रसीले।
लावन लंक अंकन की सानिधि भुज अंसनि गुन सीले ।।
नैन की बतरावनि भावनि लावनि बोलनि बदन हंसीले।
उरहित भाव मिले रुचि बरणित करि नित केलि कबीले ।।
सखि जनमन की प्रीति चातुरी मिली जुहरत रति सो रतीले।
कृपानिवास श्री जानकी बल्लभ रहसि उपासिक हीले ।।

मेरो मन सु पथिक मग भूल पर्‌योरी।
प्यारी तन कानन बहुरंगनि अंगनि अंग अनंग फस्योरी ।।
राजी रोम सघन द्रुम छबिमय लता जाल फांसे कौन टरचोरी।
त्रिवली सरिता उचसैन कुच मध्य गुफा बसि नहिं निकस्योरी ।।
खंजन करि लसै सु मनोहर बिपुल कटाक्ष सु मृगनि मखोरी।
ज्यों वन सिंह सुछंद फिरै गज धीरज नेम कुमान दरचोरी ।।
बाल व्याल सखि ताल कपोलनि करन कंज मकरंद धरचोरी।
भौंहे मधुप पांति आवति शर खंजन मारग अटक परचोरी ।।
जयति प्रसाद सुनो अटवी सुख रूपचन्द बरपोष हरचोरी।
कृपानिवास बिलासनि सिय कृपा बिचरो वन मन मैन डरचोरी ।।

नीवी करषत बरजत प्यारी।
रस लंपट संपुट कर जोरत पद परसत पुनि लै बलिहारी ।।
बदन घुमाय सिहाय महाजट तड़ित ज्यों चमकत बंक निहारी।
तलपट राय मचाय धूम रस हंसि हंसि कृपानिवास सियहारी ।।

करो सुभग सुख मद मतिवारी।
सुघरि उघरि उज्ज्वल रस तेरे मेरो मन होरो अधिकारी ।।
परम उदारनि सरन रावरी मृदुल चित्त मोहित हितकारी।
कृपानिवास बिलास भरी सिय पिय को मन बसरस बिस्तारी ।।

पिय हंसि रसरस कंचुकि खोलैं।
चमक निवारति पानि लाड़ली मुरकि मुरकि मुख बोलैं ॥
टुकरहो सखी सखी कछु गावति भावन मदन बिलोलैं।
कटि गहि लटकि हटकती सुंदरि अधरनि परसि कपोलै ॥
तलपटुराय लाय उरसों उर कोक कलानि किलोलैं।
कृपानिवास बिलासी दंपति संपति रास बढ़ोलैं ॥

पौढ़े सुख सैन रैन रंग महल मैं।
सुरति सरोवर हंस हंसनी करत किलोल मद मदन गहल मैं ॥
अरी पान बलपीय जीय की सुजीवनि ग्रीबनि भुज भरि सुघर सहल मैं।
अधर अधर धर सकुच परस्पर भयो है मिलन मानो आज यहल मै ॥
सोतल मंद सुगन्ध पवन जहं बहत भवन सुख सरस चहल मै।
जयति जानकी रमन कमल पद अली निवास नित रहत रहल मैं ॥

दोउ मुख झाँकै झरोषनि अलियां।
सैन किलोलत लोल रसिक मन मैन बढ़यो ज्यों रैन सुधुलियां ॥
उघरे अंग संग जगु राजत जनु सर पंकज कंचन कलियां।
उर उर अरत दरत केसर बर करत बिनोद बिपुल मद रसियां ॥
परिरंभन चुंबन रस संनत चपला भूकंपन हलियां।
कृपानिवास बिलास बिलोकति आस सखी जनमन की सुफलियां ॥

जयति रति खेतबर युगल सोभावनी।
दलि तन बसन की लसन अद्भुत बसै हसै सुकुमार रसभार जीति अनी ॥
बिथुर कच अंग जनु कंज बन मधुप गन पिवत मकरंद सुख कंद सुखमा घनी।
नखनि रद छत प्रगट निघट उपमा जदपि तदपि कहि व्याज रसराज चूड़ामना ॥
फूल घन अरुन जनु तड़ित मिल भासई नील द्रुम लपटि जत सुमन कंचन तनी।
कीधौ पादप लतालाल मुनियां बसी शशी मुख महि जु बहु आय पूजत धनी ॥
मिथुन तन एक सखि देखि चकृत नवल कमल केसर लिये रैन रति द्रुति सनी।
जयति श्री प्रसाद सुख स्वाद रसरास रलि पलति सुनिवास नहिं जात महिमा भनी ॥

पिय मिल करत बिलास बिलासनि माधुरी।
महा बिहार बिहारनि प्रगटे सुघर रसिक मनिका जुरी ॥
वपुष घुमाय फिराय चक्रवत बिक्रम बिकट प्रकासुरी ॥
कंदुक कलन ललन ललचाये चलन चातुरी आजुरी ॥

जंत्र जराय सिहाय शुकल हो हसत लजावसि हातुरी।
जयति जानकी रवन केलि रस अलि निवास अलि आसुरी॥

ये री ये सुख मदिर सेज रसीले सोये।
प्रीतम अंक लिये रस सागर मनु निस केसर पक जगोये॥
पिय उर भुज शृंगार सरोवर परमा बेल बिमोये।
बदन उभय जनु सदन सुधाकर मिलत सुप्रेम समोये॥
गवर श्याम पद मिश्रित राजे मनु सुप्रिया गन होये।
कृपानिवास बिलासी दपति मै निज नैन पोये॥

श्री स्वामी जनक राजकिशोरी शरण

'श्री रसिक अली'

(१) सिद्धान्त मुक्तावली

रामरसामृत के लोलुपो के हितार्थ सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचद बम्बई वाले ने जैन प्रेस लखनऊ मे इसे १९०७ ई० सन् मे छपवा कर प्रकाशित किया। इसमे कुल ५२ पृष्ठ और १५७ दोहे सोरठे है।

विषय—आरभ मे गुरु वंदना है फिर रामरूप की कृष्णरूप से विशेष मोहकता का वर्णन है। कृष्ण के बाल रूप को देख कर भी पूतना ने विष से मिला अपना स्तन्य पिला दिया परन्तु उधर शूर्पणखा शत्रु की बहिन होती हुई भी राम के त्रिभुवनमोहन रूप पर मुग्ध हो उन्हे पति रूप मे वरण करना चाहती है। कृष्ण के रूप पर तो स्त्रिया ही मुग्ध हुई परन्तु राम के रूप पर दण्डकारण्य के तपस्वी मुनि भी आसक्त हो कर उनका आलिगन करना चाहते है। इस प्रकार राम का रूप परम मनोहारी है।

इसके अनन्तर दास दासी, सखा सखी भाव का वैशिष्ट्य दिखलाया गया है। होली, रास, हिंडोलना, महल और शृंगार मे जो सेवा-भाव प्रिय लगे उसे ही ग्रहण कर तत्संबध से भावित हो कर निरतर प्रेमरस मे छके रहना चाहिए।

तत्पश्चात् साधन, भाव और प्रेम का प्रसंग है। इन तीनो को बडी ही भावपूर्ण व्याख्या है उदाहरण सहित। फिर निष्ठा के भेद तथा प्रीतिरीति का स्वरूप विधान निश्चित किया गया है। भक्तिरस का वर्णन करते समय आश्रय आलबन का प्रकरण बडे विस्तार से आया है तथा रसो मे दास्य, सखी वात्सल्य, शृगार का सविशेष वर्णन है। अभिप्राय यह कि रसिकोपासना के सिद्धान्त का बड़ा ही भव्य मनोज्ञ ग्रथ है और यहा गागर मे सागर की उक्ति घटित होती है।

सिद्धान्तानन्यतरंगिणी

हस्तलिखित प्रति प्रमोद रहस्य भवन अयोध्या में प्राप्त है। इसमे कुल १६ तरग और ५५० दोहे है। इसमे भावना का ही विषय मुख्य रूप से आया है।

अमर रामायण (संस्कृत मे)––लगभग ४००० श्लोक है। कनक महल, अष्टयाम, भावना तथा रससाधना का यह प्रमुख ग्रथ माना जाता है ।

रहस्य रत्नमाला––रसिक वल्लभ शरण जी का रस पर दोहे, चौपाइयो मे।

सिद्धांत चौंतीसी––सिद्धान्त के ३४ दोहे ।

होलिका विनोद––१३ कवित्त । सीताराम की

कवितावली

श्री जानकी करुणा भरण

अध्यायत्रयी

दोहावली

सिद्धान्त मुक्तावली

श्री रसिक अलीकृत

ज्ञानी योगिन करत सग ये तजि रसिकन सग।
सूख गर्त्त सेवन करत शठ तजि पावन गग॥

ज्ञान योग आश्रय करत त्यागि के भक्ति उदार।
बालिस छाह बबूर की बैठत तजि सहकार॥

पीम नवै सियराम को जीह जपै सियराम।
हृदय ध्यान सियराम को नही और सन काम॥

नारि मोह लखि पुरुष वर पुरुष मोह लखि नारि।
तहा न अनहोनी कछू कवि बुध कहत बिचारि॥

होनी होनी होइ तह अद्‌भुतता नहि जान।
अनहोनी तह होइ कछु अद्‌भुत क्रिया वखान॥

अनहोनी सोइ जानिये पुरुष रूप निधि देखि।
मोहय पुरुष वधुत्व करि अद्‌भुतता सोइ लेखि॥

सोगनि दंडक बिपिन मुनि भइ रघुबरहि निकारि।
याते अद्‌भुत रूप श्री रामहि को निरधारि॥

अद्‌भुत रूप निहारि कै सब जिय होत सुमोह।
विषतन प्यावत पूतना नेक न ल्याई छोह॥

रिपु भगनी पुनि राक्षसी जाकर मनुज अहार।
मगन भई लखि राम छबि करन चही भरतार॥

खरदूषन आदिक सकल मोहे राम निहार।
लड़े सो निज इच्छा नही जिय बीरत्व विचार॥

ऐसे रघुबर रूप निधि सो मोहे सिय देखि।
पटतर ताकहं पाइये अति अद्‌भुत छबि लेखि॥

उमा रमा ब्रह्मानि सिया महल सेवत सदा।
शारद चतुर सुजानि नित कृत चरित सुगावही॥

यथा अवध मिथिला तथा सुख सुखमा मरयाद।
इनहिं सदा उर धारिये त्याग सबै हमिसाद॥

प्रकृती अरु सब तत्व तें भिन्न जीव निज रूप।
सो प्रभु सों नातो बिसरि पर्‌यो मोह तम कूप॥

पुनि सोइ रसिकन संग करि लहै यथारथ ज्ञान।
नातो सिय रघुनन्द सौ निज स्वरूप पहिंचान॥

दास दासि अरु सखि सखा इनमे निज रुचि एक।
नातो करि सिय राम सों सेवै भाव विवेक॥

होरी रास हिंडोलना महलन अरु सिकार।
इन्ह लीलन की भावना करे निज भावनुसार॥

बसै अवध मिथिलाथवा त्यागि सकल जिस आस।
मिलिहैं सिय रघुनन्द मोहिं अस करि दृढ़ विश्वास॥

पूजे नहिं वहु देवता विधि निषेध नहिं कर्म।
सरण भरोसो एक दृढ़ यह सरणागति धर्म॥

सो पुनि त्रिधा बखानिये साधन भावरु प्रेम।
साधन सोई जानिये यामें बहुविधि नेम॥

श्रद्धा अरु बिश्रंभ पुनि निज सजाति कर संग।
भजन प्रक्रिया धारना निष्टा रुची अभंग॥

पुनि अनर्थकर त्याग सब यह लक्षण उर आनु।
प्रथमहि साधन भक्ति के ताकरि भाव बखानु॥

क्रियारंभ के प्रथम हीं उपजे उर आनन्द।
क्रिया विषै दुख सहनता फसै न आलस फन्द॥

ए तीनों बुध कहत हैं श्रद्धा के अनुभाव।
श्रद्धा सम्पति होय घर तब बस्तू की चाव॥

सुनि लखि नहिं लौकीक में दरशन ही आम्नाय।
सो सुनि चित्त सांची गहै सो बिश्वास सुभाय॥

जामे करिये भाव पुनि सोइ परीक्षा लाग।
बहु विधि चित्त उदबेग हीं तदपि तासु नहिं त्याग॥

यह निष्टा अनुभाव लखि जाके उर मे होय।
ताको कछु संशय नहिं मिलै रामसिय दोय॥

जामे प्रीति लगाइये लखि कछु तिहि विपरीत।
जिय अभाव आवै नहीं सो निष्टा की रीति॥

दरश परस में सुख बढ़ बिनु दरशन दुख भूरि।
यह रुचिकै अनुभाव सखि करै न रघुबर दूरि॥

भाव भक्ति तव जानिये यह जिय होय सुभाय।
क्षमा विरक्ति अमानता काल वृथा नहिं जाय॥

मिलन आसरजु बद्ध चित पुनि उत्कंठा जान।
आसक्ति तद्गुण कथन प्रीति बसत अस्थान॥

नाम गाम मे रुचि सदा यह नव लक्षण होइ।
सिय रघुनन्दन मिलन को अधिकारी लखु सोइ॥

बिघ्न अनेकन होइ तौ प्रीति रीति नहिं हान।
आसक्ती नित नव बढ़ै सो लखु प्रेम प्रधान॥

स्नेह सुलक्षण जानिये चित्त द्रवित लखि होय।
तन धन बिलग न मानही तजे बिछेदक जोय॥

सिय रघुवर सम्बन्ध करि दुख सो सुख इव भास।
सिय रघुबर सम्बन्ध बिन सुख सो दुःख निवास॥

यह लक्षण अनुराग के अनुरागी उर जान।
ताको करि सतसंग पुनि अपनेहुं उर आन॥

लखु लक्षण यह प्रणय के दृढ़ विश्वास जु होय।
बाढै उर अति सख्यता निज समता सखि कोय॥

लखु उपासना द्विविधि सो ऐश्वर्जाशय एक।
द्वितिये माधुर्याशया धरै यथा रूचेक॥

द्विभुज परात्पर रामसिय रासादिक करि युक्त।
ध्यावै नित गोलोक सो ऐश्वर्याशय उक्त॥

तथा अवध मैं ध्यावहीं रामादिक बहुरंग।
बीच बीच मिथिला गवन चहूं बन्धु मिलि संग॥

माधुर्य्या सोइ जानहु रसल जनन सुख मूल।
करै सदा सोइ भावना गहि लक्षण अनुकूल॥

पूर्व कहे ते प्रणय युत अष्ट सात्विका जान।
तनमन को यो धो भई ताहि सात्विका मान॥

अंसन पर अलकें लसत भुज अंगद छबि देत।
छरो छबीलौ फेट मे चित्त चुराये लेत॥

संजन सफरी से चपल अनियारे युग बान।
जनु युवती एती हतन भौंह चाप संधान॥

ललित कसन कटि वसन की ललित तलटकनी चाल।
ललित धनुष करसर धरनि ललिताई निधिलाल॥

ललिताई रघुनन्द की सो आलम्ब विभाव।
ललित रसाश्रित जनन को मिलन सदा मनुचाव॥

कोकिल शब्द बसंत ऋतु सो उद्दीपन जानु।
मन्द हसनि दृग फेरनी सो अनुभाव बखानु॥

पूर्व कहे ते सात्विका सबै सुदिप्ता जानु।
उग्र अरु आलस्य बिनु संचारिहु अनुमानु॥

अस्थाई प्रिय तारती प्रणय प्रेम अरुनेह।
अनुराग अस परस पर वारत तन मन गेह॥

दशा वियोग प्रयोग में पूर्वक ही दश सोय।
अब रस रिपुता मीतता कहौ जस होय॥

मैत्री शान्ति रु दास्य के अरस परस सो जानु।
वत्सल सख्य तटस्थ दोउ सुचि सपल अनुमानु॥

सख्य अरु शृंगार दोउ अरस परस लखु मीत।
शांति रु वत्सल दोउ यह सुचि सों अति बिपरीत॥

बनिता बृन्दन मध्य जब रघुबर करत विलास।
सुचि अरु अद्भुत हास्य यह तीनों रसन निवास॥

अन्दोल रहस्य दीपिका

श्री रसिक अली कृत

यह श्री जनकराज किशोरी शरण श्री रसिक अलिजी की परम मधुर रसमयी रचना है। ई० सन् १९०७ मे जैन प्रेस, लखनऊ मे छपा। कुल पृष्ठ १६ और छंद ४३ है।

विषय—बड़ी ही भाव भरी कवित्वपूर्ण भाषा मे आंदोल रहस्य के रस का वर्णन किया गया है। भाषा बड़ी ही सजीव, सरस, सशक्त। प्रिया प्रीतम के परस्पर लाने लड़ाने का बड़ा ही मनोहारी वर्णन है। सखियों ने शृगार के जो साज सजाये है वह भी देखते ही बनता है। हिंडोले पर झूलते होने के कारण प्रिया प्रीतम के मुखमण्डल पर जो श्रमकण आ गये है उनकी छबि भी कैसी निराली है। अन्त मे इस शृंगार-साधक प्रेमी कवि ने कह दिया है कि लाल की यह ललित लीला त्रिगुणमयी माया से परे की वस्तु है, वहा पुरुष नही पहुँच सकता, वहाँ केवल 'अली' को अधिकार है।

उदाहरण—

बाढ्यो अधिक रस झूलना सखि छकी सब रस रूप।
खसी बसन कंचुकि कसन छूटत टूटत हार अनूप॥

सो मुक्तामणि बिस्तरन पर कोमल चरण चुभि जाय।
भय मानि ले सब दासिका जल मांझि देत बहाय॥

पीतम प्रिया मुख श्रम सलिल कन पोछि हित सुख लेत।
जनु नागराज सुइदु अरचत सुध साधन हेत।

जब लाडिली कटि लचकि मचकति झुकति पिय की ओर
तब जात बलि बलि लाडलौ गति होत चद चकोर।

जब परसि वात उरोज अंचल उड़त सिय सकुचाय।
पुनि हेरि पिय तन नमित चखरहि रसन दसन दबाय॥

लखि हाव पियउर भाव सरसत चाव चित उमगात।
सो निरखि दपति सुख सरस अलि मुदित उमगी गात॥

हिय हार उरझे दुहुन के त्यौ अली झोटा देत।
सुरझे न झोकनि झपटि लपटी नवल पिय रसलेत॥

लखि श्रमित सब झूलनि पिया प्यारी लई भरि अक।
ले गोद पिय झूलन लगे लखि छके बदन मयंक॥

भीगे अलिन के चोल चूदरि चुवन लागे रग।
झीने सुपट लोग लिपट दरसाइ त्यों अलि अंग॥

मृगी ज्यों सब ठगी नागरि रहि विरह तन घेरि।
मिलन चाहति लाल अक निमक हारी हेरि॥
ललित लीला लाल सिय की त्रिगुन माया पार।
पुरुष तह पहुचे नही केवल अली अधिकार॥
रसिक अलि जीवन यही ध्यावै रटै दिन रैन।
बिनु जुगल रस लीला लखे छिन पल हिये किमि चैन॥

पञ्चशतक

श्री रामचरणदास 'करुणासिन्धु' जी

रसिकोपासको मे शिरोमणि महात्मा रामचरणदास जी के लिखे 'पञ्चशतक' मे (१) विवेक शतक, (२) वैराग्य शतक, (३) उपासना शतक, (४) विरह शतक और (५) नाम शतक सम्मिलित है। शृंगारोपासना मे एक प्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ के रूप मे इसका आदर है। सिद्धान्त ग्रन्थों मे यह पञ्चशतक सर्वमान्य है। इन ग्रन्थो मे स्पष्ट ही पता चलता है कि महात्मा रामचरण-दास जी रसिकोपासना के अनुभवी और विद्वान् सन्त थे। ज्ञान और निष्ठा का ऐसा मणिकाचन सयोग दुर्लभ है।

विवेक शतक

(२) राम रसामृत खण्ड

हस्तलिखित प्रति रहस्य प्रमोदभवन अयोध्या मे प्राप्त। इसमे वैराग्य, सन्तों की पहिचान एकादश भक्तो का वर्णन अन्त मे रसका प्रकरण है। कुल चार खण्डों मे समाप्त होता है।

'उपासना शतक,' और 'विरह शतक' से कुछ उदाहरण दिये जा रहे है——

शोभा वर्णन

नीच कर्म करने गई, सुपनखा मति कूरि।
राम रूप लखि रमि गई, दुष्ट भाव भय दूरि॥
गई पूतना कृष्ण ढिंग, करन नीच के काम।
रमीन लखि कृत कर्म लघु, आपको न तेहि काम॥
गाइ बजाइ सुनाच कै, कृष्ण मोहि बृज नारि।
राम चरन दण्डक तपी, तिय भय राम निहारि॥
राम चरन गुरु एक ते, बहु गुन जाने जाइ।
जथा एक फल चाखिये, पेड़ भरे रस पाइ॥

राम चरन दुख मिटत है, ज्यों विरही अतिहीर।
राम बिरह सर हिय लगे, तन भरि कसकत पीर॥

राम चरन मदिरादि मद, रहत घरी दुइ जाम।
बिरह अनल उतरै नहीं, जब लगि मिलहिं न राम॥

राम चरन जे अर्घ जड़, सुरति नयन सब पेखि।
बिरह अन्ध तन धाम धन, तेहि कछु परै न देखि॥

राम चरन जे धीर जग सुनै, सयन के फेर।
राम बिरह नहिं सुन कछू कर्म धर्म श्रुति टेर॥

ज्ञान ध्यान जप जोग तप, जो सुधर्म श्रुतिसार।
राम चरन प्रभु बिरह बिनु, ज्यों बिधवां शृंगार॥

राम चरन बिरही त्रिधा, मोर चकोर सुमीन।
सुनि यक लखि यक लीन यक, निज निज प्रेमहिं पीन॥

राम चरन रबिमनि श्रवत, निरषि बिरहिनी पीव।
अग्नि निरषि जिमि घृत द्रवत राम रूप लखि जीव॥

प्रेम सराहिये मीन को, बिछुरत प्रीतम नीर।
राम चरन तलफत मरे, तिमि जिय बिन रघुवीर॥

कब होइहि संजोग अस, दीप रूप प्रभु तोर।
राम चरन देखत मरहि, मन पतंग होइ मोर॥

राम चरन कब तब गुनन, मनन करिहि मन रोक।
जिमि कामिनी मनहि मन, त्यागि लोक परलोक॥

जथा जतन बिनु लगत मन, तिय सुत तन धनधाम।
राम चरन यहि भाँति मन, कब लागिहि पद राम॥

बुधि निश्चै तब जानिये, राम चरन दृढ़ होइ।
यथा सती पिय संग दै, जगत नेह सब षोइ॥

तुमहि लगावहु तब लगे, मम सूरत रघुनाथ।
राम चरन कठ पूतरी, नचै सूत्र धर हाथ॥

कब नैननि भरि देखिहौं, राम रूप प्रति अंग।
राम चरन जिमि दीप छबि लखि मरि जात पतंग।

कब रसना रामहि रटहि, जथा कूररि बिहंग
राम चरन चातक रटत, बारह मास अभंग।

सब कहँ फूल बास सुख, अगिन लूक सम सोहि।
सकल सुजोग कुयोग भव, रामलला बिन तोहि॥

रसमालिका

श्री रामचरणदास जी

सुप्रसिद्ध रसिकाचार्य श्री रामचरणदास जी महाराज 'श्री करुणसिंह जी' रचित (रसमालिका), रसिकोपासना के गले का हार है। इसमे परधाम, पर स्वरूप, पर रस, पर मन्त्र, ब्रह्म, जीव, भक्ति, योग, ज्ञान, वैराग्य, सत्सग, प्रेम तथा लीला विहार का रहस्य बडे ही गम्भीर एव रहस्यपूर्ण ढग से वर्णित है। इसे श्री भरतशरण जी (श्री विश्वम्भरप्रसाद जी माथुर, भू० पू० प्रोफेसर गवर्नमेण्ट कालेज, अजमेर) ने प्रकाशित किया है। रसिकोपासना का सिद्धान्त एवं उसके विनियाग की प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए यह ग्रन्थ परम उपयोगी सिद्ध होगा। कथा यो है कि एक समय ब्रह्मलोक मे चारो वेद अपने पारस्परिक सत्संग मे ब्रह्म का निरूपण करते हुए इस बात का निर्णय नही कर सके कि ब्रह्म का स्वरूप सगुण है या निर्गुण। अन्त मे चारों ही मिल कर शेष भगवान् के पास पहुँचे। शेष भगवान् ने लक्ष्मण जी के स्वरूप मे उन्हे दर्शन दिये। फिर वेदों के प्रश्न करने पर आपने परधाम, परस्वरूप, पर मन्त्र, पर रस, क्षर, अक्षर, सगुण और अगुण इन नौ प्रश्नों का स्पष्ट रूप से विवेचन करते हुए वेदों का संशय दूर किया। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ मे ब्रह्म, जीव, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, योग और सत्सग आदि गूढ़ विषयों का भी सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है। तात्पर्य यह कि भक्तिपथ-प्रदर्शक शृंगार रस से ओतप्रोत यह ग्रन्थरत्न अपने ढग का निराला ही है। शब्दावली बडी ही गम्भीर और भाव बडे ही गहन है। बिना अच्छी तरह डुबकी लगाये इस ग्रन्थ का भाव पकड मे नही आता। कुल ग्रन्थ १५ अवकाशों मे विभक्त है और प्रत्येक अवकाश मे भिन्न-भिन्न प्रकरण है।

सिद्धान्त

श्री तुलसी शृगार गुप्त रस दास्य बखानी।
यही चोट रहि गई प्राप्ति मे रस बिलगानी॥
सोई आनि रस वपु धरचौ अग्र स्वामी के पथ लहे।
टीका रचि निज ग्रन्थ के प्रगट राम रस निर्वहे॥
राम नाम वन्दौ यदपि मुख ते कहा न जाय।
ज्यों तिय निज पति नाम को कहत बहुत सकुचाय॥
तासु मध्य आसीन भक्ति महारानी जू।
दहिने सुअग परमीश जुगल छवि खानी जू॥
वरनन लगेऊ स्वरूप राग मगल करि।
सहसौ शिर महि नाइ चरण रज हिय धरि॥

सिर चन्द्रिका किरीट अमित शशि रवि छवि।
जनु शशि रस कहँ पियति वेनि नागिनि कवि॥

हंस वन्धु मुख लुब्ध अलक अलि अलि जनु।
भृकुटि कुटिल छवि हरे कोटि मनसिज धनु॥

दिव्य जलज सम नयन श्रवण लगि सोहही।
जेहि चितवनि की कृपा सुजन जिय जोहही॥

करण फूल मनि कनी वनी अवरनि गति।
विपुल दिवस निशि राज छपहि विन्दुन प्रति॥

जुगल वदन छवि धाम कोटि शशि छवि इमि।
मानिक मनि ढिग पीत हीत द्युति त्यों जिमि॥

तिलक अधर रद विंब हास अद्भुत लसै।
जनु घन रवि शिशु जलज मध्य दामिनि वसै॥

वेसर स्वच्छ बुलाक अधर पर हलकई।
जनु वृहस्पति दिवि शुक्र हृदय शशि ललकई॥

चिबुक कपोल अमोल गरे मुक्तावलि।
राम चरण छवि अलख लखहिं संग की अलि॥

परम रुचिर अंगद कंकन मुद्री वर।
शोभा छवि सु शृंगार सुभग तिन कर घर॥

हार बीच बैजंति पदिक उर पर वनु।
धनु जुग मंडल नषतहि शशि मंडल जनु॥

सारी किनारी जनेऊ अमर धनु कहं हंसै।
जनु दामिनि कै दमकि जमुन विच थिर लसै॥

कटि अवरन पट दिव्य उभय तन मे फवे।
संग छवि अलख अनूठि तुच्छ उपमा सबै॥

नाभि दिव्य द्विज राज अमी हद अलि जिमि।
रवि नन्दिनी छवि भ्रमर करै छवि तहं किमि॥

त्रिवलि रेख छवि सीव सूत्र किंकिनि फवि।
मनहुँ महा छवि छेकि हंसति त्रिभुवन छवि॥

कटि पर वर पट एक जुगनु शोभा अमि।
मरकत गिरि उर तडित मनहु पूरन शशि॥

विधु मधु गण्डहि मण्डि चरण नूपुर धुनि।
जनु अलि स्वरन कञ्ज पर रमतापुही गुनि॥

नख मयंक सुत लाल वनज दल पर लसै।
मनहु स्वेत अलि मौन पियत अनुभव रसै॥

कोटिन विमल निशेश नखन प्रति वारिये।
जावक अनुपम अमल तडित द्युति कारिये॥

पगतल अमृत सिन्धु चिन्ह तेहि चर जनु।
कोइ सखि जन जिय मीन पीन तेहि रस मनु॥

हनुमत शिव शुक सनक हमौ पाँचों सखी।
रहहि सदा प्रभु निकट करहि आज्ञा लखी॥

सकल चिन्ह हिय वसहि प्रगट एकै दुई।
सेवि धर्म यह परम रहहि पिय मन छुई॥

लाडिली लालन तनु छवि सम उपमा इमि।
रवि ढिंगि अमित खद्योत दीप द्युति हत जिमि॥

मानिक मनि जहँ पोत गुंज द्युति किमि जगे।
कोटिन सर हरि सर सम कहत लज्जा लगे॥

जुगल रूप ह्वै द्वै कर कमल सचल सर।
राम चरण किमि कहै कृपिन सुर पुर घर॥

मनि श्रेणी वेनी वनी जनु अहिनी अनी मुक्तन कसी।
घन गिरि जनु शशि कुण्ड कहँ उडि चलिय झुकि रस की रसी॥

भृकुटी कुटिल अलि कञ्ज चष मुख इन्दु सर विगसित मनो।
विहंसित अधर रद हद छवि जनु दाम शशि भीतर बनो॥

जुग वीर जनु तेहि तीर कंचन कमठ शिशु निकसे वसे।
मुख कञ्ज पर वेसर मनहु चित लाल सित अलि होइ लसे।

को कहै छवि छाके रसिक नति मूक मय रस ते भरी।
प्रति अंग कोटिन वारिये जग करनि रक्षक ले करी॥

वन विहार

सब राहस साज बनाये वन विहरत सो रस पाये।
बहु रंग के फूल उतारी वन माल गुहै पिय प्यारी॥

बहु भूषण सुमन बनावे रचि प्रीतम को पहिरावे।
प्रभु निज कर फूल उतारी बहु कचुकि हार सवारी॥
सब सखियन को पहिरावे सखि फूलन माग गुहावे।
रचि सेत सुमन बहु सारी सुचि रग विरगी किनारी॥
प्रभु निज कर वर पहिराई मुख दिव्य सुगन्ध लगाई।
सब दिव्य अलकृत सोहै रस राम वसन्त रच्यो है॥

वसन्त विहार

खेलत वसन्त लाडिली लाल, सुख सिन्धु उमगि आनन्द माल।
वन अद्भुत अति जहँ नित वसन्त, प्रभु विहरन लीन्है सखि अनन्त॥
तन लसत स्वेत पट सुभग अग, जनु बाल हस वस बीच गग।
हसि रंग विविध डारत कृपालू, जनु कुन्द लतन्ह पर बैठे लाल॥
सब सखिय सुमन ले विविध रग, एक रचि वितान मोहित अनग।
सर सुमन सिंहासन रचि बनाइ, छवि कहत कोटि शारद लजाय॥
तेहि पर सखियन बैठाय श्याम, लज्जित प्रति अगन्ह कोटि काम।
तहँ नाचत सखि करि विविध गान, धुधुकत मृदग धमकत निशान॥
वीना तमूर नेदुर उपग, रस भरिय भेरि वाजत मुचग।
नूपुर ककन किंकिनी सुराल, गति थेइ थेइ थेइ थेइ उठत ताल॥
गावहि अनूठि रागिनि रसाल, सुनि रस वस विहसत उठे लाल।
रस हेतु धरे प्रभु अमित रूप, एक ओर भई सखी छवि अनूप॥
पिय ओर चलहि पिचकारि चारु, सखी और अबीरन परी मारु।
भई कीच अगर कुकुम सुरंग, सुख सिन्धु बढेउ आनन्द तरग॥
एक सखिय नाम हेमा प्रवीन, चलि रस छल करि प्रभु पकरि लीन।
कोइ हार पीताम्बर लिये छीन, कोइ निज उर प्रभु उर डारि दीन॥
कोइ चुवत मुख लालन लडाइ, कोइ हसत पान वत्सल लगाइ।
मिलि प्रीतम सखि अल्हाद रूप, रचि राम चरण राहस अनूप॥
मनि भूमि पर लगे नचन गति जगमगति प्रति छाही बनी।
जनु छवि शृगार मनोज रति लजि चुनि पगतर सजि अनी॥

सखियों का नृत्य

मनि तरु लतन्ह जगमगति जनु देखत चपल तिर्पित नही।
सखि नचहि मुद्राकार प्रभु विच बीच करते कर गही॥

बहु ताल वाजहि चरण चंचल मुरत कर मुख चष हुए।
मुक्ता कलिय नूपुर खसे जनु अमिय सर बहु शशि उए॥
दहु ओर वाजन सदि वजावहि रमसिंहा धुधु धद्धधू।
भभ भेरि वज तड तड नफीर निशान धधकहि डंक धू॥
महनाई पिय पिय गुमकि गुम मृदंग झनझन झांझही।
तम्बूर जग मुचग करतालादि अनगन वाजही॥
तरु सुमन वर्षहि श्रम अकर्षहि सकल हर्षहि रस भरे।
सोलहहि जिन शृंगार रस भरि अपर रस बाहिर धरे॥

शृंगार

श्रम कन मुख सोहै कमल कोश मोती मनु।
तेहि उपर अरुण रज परम अनूपम को मनु॥
मेचक कच अलि जनु कमल बदन पर झुंकि झिले।
शशि राहु मनहु दुइ कुटिल समर तजि नइ मिले॥
रतनन भरि झारी जल सुगन्ध सखि लीन्हे जू।
निज प्रभु मुख धोइ सुख मूरति चित दीन्हे जू॥
कोउ भुज गहि ठाढ़ी कोइ सखि अंग अंगोछे जू।
कोइ व्यंजन करै कोइ अंचल ते मुख पौंछै जू॥
कोइ कुण्डल अलके उरझि गई निरुवारे जू।
कोइ मुकुट सुधारै भूषण टूट संवारै जू॥
कोइ कसहि पीताम्बर अंग सुगन्ध लगावै जू।
कोइ चँवर ढुरावै मधुर-मधुर कोइ गावै जू॥
सखियन के भूषन निज कर लाल सुधारी जू।
फूलन रचि चौकी सखि प्रभु कहँ बैठारी जू॥
कोइ चरण प्रक्षाले धूप दीप करै प्यारी जू।
छप्पन विधि भोजन लाइ सखी न्यारी न्यारी जू॥
फल फूल मूल दल अभिनिन्दिक बहु लावै जू।
प्रभु सखिन पवावहिं सखिय देइ प्रभु पावै जू॥
रस पाइ परस्पर लै आचमन सु पान जू।
करै दिव्य आरती वाजन धुनि धुनि गान जू॥
एक सुमन सेज रचित प्रीतम को पौढ़ाई जू।
सखि पाय पलोटहि कुल पद परसि लड़ाई जू॥
हंसि हंसि सब मांगहि रास दान पुनि दीजे जू॥
प्रभु राम चरण उठि जल बिहार कछु कीजै जू॥

नृत्य-विहार

नाचत नट नागर सुख सागर उमग्यो री।
लालन मुख विमल इन्दु मेचक उर चिबुक बिन्दु॥
सखि मुख चष विमल कंज तज गति विगस्यो री॥
भृकुटि कुटिल चचरीक थिरकत रसिक लीक॥
गान विच अलि अलीक तजि ढिग निकस्यो री॥
कर कर गहि ललिय लाल झूमत गज मत्त माल।
लचकत कटि ग्रीव चरण हिरि फिरि चलत्योरी॥
अलकैं ललकैं कपोल कुण्डल हलकैं कलोल।
जनु शशि उर रचिहि डोल राहु रवि झूल्योरी॥
यहि विधि गये सरयु तीर तीर पुञ्ज बन गंभीर।
पुञ्ज सुमन पुञ्ज भ्रमरि गुजत जन ज्योंरी॥
युग तट मणि मय पवित्र चित्रित श्रेणी विचित्र।
प्रभु मन भव जल सनेत्र करुण रस भरचोरी॥
नील रतन मानिक जनु सेज शयन मानिक फनु।
जुन वन भव प्रभु रवि अलि रसन रट रस्योरी॥
सुमति कहति सूरति वलि मूरति दिखराऊ अचलि।
राम चरण जग तजि लखु भवन भैमि क्योरी॥

जल क्रीड़ा

परि लेलि प्रभु मानस ललिय ललि लाल कोतूहल रची।
जल केलि क्रीड़ा भ्रीड जहँ अह्लाद क्रीड़ा कल मची॥
जलजात कर उच्छरित जल जलजात फैकहि अलि लची।
तेहि संग भ्रमरि उडाहि गुजत देखि कवि शारद नची॥

जनु पुर शशि टूटहि विथकि अहि बाल तेहि रस लूटही।
जनु स्वरन सपुट वेष्टि रस अलि आलि चपरि लै जूटही॥
प्रभु लेत पुनि फैकत लगत जनु अमिय घट भरि फूटही।
जिमि राम चरण हवाय सिय पुर काम रति कर छूटही॥

यहि विधि जल केलि हेलि खेलत पिय पियारी।
उमगत आनन्द माल हंसत धरत ललिय लाल।
अधर अधर परसत मुख दरसत सुषमा री॥
मिलित लाल अलक बंक बेसरि अरुझेउ तटंक।
अलि कच कुण्डल बुलाक अरुझेउ उपमा री॥

जुनु जुग विधु चष कुरंग गुरु द्वौ रवि अरि अनंग।
अहि रजु कसि बीच वैर सब तजि सुख भारी॥
बहु सखि निरुवारित करताल हंस बजावती।
बहु व्यंग राग गावती मन भावति नहिं न्यारी॥
कर ते कर जोरि सकल निर्त्तत्त जल उपर चपल।
चरन चलत छुवत छटकि नूपुर रवकारी॥
रत्नालंकृत विचित्र जगमग जल विच पवित्र।
जनु घन दिवि तडित विपुल दमकत दुतिवारी॥
छुम छुम थेइ थेइ तरंग गावति पिय संग संग।
चलित लजित जग अनंग वाजत करतारी॥
अद्भुत राहस अनूप देखहि कोइ सखि स्वरूप।
राम चरण देखैं किमि नयन अन्ध चारी॥

हिंडोला

झूलत लाडिली लाल हिंडोले।
नील सघन पल्लव तरु शोभित जनु वितान घन माल
गर्जहि मधुर मधुर पिय मन लै कोकिल शब्द सुराल।
वरषत मेह झरत तरु अमृत बोलत मोर रसाल।
श्री सरयू उमगत उज्ज्वल जल लहरि उठत मानों जाल॥

त्रिविध पवन निन्दक मारुत चल पट फहरात सु लाल।
पद कर भूषन तडित नखत शशि निन्दत धनु सुरपाल॥
बहु सखि संग संग झूलति है बहुरि झुलावति बाल।
गावहि मधुर लाल मन मोहैं करहिं विविध रस ख्याल॥

मनहुँ मदन रति के व्याहन कहँ साजि सकल निज ताल।
लाल विहारि देखि वन भूलेऊ बिसरि गयो सब हाल॥
यह रस राशि रसिक कोइ सखि सोइ निशि दिन रहति निहाल॥
रामचरण यह छाड़ि कहै कछु कारिख तेहि मुख भाल॥

दास रूप नहिं मिलत रहत ढिग चाह कछू नहिं।
तीन मुक्ति फल एक एक यहि रहेउ चारि गहि॥
तदपि त्रिगुण विन तजे दास पद कवहु होइ सिधि।
जो वनिता पति लहै पिता कुल रहै कवन विधि॥

सकल धर्म भये दूरि दासि भइ ब्रज युवती जब।
जप तप व्रत नेमादि नाश यह दास होइ तब॥

बिन जागे नहि दास दास यह होइ काहि लखि।
बिना लखे कहुँ प्रीति प्रीति बिनु प्रेम सके भखि॥

बिना प्रेम की भक्ति हेतु घृत वारि मथइ जड़।
बिन सतसग गवार यथा जग चतुर होइ बड़॥

जहा आस नहि दास दास जहँ आस न है इमि।
श्री रामचरण रवि रैनि एक स्थान उदय किमि॥

टाकी शब्द अनूप वज्र घाटी धरि फोरै।
शशि प्रति जल बिन पवन दीप यहि विधि चित जोरै॥

तहँ सरवर इक अमी महम दल कमल प्रेम रस।
जेहि जन को जिय भवर पियत जग तेहि गुलाम वस॥

अष्टयाम पूजा विधि

श्री रामचरण जी कृत

[अगस्त्य महिता के मूल श्लोको का पद्यमय भाष्य। मगला आरती से लेकर शयन तक के पद। लखनऊ प्रिटिग प्रेस से सन् १९०१ ई० मे छपाकर छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बईवाले ने प्रकाशित किया।]

सखियों और सीता का शृंगार

कोइ जल कनक महावर दइ पग पीय के।
जनु मरकत मणि पत्र लिखति यश सीय के॥

जनक लली पद जावक चित्र लोल दई।
कनक पत्र जनु लिखति राम मन मोल लई॥

सिय पग पीठ धवल मणि एक ढिगन कनु।
बाल हस सब कज्ज कोश वोड़ी जनु॥

बिवलि नूपुर सिय पग रतन कनक कर।
मनहुँ विचित्र भ्रमर अलि लाल कमल पर॥

नूपुर तीन अवलि पग राम सोनकर।
मनहुँ पराग भरे अलि नील कमल पर॥

सिय नूपुर तर गेज कनक दुइलर बर।
नूपुर पर पैंजनी बनी शोभा घर॥

नूपुर ऊपर गोड़हरा जानकी पीय के।
जात रूप मणि चुनित चुनित तस सीय के॥
पग शृंगार करें चतुरी श्यामा सखी।
कोई कहै जेहि बस भयो राम रामा लखी॥
सिय को छील रसालत पाँच त्रै एक ही।
स्वर्ण खोल भरि मोति जड़ाव लरन गुही॥
जानकी कटि जगमगति नील पट पर छई।
मनहुँ सप्तरिखि नारि बलाहक पर उई॥
रामचन्द्र कटि घेर तीनि लर किंकिणी।
नील शृंग मध्य प्रात सुरुज जनु दामिनी॥
जानकि कटि मण्डल त्रय किंकिणी धनि गुही।
मनहुँ शुक्र की माल सूत्र दामिनि पुही॥
किंकिणि तर कटि सूत्र उभय शोभा अमी।
कनक तमाल लता तरु दामिनि जालसी॥
ललिय लाल कटि सूत्र युगल सखि रचि भरी।
राम चरण शृंगार छवि जनु मेखल करी॥

श्री राम जी का शृंगार

श्री राम जू के कण्ठ कण्ठा लसत अतिशय गजमनी।
त्रैकोण कौस्तुभ उर लसै रवि कोटि शशि दुति सो घनी॥
कौस्तुभ तरे बर गुज कञ्चन मणि कनिन अद्भुत बनी।
उद्योत रबि शतकोटि हृद पर पदिक शोभा भनी।
नाभी तरे वरमाल मोहन कनक बिद्रुम ललागे।
वैजन्ति माला किंकिणी तर लागि रतन पचरंग जगे॥
श्री कृष्ण नीलारुण धवल पीता पिद्धौ लर जगमगे।
शृंगार कृत बनमाल रबि ससि ग्रीवते अरु पग लगे॥
कञ्चन धौत इव कल सुमन पट कलित जरावन गुहि तजे।
नव नील घन नखतन्ह नव ग्रह तड़ित शशि रबि बहुलजे॥

सखियों द्वारा सीता और राम का शृंगार

कोइ सखि सिय भ्रू मध्य सुभग सेंदुर करै।
मनहुँ अमल शशि शिखर दिव्य दीपक बरै॥

राम भाल तिलकोर्द्ध गोरोचन रेख दुई।
पीत मनहुँ घन शिखर तड़ित जुग मग छुई॥

कोइ सखि सिय कच झारहिं रुचिर मांग गुहि।
शीश श्रवण लगि मध्य मिलित मोती पुही॥

टीका सिय जू के भाल श्रवण लगि पर ठटी।
पट्टा कार कनक नवरत्न कनिन जटी॥

टीका पर चन्द्रिका राम दिशि झुकि रह्यो।
रबि शशि बहु त्रिभुवन उपमा कछु नहिं लह्यो॥

सप्त शृंग यक मध्य किरीट राम शिर।
मणि जटित रवि कोटि चन्द मिलि नहिं थिर॥

राम अलक घुंघुंरारि कपोलन लगि लसै।
मनहुँ लुब्ध अलि कमल भोर पीवत रसै॥

सिय सेंदुर टीका भाल बेंडी बनु।
कनक शृंग पर केतु दुइज शशि शुक्र जनु॥

बेंदी बनी अनूप श्रवणता टंकनु।
जनु शशि हृदय दुकूल कमठ शिशु कंचन॥

राम श्रवण कुंडल मकराकृत लोल जू।
जनु, तमाल तरु झूलत मयन हिंडोल जू॥

कोटिन रबि पर तेज कोटि शीतल शशि।
जनक लली की बोर तेज शीतल तसि॥

अति सुन्दर सिय के अम्बक काजल बनो।
अरुण कंज के कोप श्याम रेखा मनो॥

काजल देहि सखी दुइ लोचन श्याम के।
जेहि बिधि जनक लली के तेहि बिधि राम के॥

सीता मुख अधरारुण पर बेसरि हलै।
जनु मयंक सुत अरुण कंज दलन पर चलै॥

राम बुलाक मनोहर चिबुक बिन्दु कई।
पीत सकल छबि छेकि छाप जनु करि दई॥

नील बिन्दु सीता जू के चिबुक सखी करी।
वशीकरण जनु यन्त्र राम चितहित धरी॥

पहुंची बलय बहूटा मणि कनक जरावहीं।
सीता भुज द्वौ मूल सखी पहिरावहिं॥

राम भुजन बाजू बलय मुनि मन मोहिका।
खड़ुवा पहुंची कंकन मणिन मुद्रिका॥

सिय पछुवा चूरी कंकरण मुंदरी छल्ला।
बंक आदि बहु भूषण कनक मणिन कला॥

पीताम्बर मणि कनक छोर मोतिन छजै।
शरद प्रात रबि तड़ित तप्त कंचन लजै॥

ललिय लाल के भूषण अगिणित को कही।
राम चरण सखि जानहिं जो लखि छकि रही॥

जेहि सखि कुंज राम सिय जाही।
तहं तहं पूजन सखिय कराही॥
जानकि रसिक जानकी संगे।
बन बिहरहिं कभु कुंजन रंगे।
बिहरत सुख जानकी बिहारी॥

आवत रास बिहारी देखो सखि।
सरयू तीर शृंगार विपिन ते अति अनूप छबि न्यारी॥
सीताराम मनोहर जोरी चितवन की बलिहारी।
कुंडल अलक हलक बुलाक की दलकत हृदय हमारी॥
संग सखी सौहैं अलबेली बनी ठनी छबिकारी।
सुमन सिंगार किये नखशिख लौं निजकर श्याम संवारी॥
प्रभु आगे सखि खेलत आवे फूलन गेंद उछारी॥
झुकि झुकि लेत परस्पर फेकहिं लखि अनन्द पिय प्यारी॥
आये दम्पति रामचरण सखि सुमन सिंगार उतारी।
नदशिख मणि भूषण सिंगार करि सिंहासन बैठारी॥

राजित सिय रघुबीर सिंहासन।
कोटिन भानु प्रकास सिंहासन कोटिन शशि सम सीर॥
कोटि काम रति दुति निन्दत द्वौ श्यामल गौर शरीर।
मणि बहु भांति विभूषण शोभित पीत नीलंबर चीर॥
बहु सखि धूप की युक्ति बनावहिं बहु दीप सजीर।
बहु सखि रचि नैवेद्य बनावहिं बहु सखि लीन्हे नीर॥

बहु सखि मुख मज्जन पट लीन्हे बहु सखि लीन्हे बीर।
बहु सखि छत्र व्यजन चामर लीन्हे बहु सदि करत समीर।।
बहु सखि बाजन विविध बजावहिं ताल देहिं बहु धीर।
राम चरण सखि गौरी गावहिं मधुरे स्वर गंभीर।।
प्रथम चरण तल पुनि नख जावक नूपुर बारह बानकी।
सखि आरति करें प्रिय प्राण की निरखहि छवि राम सुजान की।।
पुनि किंकिणि कटि सूत्र मनोहर बहुरि अधर चप पान की।
दम्पति मुख सखि शशि चकोर थंभि पुनि सर्वांग प्रनाम की।।
पुन किरीट चंद्रिका निरखि पुनि राम चरण सखि पान की।
अंगि अंग छबि सुधापान करि रामलाल अरु जानकी।।

अलि छबि देखु किशोर किशोरी।
रघुनन्दन अरु जनक नन्दनी तरु शृंगार युग रूप फरो री।।
केकि कंठ द्युति श्याम रामतन कंचन धौत जानकी गोरी।
रामचन्द्र कर शर धनु राजत सिय कर कमल गेंद छवि छोरी।
रामचन्द्र कटि कांध पिताम्बर सारी नील सीय तन गोरी।।
मनहुं राम सारी होइ सिय तन सिय पट पीत राम तन कोरी।।
को छबि कहै बिभूषण भूषित को अस जो सखि मन न हरो री।
युगल मनोहर अंग अंग प्रति वारों छवि रति काम करोरी।।
बहु सखि निकट ठाढ़ि सेवा बहु नृत्य तान स्वर गान भरोरी।
रामचरण सनकादि शेष शुक शिव हनुमत मत यहै धरोरी।।

अति प्रेम मगन तनमन भीजै सखि आरति सैन सुरुचि कीजै।
युगल चंद सब के सन्मुख नित चित चकोर भयो मदन रतीजै।।
सीताराम सुधा छवि निधि महं चलत मीन इव चख लीजै।
अंग अंग लखि रूपसार शशि नयन मगन रह रह पीजै।।
बहु सखि ठाढ़ि साज सब साजे बाजन ताल गान मधुरीजै।
रामचरण सखि करत आरती मन क्रम बचन अर्पि दीजै।।

सैन चलिय पिया मोर राम सिय।
सकल सखी मुख चंद बिलोकहिं रैनि गई बहु तेरि।।
अलसाने लखि नयन उनीदे सहजा सखी निहोरि।
ललिय लाल सोवनाद चलहु बलि सकल सखी करजोरि।।
सुनि सखि बचन उठे पिय प्यारी उतरि सिंहासन सोरे।
सखियन राम सीय जु के भूषण हर शिर हंसि कछु छोरे।।

भूषण बसन उतारि राखि सखि मेन विभूषण थोरे।
सीय राम सोवनार चले सुख सखियन अति उमगोरे॥
मणिमय पलग ढिगन मुक्तावलि सेज बद कसि डोरे।
राम चरण उछीर गेदुआ पै फेन सेज पौढे रे॥

सयन कियो पिय प्यारी सेज सुख।
विविधि रग मणि मय मदिर मै जगमगात उजियारी॥
मदन मजरी की आयसु सखि प्रथमहि सेज सवारी।
दिव्य सुगन्ध सुमन चहु ढिग रचि विविध रग फुलवारी॥
सीताराम अराम कीन सखि ठाढि नीर भरे झारी।
चतुर सखी पद पदुम पलोटहिं राहस बात उचारी॥
बीरा पीक दान सखि लीन्हे सयन भोग भरे थारी।
बाजन पच बजाव पच सखि सप्त स्वरन रसकारी॥
आइ नीद सुख सोइ रहे रघुनन्दन जनक दुलारी।
रामचरण सखि बहु चौकी रहि बहु निज महल पधारी॥

श्री जीवाराम 'जुगल-प्रिया' जी

(१) युगलप्रिया पदावली

श्री जीवाराम युगलप्रिया के प्रेम भरे गीतो का यह सग्रह लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादाबाद मे सम्वत् १९५९ सावन बदी १३ को छपा। इसमे विशेषत सावन, फागुन के झूले और होली के पद है जिनमे श्री सीताजी तथा श्री रामजी के प्रणय विहार, रास, झूला के दृश्य विशेष रूप मे वर्णित है। अनेक राग रागिनियों के पद है भाषा मे पूर्वीपन है। उर्दू फारसी के शब्द आये है परन्तु अपेक्षाकृत कम। कुल १०७ पद है और पृष्ठ ५६।

विषय—युगल लीला विहार, रास विलास कनक भवन, सरयू तट की कुजों मे तथा सखियो सहित नाना विधि होली के आनन्दोल्लास और सावन मे झूलन विहार। इसके अतिरिक्त श्री युगल प्रियाजी के दो और ग्रंथ है। **शृंगार रहस्य दीपिका** और **अष्टायाम**। यहाँ हम पदावलो से कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है।

ये जागे श्याम सिया सग रग भरे रग महल कनक भवन शैन कुंज धाम।
अलसौहै सौहै नैन झपको है मोहै मैन अग अग सुरत समर छाम॥
निज कुज ते छटा सी छवि पुज पुज आई चन्द्रकलादिक बाम।
वीना मृदंग उपंग कठतार चग मिलित चरित गावती ललाम॥
यह रस राज समाज विलोकत विसरचो है सब मन काम।
युगलप्रिया मगनाई रसिकन धन मिलन हेतु रटत युगलनाम॥

मैं वारी युगल पर वारी।
दशरथ जू के श्याम सलोने गोरी श्री जनक दुलारी॥
नवल निकुंज नवल बनिता चहुंदिशा लसति अति प्यारी।
गान सरस बीना मृदंग धुनि युगलप्रिया बलिहारी॥

नई लगन ललन तोसे लागी।
या मिथिला की आवनि मै तेरी विपुल अली छवि पागी।
लै चलु पिय प्रमोद वन में जहां ऋतु बसंत अनुरागी।
अवध रंगमणि महल कांचनी युगलप्रिया बड़भागी॥
चले दोउ कुंज सरयू तट को सखिन संग अलमाने दिये गलबाही।
वियुरित अलकावली मुखारविन्द शोभित सुखमा सनेह रसिकन
दृग कंज मंजु प्रफुलित जनु युगलभानु प्रगटे वनमाही।
छप तस्करादि जेते रसिक भाव दुखित रहे सूख्यो हृदवारि रासध्यान नाही॥
युगलप्रिया रसिकन के हृदयवारि राम ध्यान।
बैठक सजि पुलकन आनन्द रोम रोम अमुजाहीं॥
लाडिली बनी अलबेली बना मतवारो।
श्री मिथिलेश कुमारि सरस छवि दशरथ राज दुलारी॥
श्यामल गौर नखशिख सुख माठनि अंग अंग छबि भारी।
युगलप्रिया दरशन के मनोरथ तलफत प्राण हमारो॥

जादू भरी राम तुमरी नजरिया।
जेहि चितवत तेहि वसकरि राखत सुन्दर श्याम रामधनु धरिया॥
जुलफन युत मुख चन्द्र प्रकाशित नासामणि लटकन मनहरिया।
युगलप्रिया मिथिला पुर वासिन फसी जाल विच मानो मछरिया॥

प्यारी जू होरी खेलन आई श्री सरयू तट कुज अनूपम धाम।
वीना मृदंग मुरचंग उपंग सौ गावै रंगीली वरवाम॥
प्रीतम आये धाय ज्यों अनंग छाये प्यारी भाल दै गुलाल बैठे यकठाम।
युगलप्रिया दोउ मूठी गुलाल भरत सब समाज अंग ललाम॥

खेलै श्री सरयू तट में रंग रंगीली फाग री।
पुर कहु ओर प्रमोद बनी मणि कंचन भूमि विभागरी।
तिनमें पूरव दिशि मिथिला सम्बन्ध सदा अनुरागरी॥
चारुशिला कमला विमलादिक चन्द्रकला गुन आगरी।
देति सुधारि लली लालन कर कुंकुम पिचकारी नागरी॥

याही ते तत्सुख स्व सुखी सम्बन्ध टहल प्रिय लागरी।
जे यहि रीति प्रीति मे हुलसत युगलप्रिया बड़ भाग री॥

हो हो खेलत दशरथ लाल रंगीली आजु रंगीली फाग।
ललना कनक भवन श्रीरंग महल विच नजर अबीरी वाग॥
विपुल कुंज चहु दिशा अलीगन चन्द्रकलादि विभाग।
सजि शृंगार वसन. भूषन पिय प्यारी परम सुहाग॥
नहरें लगीहौ दै रगन श्री सरजू अनुराग।
भरि डारत पिचकारी पियपर सिय कुंमकुमा पराग॥
चंद्रकला भिजोई दई अग पिय सिर केसरि पाग।
प्यारी करतारी मनहारी बलिहारी प्रियलाग॥
यह लीला लहरी अवलोकनि भजनि प्रेम तड़ाग।
अग्र स्वामि पथ लहयौ अमित सुख जुगल प्रिया बड़भाग॥

आजु खेलो रंग होरी भइयां आपु खेलो रंग होरी हो।
दशरथ राज कुमार छैल तुम कालि करी बरजोरी हो॥
तुम रघुवंश कुमार लाड़िले मै निमि वंश किशोरी हो।
कौन बात में घटी हमारे यूथप सखी करोरी हो॥
रूप गुनन में नागर प्यारे हौ नागरि कछु थोरी हो।
जुगलप्रिया मुस्कात छबीली रंग महल की पोरी हो॥

आजा पियरवा रसिक रघुनन्दन।
रसिक राय रसिकन हिय चन्दन॥
याहि कुंज मिलि रसिक रंगीली।
आनि जुरी विमलादि छबीली॥
हमरो कुंज मग माहि रसीलो।
तनिक विलंबि सरस रस पी लो॥
सुनि अलि वचन लाल मुस्काये।
मिलि तेहि संग लली ढिग आये॥
याही में तत सुख स्व सुख लखायो।
जुगलप्रिया सेवा मन भायो॥

भवरा संवलिया रामा हो गोरी कमल सिय प्यारी।
एक सखी अवध पुर आई पाती सुगन्ध पहुंचाई॥
बांचत ही मन विकल भयो आये गाधिसुवन उपकारी।
ल्याये चरित्र वन पावन कीन्हीं सुर मुनि मन भावन॥

धनुष कथा सुनि हर्ष भये मुनि संग चलनि मतवारी ।।
आये मिथिला सर संयाही छबि जल अथाह जेहि माही।
अलिगन दल लखि मुदित परम मकरंद पान फुलवारी ।।
यह रसिक जनन के दाया जब होय रहित छल छाया।
तब ही लोचन मगन छबि छावत जुगलप्रिया बलिहारी ।।

गलबहिया दिये बैठे दोऊ आय सरजू कुंज पुलिन मन भाये।
मनिन जडित कंचन की अवनी विपिन प्रमोद प्रमाद रसाये ।।
चहु दिशि अलि गन लसत निकाये।
निरखि निरखि नैंन नेह बढ़ाये ।।
सीस चंद्रिका क्रीट सुहाये।
कुसुमी वसन भूषन छबि छाये ।।
देत परस्पर पान खवाये।
मधुर मधुर बतिया बतराये ।।
रूप सुधा पीवत न अघाये।
अघटित प्रीति वरनि नहि जाये ।।
युगल प्रिया यह दंपति की छबि निरखत नैंन रहचौ मडराये ।।

उमड़ि उमड़ि आई बादरि कारी।
दशरथ नंदन जनक लली जू बैठे सखिन संग महल अटारी ।।
कुसुमी वसन युगल तन राजत जगमगात भूषन उजियारी।
अलकैं विथुरि रही मुख ऊपर मुकुट चंद्रिका लटक संवारी ।।
चंद्रावती मृदंग टकोरति चंद्रा तानपूर करतारी।
चंद्रकला जू वीन बजावत गावत उमग भरे पिय प्यारी ।।
अधिक प्रवाह बढ्यो सरयू को भरे प्रमोद विलोकत वारी।
युगलप्रिया रसिकन के संपति अगम निरखि रतिपति बलिहारी ।।

रंग झूलें अवध विहारी हो सरयू तट संग लिये सिय प्यारी।
सावन कुंज सुहावन पावन रतन भूमि हरियारी ।।
निज निज कुंजन ते बनि आई नित्य सखी अधिकारी।
गावहि सरसाती बरसाती दरशाती सुख भारी ।।
कबहु झुलावत प्यारी प्रीतम कबहू प्रीतम प्यारी।
युगलप्रिया रसमातु परस्पर दंपति लीला धारी ।।

रसिक दोऊ झूलत सरयू तीर।
रघुनन्दन अरु जनक नन्दिनी श्यामल गौर शरीर।

राजत छबि मै रतन हिंडोला तापर बोलत कीर।।
गावहिं छबि अवलोकि प्रेम भरि चहुदिशि सखिन की भीर।
बाजत वीन मुचंग उपंग मृदंग ताल अति धीर।
युगलप्रिया अति सुख वर्षत जब लेत तान गंभीर।।

जागे दोउ भोर प्रीतम प्यारी सीय सुकुमारी।
आलस भरे अँडात परसपर अखियां अति चित चोर।।
नाशामणि वेसरि अधरन पर हलत सरस दुहु ओर।
मनहु शुक्र सुर सुर गुरु विचरत है कुंजकोष के कोर।।
रूप गर्विता नवनागरि पिय नागर श्याम किशोर।
युगलप्रिया दोऊ अवधविहारी जो कछु कहिय सो थोर।।

आज चल देखोरी आली श्रीराम रसिक पिय रास रच्यो सुखदाई।
राम भूषन वसन श्याम सलोने अंग लो नील ली संगलोनी अली समुदाई।।
वीना मृदंग मुचंग कठतार चंग वाजत ईमन राग परम सोहाई।
युगलप्रिया गान करहिं चंद्रकला लाल प्यारी उमंगि तनछाई।।

सियावर सांवरे छबि देखि।
रहत न तन मन सुधि कछु सजनी लगत न नैन निमेखि।।
सजि सिंगार परस्पर दोऊ गलबाही वर वेखि।
युगलप्रिया अलि चंद्र कलादिक सुफल सजीवन लेखि।।

झूमि झूमि छायो रस अखियां।
गरजन मेह नेह बोलनि मै नवघन श्याम राम जिन लखियां।।
दामिनि सी दमकति अंग अंगनि गौरव रन चहुंदिशि लस सखियां।
युगलप्रिया हिय नटत रसिक जन ज्यों मयूरिशिर पर करि पखियां।।

खेलत वसंत रसिकाधिराज।
रघुनन्दन सिय संग अलि समाज।।
नव अंग अंग वर वसन साज।
बाजै मृदंग अरु विविधि बाज।।
तहं अलिगन गावैं सरस राग।
रागी जन मन अनुराग जाग।।
कहे चंद्रकला सुनिये जू लाल।
प्रमदा वन फूल्यो द्रुम रसाल।।
सजि दोऊ चलिये संत रंग।
मन मोहन दोउ मिलि येक संग।।

आये जहा वन मध्य धाम।
आयत विशाल सुखमा ललाम॥
तेहि मध्य कुंज बैठे जू आय।
तब चंद्रकला वीना वजाय॥
नाचन लागी अलि विविधि भाग।
गावहि वसंत अति सरस चाव॥
ऋतुराज सहचरी वेष कीन्ह।
मेवा भरि थारन साज दीन्ह॥
फूलन सिंगार किये अपने हाथ।
निरषत छबि ह्वै रहे अति सनाथ॥
तब युगलप्रिया रुचि समय पाय।
झोरी गुलाल होरी मनाय॥

उज्ज्वल उत्कंठा-विलास

श्री युगलानन्यशरण 'हेमलता' जी

(१) उज्ज्वल उत्कण्ठा विलास

सुमधुर मनभावन दोहों मे श्री जनकराज किशोरी जी तथा श्री दशरथराज किशोर जी युगल सरकार के सरस नाम, रूप, गुण, धाम और लीला की उज्ज्वल उत्कठा से परिपूर्ण श्री युगलानन्य शरण जी महाराज की यह पुस्तक पुस्तक भंडार लहेरिया-सराय (दरभगा) से प्रकाशित हुई है। अंत मे दी हुई 'पुष्पिका' से पता चलता है कि सवत् १९७२ भाद्र शुक्ल अष्टमी भौमवार को इस ग्रंथ का लिखना पूरा हुआ था। सपूर्ण ग्रथ दोहो मे है।

विषय—आरंभ मे ७० दोहो मे नामोत्कठा है, फिर ९४ दोहो मे रूपोत्कठा है, तदनन्तर ३४ दोहो में गुणोत्कंठा है, तदनन्तर ३७ दोहों मे धामात्कठा है और अन्त मे १६० दोहो मे लीलोत्कंठा है। इस प्रकार कुल मिला कर ३९५ दोहो का यह ग्रंथ रसिकोपासना के आधार ग्रंथो मे सर्वसम्मान्य एवं उपजीव्य ग्रथ के रूप मे पूजार्ह माना जाता है।

उदाहरण—

लोक-वेद बंधन विपुल विरस विचारि बिसारि।
जपिहौ जीवन नाम वसु याम मनादिक वारि॥
नवल नेहनिधि नाम मधि मीन समान सुलीन।
रहिहौ हाय हिराय हिय हर सायत पन पीन॥
महा मधुरता नाम सुख सागर रसना चाखि।
भुक्ति मुक्ति-अभिलाष तृन-राख मानिहौ राखि॥

बार-बार रसना सरस कब दैहौं उपदेश।
रटि रमिये निज नाम-गुन-धाम-सहित आवेश॥

श्री करुणानिधि-नाम गुण श्रवण समेत उछाह।
पल पल प्रति करिहौं कबहुं छोड़ि-छाड़ दिल-दाह॥

नाम मनोहर मोदप्रद कलित कूक सुनि कान।
ह्वैहै कबहूं मन वपुष विवस समान महान॥

बाहर भीतर करन कुल नाम माझ करि लीन।
अमनस ह्वै रहिहौं कबहुँ निदरि वासना झीन॥

सिय-जीवन-अनुराग-घन नाम सनेहिन साथ।
कबहुं मोर मानस रमन करिहै होय सनाथ॥

नाम-मोहब्बत मीठ मोहि कबहुं लागहैं नित्त।
ज्यों लोभी कामी हृदै वाम दाम दृढ़ चित्त॥

नाम-लगन अंतर कबहुं लगिहैं लोभ-समेत।
छन बिछुरत तन त्यागिहौं जिमि झख वारि वियेत॥

नाम रटन रसना कबहुं करिहौं होस हिराय।
जिमि मयंक-मुख प्रान पति निरखति तिय बलि जाय॥

रे मन निशिदिन नाम मुद धाम जपन उत्कंठ।
करत रहो पुलकित वपुष निदरि आस-वैकुंठ॥

कौन काम की मुक्ति सो जहं न रटन सियराम।
नाम-रागविन निदरिहौं सोउ दिन अति अभिराम॥

जगमग पग पंकज परम प्रेम-प्रवाह निहारि।
ह्वै रहिहै चेरी सुमति सुरति सोहाय विचारि॥

ललित ललन लोने युगल पद पंकज प्रिय अंक।
अति अनूप नव रंग से रंगिहौं विगत कलंक॥

अरुन हरन-मन नख-प्रभा राकापति शत-तूल।
मृदुल सचिक्कन चाहि कब ह्वै जैहौं भवभूल॥

अमल ललित अंगुरीन-छबि मधुर आभरन-संग।
कब जोहत युग जाइहै निमिष समान सरंग॥

अमल कलम-कोमल-ललित सुपद-विभूषन-बीच।
मम मन मनि ह्वै लागिहै सुनत सुरव रस सींच॥

युगल चरन-अरविन्द मृदु मधुर मरन्द अमंद।
मन-मिलिन्द कब चाखिहौं परिहरि वनविष-फंद॥

जानु जंघ जग मग महा मनहारी कल कान्ति।
सरस स्वच्छ शुचि निरखिहौं सजि सब विधि चित शांति॥

कृस कामद कटि केलिमय रुचि रसराज सुधाम।
किंकिन कलित उछाह-भरि लखिहौं कबहु अकाम॥

घन-दामिनि-निदरनि वसन रसन सोहाग-समेत।
मम मन-नैन निहाल ह्वै कब हेरिहै महेत॥

नाभि मनोहर निम्न सर सुभग अनूपम देखि।
त्रिवली तरल-तरंग-युत लोचन सफल विशेषि॥

भाव-उमंग बढ़ाय उर रस पसु वपुष संवारि।
लखिहौ नाभि-सरोज-छबि निखिल अपनपौ वारि॥

उर उज्वल लावन्य निधि विस्तीरन रसरास।
विशद विभुषन मय मधुर कब लखिहौं पगि प्यास॥

कलित कंचुकी चारु चख चितवत कुच कल संग।
लोभित ह्वै रहिहै सुदृग मन समेत रसि रंग॥

सरसी रुह-सुन्दर-सुखद-कोमल-ललित-ललाम।
कबहुँ कञ्जकर रागमय तकि छकिहौं वसुयाम॥

मृदु अंगुरिन-मुद्रिक मधुर मण्डित-मनि-कल-कान्ति।
नख नव नूर-समेत कब लखि रहिहौं सजि शान्ति॥

अधर मधुर मन मोहने असल राग-रस रूप।
कबहुँ भाव-भरि हेरिहों हरन-हीय-दृग-धूप॥

नवल नेह निधि नासिका मुक्ता-सुनथ-समेत।
झुकनि-ललित-डोलिनि अधर-परसनि-हिय-हरि लेत॥

अंजन-अंजित श्याम-सित-अरुन रंग रमनीय।
सुख-समूह-वितरन कुशल लखि ह्वै हौ कमनीय॥

रे मन अमन अमान ह्वै निरखु नैन सुख-खान।
सुख-समाधि पैहै, अवस हिरस-हिराय-हरान॥

सुखमा-भवन श्रवन कलित कुण्डल ललित समेत।
रमक-झमक-झूलन निरखि ह्वै हौं कबहुँ अचेत॥

झांई कलित कपोल मिलि महा मोद मन देत।
युगलानन्य शरन - ह्वै - हारी सब सुधि लेत॥

युगल किशोर - चतुर - चरन - गहि गति रति - दृग-दैन।
निरखि हरखि उपमा निखिल हंसि पैहों चख चैन॥

प्रीतम - प्रानप्रिया पगे - प्रेम परस्पर पेखि।
धन्य अपनपौ मानिहों तृन - सम त्रिभुवन देखि॥

अंग अंग पर वारिये अमित अनंग - गुमान।
पल प्रति छवि शतगुन नवल लखि लहिहों सुखखान॥

श्री सीता - सुख प्रद - सुगुन सुधा सहस मधुरेश।
रसि - रसि रस हरषाइहों निदरि नेह - भव - वेस॥

सुन्दरता - माधुर्यता - सुकुमारता - सुवेष।
महा मोद निधि गुनन मधि ह्वैहौ मगन निमेष॥

श्री सिय - स्वामिनि - संग सुख - सुखमा - सागर श्याम।
दिव्य - भव्य - नितनव्य गुन गैहों तजि धन - धाम॥

मन बच बपु श्री धाम मधि कब बसिहों सुख-संग।
देखत दृग दुति दिव्य महि मोद मयी रंग - रंग॥

श्री सीतावर रस रसिक तरु तृण गुल्म लतान।
निरखि नेह युत नाचिहों संविहाय भुव - मान॥

लोक लाज कुल काज को समुझि सुमन विष रूप।
बसिहों बिमला बिमल बुधि बलित लखत युग रूप॥

कबहूँ कनक निकेत रति हेतु मांझ ललचाय।
सरस सजातिन संग सुठि सजिहों चित परचाय॥

धाम दरस देखत दृगन चलिहै कबहुँ प्रवाह।
आपा - पर बिसराय सुधि अचल चित्त चख चाह॥

अहो भाग अनुराग मम मानुष - बपु प्रिय पाय।
अचल बास - सरयू - सुतट विषम बिकार बिहाय॥

मान प्रतिष्ठा धूरि - सम ऋधि - सिधि धूर - समान।
अनत बड़ाई विष निरखि बसिहों धाम प्रधान॥

अष्ट कुञ्ज कमनीय चहुँ ओर चारु चित चोर।
निरखि निछावरि होइहै तन मन रंग रस बोर॥

ललना ललित संवारि तन अतन निबारि सचेत।
कबहुँ युगल छवि हेरिहों बसि श्री कनक निकेत॥

सुमन सेज मुद मन्द सद सदन सैन रस हूप।
लोचन लगन लगाय कब तकि छकिहों गत धूप॥

चहुँ ओर झम झम झनक नूपुर किंकन बीन।
सुभग सहचरिन मधुर धुनि कब सुनहों निति लीन॥

रंग महल मधि मोद निधि ललित लाडिली लाल।
पगे परस्पर प्यार कब लखिहौं होय निहाल॥

कबहुँ हेरिहों नैन निज अति अलसाने अंग।
प्रिया प्रेम परतन्त्र पिय सिय समेत रसि रंग॥

उन्मद दृग राते रहस अरस निबारन नैन।
निरखि हरषि बलि जाइहों सुनि सरसाने बैन॥

प्रेम प्रमोद महा मदन मद माते दोऊ प्रात।
झुकनि परस्पर प्यार पगि जोहि मोहिहों गात॥

आलस रस बस बर बचन सुमन सचन सुख सार।
उर उमंग उमगाय कब सुनि ह्वै हों बलिहारि॥

सिथिल बसन भूषन लसन युगल ललन विपरीति।
कौन सुदिन अनुपम निरखि पैहों प्रीति प्रतीति॥

श्री यूथेश्वरि साथ युग जीवन रूप अनूप।
पट उघारि लखिहों कबहुँ परि उछाह-रस-कूप॥

रसावेश उरझनि उरसि उज्ज्वल लगन लगाय।
विकल वपुष मंगल असन कर वैहों उमगाय॥

गौर श्याम अभिराम मृदु मूरति मोद निधान।
सखिन समूह सु मध्य में लखि छकिहों पगि प्रान॥

श्री सहचरी समाज युत शुचि शृंगार निकुञ्ज।
कबहुँ जात दृग जोहिहों करि चञ्चल चित लुंज॥

श्री रसराज मधुर सदन मांझ मनोहर जोरि।
सजि शृंगार बिलोकहिं सब सन नाता तोरि॥

रंग रंग भूषन बसन नख-शिख रचि रुचि संग।
मुकुर देय कर कंज मधि निरखैहों सोमंग।

हाव - भाव अनुभाव रस सरस परस्पर पेखि।
ह्वै जैहों बलिहारि निज भाग अनूपम देखि॥

अहो सुदिन शिर मोर कब युगल दिये गलबांह।
मन्द मधुर मुसुकाय मुख कब लखिहों चितचाह॥

पल - पल पर रचिहों कदा केलि कदम्ब सचाह।
जिमि निधनी धन कामिनी प्रीतम मिलन उछाह॥

नमिमय महल सुजग मगित सुचि सुरभित सब भाँति।
महज सौज - संयुत सदा तहँ सजि सेज सुकान्ति॥

ललित लड़ेती लाल तहँ प्रीति - सहित पधराय।
लखिहों मधुर मयंक - मुख मुख- सुखमा दृग - लाय॥

सैन सुभग सजिहै युगल हौ पलोटिहों पांय।
बार - बार निज भाग को अभिनन्दन करवाय॥

चरन - चारु नख - कान्ति प्रिय अंक अमल उर - लाय।
सावधान सुख सैइहों गुन अनूप धिय ध्याय॥

सबहिं तोषि सुन्दर सुखद सिय प्यारी पुनि पास।
हृदै विपुई उमगाय मुद पीवत सुधा सु प्यास॥

विशद - विनोद - विहार - हित उपवन सखिन समेत।
सुमन सुफल निरखत कबहुँ लखिहों मोद - निकेत॥

चञ्चल चखन नचाय चहुँ ओर नचन चितचोर।
युगल - किशोर रिझाय अलि पाइय प्रीति - पटोर॥

सखिन सजायो सेज सुचि छीर - सार - सुकुमार।
नवल निकुञ्ज अजूब वर रचना रहस - अगार॥

विविध सौज - सुख - सजन श्री श्यामा श्याम सुयोग।
अति अनूप अनुराग सजि सौज सेन सम भोग॥

सखी सनेह - समेत सुचि सेज सोहासन साजि।
लली लाल पधराय तहँ निरखि रही रसराजि।

चम्पक चामीकर चपल चपला नैन निहारि।
सिय - स्वामिनि - अंग - सुरति करि दैहौ अनगन वारि॥

कोटिन केलि - कला - कलित प्रति - पल ऋतु - अनुसार।
युगल ललन - लोयन निरखि पैहो शुचि सुखसार॥

अर्थ पंचक

श्री युगलानन्यशरण जी

(२) अर्थ पंचक

सामान्य परिचय . श्री लक्ष्मण किला अयोध्या के महन्त श्री रामदेवशरण जी महाराज के आज्ञानुसार महात्मा श्री रामधारीशरण जी की प्रेरणा से सेठ वशीधर लड़ीवाले द्वारा श्री रामायण प्रेस लिमिटेड अयोध्या मे मुद्रित तथा मुजफ्फरपुर निवासी श्री रामबहादुर शरण जी द्वारा प्रकाशित।

विषय . श्री युगलानन्यशरण जी महाराज लिखित 'अर्थ पञ्जक' रससाधना के आधार ग्रन्थों मे मुख्यतम है। इसमे बहुत सरल सुबोध दोहों मे तत्त्व निरूपण एवं भाव विवृति हुई है। इस छोटे-से ग्रन्थ मे (१) जीव का स्वरूप विवेचन, (२) ईश्वर का स्वरूप विवेचन, (३) उपाय विवेचन, जिसमे सम्बन्ध भावना भी है (४) फल विवेचन जिसमे पुरुषार्थ तत्त्व का सविशेष निर्णय प्रस्तुत किया गया है और (५) विरोधी विवेचन तथा अन्त मे काल क्षेप की व्यवस्था है। श्री गुरुदेव जीवाराम 'युगल प्रिया' के स्मरण के साथ ग्रन्थ समाप्त होता है। अभिप्राय यह कि थोडे मे, सार रूप मे सरल सरस सुबोध दोहो मे समस्त तत्त्व निरूपण बडी सावधानी से हुआ है। ग्रन्थ मनन करने योग्य है। गागर मे सागर भर दिया है ऐसा नि सकोच इस ग्रथ रत्न के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है। युगल उपासना तत्त्व का विवेचन पड़ा ही मार्मिक है।

उदाहरण —

प्रबल वपुष प्रारब्ध विहाई। श्री सियवर प्रत्यक्ष मिलि जाई॥
सब छर भार सियावर माही। अरपन कियो शरन गहिबांही॥
दिनहि बितावति दैव निहारी। सोई दृप्त प्रपन्न बिचारी॥
जगत जाल परसत नहि जिनको। लेश अविद्या ग्रसत न तिनको॥
श्री सीतावर संग बिहारा। विविध भाँति उत्साह अपारा॥
संतत टहल सुधा निधि चाहै। परम प्रमोद उमग अथाहै॥
प्रभु अनुकूल भोग निज जाने। तत्सुख सुखी स्वरूप लोभाने॥

निराकार सब मे बसत, भक्तन हिय साकार।
युगल अनन्य विचार बिनु, भटकहि अन्ध गवार॥
निराकार मे सुख नही, केवल व्यापक रूप।
सरस रहस साकार मधि, श्री श्रुति शेष निरूप॥

अन्तःकरण शुद्ध होवै जब। बिरति विषय अन्तर पावै तब॥
यम आदिक अष्टांग समेता। क्रम ही से अभ्यास उपेता॥
मानस कुञ्ज मध्य इमि ध्याना। रवि पावक मधि धाम प्रधाना॥

तामधि सिंहासन सुधरावे। दिव्य मनिनमय बसन धरावे॥
श्री सियिवर मूरति मन हरनी। ध्यावे तहां सहज सुख भरनी॥
नख शिख नबल अंग रस सागर। चिनमय करै सदा मति आगर॥
भूषन सुभग अंग प्रति जो हैं। निरखि निरखि पुनि-पुनि मन मोहैं॥
परम दिव्य कल्यान गुनाकर। श्री सीतापति रूप प्रभा कर॥
याही भाँति सदा मन लावे। कबहूँ प्रेम विवश प्रगटावे॥
भक्ति योग सहकारी सोया। होय ज्ञान निर्मल पद जोया॥
लहै मुक्ति कैवल्य प्रधान। छूटै त्रिविध वासना मान॥
यद्यपि ज्ञान सुसाधन नीका। तदपि कठिन गाहक निज जीका॥

इन्द्रिन के निग्रह बिना, दुर्लभ ज्ञान सुजान।
ताहू मे आयू अलप, ताते भजन प्रमान॥

हाय हमेशा हिये रहावे। नैनन नीर प्रभाव बहावे॥
खान पान मानादिक त्यागे। निशिदिन नाह मिलन अनुरागे॥

पति पत्नी स्वामी अनुग, पिता पुत्र सम्बन्ध।
धर्मी धम शरीर अरु, सुभग शरीरि निबन्ध॥
शेषी शेष नियाम्य अरु, न्यामक रक्षक रक्ष।
तिमि आधाराधेय ते, व्यापक व्याप्य समक्ष॥
भोग्य भोगता एक रस, शक्ताशक्त निहारु।
परिपूरन पूरन रहित, ज्ञाता अज्ञ बिचारु॥
सकल वासना हीन अरु, अमित वासना पीन।
निज पर दृढ़ सम्बन्ध इमि, जानत परम प्रवीन॥

यद्यपि सब सम्बन्ध अनूपा। तद्यपि पति पत्नी सुख रूपा॥
याहि माहि अति प्रीति प्रकासे। निराबरन प्रीतम रस भासे॥
स्वर्ग मोक्ष अभिलाष बिसारी। केवल ललन मिलन पन धारी॥
वपु चौबीस तत्त्व कृत त्यागी। समुझि हिये तर प्रभु अनुरागी॥
श्री सियाराम मिलन अभिलाषे। मायिक गुन गति श्रम बिन नाषे॥
प्रान सुषमना द्वार निकारी। भाल भेदि गये धाम खरारी॥
केवल सूषमना से गमनो। विधि वैभवदिशि ते अति बिमनो॥
अर्चिरादि पथ होय प्रवीना। रवि मंगल छेद्यो अति झीना॥
प्रकृति आबरन उतरि बहोरी। बिरजा सरित लख्यो रंग बोरी॥
तेहि सरि मज्जन करि बड़ भागो। लिंग देह सब विधि तेहि त्यागो॥
कारन तन बासना बिनासी। शुद्ध भयो बहु विधि सुखरासी॥

बिरजा पार भयो अनयासा। निज सकल्प सहित गत आसा॥
अमल अमानव कर पर परस्यो। महाप्रेम सागर सुद सरस्यो॥
त्रिगुन रहित वपु बिरज बिवासी। दिव्य भव्य आनन्द निवासी॥
सदा प्रकास रूप सुचि सुन्दर। जेहि लखि लज्जित अमित पुरन्दर॥
हियवर रूप प्रकास सोहावन। भाजन भयो छयो छबिछावन॥
मनि सोपान द्वार ह्वै नेही। चढ्यौ बढ्यौ हिय हर्ष अदेही॥
निरख्यौ नैन मनोहर जोरी। गौर श्याम अद्भुत रग बोरी॥
धनुष बाण कर कञ्ज विराजै। नख शिख नवल विभूषन साजै॥
कुण्डल क्रीट चन्द्रिका सोही। जेहि छवि छटा निरखि मति मोही॥
अग अग सौन्दर्य सोहावन। उपमा निखिल रहित मन भावन॥
सखी सहचरी अमित सुदासी। चहुँ दिशि चमक रही चपलासी॥
नाना सौज लिये कर माही। निरखि रही प्रीतम गल-बाही॥
यहि विधि सिय वल्लभ छवि देखी। यकटक रह्यौ नैन अनमेखी॥
सियवर अति सनेह युत नाही। सकल भाँति अति प्रीति सराही॥
मम चित्त चाह रही अतिभारी। कब लखिहौ परिकर प्रियकारी॥
तब आवन इत अद्भुत भयो। मोद प्रमोद मोहि अति नयो॥
बड भागी सोई अनुरागी। जो मम निकट आय छलि पागी॥
या विधि तुगल किशोर सुधानिधि। बानी विमल कही सब विधि सिधि॥
सदा मोद मन्दिर रस लहिये। परिचर्या निज रुचि वस कहिये॥
अमित रूप धरि सेवा कीजै। यथा योग्य अभिनव सुख पीजै॥

मधुर मनोहर चरित वर, दम्पति केलि कलान।
निरखै हरखै एक रस, परिहरि अमित विधान॥

श्री जानकी सनेह हुलास शतक

श्री युगलानन्यशरण जी

(३) श्री जानकी सनेह हुलास शतक

इस ग्रन्थ मे महात्मा श्री युगलानन्यशरण जी ने श्रीराम से बढकर श्री जानकी जी की महिमा नाम प्रभाव, रहस्य का वर्णन किया है। महात्मा श्री युगलानन्यशरण जी राम की अपेक्षा जानकी के प्रति अधिक आसक्त है, अधिक अनुरक्त है। उन्होने अपने अनुभव के आधार पर सुन्दर, सरल, सरस दोहो मे अपनी भावना को बडे ही सजीले ढग से व्यक्त किया है। वे कहते है कि सारा विश्व राम का नाम जपता है परन्तु स्वय राम श्री जानकीजी का नाम जपते है और उनके रूप का ध्यान करते है, उनके चिन्तन मनन निदिध्यासन की केन्द्र बिन्दु श्री जानकी महारानी

ही हैं। युगलानन्यशरण जी की अनन्यता की, इस छोटे-से ग्रन्थ में बड़ी ही भव्य मनोज्ञ अभिव्यक्ति हुई है जो सहज प्रभाव डालती है।

महा मधुर रस धाम श्री सीता नाम ललाम।
झलक सुमन भासत कबहुँ होत जोत अभिराम॥

रसने तू नव नागरी गुननन आगरी नाम।
क्यों न भजै संकोच तजि सजि मन मोद ललाम॥

सखी किंकरी भाव भल धारि सुर सने नित्त।
रमो निरन्तर नाम सिय निज हिय खोल सुचित्त॥

पर पति मगध नव नागरी रचत जौन विधि नेह।
चलत बदत सोवत सोई इमि कब नाम सनेह॥

रूप जीविका वप यथा पल पल सजत सिंगार।
मम मन कबहूँ नाम छवि सजि है सरस संवार॥

तैल धार सम एक रस स्वांस स्वांस प्रति नाम।
रटौं हटौ पथ असत से बसौ रंग निज धाम॥

दीप सिखा निर्वात जल लहर हीन तेहि भाँति।
कब ह्वै है मन नाम जप जोग रहित भव भ्रान्ति॥

यथा विषय परिनाम में बिसर जात सुधि देह।
सुमिरत श्री सिय नाम गुन कब इमि होय सनेह॥

अन्ध नयन श्रुति बधिर वर बानी मूक सुपाय।
याहू ते सत गुन हरष कबहूँ नाम गुन गाय॥

श्री सरजू तट पुलिन मधि निसा उजारी मांह।
हे सिय कहि कब बिवस ह्वै रहिहों दुति द्रुम छांह॥

लता लवंग कदम्ब तर तर दृग पुलकित गात।
जयति जानकी सुजय जय जपिहों तजि जग नात॥

श्री रघुनन्दन नान मित करे जो कोटि उचार।
ताते अधिक प्रसन्न पिय सुनि सिय एकहु बार॥

जानकि वल्लभ नाम अति मधुर रसिक उर ऐन।
वसे हमेशे तोम तम समन .करन चित्त चैन॥

जो भीजै रस राज रस अरस अनेक विहाय।
तिनको केवल जानकी वल्लभ नाम सहाय॥

प्रीतम की जीवन जरी रसिकन की सुर धेनु।
भक्त अनन्यन की लता सुर तरु सिय पदरेनु॥
बार बार बर विनय करि यांचत श्री सिय देहु।
लोक उभय आसा रहित निज पिय नाम सनेहु॥
भुक्ति मुक्ति की कामना रही न रंचक हीय।
जूठन खाय अघाय नित नाम रटो सिय पीय॥

संत सुख प्रकाशिका पदावली

स्वामी युगलानन्यशरण जी

(४) सन्त सुख प्रकाशिका पदावली

स्वामी युगलानन्यशरण जी महाराज के मधुर रस भरे पदो का यह सग्रह सन् १९१७ मे लखनऊ स्टीम प्रिंटिग प्रेस मे छपा। इसमे प्रेमस्वरूप भाववश्य भगवान् रामचन्द्र के प्रति रसिक भक्त हृदय का प्रणय निवेदन है जो अपनी सरसता और सहज प्रभावशालीनता के कारण पाठको के मन को मुट्ठी मे कर लेता है। श्री युगलानन्यशरण जी की पदावली मे प्राय सूफी शब्दावलियों की भरमार है। इश्क, आशिक, महबूब, जुल्फ़, जुल्म, सितम, जख्म, दर्द, आह, फरियाद, वफा, जफा, यार, आदि शब्द इन्हे विशेष प्रिय है और छूटकर ये इन शब्दों का व्यवहार करते है।

बिलगि जनि होइयो हो पहलू प्यारे।
सजनी सिय सुन्दरी सग सुख सेज सोहावन सोइयो हो।
युगल अनन्य अली मद मत्त दृग दोऊ दिलवर छवि जोइयो हो॥
निठुर पन प्यारे उचित न लागे।
तुम बिन छन छन छैल छबीले मिलन मनोरथ जागे॥
दृग देखन ही दरद दिवानी दिल दुसमन दिन दागे।
युगल अनन्य अली अपनी लखि के कारन तृन त्यागे॥

सब मे परि पूरन राम न तिलभरि खाली।
जित जो हौ जिकिरि जमाय वही बनमाली॥
अंखियन मे चश्मा चाह धरे रहु प्यारे।
सब विश्व विलास प्रकाश रूप उजियारे॥
नहि नेकु बिषमता लेश देश दुति धारे॥
समता सुचि शहर निवास सजे सुख सारे।
तन मन बन पर्वत बीच फैलि रही लाली॥

नगारा नेह का नित बाजत आठौ याम।
सुनत श्रवन सुख रस जग दायक भायक भल छवि धाम॥
केकी कोकिल बीन सुधा से अधिक मधुर धुनि ग्राम।
जो नहिं सुन्यो स्वाद मय इह धुनि लह्यौ न तिन विश्राम॥
जग ठग जड़ वंचक तेई जन जो नहिं सुमिरचौ नाम।
युगल अनन्य रहित संशय अब मन पायो आराम॥

मोरी तोरी लागी लगन रघुबीर।
जानत जीवन जहान जहां लगि पगि रहि मति गति गीर।
सपनेहुँ शौक जौक दूजी नहिं पल पल प्रिय पथपीर॥
जोइ जीवन धन चाह चारु चित सोइ सुखि सुगन गंभीर।
युगल अनन्य शरन घायल दिल निरखत सरयू नीर॥

कैसे भूलि गई वर बतियां।
शरन संयुत सौपत सुख ठौर ठौर प्रिय पतियाँ।
सकल जीव निज जानि दया दृग देखत तजि गुनगतियाँ॥
हौ तेरी तूही मेरो पति दृढ़ प्रतीति छकि छतियाँ।
युगल अनन्य शरन अन्तर उर रुचत नही जस जतियाँ॥

रसीले लाला लागि गई तोसे प्रीति।
जिय जानत पहिचानत प्रीतम विरहिन रति रुचि रीति।
चाह अथाह हमेश बढ़त चित रुचत न गज विपरीति॥
काहू संग रंग निकसे नहिं छोड़चौ नीति अनीति।
युगल अनन्य शरन मिलि हौं प्रिय बढ़ी प्रबल परतीति॥

पीके पियाला पिया परचैहौ।
पल पल प्रेम बढ़ाय गाय गुन रस निधि छवि अरचैहौ।
मनमति गुनि गुरु ज्ञान ध्यान सब साधन हित खरचैहौ॥
नाह नेह बिन देह गेह कुल खेह समुझि न रचैहौ।
युगल अनन्य शरन सतगुरु श्री राम चारु चरचैहौ॥

अब हम भई सोहानिगि सांची।
कृपा करी कोशल पति प्रीतम मधुर मोह घत भांची॥
बिसरी विषय विभूति वासना नासी जगमति कांची।
नूतन नेह बांधि नूपुर पद परा. प्रीति युत नांची॥
साधन सकल निवारि नेम करि युगल नाम सनराची।
युगल अनन्य शरन सीतावर रहस भावना याची॥

जानकी रमन पियारे तुमसन लगन लगायो।
कठिन गाठि नहिं छुटत छुटाये समुझि सनेह समाया॥
रसिकन सग रग पहिचान्यो पाँचो वपुष भुलाया।
मत मतान्त सब देखि चुकी सत सुख सपनेहुँ नहि पाया॥
अब जनि श्याम और नहि भासे रहे छोह छवि छाया।
युगल अनन्य शरन बन्दी पिय सपदि कीजिये दाया॥

बेदरदी दरद क्यों जाने हो।
जाके हिये न व्यापी ऐसी ताते दुख नहि माने॥
जाके पायबे आय न भासी सो हमि हाँसी ठाने।
मौन रहौ तो रह्यौ जात नहि बोलत डोलत प्राने॥
हार रही कछु यतन न लागे ऐसो व्यथा समाने।
युगल अनन्य शरन हरसायत उर बेधत दृग बाने॥

केहि विधि विरह बुझावो सखीरी केहि विधि प्रीतम दर्शन पावो।
शिथिल रहत अग अग विरह बस दरद भरी अकुलावों।
औचक उठि बेहोश देवानी पिय पिय कहि बिलखावो॥
कबहूँ अचानक हाय हिये करि जीवन स्मृतक कहावो।
कहुँ सुधि पाय झरोखन झाँकति पथिकन से बतरावो॥
ना जानो कौनी विरमायो यह गुनि हिय पछितावो।
युगल अनन्य धारि धीरज कहुँ ललन ललित गुन गावो॥

अन्यरीति

कासे कहो को माने हमारी।
अपने जान चतुर स्यानी तू मेरे मत मतिमन्द गवारी॥
लग्यो न चाव चाद प्रीतम रस अबही तो भोरी सुकुमारी।
घायल भई न पिय गुन रचक ताही तं देती गनिगारी॥
जब मिलि हेरि लिहै रसिया से टब करि मौन रहेगी प्यारी।
युगलानन्य दसा न नू कतर बरनत शरम सकोच अपारी॥

बरषत बुन्द विरह बरवारी।
करकत करक करेजो कामिनि कहि न सकत हिय हारी।
गरजि गरजि गरबी गाहक जिय जाग्त जम डर डारी॥
चहुँ दिशि चमचमात बैरिनि यह मदन कृपा न करारी।
मान मरोर लिये मादक छकि मन्द मयूर पुकारी॥

जहँ तहँ छाय रहे दुख दायक विरहिनि एक विचारी।
युगल अनन्य शरन सिय पिय बिनु वेदन अकथ अपारी।।

वरषा ऋतु रस बरसावै।
विरहिनि हिय हाय बसावै।
पल पल पिय मृदु मधुर मोहनी मूरति हित ललचावै।
मन्द गरजि गुनगान करत बादर मिस जस प्रकटावै।।
चपला चमकि देखाय दाह दिल दूनो दरद दिवावै।
युगल अनन्य शरन सिय पिय छवि छटा छला बछवावै।।

पिय और सुरतिया लागी।
अब न सोहात सदन सजनी।
उमंत उमंग रंक अन्तर उर दरश चाह चित जागी।
बिस भाव चाव चरचा चल अचल दरद दिल दागी।
युगल अनन्य शरन सिय वल्लभ भेंटिये छबि अनुरागी।।

सरयू तट बास सजावो।
निज नेह निशान बजावो।
लखि ललना लांभ लजावो।
गुरु सन्तन शरन सजावो।
दृग जात रंग रुचि लावो।
इत उत की कुमति घौलावो।
सिय श्याम सनेह समावो।
गुन नाम निरन्तर गावो।
चित चोरन रूपहि ध्यावो।
मत परमानन्द सोहावो।
बहु बाद बिखाद तजावो।
समता सुख शहरहिं जावो।
नहिं अनत अनन्य लोभावो।

कैसे भीजे हमारा हियरा।
प्रभु प्रतिकूल क्रिया करनी मम होय रह्यौ रातम तियरा।।
श्रुति सम्मत सुख धाम रामधन श्याम निरन्तर नियरा।
दरश परश बिन हाय बढ़त नित अथिर अधिक दिल दियरा।।
शरनागत पावक पन प्रियतम बैन ऐन मुद सियरा।
युगल अनन्य बिना पाये पति वपु खरंग अति पियरा।।

रामभक्तिके रसिकोपासक

स्वामी श्रीजानकीवरशरणजी

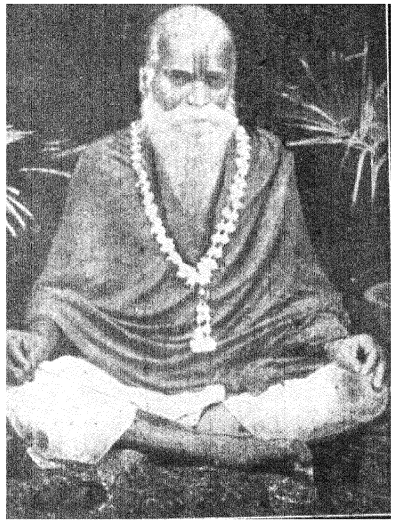

स्वामी श्रीरामवल्लभाशरणजी

बाबा श्रीगोमतीदासजी

स्वामी श्रीसियासखीजी

गीताप्रेस, गोरखपुर

श्री सीताराम नाम परत्व पदावली

स्वामी युगलानन्यशरण जी

(५) श्री सीताराम नाम परत्व पदावली

नाम की महिमा और रस पर एक बहुत ही प्रामाणिक अनुभव सिद्ध ग्रन्थ। राम नाम का मद पीनेवाले की मदहोशी का बड़ा ही भव्य चित्रण। समस्त ग्रन्थ यहाँ से वहाँ तक अनुभव के रस में पगा हुआ है। लखनऊ स्टीम प्रिंटिग प्रेस मे कार्त्तिक शुक्ल १९६९ वि० मे मुद्रित तथा प्रकाशित।

नाम नेम छेम प्रेम हेम झलक दाई।
रटत हटत हाय फटत मोह पटल काई॥

अटल पद प्रवेश जटिल जीवन घन देश वेश पेश प्रीति उदित होत जोत जगमगाई।
मन मति गति गमन दूर नूर पूरहिय हजूर रहस मत सहस्र शुचि सरूप दृग देखाई।
युग अनन्य परम प्रिय प्रसन्न तासु मूल फूल भूल शूल समन स्वाद संतत सरसाई॥

राम नाम मधुर सुरस पीवत पति पावै।
युग युग प्रति प्रभा पुज सयुत सरसावै॥
सद बिलास भास खास सु छबि छटा छावै।
लहर लय ललाम आम अनुपम अनुभावै।
युग अनन्य युगल रूप निकट नित सोहावै॥

झुकता हुआ आता है दिल शरसार नाम मे।
इसको पिला दिया कोई जन जहू जाम मे॥
चरचा चली इस बात की सब खासो आम मे॥
क्या खूब रहस नीद मे सोता अराम मे।
ताकत नही है और की जो जावै धाम मे॥
खुरशैद से भी ज्यादे रौशन मोकाम मे।
मुझको दिया दया ही मे वरबास बाम मे॥
तकलीफ फंद फानी न रहती है धाम मे।
खुद ख्याल युग्म खो गया फसियाद दाम मे॥

रटन रस रसिया बिरले देखे।
जिनके प्रान अधार नाम सुख सारन तजहि निमेषे॥
विमल बरन हिय हरन हार करि परिहरि विषय विशेषै।
अगुन समुन युग रूप एक जिय लखहि अलेख सुवेषे॥

पगे प्रेम पन प्यार पीन तन अतन हीन बिन रेखे।
युगल अनन्य शरन तिनकी सुचि सोहबति चाह परेखे।।

पर प्रभु मिलत नामहि जपे।
देखिये दृग दिव्य हुति करि श्रुति सुग्रंथन थपे।।
महा मोह मदादि मन भव से न संश्रिति कंपे।
होहि नहिं सन्मुख कदाचित विहंग पति अहि खपे।।
गगन शब्द अनूप मधिमन मगन छन प्रति छपे।
छवि अकथ छकि जकि जात आतम मरम गुरुमुख तपे।
होय युगल अनन्य जीवन अटल नहिं भवन पे।।

सुमिरत नाम रंग रस मिले।
सरस सुखमा सुचि सुरभि संग मिलित हिय सुख खिले।।
लोभ लालच दंभ दुर्मति तृगुन ग्राहन गिले।
दमक दस धापरा रस रूपा हृदैथलु थिले।।
गौर श्याम स्वरूप नख सिख भाव सनमुख पिले।
युग अनन्य शरन परम प्रिय रहस रुचि दृग रिले।।

सीताराम नाम से सनेह सजावो।
पाय परम पद प्रीति प्रभा पति श्रुति मति लौकिक लाज लजावो।।
परम परेस प्रान प्रीतम सतसंग सुरंग अभंग छजावो।
नाम परत्व विभव अनुपम गुन सुनत गुनत रुचि शान पजावो।।
योग विरति वर बोध भक्ति मय अनुछन करत कलेश भजावो।
युगलानन्य शरन सुधाम बसि नौबति नेह निशंक बजावो।।

राम रस पीवत जौन सुभागी।
तिनके भाग अदाग सराहत सुर मुनीश अनुरागी।।
लाय लाय लय लगन मगन मन अतन तीन तम त्यागी।
होय रहे मद होश जोश छकि परा प्रीति मति पागी।
युगल अनन्य शरन सांचे सद शौकी विमल विरागी।।

राम नाम मंत्रसार प्यार सजि उचारो।
साधन समुदाय हाय हित हिय बिचारो।।
शुद्ध शांति सुचि सुभाव संतत धियधारो।
सीतापति पर परेश हुकुम पल न टारो।।

विशद वेद बैन सुरित समुझत दुखदारो।
संत गुन अनंत शरन साबित निरधारो॥
रहित मान शान सपद सेवन सु बिचारो।
दुख सुख सम सुमति मन न करत तिमिर तारो।
युग अनन्य शरन विषम बादन निरवारो॥

राम नाम अति प्यारो हमारो।
सोचो शब्द स्वभाविक रसनिधि नेह निबाहन हारो॥
पारस मनि चिंता चय सुर तरु काम धेनु अगनित नितवारो।
अंतरत्यागि निरन्तर निशिदिन काहू भांति करब नहिं न्यारो॥
अपर भरोश सदोश कोश दुख दारिद दाह दशोदिसि धारो।
चाखि चाखि हिय हरषि हरषि निज नाम सुधारस सांझ सबारो॥
युगल अनन्य शरन सद्गुरु की कृपा कटाक्ष पाय उजियारो॥

भजिये युगल नाम अनूप।
है इहै रस रहस बीज सुसंत श्रुति नहिं रूप॥
प्रीति प्रनय प्रतीत पूरन सहित ध्यान स्वरूप।
रसिक संग उमंग युतकरि छांडु भव भ्रम धूप॥
सहज अनुभव अमल भासत नसत कर्म कुरूप।
सुहृद साधु सुशील गुन गहि लहि सुमत सतरूप।
युग अनन्य शरन सुधारस सुभग सुमिरन भूप॥

मीठी लगे मोहिं अपने पिया को नाम अनूपम रंग भरो जी।
अपर ठौर नहिं प्रीति बढ़त कछु छनछन मेरो हीय हरो जी॥
चारिउ फल के चाहन सपनेहुं सुख संपति जगभार परोजी।
साधन सिद्ध नाम केवल दृढ़ मन बच करम सुबूझि धरो जी॥
बिना अयास रुच्छ नाना मत सागर सहजहि सहज तरो जी।
युगल अनन्य शरन संतत सुख अति बिचित्र तरभाव भरो जी॥

प्रथम नाम अभिराम रूप सुख सागर गुरु ते पावै।
रसना रटन लगाय हृदय अहलाद विशेष बढ़ावै॥
तजे नाम भ्रम श्रम वरनाश्रम कर्मा कर्म बहावै।
गहे सर्वदा प्रीति रीति रस सहज स्वरूप समावै॥
मौन हमेश रहे जग से सब बाद बिखाद भुलावै।
नाम अखंड धार हरदम शमदम सनेह सरसावै।
युगल अनन्य शरन मर भीजन वस्तु बिलास बनावै॥

मति मेरी अलसानी सुमिरत नाम रंगीलो।
पीके प्रेम पियूष माधुरी नाना रस निरसानी॥
रैन नीद दिन चैन चित्त बिच बिह्वलता बिलखानी।
मिले मधुर महबूब मिलापी नव मुद मंगल मानी।
युगल अनन्य जानकी जीवन नाम निमा सरसानी॥

हमारी तेरी लागी है प्रीति अखड।
किसही तरह न छूटि जागी शीश होय सत खड॥
बिसरै हौ सब सुख माया मय आमय सखि ब्रह्माड।
सतगुरु मत सु शब्द श्रवन करि पगिहौ प्रेम प्रचड।
युगल अनन्य शरन रहिहौ इत प्रभु बल पाय उदड॥

कबहु दिशि मे रि हूं हेरि ये लाल।
मैं प्यासी प्रीतम पुनीत रस कीजिये जलद निहाल॥
निठुराई फावित न होत पिय सरस सुभाव रसाल।
उर आकुल अति रहत मिले बिन कठिन करेजे साल॥
केवल आस राख रोई नित रसिक रीति प्रतिपाल।
युगल अनन्य शरन अपनाइये सब बिधि सियबर हाल॥

संवत सत उन्नीस पर, एको त्रिसति जानि।
जेष्ठ मास सित पक्ष पुनि, तिथि चौदशि अनुमानि॥

लषन कोट कौशल पुरी, सहसधार के तीर।
राम वल्लभा शरन लिखि, नाम पदावलि धीर॥

श्री प्रेम परत्व प्रभा दोहावली

श्री युगलानन्य शरण जी

(६) श्री प्रेम परत्व प्रभा दोहावली

श्री युगलानन्य शरण जी 'हेमलता जी' के प्रेमविषयक दोहों का संग्रह श्री लवकुशशरण जी ने किया और चर्च मिशन प्रेस (गोरखपुर) मे २२ वी नवम्बर, सन् १९१६ ई० मे छपा। आरंभ मे जो गुरु-परंपरा है, वह यों है—

श्री जीवाराम—'युगलप्रिया' जी
|
श्री युगलानन्य शरण जी हेमलताजी
|
श्री जानकीवर शरण 'प्रीतिलताजी'
|
श्री रामवल्लभाशरण 'युगलविहारी जी'

श्री लवकुशशरण लीला विहारी जी

इस सग्रह मे विरह-ज्वर, रूप-लालसा,प्रणय-विहार, लीला रसास्वादन,अष्टयाम भावना, रूपसुषमा, और अन्त मे सूफी शैली पर विरह वेदना एव प्रणय निवेदन है। भाषा प्रवाहमयी है। श्री युगलानन्य शरण जी की समस्त रचनाओ मे सूफी शब्दावली ध्यान देने योग्य है। इस सप्रदाय के अधिकांश संत साधकों मे सूफी शैली के दर्शन होते है, परन्तु युगलानन्य शरणजी की रचनाओ मे वह विशेष रूप मे उभर आई है। सभव है उनकी आरभिक शिक्षा-दीक्षा उर्दू-फारसी की हो या यह भी संभव है कि उन्होंने प्रेम का आस्वादन और अनुभव उसी प्रकार किया हो जैसा सूफियो मे मिलता है। जो हो, भाषा बड़ी साफ, प्रवाहमयी, सुपुष्ट और शक्ति-सम्पन्न है। भाव और भाषा की सशक्तता और सरसता और उसकी व्यजकता का जैसा भव्य परिचय युगलानन्यजी के पदों मे मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

उदाहरण—

विरह-ज्वर

सीताराम सु बिरह की जेहि अंतर लगि चोट।
श्री युगलानन्य शरन तिन्हे रहत न प्रभु सुख वोट॥

प्रीतम कठिन कृपान से मति अन्तर उरभार।
सुमन माझ सूरति सजन जिन्ह लागै तित धार॥

हाय हमारे रैन दिन किन दुखात कहौ काहि।
बिना सिया बर दरद दिल बूझन हारउ नाहि॥

बिरहिनि कर कति पलहि पल करि करि सूरति श्याम।
कौन भांति लालन मिलौ हौ अभागिनी बाम॥

हर हमेश मद मस्त रहु गहु गुरु ज्ञान महान।
जपु जग जीवन नाम नित हित चित्त सहित महान॥

बैनतेय सत कोटि सम सबल नाम जिय जानु।
बिपुल बासना पन्नगन समन करन द्रुत भानु॥

आंखरिआं झाई परी बाट निहारि निहारि।
जी भरिआ छालोपरी नाम पुकारि पुकारि॥

नयन मयन सरसेस रस अयन सयन रस राज।
रयन अयन छाके छटे छटा छबीली आज॥

नाम नेह बिन वृथा सब पंथ संप्रदा मीत।
प्रान बिना बपु नीर बिन सर नृप बिरहित नीत॥

अउवलें इश्क कथा सुनें धुनें नेह सह माथ।
गुनें सरुचि चित बीच सोइ सुख सुर सुन्दर गाथ॥

उठे दरद तब जरद तन हरद बराबर होय।
गरद मिशाल बिहाल नित हित हर साइन जोय॥

दरस पिआस निरास सब स्वांस स्वांस प्रतिनाम।
रटे घटे पल पाव नहिं कबहूं बिरह ललाम॥

देखे बिना बियोग ज्वर ज्वाल जले सब अंग।
कब शीतल दृग होयगो निरखि जुगल छबि अंग॥

दशा दिवानी रात दिन बदत बहकते बैन।
हांत बिना घूमत फिरे छन छन टपकत नैन॥

जाति पांति कुल वेद पथ सकल बिहाय अनेम।
निस दिन पिय के कर बिकी रुकी न प्रीतम प्रेम॥

हेरन तब महबूब छबि छाई छटा रसाल।
लखत लखत नख सिख मधुर भई लीन सुधि त्याग॥

जग जीवन सुख सिंधु श्री पद पंकज प्रिय अंक।
युगलानन्य निहारि निज नयन निहाल निशंक॥

एक एक आभा भरन भुवन आभरन अंक।
चारेक दृग दरशन महाराज होत नर रंक॥

नख सिख निरखत ही रहो नवल ललन गुन गाय।
विषम विशिष लागे नही सौष सरस सरसाय॥

सिय बल्लभ समबन्ध शुभ सेशी शेष विचार।
देही देह अखंड नित नाता नेह निहार॥

पांच क्लेश व्यापै नही चित न होय विक्षेप।
जो जगमग सतसंग मिले तन मन सन निर्लेप॥

हे सिय बर तब इश्क में मुझे तकार पकार।
गहे रहत त्यागत नहीं बिह्वल करौं पुकार॥

दवा दरद दूरी करन है समीप तब श्याम।
अबि रहित दरपन मुझे दरसाइय अभिराम॥

जुगल किशोर बिहार रग भीने महल मझार।
दिये लाम वे परस्पर स्वादत सुरस अपार॥

चितवत तीर सुपीर हर बून्द न बरस्यो हाय।
भौंह कमानहिं से निकसि बेधि कियो नहिं हाय।।

मेह मनोहर मोद मय वचन विलास बिचित्र।
कबहूं पिय बरसाइये जनि बूझिये कुमित्र।।

रैन जानिग जपिये युगल बरन बिशद रस राशि।
लहिये लाह अमोल मनि प्रीतम परम प्रकाशि।।

सूरति सरस सजाय सुचि सार शब्द सद संग।
रमिये राग अदाग युत मिटे मनोज प्रसंग।।

दर्शन सर्सन सरस सुख हरसन मांगहु जाय।
नर्सन कछुक न होयगो बर्सन उमर बिताय।।

गुन गावे रोवै रैन जागे त्यागे तीन।
हिय पागे पागे न कछु भागे भव मग दीन।।

निपिल विश्व को मूल जो अधिष्ठान दुति पान।
मूल बन्ध सुमिरन सहित सोहैं समुझ सुजान।।

खंजन गंजन नयन नव व्यजंस बिनहिं सोहात।
निरखत नेह सनेह सह मोल बिनाहिं बिकात।।

निज निज मन सन्तन कह्यो प्रभु परतत्व प्रचार।
काहू बीच न भेद कछु सब मत सुख प्रद सार।।

प्रभु भावै सोई करै दास स्वतंत्र न होय।
निज इच्छा नहिं राखिये रहिये सनमुख जोय।।

कामिनि कठिन पिशाचनी रुधिर चूसि सब लेय।
नेम प्रेम रस गंधहू हिये न आवन देय।।

कहर लहर जस जहर मुद मेहर सहर नव नैन।
नजर नेह कबहूं करै मोहू पर प्रद चैन।।

सपदि सप्रेम बिलोक दृग कुन्डल दुति दिलदार।
युगलानन्य शरन तहां अटकि प्रान बपु बार।।

बिपति बराबर हर्ष नहिं जेहि जुत सुमिरन नाम।
धिग सुख संपति सपन सम बिसरावत श्री राम।।

चित्त वृत्ति रोके कुशल असल समाधि अनाधि।
श्री युगलानन्य शरन कहूं कीजै साधन साधि।।

हौं सिय बर हाथन बिक्यौं होनी होय सो होय।
इत उत कतहूं झांकिहौं प्रभु दरवाजे सोय॥
सिद्धाई सूली सहस समुझे सन्त सुजान।
नाम अमल माते रहैं जहै जहान बितान॥

अष्टयाम-भावना

नाम अमी मानस रमी शादा गमी समान।
काम कमी संश्रिति समी जमी प्रीति प्रतिभान॥
निवछावरि मनि गन करो प्रतिपल स्वांस न पाय।
युगलानन्य न बिसारिये प्रभु रस दहि नहवाय॥
घटिक शेष निसा रहे उत्थापन सिय लाल।
मंगल भोग सुआरती अवलोकन छबि लाल॥
ता पाछे मंजन सुभग शृंगारादि रसाल।
करि कुतूहल जुगल मिलि लखि दृग होहु निहाल॥
घटिक चार प्रयंत यह करे भावना नित्य।
दृढ़ बिराग सु सनेह सह करि थिर चंचल नित्य॥
बल्लभ भोग सु आरती सत रंजादिक केलि।
निरखे प्रहर सुदिन चढ़े तक मुद मंगल मेलि॥
राज भोग साला सरस भोजन नाना भांति।
केलि कुतूहल लखि छके जुगल जगामग कांति॥
चिन्तन करे सप्रीति रुचि मध्य दिवस लो सैन।
मन बच पार बिलास वर कृपा प्राप्य रस अैन॥
प्रेमावेस सु जुगल छबि निरखे सहित उछाह।
सखी सु परिकर रंग रंगी गावे गीत उमाह॥
पुनि सर उपवन निकट कल केलि बिलोकन फूल।
घटि द्वै एक आनन्द अति बरसत महा अतूल॥
चारि घटी पुनि सुचि सभा सदन लाडिली लाल।
नेह न्याव निरनय रहस करहिं प्रसन्न बिसाल॥
जूथेश्वरी समाज सब बैठी निज निज ठौर।
गान तान उत्सव परम बचन रचन रस गौर॥

सन्ध्या समय सु सौज सुठि भोग राग रस स्वाद।
घटिका चारि सुप्रेम नित कीजे समय सुयाद॥

सखी सु परिकर आरती करहिं अनेक प्रकार।
महा मोद मंगल कुतुक कोलाहल सुख सार॥

रस मय मधुर बिहार बर रास कुंज सुख पुज।
अर्ध निशा लो लगन करि ध्याइय करि मन लुज॥

व्यारु बिसद बिनोद युत बिबिध प्रकार कराय।
सैन कुंज रचना रचे सुमन बिचित्र बिछाय॥

गावत मंगल रहस गुन पौढाये सिय लाल।
निज निवास थल गवन करि चितै रहस रसाल॥

शेष निशा रसकेलि सुख अनुभव अमल सगम्य।
कृपा बिबस कोउ यक रसिक पावहिं अपर नरम्य॥

या बिधि आठउ याम छकि रहे भावना धारि।
सुधि बुधि लोक अरु वेद को पंथ फलादिक वारि॥

कहे कहावे रस नही बिन ध्याये छबि सार।
ताते सब मन नात तजि भजिये युगल उदार॥

यह उज्वल रस रहस की बिसद भावना गोय।
सदा सुमन मधि ध्याइये सुचि चित चौगुन चोय॥

सीताराम सुनाम जपि करे महा मुद प्राप्त।
रहस अकथ कथिये कथं बरजहि सब बिधि आप्त॥

सीताराम परात्पर प्रेम प्रबोधक नाम।
साधन साध्य स्वरूप श्रम समन करन गुन ग्राम॥

मन चाहे कतहूं चले रसना हिले न जाय।
प्रभु कृपाल करिहै कृपा शमिहै सश्रित ताय॥

रूप-सुषमा

अमल कमल कर परस्पर परसन प्रीति प्रकाश।
युगलानन्य अली .सुमन सुमन करन प्रतिकाश॥

बड़भागी रागी रसिक बसिक बिनोद बिहार।
लखि लखि चखि रस रूप छबि कलित कपोल बहार॥

चिबुक चारु चमकन चतुर चखन चाहि चित वैन।
चपल चाह चूरन करन हरन हृदय तम मैन॥

कहां गुलाब कली कहां कठिन कंठ कित कूर।
कोमल कमल चिबुक कहां अनुछन नित नव नूर॥

चिबुक चटक पर बिन्दु बर पीत श्याम अभिराम।
प्रीतम प्रिया स्वरूप जनु लिये ललित आराम॥

सरस श्याम प्रिय पीतबर बिन्दु युगल रसखान।
युगलानन्य सनेह सजि लखत रहो बसुमान॥

युगलकिशोर स्वरूप चित चोर बिन्दु बिच बित्त।
पल प्रति लगन लगाय के लगवाइय सह हित्त॥

श्री सीताबर बिधु बदन बनज बदत बहु लाज।
वेद न बिदुल बिकार युत कहों सुष्ट मुख साज॥

कहां कलंक निकेत किल कला कलित लाचार।
युगलानन्य सुमुख प्रभा पल प्रति अगम अपार॥

लहर कहर जस जहर मुद मेहर सहर श्री वैन।
युगलानन्य निहारिये छावत छबि चित चैन॥

अंग अंग प्रतिबिम्ब परि दरपन से सब गात।
बहु आभरन निवारि के भूषन जाने जात॥

जब जब जन्मो कर्म बस तब तब सिय पिय प्रीति।
बढ़े धाम बरबाश सह सुमिरत नाम सनीति॥

श्री सीता रामीय बिनु भए भयानक भीति।
बिनु सत कौनहुं भांति नहीं दिन दिन गति बिपरीति॥

निर्मोही मेरा मेहरबान हरवान हुआ सब तौर।
किस के पास गुजारिये अपना हाल सजौर॥

अपना हाल सजौर दौर दिलवर तक मेरी।
जिसके केर में बिकी भली बिधि तिसकी चेरी॥

हर यक तरफ निगाह किया दुनियाजिय टोही।
करुणा करिय कृपाल न अब हूजे निर्मोही॥

दीजे सिय वल्लभ सतस अवध सहर बर बास।
अथवा श्री कामद निट सुभग बिचित्र निवास॥

सुभग बिचित्र निवास खास निज महल सोहावन।
सर्वोपर आनंद सदन पावन ते पावन॥

बिरति भजन संपन्न चित्त अनुछन मम कीजे।
युगलानन्य सुनास नेह निरमल नित दीजे॥

मन मैदा सम पीसिये रचित रुचि तर अभ्यास।
लगन कराही शौक सुचि मरयी सुरस हुलास॥

यद्यपि परदा परी बीच से चेरी छेरी।
श्री युगलानन्य सुप्रीति तऊ प्रभु तेरी मेरी॥

निर्वाहो निज नेह नव निर्मल नीरद स्याम।
अवगाहो मेरो मधुर मानस हंस ललाम॥

आशिक औ माशूक हमारा नाम है।
समुझे फाशिक लोग न जोरत बाम है॥

एक जाति सब तौर गौर के किये से।
हरि हां युगलानन्य नाम रस रसना पिये से॥

नाम अमो रस मिला फेर आजार क्या।
राम महल में गये बहुरि बाजार क्या॥

चखा स्वाद सत बरन फिरि आम अनार क्या।
हरि हां भया सु दौलतवंत कहो शिर भार क्या॥

अमल अनूपम असल नाम श्री राम है।
और अमित सुनु नाम मो सदृश गुलाम है॥

किया खूब सा परख शंषु दूकान में।
हरि हां लिया ललाम सुनाम राम रसखान में॥

किया फकीरी सांच फेरि डर कौन का।
लिया नामनिज मुख्य काम क्या गौण का॥

दिया तसदुक भाल लाल के वास्ते।
हरि हां युगलानन्य खटक बिना आशिक रास्ते॥

श्री युगलविनोद विलास

युगल-विहार

'युगल विनोद विलास' संहिता के पंचम अध्याय का सरस काव्य में अनुवाद है। यह अपने ढंग का अद्वितीय ग्रथ है। रसिकोपासकों में इस ग्रथरत्न का बहुत आदर है।

जुगल विचित्र विहार किधौ कल हस हंसनी।
किधौं मत्त मातंग कलित करनी प्रसंसिनी॥

किधौं कामिनी काम किधौं यामिनी चंदबर।
किधौ सजल घन दाम नीर अन्तर विनोद कर॥

किधौं अमल अनुराग रूप रस भूप सुतन धरि।
क्रीड़त कुवर किसोर किसोरी व्याज साज करि॥

सखिन सहित घनश्याम राम अभिराम नवल तन।
रसिक मनोरथ मधुर कामदायक प्रसन्न मन॥

नबल नाजनी नारि कंज कर गहि गरुर गुनि।
प्रीतम परम रसज्ञ रचत कौतुक अनेक पुनि॥

अति अगाध जल बीच डारि हरषत काहू पिय।
तिमि काचित वर वाम पकरि विन वसन करत हिय॥

रस निधि निज वर बाहु जंत्र यंत्रित ललना करि।
मगन होत छबि जोत परम प्रगटत सुधारि धरि॥

कैतब कुशल अजब नायिका एक कंज दृग।
निपतित प्रीतम अंग अमल मानो मनोज मृग॥

किधौं सचीपति सुमति नवल नग लषि समान घन।
गिरत छटा छबि सहित रहित आमर्ष हर्ष मन॥

किधौ सजीली स्वर्णलता सुर द्रुम सनेह तजि।
अमल तमाल अनूप रंग रमनीय आप भजि॥

काचित कला निकेत बाम कूदत स्वतंत्र जल।
गहत लाल कर कंज जाय औचक असक कल॥

प्रीतम प्रेम प्रकासि परम पंडिता रहस मधि।
ललिन समेत अथाह नीर मज्जति विचित्र विधि॥

ललित लड़ैती लाल सखिन सम्पन्न परस्पर।
नवल नीर कन कंज करन सींचत विचित्र तर॥

कोमल कर पद कंज मंजु आघात सरस सुचि।
करहिं केलि कमनीय रमन रमनी समेत रुचि॥

महा मधुर धुनि छाय रही चहुं ओर विलच्छन।
सषिन सहित सिय श्याम नवल रस समर अनुच्छन॥

कोउ सहचरी सनेह सनी लपि ललित उर स्थल।
मृदु तर सुपद सरोज हनत क्रीड़ा रस विह्वल॥

काचित सषी सलोन ललन दै अंकमाल अति।
समुझि विपुल भय नीर मध्य मज्जन हित डरपति॥

अति चातुरी रचाय एक आली अलबेली।
गहि प्रीतम प्रिय अंग गई बन बीच अकेली॥

काचित सखी सरोज मुखी अति सबल धारमधि।
पड़ी बड़ी हैरान हीय व्याकुल न रंच सुधि॥

तरल तरंगन संग वसन विलगान न जानति।
बहुरि होस हिय लाय विपुल ब्रीड़ा मन मानति॥

सरस सकोच सजाय निकट प्रीतम न जात तिय।
कोउ अलिक गहि बाहिं विहंसि सनमुख कीन्हीं पिय॥

तव ब्रीड़ा संपन्न वाम मज्जति अंतर जल।
निरषि नवल निज नैन नाह दीन्हीं सुवसन भल॥

रसिक सिरोमनि श्याम राम अभिराम नेह निधि।
जुगल करज दै चिवुक बीच चुम्बन करि बहु विधि॥

कलित कपोल अमोल वाम निज प्रिय संजुत करि।
चाखत सुधा समूह अधर रस अति उमंग भरि॥

जिमि चञ्चल पन छोड़ि चतुर चञ्चरी कञ्ज रस।
पीतव परम प्रमोद पाय घूमत सनेह बस॥

यहि विधि विपुल विहार सहचरि संग रंग रचि।
करि सनेह रस लीन मीन मन हरन स्वाद सुचि॥

जल क्रीड़ा कमनीय निकर परिकर विशेष सजि।
भीने नवल निचोल सरस सिर सह आनन भजि॥

हेम मनोहर वरन छोभ वर वसन सुतन छवि।
दम्पति नेह नवीन परम प्रतिभा भसिति कवि॥

परिहेल प्रभु मानस ललीय लाल कौतूहल रची।
जलकेलि क्रीड़ा भ्रीड़ जहँ अहलाद क्रीड़ा कलमची॥
जलजात कर उच्छरित जल जलजात फेंकहिं अलि चली।
तेहिं सग भ्रमर उड़ाहि गुजत देखि कवि शारद नची॥
जनु पूर शशि टूटहिं विथकि अहिवाल तेहि रस लूटही।
जनु स्वरन सम्पुट वेष्टिरस अलि अलि चपरि लै जूटही॥
प्रभु लेत पुनि फेकत लगत जनु अमिय घट भरि फूटहिं।
जिमि रामचरण हवाइ सीयपुर काम रति कर छूटहिं॥

यहि विधि जलकेलि हेलि खेलत पिय प्यारी।
उमगत आनन्द माल हसत धरत ललिय लाल, अधर अधर परसत मुख दरसत सुषमारी
मिलित लाल अलक वक वेसरि अरुझेउ तटक अलि कच कुडल बुलाक अरुझेउ उपमारी॥
जनु जुग विधु चख कुरग,गुरु द्वौ रवि अलि अनंग अहि रजकसि वीच वैर सब तजग सुखमारी।
कोउ सखि निरुआरति करताल हसि बजावति बहु व्यग राग गवति मन भावनि नहि न्यारी॥
करते कर जोरि सकल निरतत जल उपर चपल, चरण चलत छुअत छटक नूपुर रवकारी।
रत्ना लकृत विचित्र जगमग जल विच पवित्रैं जनु घन दिवि तड़ित विपुल दमकति दुतिवारी॥
छुम छुम थेइ थेइ तरग गावत पिय सग सग चलत लजत गज अनग वाजत करतारी॥
अद्‌भुत राहस अनूप देखहि कोई सखी सरूप, श्रीरामचरण देखहिं किमि नयन अन्ध चारी॥

बहुताल बाजहि चरण चञ्चल मुरत कर मुख चष छुये।
मुक्ता कलीय नूपुर खसे जनु अमियशर बहु शशि उये॥
युग युग सखी बिच बिच एक मध्य राम निर्तत।
सगीत ताण्डवी सुगन्ध गति अनेक ल्याई॥
गावत षट् राग राम रागिनि स्वर ताल ग्राम।
सब धरि सखि रूप राम रास हेतु आई॥
श्री जानकी रघुनन्दन मन भावति भई ब्रह्म रैन।
श्री राम चरण सकल जीव परमानन्द पाई॥
यद्यपि अली अपार, मुख्य गनी गन नायिका।
द्वै हजार हजार, एक एक सखी के किंकरी॥

उभय प्रबोधक रामायण

श्री बनादास कृत

महात्मा बनादासजी

महात्मा बनादास जी के अनेक ग्रन्थों का पता अब लगा है। उनमे साधन की ही विशेषता है—ज्ञान वैराग्य, भक्ति, नाम स्मरण, पवित्र जीवन का ही प्रकरण विशेष रूप से

आया है। महात्मा बनादास जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि बाहर बाहर मे उनकी दास्य भक्ति है पर अन्तर के अन्तर में मधुरा भक्ति है। अवध के अधिकांश महात्माओं की साधना का यही रहस्य है।

उभय प्रबोधक रामायण—लखनऊ के मुन्शी नवलकिशोर के छापेखाने मे दिसम्बर सन् १८९२ ई० मे छपा—'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता' तथा 'रामायण शतकोटि अपारा' के अनुसार श्री बनादास जी को 'उभय प्रबोधक रामायण' मे सात काण्ड श्री गोस्वामीजी के सात काण्ड से सर्वथा भिन्न है। इनके सात काण्ड के नाम है—मूलखण्ड, गुण खण्ड, नाम खण्ड, अयोध्या खण्ड, विपिन खण्ड, बिहार खण्ड, ज्ञान खण्ड और शान्ति खण्ड। इसमे दोहा, चौपाई, सोरठा, छन्द, कवित्तादि अनेक प्रकार के ललित छन्द है। भाषा बडी ही शुद्ध साधु और शुचि है। बनादास जी एक पहुँचे हुए सन्त थे यह उनकी रचनाओं से स्पष्ट है और इनकी शैली बडी ही मनोहर एवं प्रभावमयी है। पाठक के मन को वह सहज ही गिरफ्तार कर लेती है और कालरिज के 'ऐशिएंट मैरिनर' की भाँति पाठक पर कथा का जादू का-सा असर होता है। शेष भाग मे तो कथा रामचरित मानस के अनुसार ही चलती है परन्तु विहार खण्ड मे भगवान् राम वन से लौटने के बाद एक बार जनकपुर जाते है और वहाँ से लौटकर काशी मे काशीराज के सम्मान्य अतिथि होते है। यह सर्वथा नयी उद्भावना है। भक्तों ने भगवान् की जिस किसी लीला का जिस रीति से साक्षात्कार किया वैसे ही वर्णन कर दिया है इसमे शंका के लिए कोई अवकाश नही है।

ऊपर कहा जा चुका है कि बनादास जी की मधुरोपासना परम गुह्य है एवं गोपनीय भी। अतएव मुख्यतः उनके ग्रन्थो मे ज्ञान वैराग्य के आधार पर भक्ति की प्रस्थापना ही विशेष रूप से परिलक्षित होती है पर जहाँ तहाँ अप्रकट रूप मे अनायास अन्तर की गुप्त धारा भी व्यक्त हो गई है जैसे—

इत उत घूमति बाग मृगा खग बिटप निहारति।
लगी सुरति रघुबीर मूरति ते नेक न टारति॥
सीता बूझति सखिन नाम तरू लता बिटप कर।
चहति न नेक बिछोह प्रीति पथ दृढि अति तत्पर॥
कहूँ कहूँ प्रगटत दुरत प्रभु सीता जनु सूर शमि।
कह बनादास बल्ली लता जलद पटल तट पर सुअसि॥

राम बाम कर सुमन गिरयौ धोखे सों भूतल।
रह्यौ न पूजा योग लेन पुनि लगे फूल दल॥
अन्तर्यामी सकल सदा जनकी रुचि राखै।
शारद शेश गणेश निगम नारद अस भाखै॥
प्रीति रीति पहिचानि बो त्रिभुवन तीनिउ काल महँ।
कह बनादास रघुनाथ सम कबहूँ ना उन कतहुँ कहं॥

सिया राम हिय मध्य राम सिय के उर माहीं।
थप्यो पुष्ट तेहि काल तुष्ट आयो दोउ पाही॥
नख शिख देख तरु पउ भय जनु मुकुरहिं छाया।
तदपि न मानत तृप्त काल अति अलि लखि पाया॥

युक्ति वचन सखिय न कहिये ऐहैं यहि बेर नित।
आजु ते प्रतिदिन नेम करि गिरिजा पूजिन लाय चित॥

हीय बनी उपमान तिहूँ पुर राम बना हमरे मन भावै।
दम्पति आसन एक बिराजे तजो रति कोटि मनोज दबावै॥
सांवल गोर सोहात मनोहर तोप नही जेति ते शिव पावै।
दास बना धृग जीवन है असि मूरति मे जो सनेह न लावै॥

राम सिया अवलोकनिचारु बिचारु किये न कोऊ लखि पावै।
गूढ सनेह न जात लखो सुठि शील सकोच हिये में दुरावै॥
दोउ परस्पर भाव बढ़ावत ताको कहाँ उपमा कवि लावै।
दास बना अति भाग्य के भाजन जाके हिये यह मूरति आवै॥

काम करि शावक के कर से अजानु बाहु उर सुठि बृहदंशु यज्ञ पीत धारी है।
राजै भुज अगद औ कंकण कनक कर जटित मणिन मुद्रिका कि छवि न्यारी है॥
राते अरबिन्द कर जानु पीन काम साथ सघनि रोमावली सो लागै अति प्यारी है।
बनादास कटि सिह चरण कमल चारि श्याम गौर जोड़ी अंग अंग शोभा क्यारी है॥

भाग्य सराहै सबै अपनी जो समय तेहि मे अवलोकन हारे।
सांवल गौर बनी बर जोरी बसूं निशि बासर नैन हमारे॥
सुकृत पूरे सबै भली भाँति से दास बना उर माहि बिचारे।
पाके समान अहै अजहूँ प्रभु के यश लागत जाहि पियारे॥

नाना मणि जटित मुकुट हेम शीश सोहै भानु से प्रकाश काक पक्ष छवि न्यारी है।
मेचक कुञ्जित नागछौना ज्यो लटकि रहे लपटि लपटि लागे जोहे अति प्यारी है॥
कैधों अलि अवलिन उपमा अनूठो मिलै आठो किये कवि जन जानौ छवि क्यारी है।
बनादास कुण्डल कनक लोल राजै श्रौण मीन छटा छाँटि डारे जाने जासु यारी है॥

बंक भ्रुव कञ्ज नैन मुख छवि ऐन मानो सैन किये जाहि दिशि स्वाद तिन पाये है।
तिलक बिशाल भाल तड़ित कि द्युति निन्दै अल्पउ भैरेख जनु अचल सुभाये है॥
अधर दशन अति अरुण अनोखी आशै बिम्बाफल दाड़िम न पटतर आये है।
गोले है कपोल मन मोल लेत बिना बित बना दास नासा शुक तुंड हिल जाये है॥

चन्द मुख मन्द मन्द हंसत हरत मन हर दम टरत तन ही से अति नीके है।
चोखी है चिबुक चित चोरि लेत बार बार बनादास द्युति मरकत मणि फीके हैं॥
कम्बु ग्रीव शोभा सीव लागति अतीव प्रिय हरि कन्ध जोहे जिन रहें निति ठीके है।
उभै भुज भारी कर कंकण केयूर युत करज ललित धनु बाण अति ठीके है॥

उर सुठि वृहद प्रसून मुक्त माल भ्राजै तुलसी सु दल युत यज्ञ पीत भली है।
भुगु चर्ण रमा रेख त्रिवली विशेष छवि नाभि है गंभीर जनु लाखों मन छली है॥
सिंह कटि तूण पटपीत है कनक कांति तड़ित बिनिंदित सुरति सुठि सली है।
बनादास जामा लाल ललित लगाये कोर वोर छोर जोहे जाय जाकी मति हली है॥

जानु युग काम भाथ केरा तरु तुच्छ लागै जागै जीव सोत रोमावली जे जोहे है।
कोटिन मदन कोक दन रूप अंग अंग भूप वर्षा को ऐसो कौन देखि मोहे है॥
गुल्फ छवि गूढ़ है करुढ़ पैनि काय मुनि कमल चरण माहिं चित्त जिन पोहे है।
बनादास मन है मतंग जोर जंग अति पंग होत तबै अंग अंग लेत कोहे है॥

कनक भवन सिया रमण बिहार थल रचना न कहै योग गिरा मूक लई है।
सखी सीय संग में शिंगार शुभ अंग अंग शची रति मान भंग मानो करि दई है॥
तहाँ पै सिंहासन प्रकास न बरणि जात निरखि लजात भानु हेम मणि मई है॥
जोड़ी श्याम गौर बिराजमान ताहि पर बनादास नख शिख शोभा सरसई है॥

मानहुँ तमाल तरु निकट कनक बेलि लई है सकेलि छवि चौदह भुवन की।
जाल की सुअंग पै अनेक रति भंग होत कोटिन अनंग व्याजु नृपति सुवन की॥
बनादास ऐसे ध्यान सदा जे परायण है ताहि मुक्ति आश नहिं रह त्रिभुवन की॥
मन क्रम वचन निशोच भये सोर्य जन जाको है भरोस एक दारिददुवन की॥

मुकुट शिर हेम का भ्राजै मनो द्युति भानु लाजे है।
छटा जुलफौं कि अति नोदी निरखि त्रे ताप भाजे है॥
लसै घुंघुंवारि लट लोनी निरखि चित चोरि जाते है।
लटक उरजाहि के आवै नही फिरि कछु सोहाते है॥
श्रवन में राजत मोती अनोखी पैन प्यारी है।
जिगर के जुल्प को काटै छटा अति ही नियारी है॥
बंक भ्रुव नैन रतनारे सुभग अवलोकनि भाई है।
तिलक शुचि भाल में भ्राजी मनहुँ चित को चोराई है॥
अधर अरुणार शुभ नासा दशन की कान्ति नीकी है।
हंसनि मृदु भावती ही को छटा दाड़िम की फीकी है॥
चन्द्र मुख श्याम के जेहि लगै तेहि त्रय लोक हल्का है।
निरखि मन तोष नहिं पावै नहीं तहँ मूल पल्का है॥

चिबुक चित चोर अति लेवै गरे त्रय रेख प्यारे हैं।
कन्ध केहरि के सुठि लाजै वृषभ से भूरि भारे है॥
गरे गज राग रुरे है विपुल मणि के न मोहै को।
उभै भुज काम करि करसे तिन्हे मूरख न जोहै को॥
बना इस ध्यान मे रमता तिन्हे हरि मे, जुदाई क्या।
जो आशिक पाक है दिल के उन्हे जग मे बड़ाई क्या॥

कमर केहरि से अति चोखी सुमन कर माल लीन्हे है।
छटा पट पीट की ज्यारी कोउ जन चित दीन्हे है॥
जबै युग जानु को पेखै कहाँ कैवल्य बासा है।
कमल पद को न जोहे जे तिन्ह यमलोक त्रासा है॥
दिशा बाये पै सिय राजे सबै उपमा टटोरी है।
न पटतर ताहि ले दीन्ही अधिक नृप की किशोरी है॥

बना कुर्बान चरणो पै कहनि औरह निज बहोबै।
वचन के ज्ञान की झल्की पलटि ताही कि पति खोवै॥

सीताराम झूला विलास

श्री रसरंगमणि जी

श्री सीताराम झूला विलास इसे छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने जैन प्रेस लखनऊ मे जुलाई सन् १८९९ मे मुद्रित करा कर प्रकाशित किया। इस मे २५ पद झूला के और ५ पद नौका-विहार एव जल-विहार के है। सम्पूर्ण ग्रन्थ कवित्त मे है और भाषा साधारणत पुष्ट एव मार्जित है। झूलन के पदो मे लीला-विहार का एक ही चित्र बार बार आया है, सीताजी राम को झुला रही है, राम सीताजी को। फिर दोनो को सखियाँ झुलाती है और युगल मिलन का रस लेती है। नौका-विहार या जल-विहार के पदो मे भी एक ही दृश्य बार बार आया है। फिर भी कुल मिला कर यह ग्रन्थ रसिक साधना का एक अनमोल रत्न है।

उदाहरण—

सावन सघन घन गगन मै दरसत बरसत बारि घोर घहरि घमंकि कै।
दिनहूँ न दीसत दिनेस ननिसीस निसि दुरत विदिसि दिसि दामिनी दमंकि कै॥
राम रस धाम सिया सग रसरगमनी झुकि झुकि झोंकन सो झूलत झमंकि कै।
डरि मुसक्याय कहै कण्ठ लपटाय प्यारी लीजै रस रसे रसे रसिक रमंकि कै॥

रसिकाधिराज राम पिया सिया प्यारी वग रग की उमंग बरसावै रस झूलि झूलि।
झोका को लगावे झुकि झुकि मिलि जावे दोऊ अति सुख पावे रहि जावे मान भूलि भूलि॥

आली गीत गावे हाव भाव दरसावे प्रिया प्रीत मैं रिझावे नाचैं नई गति धूलि धूलि ।।
सावन सोहावन प्रमोद वन पावन मैं लषत हिंडोरा रसरगमनी फूलि फूलि ।।
छाय छाय आये चहूँ ओर घनघोर करि सोर जोर बरसे मधुरझरी लाय लाय ।
लाय लाय गलबाँह राजत नवेली नाह सखिया झुलावे झुकि झुकि नाचे गाय गाय ।।
गाय गाय बोले मानो कोकिला मधुप कीर सरजू के तीर तरुफूले नीर पाय पाय ।
पाय पाय पान मुसुक्याय रघुराय सीय झूलै रसरगमनी मनमोद छाय छाय ।।

करत सिय रघुबर बारि बिहार ।
सखिन सखन जुत जुगल सलोने सरस परसपर पागे प्यार ।
नई नाव छवि छई वितानन कलबल चलत सरजु जलधार ।।
लसत हिंडोर किसोर किसोरी कोरी नाचहि गाय मलार ।
भादों घन बरसत भरदर भल दोउ दल भरि खेलहिं पिचकार ।।
दपति निरषि हसत निबसत छलि उर रसरंगमनी आगार ।।

श्री रामनाम यश विलास

श्री रामरूप यश विलास

श्री राम रस रग मणि जी भगवान् राम के नाम और रूप के यश के वर्णन कवित्त रूप मे इस संग्रह मे प्राप्त है। पण्डित घासीराम त्रिपाठी के देशोपकारक प्रेस लखनऊ मे संवत् १९६५ अर्थात् सन् १९०० मे मुद्रित हुआ। विशुद्ध काव्य की दृष्टि से यह एक उत्तम रचना है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे है —

राम पिता सुखदा सुत भ्रात सु मातु सनेह जुता यसुजाम है।
राम सु मीत बिनीत सखा सु पुनीत सिखावत मन्त्र सु नाम है ।।
राम सु देह के पालक मालक दीन दयाल सु देत अराम है।
रामहिं प्रान के प्रान सु जीवन जीवहुँ के रसरंग श्रीराम है ।।

रामही को दास मैं हौ रामही की आस मोहि,
राम दुख नास मम बास खास धाम हौ ।।
रामही की पूजा मेरे राम बिन दूजा नाहि,
सीताराम शरण रहौ मैं आठौ जाम हौ ।।
रामही को ध्यान मेरे रामही को ज्ञान,
रसरग सख्य अभिमान राम को गुलाम हौ ।।
राजपद ठाम मेरे रामही को काम मेरे,
मागों सीताराम ही सो रट सो राम राम हौ ।।

जाग मेरे राम भूरि भाग मेरे राम,
गीत राम मेरे राम अनुराग 'रसराम' हैं।
धीर मेरे राम बरबीर मेरे राम,
हर पीर मेरे राम धनु तीर धर श्याम हैं॥
दानी मेरे राम सत्यबानी मेरे राम,
सिया रानी रतराम सुख खानी शील धाम हैं।
पात मेरे राम मञ्जु मात मेरे राम,
भल भ्रात मेरे राम सर बस रामनाम है॥

देह मेरे राम सु विदेह मेरे राम,
गुन गेह मेरे राम प्रदनेह मेह श्याम है।
रंग मेरे राम भव भंग कारी राम,
सुभ अंग मेरे राम बसै संग बसु जाम हैं।
स्वामी मेरे राम ब्रह्म नामी मेरे राम,
हियधामी मेरे राम सखा साँचे 'रसराम' हैं।
तात मेरे राम मञ्जु मात मेरे राम,
भल भ्रात मेरे राम सरबस रामनाम है॥

कीजिये कृपा कृपाल निर हेतु रसराम,
सुमिरौं सनेह बस रामनाम रोय रोय।
मानस के बिमल बिलोचनानि बार बार,
जुग पद मख जोति जग मग जोय जोय॥
बान्त सम बिषे सुख दुख बिसराय,
पराभक्ति तोष पाय ध्याऊँ सान्ति सुख सोय।
सीताराम अहौ जन झूठ साँच आपही को,
आप अपनाय जेली पाप ताप धोय धोय॥

दीन बन्धु जानि राम रावरे को बन्धु मानौ,
ताते मोहिं केहूँ भाँति आपौ मानि लीजिए।
आपही के माने मन मानैगो प्रमोद मीत,
मेटि भव भीति प्यारे साँची प्रीति दीजिए॥
बैन नाम नेह लीन रूप सिन्धु नैन मीन,
होवें प्रेम पीन त्यों अदीन सुखी कीजिए।
खीजिए न दोष देखि रीझिए कृपाल राम,
बसि उर धाम रस रंग बन्धु कीजिए॥

श्री सरयू रस-रंग लहरी तथा अवध पञ्चक

श्री रसरंगमणि

श्री रसरंगमणि जी के इस ग्रन्थ में श्री सरयू जी की महिमा का बड़ी भव्य भाषा में वर्णन है। सीताराम के लीला विहार की दिव्य रम्य स्थली श्री सरयू जी की गुणावली गाते कवि कभी थकता ही नही।

उदाहरण —

लेत मुख नाम राम गंग रस रंग मनी,
देत सुख संग भारी भवभीति भूलती।
सरद ससी के कल किरनै समान,
तुंग तरल तरंग ताके ताप निरमूलती॥
परसत पाथ सीतानाथ अनुराग बाग,
बेलि रसकेलि उप फैलि फलि फूलती।
सरजू के कूल कौन पूछै रिद्धि सिद्धि भुक्ति,
मुक्ति झुड झाउन के झारन में झूलती॥

जे वाशिष्टी मिष्ट बारि कुल इष्ट हमारी।
अवलोकत अनइष्ट हरनि सुख करनि अपारी॥
जयति कोशला कलित ललित धारा धरनीया।
द्रवरूपा रघुबीर कृपा भवदुख दरनीया॥
जय जननी रस रंग मनि जगमग जग जाहिर चरित।
जय रघुबर दृग जलजजा जय जय जय सरजू सरित॥

जैसे सब नामन मै रामनाम मुख्य पुनि,
रूपन मै जैसे राम रूप अभिराम है।
सास्त्रन मै जैसे रामायण सुवेद सार,
वेदन के मध्य जैसे वेद बर साम है॥
सरितन माहिं जैसे सरजू सिरोमणि है,
भक्तन मै जैसे हनुमन्त जितकाम है।
तैसे सब धामन के मधि रसराम निधी,
धामाधिप अवध ललाम रामधाम है॥

श्री सीताराण शोभावली प्रेम पदावली

श्री सीतारामशरण रामरसरंगमणि

श्री रामरसरंगमणि जी का ८० पृष्ठों का यह ग्रन्थ देशोपकारक प्रेस लखनऊ से सन् १९०२ ई० में श्री सीताराम शरण भगवान्प्रसाद जी की प्रेरणा से छपा। इसकी पूरी प्रति अब मिलती नही, एक खण्डित प्रति मिली है। ये पुस्तके ऐसे कागज पर छपी है कि इन्हे हाथ लगाते ही टूट-टूट जाती है। और इसलिए, बहुत सँभालकर इन्हे पढना होता है। मधुर रस के प्रेमसागर मे डुबकी लगानेवाले रामरस रग मणि जी की यह पुस्तक साहित्य, साधना और सिद्धान्त सभी दृष्टियों से परम उपयोगी है एव इस सम्प्रदाय की रस साधना को समझने मे बहुत अधिक सहायक है। आरम्भ मे श्री सीताजी का नखशिख-वर्णन है जो बड़ा ही मनोहारी एव जीवन्त है। इसके अनन्तर श्री रामजी के अग-प्रत्यग का विशद एव रससिक्त वर्णन है। फिर पावस के झूलनविहार और फिर वसन्तविहार है। अन्त मे रासोत्सव का बड़ा ही मनोहारी प्रकरण है। यह निःसकोच कहा जा सकता है कि रामरसरगमणि जी को इस कृति मे अपूर्व सफलता मिली है।

मांग वर्णन

सिर चन्द्रिका चारु लसी रसरगमनी लखि के चखमे बड भाग है।
जोति जगै गुहि मोगिन की वर ज्यों तम तोम मे तारे उजाग है॥
जाहि मनाय उमादि रमा नितही निज माग को मागे सोहाग है।
सेदुर पूरित भूरि भरी छवि सीय सोहागिनि की शुभ मांग है॥

बेनी वर्णन

नागिन की उपमा अनुरागिन के मन मे नहिं भावति देनी।
कञ्चन शैल सिगार कि धार किधों रसरंगमनी अलि श्रेनी॥
रेशम लाल गुही सित फूल लसी ज्यो महा सुखमा की त्रिबेनी।
वल्लभ की बिरची अति बेस बिदेह लली की बिराजति बेनी॥

लिलार वर्णन

उज्ज्वल चारु सु चन्दन चित्रित बन्दन विन्दु अमन्द उदार है।
भाग कौ भाजन साजन प्रेम को हेम पटा कि सोहाग आगार है॥
अर्ध शशी कि बसीकर जन्त्र परेसहुँ को बसकार अपार है।
शोभा धनी रसरग मनी मिथिलेश लली को ललाम लिलार है॥

नयन वर्णन

खञ्जन मान - बिभञ्जन श्यामल कञ्ज मनो सुखमा सरसी के।
भौह कमान बिलोक निबान बिभाव भरे मनहारक पीके॥

कोमल कोटि कृपा कि कटाक्ष मनी रसरंग पै कारक नीके।
राघव रञ्जन रञ्जित अञ्जन मञ्जु बिशाल बिलोचन सी के॥

नासिका वर्णन

सुक नासिक ते सिय नासिक नीक लखे रति लाजि रही लचि कै।
बर बेसरि बेस विराजि रही झुलनी छवि छाजि रही नचि कै॥
रस रंग मनी मधुरे अधरान बीरी सु भ्राजि रही रचि कै।
मुसुक्यान सु जान पिया हिय मे सुख सम्पति साजि रही सचि कै॥

मुख वर्णन

बन्धुक विद्रुम बिम्ब जपा अरुने मधुरे अधरान पै वारौ।
दामिनि दाडिम कुन्द कली दसना वलि के दुति पै बलिहारौ॥
बैनन पै रसरग मनी पिक बैन निछावरि को करि डारौ॥
आनन पै सिय के शशि कोटिन दूर पवारि कै वारि उतारौ॥

कण्ठ वर्णन

कोमल औ कल स्वच्छ झलाझल राजित रेख महा छवि सीवाँ।
भूषन भूरि लसै रसरंग मनी मुकता के अमोल अतीवा॥
केलि कला कि अदा उन मीलनि हीलनि राम सुजान कि जीवा।
कम्बु कपोति सु कण्ठ लजै लखि कै रघुनन्दन गोरिक ग्रीवा॥

हाथ वर्णन

चारू महा सुकमार सुढार हरै दुति हेम तथा ताडिता की।
कञ्ज मृनाल रसाल किधों युग धार लसै सुखमा सरिता की॥
दैनि अभै सुख लोक उभै रसरंग मनी सम कल्प लता की।
राम पिया गर की बरहार सी बाहुँ उदार बिदेह सुता की॥

रम्भ सु दुन्दुभि सिंह सुधाकर श्री फल के उपमेय जे अग है।
आन ते नाहिं न जानि सकै न बखानि सकै सुमणीरसरग है॥
जानत केवल रामहि एक कहै न सोऊ कोई और के संग है।
याही विचार उचार भयो सिय की सुखमा को समास प्रसग है॥

सर्व देह वर्णन

सोन सो सुन्दरताई सनी सितलाई सोहाई प्रभा अमली की।
दामिनि ओप मनीरसरंग मृदुल सुगन्धिहुँ चम्प कली की॥

कल्पलता सी लसै लहरानि अनूपम लाल तमाल रली की।
ज्यों छवि गेह सनेह की दीप दिप दुति देह बिदेह लली की॥

सारी वर्णन

झीन रंगीन नवीन नितै ज्यों सिंगार घटा सुखमा बरसाती।
कञ्चन तार किनारी रची कल श्यामल राम छटा दरसाती॥
ताहि ते प्यारी जु प्यार समेत सदा निज अंगन सों परसाती।
क्यों बरनै रसरंग मनी जस सारी सिया तन में सरसाती॥

पदपंकज वर्णन

लाल रसाल महा उर मण्डित दासन के दुख दोष बिनासी।
शारद सिन्धु सुता गिरिजा जिन को नित पूजहिं प्रेम प्रकासी॥
वेद को मूल सो नूपुर नाद जगै नखजोति सुब्रह्म प्रभासी।
राम प्रिया पद कञ्ज तेई रसरंग मनी हिय कञ्ज निवासी॥

अंगुलि राम प्रिया पद कञ्ज की मञ्जुल मंगल की कर वाहै।
नासन दासन के दुख के नख भूरि सुभागन के भर वाहै॥
रेख प्रकास भरे रसरंग मनी तम मोहमयी हरवा है।
व्योम के तारन हूँ तें अपार अधीन के तारन ज्यों तरवा है॥

है दसहूँ उपनीषद - सार कि तेज दसौ अवतार के भ्राजै।
कै दसहूँ दिग पालन भालन के बर मानिक ये छवि छाजै॥
ऐकि प्रकाश स्वरूप लगी पग सों दसधा भगती सुख साजै।
की रसरंग मनी सिय - पायन के सु दसौ नख सुन्दर राजै॥

पावस

सरयू के कूला बिरचित झूला झूलत सिय रघुराज आली।
रिमझिमि रिमिझिमि बरसत बदरा भीजत सिय सारी पिय चदरा जलकण
मुखन बिराज आली॥
लै पटकर रघुवर पटरानी बिहंसि परस्पर पोंछत पानी लखि सुब सुखी
समाज आली।
गावहिं सखी सोहावन सावन सुनि रसरंगमणी मनभावन अति आनन्दित
आज आली॥

झूलन

झूलत राम लाल अलबेलो।
लीन्हे सिय ललना अलबेली रमकत सनो सनेह नबेलो॥
मिलि गोरी गावत गरबोली हंसत हंसावत लहि मुद मेलो।
परिकर दृगन प्रमोद बढावत करि रसरंग मणी रस खेलो॥

झूलत सिय स्वामिनि महरानी।
श्री महराज कुंमार झुलावत मजि सनेह सनमानी॥
प्रीतम प्रीति प्रबल मखि प्यारी पग प्रमोद मुसक्यानी।
लखि रसरंग मणी दुहुँ अखियाँ छवि सुख सिन्धु समानी॥

झूलत राम सिया रस रसिकै।
रस भरि गाय गवावत हिलिमिलि हिय सर सावत हसिकै॥
खात खवावत पान पानकरि अधर सुधारस फंसिकै।
रस झूलनि रस रगमणी यह निरखत हियो हुलसि कै॥

मलार

झुकि झुकि सीताराम सु झूलै।
सावन सरयू तट प्रमोद वन घन बरसत अनूकूलै॥
कल कामिनी कछोटा कसि कसि दोउ दिशि हंसि हंसि हूलै।
मिलि मलार गावत सिय पिय सखि सुनि सुरतिय तन भूलैं॥
अञ्चल माल सुधारि सनेही लखि चञ्चल दृग फूलै।
प्यारिहुँ अलक सम्हारि लहै रस रंग मणी मुद मूलै॥

झूलत रसिक राज रघुनन्दन।
झोंकत बिहंसि बिलोकत प्यारो प्यारी आनन चन्द॥
झझकि झमकि झुकि पिय कहँ बरजहिं अलबेली हंसि मन्द।
लाल ललकि रस रग मनी उर लावत लहि आनन्द॥

आली री को झूलै इन संग।
नाजुकता न बिलोकत परकी झोकत अधिक उमंग।
रसिकराज कहवावत पै नहि आवत रस गति ढंग॥
पियकर जोरि निहोरि हंमायो छायो प्रेम उतंग।
मणि रस रंग रामसिय अंगन वारत अमित अनग॥

रघुबर झूलत प्यारी संग।
रुचि लखि ललित झुलावत गावत राग मलार तरंग।
हंसत हंसावत पान खवावत खात सनेह उमंग॥
आवत भंवर उड़ावत कर सौ बसन सम्हारत अंग।
दम्पति प्रीति रीति पर वारत तन मनमणिरसरंग॥

झूलत रघुवर प्राण पियारी।
प्राणनाथ अंसन भुज धारी॥
सांवन सरयू तट फुलवारी॥
लहर बिलोकि परैं जहँ भारी॥
नभ घनघटा घेरि आई कारी॥
गरजत बरसत रिमि झिमि बारी॥
हरित भूमि तरुलता अपारी॥
बोलत दादुर खग मनहारी॥
सखि नख शिख सिंगार संवारी॥
गावहिं रागिनि मधुर मलारी॥
बाज बजाय नटहिं दै तारी॥
निरखि युगल छवि होहिं सुखारी॥
झोंकि झुलावत अवध बिहारी॥
सिय डरपै पिय ओर निहारी॥
छवि छाके दोउ देह बिसारी॥
लखि रसरंग मणी बलिहारी॥

कजरी

देखो देखो जी हिंगोरा झूलें युगल मिले।
लोनी मिथिलेश लली लसी चंपकली मानो रघुनन्दनील अरबिन्द से खिले॥
मन्द मन्द बुन्द परे मन्द मन्द झूलें दोऊ मन्द हंसि हेरें सुखसिंधु में हिले।
प्रेम की उमंग भरे संग रसरंगमणी बारि कै अनंग झांकी झांकत झिले॥

झूलत सिय रघुराज दुलारे।
बन प्रमोद वर सरित किनारे॥
गरिज गरिज बरसत घन कारे।
चातक मोर मोर किल कारे।
बसन सुरंग अंग दोउ धारे॥

तन जगमग भूषन उजियारे।
हिलि मिल गावहिं राग मलारे॥

बड़े बड़े बूंद बरषि रहे बदरा।
सिय पिय झूलि रहे रस भीने भीजें सुरंग चूनरि चदरा॥
लखि रसरंग मनी दंपति छबि मुर्‌यो स बांम काम कदरा॥

हिंडोरे झूलत युगल किशोरे।
बरषत घन हरषत सिय पिय हिय निरखत नयनन कोरे।
बस रसरंगमणी मनमोरे रमकनि थोरे थोरे॥

रसिक बर हरि लीन्हों मन मोरा।
नवल उमंग संग सिय लीन्हें झूलत रंग हिंडोरा॥
हंसि हंसि सियदिशि झुकि चिन चोरत तिरत नयन मरोरा।
रूपधनी रसरंगमनी उर बस्यो बीर बरजोरा॥

रसत रघुबीर सिय सरद सुख रास मैं।
सरद बन मंजु मधि सरद कल कुंज जहं फूलि रहिं मल्लिका गुंज अलि बास मैं॥
सरद शृंगार सजि सरद सखि यंत्र धरि सरद पद गान करि नचहिं स हुलास मैं।
सरद की सुभग निसि सरद चांदनि बिलसि सरद शशि अमल अति उदित अकास मैं।
सरद शशि सरिस सिय राम मुख अमृत छबि पियत रसरंग दृग प्रेमपगि प्यास मैं॥

शोभा बनी सिया दुलही की।
तन दुति कुंद करै कुन्दन दुति मुख माधुरी चन्दते नीकी॥
लोचन ललित कंज ते मंजुल अंजन भरे मनहुं छबि पीकी।
सोहत सब भूषन गोरे तन तैसी लसनि चारु चुनरी की॥
अति सुन्दर सेंदुर पूरित शिर मन मोहति सुखमा मौरी की।
बसत हिए रसरंग मनी सिय-रघुबर जोरी भावति जी की॥

छोरो लला कंकन सिय जू को।
एकहिं कर सुझावो सलोने यामे प्रमान नहीं कर दू को॥
छोरत छैल न छूटै छबीली बिहंसति करि पट ओट कछू को॥
कह सखि सियपद गहो लाल अब यह न धनुष जो कियो युग टूको॥
सुनि मुसक्याय बदत रघुबर मन भावै सो आज कहो जनि चूको।
सुरझाये रसरंगमणी प्रभु गिरह नेह उरझाय बधू को॥

बसन्त

बर पीत बरन आयो बसन्त।
सजे पीत साज सब सियाकन्त॥
बन पीत लता कुसुमित रसाल।
मधिमहल पीत मणि को बिशाल॥
भये पीत युगल करि अंग राग।
पहिरे सारी पट पीत पाग॥
किये पीत उभय परिकर सिंगार।
पकवान पीत भरि कनक थार॥
दंपति जिमाय जलपीत प्याय।
दै पीत पान पुनि अंतरलाय॥
करि पीत आरती बंदि पांय।
नटै पीत राग सु बसन्त गाय॥
धरि पीत बसन भरतादि भाय।
शुचि सदा जो हारहिं मुदित आय॥
रचि माली मालिनि डालि पीत।
ल्याए जनु पठयो मदन मीत॥
बंदी जन बालक बृन्द वृन्द।
ऋतु पीत सु बरनन पढ़हिं छन्द॥
गुनि समय सु आयसु सबहिं दीन।
सिय पिय लगे खेलन प्रीति लीन॥
सुर निरखि सुमन बरषत अनन्त।
रसरंगमणी जय जय भनन्त॥

आज सिया पिया खेलत होरी।
श्यामल कौशल लाल रसीले जनक लाड़िली गोरी॥
पगे प्रीति रस रीति बिराजत सखी सखा दुहुं ओरी।
मारहिं मूठि गुलाल गेंद सुम पिचकन केसर घोरी॥
गावत गीत गारिदै दोउ दल युगल हंसत मुख मोरी।
बरजोरी करि रघुनन्दन को गहि लिए राज किसोरी॥
कहि जय जय अलि गंठ जोरी दोउ पधराए यक ठोरी।
निरखि राम रसरंगमणी मुख शशि भई आंखि चकोरी॥

होरी खेलिए रघुराई सिया स्वामिनि सुखदाई।
राज किशोर जोर जनि कीजै दीजै मुद मधुराई॥
हरषित हिय हिय हरन हारिए पीजिए प्रीति अघाई रसिक रसनद उमगाई॥
लाल कपोल गुलाल मलाइय चुंबन दै मुगक्याई।
अंजन नयन निरंजन नेही मन रंजन अंवाई कंज खंजन लजवाई॥
नव नागर नांचिए नई गति प्यारी के गुनगाई।
सिया संग रसरंगमणी प्रभु बैठि बदन दिखराई हमे आनंद बढ़ाई॥

किए सिय राम शृंगार फुलनमई।
फुल बंगला तरे लसत युग सुख भरे फूलि हिय हंसत अनुराग दृग उमगई।
फूल आभरन पट फूलचन्द्रिका मुकुट फूल गुही अलक लट ललित मुख छबि छई।
फूल को गुच्छ सिय फूल धनुबान पिय लिए लखि जियत दोउ द्रुहन की द्रुति नई॥
फूलि रहिं कुंज कल चलत सुभगंधि जल रचित युगत फूल सु फुहार भई सितलई।
बरदि सुर फूल उर हरखि रसरंगमणी निरखि सियराम छबि करत दृग सुफलई॥

बसो मेरे नयनन में सियराम।
गोरी जनककिशोरी श्यामा रघुबर सुन्दर श्याम॥
नखशिख भूषन बसन संवारे छबि कोटिन रति काम।
लखन छत्र युग चंवर भरत रिपु दवन दाहिने वाम॥
हनुमत बीजत व्यजन लसत सब परिकर ललित ललाम।
कमल नयन बिहंसत दंपति रसरंगमणी मुद धाम॥

राजत सिय रघुराज आज री।
सिंहासन पर गौर श्याम तन निमिकुल रघुकुल सीम ताजरी॥
चंवर लिये दुहं ओर भरत रिपु दमन लषन धरे छत्र छाजरी।
हनुमत व्यजन करत कर अंग छड़ी गहे रहयो सुजस गाजरी॥
धनुसर असि चर्मादि बिभीषन सुग्रीवादिक करन भ्राजरी।
जय जय जस रसरंगमणी कहि करत सुमन झरि सुरस माजरी॥

राजत राम सिय रस मीन।
युगल सिरन किरीट कुंडल मकर सुखमा पीन॥
सखि झषाकृत कल कपोलन चित्ररचना कीन।
चपल दृगन समेत देखे प्रगट द्वादश मीन॥
बनी एकहिं वेषकी बलि आज सु छबि नवीन।
लखत परिकर प्रेम पगि रसराममणि सुख लीन॥

श्री रामशत बन्दना

श्री सीताराम शरण राम रसरंग मणि

शृंगार स्वरूप श्री सीताराम के वर दुलहिन वेश की बार बार मधुर भावमयी वंदना। दोहे रस मे शराबोर है। अन्त मे पाच सवैये कवित्त है जो 'लालसा' परक है और उद्धव के 'आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्या' तथा रसखान के 'जो पशु हों तो' की याद दिलाते है।

बन्दौ दूलह वेष दुति सिय दुलहिनि युत राम।
गौरि श्याम रसरंगमणि जन-मन पूरण काम॥

बन्दौं बर दुलहिनि सकल आए अवध दुआर।
मुदित मातु परिछन करहिं मुख रसरग अपार॥

वन्दौ सिहासन लसे दुलहिनि दूलह चारि।
पूजहि अम्ब कदम्ब लखि रसरगहु बलिहारि॥

वन्दौ सीताकान्त सुख रस शृंगार स्वरूप।
रसिकराज रस रगमणि सखा सुबंधु अनूप॥

बन्दौ भरताग्रज मधुर प्रेम सख्य रस रूप।
कृपा सिन्धु रसरंगमणि बधु अखिल रस भूप॥

बन्दौ सीताराम प्रभु सुख रस रंग प्रदानि।
गिरा अर्थ जल बीचि सम भिन्न अभिन्न सुमानि॥

वन्दौं दशरथनन्द शुभ गुण मन्दिर रस रंग।
सिय हिय चन्दन चन्द मुख सुन्दर अमित अनंग॥

बन्दौ पितु आज्ञा निरत लखन राम सिय संग।
अवध राज तजि बन गवन करन हरषि रस रंग॥

बन्दौ सखा निषाद के नव नेही रघुराय।
तेहि भेटे रस रंगमणि प्राण सरिस हिय लाय॥

वन्दौ अवध बिहारि प्रभु सियबिहारि सुख धाम।
हिय बिहारि रस रंगमणि मुनि मनहारी राम॥

बन्दौ रघुपति राजपति रसपति पति-रस रग।
गतिपतिपतिपति जगतपति रतिपति शत सम अंग॥

बन्दौ श्री रघुवीर वर दयादान कर बीर।
धर्मवीर रसरंग मणि युद्धवीर मतिधीर॥

बन्दौं राघव राम रस रूप राशि रस रंग।
रघुनन्दन राजीव दृग राज सुता सिय संग॥
बन्दौ भक्ति सुभक्त जन भक्त प्राण प्रिय राम।
संप्रदाय शरणागती तिलक तुलसिका दाम॥

हे बिधि जौ करिए खग वृक्ष मृगादि तौ औध बिपीन मझार को।
हवै जल जंतु जिऔ पै पिऔ बरबारि सुखी सरजू सरि धार को॥
बाहन श्वान बनाइय जो तो सवारी सिकारी श्री राजकुमार को।
जो नर तो रस रगमणी करु प्यार सखा रघुनन्दन यार को॥

अंत्यज तो अवधेश को खास मफा करों भोर दुआर अगार को।
सूद्र तो सार करो सिय पीय को वैश्य बनों पुर औध बजार को॥
जो द्विज तो रबिवंश गुरू कुल हवै पढों राम विवाह सुचार को।
छत्रि तो श्री रघुवंशहि मे रसरंगमणी सखा राघव यार को॥

राम सखा रसरगमणी अलि है सिय के पद पकज प्यार को।
है लघु बधु सु लच्छन लाल को ते नित लालत देत पुलार को॥
है रिपुशाल को बाल सहोदर भाइ सबै भरतादि कुमार को।
श्री अवधेश औ अम्बन को अति छोट सुढोट है गोद खेलार को॥

पांयन को पेखि पुनि नखखन परेखि युग जंघा जानु जोहि लाग्यो लक ललचाय कै।
नाभी मे नहाय आयो उर मे उरायन सों भेटि भुजदंड गहचो ग्रीवा गुणगाय कै॥
चाहिकै चिवुक को निवुकि रसरंगमणी, वदन विलोकि भयो विवस बनाय कै।
लोचन निहारि रामचन्द्रजू के मेरो मन जकरिगों जुलुफ जजीरन मे जाय कै॥

पद कंज परसि पराग ते पुनीत भयो जोहि नख जोति जाय नूपुर मे कसिगो।
ऊरु अवलोकि कटि किंकिनी सु-पीत पट ताकि त्रिवली को नाभि सुधासरा धसिगो॥
कढ़िकै उदर उर बाहु रसरगमणी भेटि ग्रीवा भूषन चिवुक विन्दु बसिगो।
गचतै चित्त मेरो रघुनन्दन वदन चन्द चाहत चलन मन्द हांसि फासि फंसिगो॥

श्री राम रस रंग बिलास

अयोध्यानिवासी श्री सीतारामशरण रामरस रंगमणि जी का "रामरसरंगविलास" सिद्धान्त, साधना और साहित्य की दृष्टि से एक अनमोल मणि है। हितचितक प्रेस रामघाट बनारस सिटी से आषाढ संवत १९६७ मे छपा। आरभ मे मंगलाचरण, इष्ट वदना, गुरुवंदना के १२ श्लोक है और उसके बाद आठ कवित्तों मे आचार्य की वदना है। इसके अनन्तर श्री रामनाम का यश, श्रीराम का रूपरस, श्री राम की कृपाभिलाषा, श्री रामायण की कथा (सार रूप मे, अतिशय

संक्षिप्त), श्री राम के प्रति अनन्यता, श्री राम का माधुर्य, पुनः नाम प्रभाव, श्री राम का नखशि वर्णन, श्री सीता जी का गुण प्रभाव वर्णन, आदि विषय इस ग्रंथ मे कुल १८५ कवित्तों मे वर्णि है। भाषा बहुत साफ, सरल एवं मार्जित है। सिद्धान्त और साधना की दृष्टि से यह ग्रंथ बड़े मह का है।

उदाहरण--

लोचन लाल के लोभी अली ललि कंज विलोचन श्यामल फूले।
आनन श्री रघुनन्द कौ चन्द सिया चख चारु चकोरक भूले॥
जानकि जानकि जानकि जान पियारी के प्रीतम प्रान समूले।
यो रमरंगमणी के हिया मेजिया वसिया रसिया सम तूले॥

श्री राम का ध्यान वर्णन

पायन को पेखि पुनि नखन परेखि युग जंघा जानु जोहि लाग्यो लंक ललचाय कै।
नाभी मे नहाय आयो उरमे उरायन सों भेटि भुजदड गहचो ग्रीवा गुणगाय कै॥
चाहिकै चिवुक को निवुकि रमरगमणी वदन विलोकि भयो विवस बनाय कै।
लोचन निहारि रामचन्द्रजू के मेरो मन जकरिगो जुलुफ जजीरन मे जाय कै॥

पद कज परमि पराग ते पुनीत भयो जोहि नख जोति जाय नूपुर मे कसिगो।
उरु अवलोकि कटि किकिनी सु पीत पट ताकि त्रिवली को नाभि सुधासर धसिगो॥
कढिकै उदर उर वाहु रसरगमणी भेटि ग्रीवा भूषन चिवुक निन्दु वसिगो।
चितै चित्त मेरो रघुनन्दन वदन चन्द चाहत चलन मन्द हांमी फांसी फसिगो॥

श्री सीता जी का ध्यान वर्णन

आनन श्री शशि कोटिन की सुखमा सुखसार सिगार सनी है।
श्री फल चपक बधुक कुन्द से अगन बाग बहार बनी है॥
कज सुखजन गंजन नैन रमा रति जाके छटा कि कनी है।
राम धना धन प्रान ममा सियजू रसरगमणी कि धनी है॥

श्री सीताजी का प्रभाव वर्णन

करुणा बसीली भक्त जीव की उसीली,
भव दुख की नसीली वेद विविद जसीली है।
वदन शशीली शोभा सदन लसीली,
रस रग शुमशीली मति प्रीति दरशीली है॥
मन्द विहसीली मजु गौरवगसीली,
पिय हिय हुलसीली राम रसकी रसीली है।

दिव्य गुणशीली नव्य नेह की कसीली,
भव्य सुख पर सीली सिय स्वामिनी सुशीली है॥

प्रणत उधारणी है बिगरी सुधारणी है,
दिव्य गुण कारणी है टारनी कलेसकी।
औगुन बिसारणी है भक्त काज सारणी है,
सुख को पसारणी है प्यारनी परेश की॥
महल विहारनी है सोरहौ सिंगारनी है,
राम मनहारनी है धारणी रसेश की।
रसरंग तारनी कृपा की कोर ढारनी है,
विरुद प्रचारनी है सिया जू हमेश की॥

प्यारी नैन प्यारे बसै प्यारे नैन प्यारी बसे,
उभै नैन चोरिवे को उभै नैन चोर है।
मुख मिथिलेश जा को मधुर मयक मोहे,
अवध किशोर चारु चतुर चकोर है॥
राम घनश्याम मंजु बैन मोद दैन धुनि,
सुनि स्वामिनी को मन नाचै मत्तमोर है।
शोभा मकरन्द रसरंगमणी मृग फूले,
युगल लहि नेह भानु मोर है॥

कनक भवन मे प्रिया प्रीतम की झाँकी

सेत अगराग लाए रामलाल बमे गौर गोरी,
श्री किशोरी जोरी एक ही प्रभा की है।
सीस ताज चन्द्रिकादि भूषन बिराजे लाजे,
अग लखि शोभा काम रति औ रमा की है॥
आनन पै अमित हजार चन्द्र बलिहार,
नैन निहार मार-मारनि मना की है।
छाकी रसरगमणी सुखमा सिंगारता की,
कनक भवन प्रिया प्रीतम की झाकी है॥

राम झाँकी विलास

श्री राम रसरगमणि जी के इस छोटे-से ग्रंथ मे भगवान श्री राम के शैशव से लेकर सिहासनासीन होने तक के समस्त रूपों की झाँकियाँ है जो दर्शनीय है। काव्य का सौष्ठव और

भावो की सुकुमारता इन झाँकियों को और भी मधुर बना देती है। यह ग्रंथ सं० १९६६ वि० के ज्येष्ठ श० पंचमी को पूरा हुआ था जैसा इसकी पुष्पिका से पता चलता है।

श्याम अग बसन सुरंग सोहै संग बंधु नाचत तुरंग चाल चलत चलाकी है।
ककन करन रसरंगमणी माल उर भाल मे तिलक मंजु मौर शिर ढाँकी है॥
चन्दन मुख मन्द मन्द हँसनि आनन्द भरी नैन अरबिन्द छबि फन्द मनसा की है।
झाकी जेहि झाकी यह बाकी रही ताकी कहा राम दुलहा की बर बाकी बनी झांकी है॥

बारिद बरन बपु बिज्जु सो बसन बन्यो बाण बाणासनवत बाहु बीरता की है।
बिबिध बिभूषन बिशाल बनमाल बनी बाम मे बिराजती त्यो बेटी बसुधा की है॥
विधु सो बदन बर बारिज बिलोचन है बिहसनि बड़ी बाधा बिदरनि बांकी है।
बसै रसरग के बनज बुधि बोध बीच विश्व बीर रामकी बिमल बांकी झांकी है॥

सीता तड़िता के तन बसन समान घन घनश्याम तन घट दुति तड़िता की है।
मानो कल नील कंज शील पुज सिया नैन लाल कजहू ते मंजु आँखै रसिया की है॥
पैखै रसरगमणी शोभा दोऊ दोहुँन की मंद मुसक्यात मोद प्रीति मति छाकी है।
तीनौ लोक झांकी बुधि कतहूं न झाकी अस राघव सिया की जस बांकी वर झांकी है॥

जुगल किशोर गौर श्यामल सनेह सने ललित सुबा हुकल कठन कसे रहै।
केलिके उछाह छबि छाके दोऊ दोहुन के लूटत अनन्द लीला लोभित लसे रहै॥
फेरत बिलोचन बिलोल त्यों विनोद माते राते रसरंगमणि हेरत हँसे रहै।
आनद के कद दोऊ चद रघुनंद सिय सरस हमारे हिया कमल बसे रहै॥

सियबर केलि पदावली

श्री ज्ञानाअलि सहचरिजी

सियबर केलि पदावली

रसिकोपासको का यह परम प्रिय ग्रंथ भगवान रामचन्द्र और भगवती जानकी महारानी के परस्पर अरसपरस, आमोद-प्रमोद तथा लीलाविलास और प्रणय विहार का एक उत्कृष्ट आकर ग्रथ है। इस शाखा के उपासकों में इसका विशिष्ट आदर है। ज्ञाना अलिजी ने आरंभ मे अपने स्वरूप का परिचय दिया है। यह आत्म परिचय परम रहस्यमय है और प्रेम में भगवान और भक्त का कितना प्रगाढ रसमय अपनत्व हो सकता है उसका बहुत ही भव्य निदर्शन है। तदनन्तर राम जन्म की बधाई और जानकी जन्म की बधाई के पद है। इसके पश्चात् 'लगन' की बड़ी ही मार्मिक व्याख्या है। यह व्याख्या साहित्यिक दृष्टि से भी विशेष उल्लेखनीय है। इसके बाद बारहमासा और षट् ऋतु मे युगल सरकार के अरस परस, झूलन, नृत्य, वन विहार, जल विहार, होली के पद है। प्राकृतिक छटा की पृष्ठ भूमि में इन नानाविध लीलाओं का जो स्वरूप ज्ञाना अलि ने प्रस्तुत किया

है वह साहित्य और साधना दोनो ही दृष्टियों मे सर्वोत्कृष्ट है। इस प्रकार इस ग्रथ मे ४०८ पद है। अन्त मे अष्टयाम सेवा कुज द्वादश विलास पदावली है जिसमे इस उपासना का तत्त्व बहुत संक्षेप मे, सार रूप मे वर्णित है। यह ग्रथ इस उपासना के लोगों मे परम आदरणीय है और साहित्यिक दृष्टि से भी अन्यतम है, इसलिए इसका विशेष परिचय उदाहरणों द्वारा देने की चेष्टा हो रही है।

यह ग्रथ मुशी नवलकिशोर के छापाखानै मे सन् १९१४ ईसवी मे छपा। स्वय लेखक ने ग्रथ के अत मे लिखा है—

अगहन सुदी सुदूर तिथि शनिवासर सुख मूल।
पवन सुवन दिन जन्म कर जानि समय मनु कूल॥
सियवर केलि पदावली ग्रथ समापित कीन।
ज्ञाना अलि श्री अवधपुर भक्ति निछावरि लीन॥

अपनी विनय का परिचय भी अन्त मे ज्ञाना अलि महचरि जी ने कितने भोले शब्दो मे दिया है—

रूप माधुरी गुण कथन नाम युगल अभिराम।
धाम अवध मिथिला कथा यह जीवन विश्राम॥
ताते कछु मन मनन करि ज्यों त्यो मन समुझाय।
गाय लाडली लाल यश निज मति सरिस्म सोहाय॥
पिंगल काव्य न कोष गति गण अरु अगण न होस।
यह सेवा फल सिय कृपा निश्चय परम भरोस॥
हे स्वामिनि सिय प्राणप्रिय प्रिय वल्लभा किशोरि।
रघुवर सियवर रूप निधि गुण निधि मय गति तोरि॥

हे जीवन धन लाडिली
हे नृप लालन मीत।
हे मन भावन भामिनी!
दीजै युग पद प्रीत॥
हे नट नागर नागरी,
छबि आगरि गुण खानि।
हे शरणागत रक्षिका
निज चेरी करि जानि॥
हे शशि बदनी छबि सुधा
अधराधर मृदु बैन।

पिय चकोर चित लुब्ध नित,
पियत माधुरी नैन॥
हे सुखमाकर साँवरे,
श्याम सलोने लाल।
मृगनयनी छबिजाल में।
फँसे रहौं ज्यों माल॥
हे गुण गाहक नेह निधि
जग जीवन विश्राम।
सियारमण सुखमा भवन
बड़ भागी सुखधाम॥
हे रसिकन जीवनजरी
युग युग पूरणचन्द।
घटौ बढ़ौ कबहूँ नही
नित्य सच्चिदानन्द॥

आत्म परिचय

चन्द्रकान्ति मम मातुपितु, शत्रूजित नृप जान।
चारुशिला भगिनी बड़ी, ताकी अनुचरि मान॥

ज्ञा कहिये जो गोप्य रस, ना निश्चय जिय जान।
ताकी शरणागत भई, ज्ञाना अली बखान॥

अष्ट सखी सिय मुख्य हैं, तिनमहं ज्ञाना जोय।
ताकी सहचरि द्वितिय बपु, ज्ञाना अली सो होय॥

ज्ञाना ज्ञान न जान कछु, ना निषेध करि दीन।
केवल सियबर शरण गहि, तासों गुनत प्रबीन॥

ज्ञान अखण्ड अनादि अज, जनकलली को पीय।
तासों बरी निशंक ह्वै, ज्ञाना सहचरि सीय॥

अज अखंड श्री रामवर, मूरति विश्व निवास।
तासों बरि गुरु कृपाकरि, ज्ञाना ज्ञान प्रकास॥

श्री मिथिला नैहर समुझि, सासुर अवधहि जानि।
दोउ घर सुखद सुसर्बदा, रहिहौं जहं मनमानि॥

राम जन्म की बधाई

वारे के श्याम सनेहिया सुनिये नृपलाल।
सूरति प्यासी अखिया अति बिरह बिहाल॥
मिठि मिठि बतिया प्यारी चितवनि छबि जाल।
ज्ञाना अलि बिहसनि तेरी निशिदिन हियशाल॥
चतुर चूडामणि प्यारो नृपराज दुलारो।
बोलै मधुर रस बतिया यौवन मतवारो॥
चितवनि शर विषमानी जानी हो गुमानि।
ज्ञाना अलि पिय मन बसिया रसिया चितचोर॥
रसियाने कैसी कीन्ही बावरि करि दीन्हि।
इकतौ मैं बारी भोरी दूजे बय थोरि॥
जुलमी जगत उजियारो कारो नृपबारो।
ज्ञाना अलि पिय छबि प्यासी सियचरण उपासी॥

श्री जानकी जन्म की बधाई

तित नई नइ आनद बधाई।
बड़े भाग नृप भवन भले दिन सुता भई सुख दाई॥
निमि कुल सुधा समुद्र रमासी प्रगट भई सुखमा गुणा रासी।
असुरन मारि सुरन की जीवन विश्व विशद यशछाई।
जीवन जरी जगत की स्वामिनि अग अग छबि द्युति बहु दामिनि॥
उमा रमारति देखि लली छबि तनमन धन बलिजाई॥
सुन्दरि सब गुणखानि सलोनी ऐसी कहू भई नहि होनी।
नवपट चारि अठारह चौदह ज्ञाना अलि यशगाई।

सखी री आजु भई मन भाई।
सब गुण खानि सलोनी सुन्दरि बेटि सुनैना जाई॥
बहुत दिनन नृप शिव धनु पूज्यो सो फल प्रगट देखाई।
पुर प्रमोद केहि भाति सराहौ रानी कोखि जुड़ाई॥
सुनि सखि बचन साजि सब मगल मणि गण बिपुल लुटाई।
गज गामिनि दामिनि सी दमकत उर प्रमोद अनमाई॥
जाको निगम नेति कहि गावत शकर हृदय चोराई।
ज्ञाना अलि तेहि प्रगट देखियत निमिकुल सुयश बढ़ाई॥

लगन

लगन लागि मोरी तोरी बारे के सनेहिया श्याम।
लाज गई गृह काज न भावै सुधि बुधि भइ मोरी।।

सोई जानै जाके लगी, बिना लगे क्या होय।
लगन बिना पिय नहिं मिलै, कोटि करै जो कोय।।

लगन हमारे श्याम सों, जाको लागी होय।
ज्ञाना अलि सोई सगो, और नहीं जग कोय।।

को जानै पिय पीर तुम्हे बिनु नव योवन जोरी।।

लगन करों तो लागि रहौ, तन मन आठौ याम।
लगन में तोरो क्या लगै, केवल सुमिरन राम।।

लगन बिना लाखों यतन, करि पचि मरै अयान।
लगन लगी जाके हिये, सो अति चतुर सयान।।

आशिक भई पिया अपने पर यामे क्या चोरी।।

परि लखै पीतम सोई, सदा जिये सो जीव।
लगन सोई लागी रहै, ज्यों चातक जल पीव।।
प्रीति परीक्षा जानिये, पिय बिनु कछु न सोहाय।
पीर सहै पिय पिय कहै, परी परी पछिताय।।
ज्ञानाअलि छवि फन्द परी हौ कसी प्रेम डोरी।।

संवलिया ने ना जानो क्या कीन।
सुधि बुधि सब हरि लीन।।
नेकु चितै चित चोरि मोरि मुख जनु जादू करि दीन।
छलि करि बिवश कीन मन भावन चतुराई में पीन।।

लगन बिना मन नहिं लगै, जप तप कछु न सोहाय।
लगन बिना दृढ़ प्रीति नहिं, ज्ञानाअलि पछिताय।।
विवश भई छवि मरस पिया, लखि जाहि गुणन प्रवीन।।

रसिक शिरोमणि सांवरो, मेरो जीवन प्रान।
चेरी ह्वै नेरी रहौ, यह मेरे मनमान।।
ज्ञानाअलि अवधेश ललन छवि लखि को न होय अधीन।।

संवलिया हो लगन लगी दिन रैन।
जब लागी तब काहु न जानी अब लागी दुख दैन।

भौंह कमान नयन रतनारे मनहूँ मदन शर पैन।।
फिरत बिहाल हाल कासौं कहौ बिनु देखे नहिं चैन।
ज्ञानाअलि दिशि नेकु चितौ हंसि करि कटाक्ष मृदु सैन।।

सिया बर हो कैसि लगाई प्रीति।
प्रीति लगाय निठुर ह्वै बैठे किन सिखई यह रीति।
कासों कहौ सुनै को मेरी यह तेरी अनरीति।
ज्ञानाअलि ऐसी नहिं चहिये ज्यों बारु की भीति।।

प्रीति की रीति नियारी करु यारी।
प्रीति सराहन योग मीन को बिनु जल मरण बिचारी।।
ज्यों चातक स्वाती जल चाहत पियत न सुरसरि बारी।
ज्ञानाअलि सियवर मन भावत जग सब लगत उजारी।।

कहौ सजनी श्याम सुन्दर की बातें।
जासों कटै दिन रातै।।
जबते गये कुंवर मिथिलाते बिरह जरावत गातै।
कहँ वह हंसनि बिलोकति तिरछनि बोलन चलनि सोहातै।।
चरबण पान पीक झुकि डारिन मन्द मन्द मुसुकातै।
घरि पल छिन छिन कल्प सरिस दिन यामिनि मोहिं बिहातै।।
ज्ञानाअलि कब सो दिन ऐहे सुनिहो अवधते आतै।।

दृगन भरि श्याम सुरति बिनु देखे।
होत न चित में चैन सखी री बीतत पलक कलप के लेखे।
जब आवत भुज अंस धरनि सुधि होत हिये बिच बिरह बिशेखे।
करकत हिये हहरि हारी हौ प्राण रहो अवशेखे।।
सुन्दर मधुर माधुरी मूरति मधुर मनोहर बेखे।
ज्ञानाअलि दिल्दार यार बिनु दुखी सुखी छवि पेखे।।

हमारी सुधि लीजै राजिव नैन।
दृग भरि हेरि फेरि अंसन भुज लावो हिये सुख दैन।।
ललकत मन छिन छिन मिलिबे को बिनु देखे नहिं चैन।
आरत हरण बेद यश गावत क्यों न सुनौ मम बैन।।
रूप सुधा छवि दृगन पिआवो करि कटाक्ष मृदु सैन।
ज्ञानाअलि पिय बिरह बावरी नहिं सोहात दिन रैन।।

अवध नृप ललन बिना रतिया।
नहिं भावै बतिया जरै नित छतिया॥
पीतम रसिया वे दिल बिच बसियाहो।
हाथ नहिं आवै सदा तरसावे लखै को घतिया॥
ज्ञानाअलि गलियन आवै।
नइ नइ तानै गावै दृगन दरशावै करै रस बतिया॥

दरस रस प्यास पिया तेरी।
रसिक रसखानि सकल सुखदानि अरज मेरी॥
दिल का मेहर वे जाहिर जग उजियारा।
अवध नृप प्यारा प्रेमवश हारा बिहंसि हेरी॥
ज्ञानाअलि माधुरि तेरी मुख सुखमा की ढेरी।
जानि सिय चेरी कञ्जकर फेरी राखु नेरी॥

जानि हो गुमानि मैने तेरि मुसुकानी।
भौहे चाप सधानि नयन शर मारत तकि तकि तानी॥
करकत हिय बिच घाव न सूझै कासो कहौ मै बखानी।
ज्ञानाअलि दिल्दार यार की घाते सब मनमानी॥

पावस पिय मिलन आश सुनि सुनि घन धुनि अकाश दरशत पिय छवि प्रकाश मन मयूर नाचे री।
दामिनि दमकत न थोर रिमि झिमि बरसत झकोर कोकिला कलाप मधुर दादुर धुनि भाचे री॥
झिंगुर झुम झननननन पवन चलत सुमननननन लेत तान तूतननननन सप्त स्वरन साचे री।
ज्ञानाअलि चित बिलास पावस ऋतु पिय निवास आये लखि हिय हुलास बिरह जरनि बाचे री॥

ललना नवेलि लाल मनहुँ नवल तरु तमाल आलबाल कनक बेलि चहूँ ओर छाई है।
सुन्दर मुख छवि रसाल चितवत लखि दृग निहाल अनुपम छवि हृदय शाल जीवन धन पाई है॥
प्यारी छवि नवल जाल प्रियतम मन फसि मराल मुक्तागुन मञ्जुमाल निशि दिन यश गाई है।
ज्ञानाअलि चित चकोर प्रियतम दृग दृगन जोर पीवत छवि रस न थोर क्षण क्षण सरसाई है॥

सखि उमड़ि घुमड़ि डरवावे।
कारे कारे बदरा गरजि गरजि करि प्रियतम छवि दरशावे॥
पिय पिय रटत पपीहा प्यारी दादुर मोर शोर सुनिकै झनन झनन झीगुर झनकारै त्रिविध पवन सरसावे।

अति अंधियारी कारि बिजुलि चमक न्यारि घुम घननन घहरावे॥
बरसत बारि सुखकारि मनहारि भारि घन घमण्ड करि छावे।
आवन अषाढ सुनि पिय मन भावन को मन अनन्द सुख पावे॥
प्रेम तृण अंकुरन बिन दरशन लागे ज्ञाना अलि अति मन भावै॥

देखो कारे कारे बदरा प्यारे।
मनहुँ पिया घनश्याम मिलन को उमगि चले मतवारे॥
घूमि घूमि महि लूमि झूमि करि घननननन घहरावै।
बड़े बड़े बूदन बरसै उमड़ि चले नदनारे॥
महि हरियाइ भाइ द्रुमन सुमन शोभा सरयु पुलिन छवि छाई।
घन घोर शोर सुनि मो कुहुँकन लागे नचत महा सुख भारे।
देखि ऋतु पावस सरस सरसानि हिय पिय प्यारी मन भावै।
ज्ञानाअलि कनक अटारि चढि हेरि जब गावत स्वरन सम्हारे॥

अरज मोरि मानिले प्यारी पिय सग ऋतु सुख लीजिये।
अबकी पावस सुख सरसावत मन भावन बश कीजिये॥
नइ नइ तानन गाय रगभरि अधराधर रस पीजिये।
मुख मयक छवि सुधा सरोवर चप चकोर सखि लीजिये॥
श्री प्रमोदबन लता निकुञ्जनि प्रियतम रुचि सुख दीजिये।
ज्ञानाअलि मन भावन पिय सग सरस परस सुख भीजिये॥

रसिक भये सिय रूप लखि, रसिया नाम कहाय।
तासों रसिकन के हिये, सिय वर रूप सुहाय॥
यक टक रहत निहारी॥
प्राण के हरैया दोऊ चित्त के चोरैया सजनी छवि दरशैया लखि शोभा न्यारी

प्रिय छवि मे प्यारी रगी, तासो श्यामा नाम।
प्यारी छवि मे पिय रगे, तासो प्रियतम श्याम दोउ रसिक विहारी॥
लखि पिय प्यारि शोभा ज्ञानाअलि मनलोभा जम्यो उर प्रेम गोभा फिरै मतवारी॥

रसिक रस झूलिये झुलना मधुर मधुर हुलना।
डरपत हिय कम्पत तन प्रियतम बयस मधुर तुलना॥
बयस मधुर सुखमा मदन, मदन कोटि छवि अग।
सुख सागर नागर नवल, नवला नवल उमग॥
सुन्दरि श्यामा श्याम मनोहर अग अग छवि खुलना।
रसिक राज रघुराज सुत, रस लोभी रस खान।
रस गाहक रस बस करन, रसिकन जीवन प्रान॥
ज्ञानाअलि बलिहारि तुम्हारी क्या भूले भुलना॥

सजनी सावन गरज सोहावन।
झूलन आई पिय प्यारे सग सिय प्यारी छवि छावन

नव तरु लता मधुर मृदु कुंजन मधुर मधुर ध्वनि सुनत सोहावन
नतट मयूर कोकिला गावत मन भावन चितचावन ।।
नील पीत घन तड़ित बरन तन मदन कोटि रति छवि सरसावन ।
ज्ञानाअलि बलि बलि झूलन लखि गहि पिय कटिपट दावन ।।

रिमि झिमि बुदन बरसत बारी ।
बन प्रमोद सरयू तट बिहरत रघुबर सिय सुकुमारी ।।
ज्यों ज्यो भीजत सुरग पाग पिय त्यो त्यो सिय तन सारी ।
झीने बसन अंग अंग भीने वह सुख सरस बयारी ।
दुति दमकत दामिनि घन गरजत डरपि अक पिय धारी ।
ज्ञानाअलि पावस उमग रसिकियो वश करि मतवारी ।।

रसिक दोउ रहसि रहसि झूलै ।
सरस ऋतु पावस सुख मूलै ।।
नवल तरु लता ललित दरसै ।
उमड़ घन घटा अटा परसै ।।
बड़े बड़े बूदन नित बरसै ।
झुलावे झूलै सुख सरसै ।।

अलि चपलावलि अचल ह्वै, पिय प्रियतम घन पाय ।
नित नव सुख बरसन लगी, झूलन गाय बजाय ।।

सुनत पिय प्यारी चित्त फूलै ।
नवल सिय रसिक लाल झाकी ।।
बिलोकनि अलबेली बाकी ।।
नेकु जेहि ओर बिहंसि ताकी ।
सोई बड़भागिनि मति पाकी ।।

श्री सरयू तट निकट ही, सोम श्रवन बट छाह ।
नाह नैह ज्ञानाअली, बढ़त धरे गलबाह ।।
यही सुख प्रियतम अनुकूलै ।।

सिय रसिक बिहारी झूलै ।
सावन कुञ्ज सरित सरयू तट बन प्रमोद मुद मूलै ।
नख सिख सुमन शिंगार सजोरी अवध चन्द्र चन्द्राननि गोरी निवछावरि रति मदन करोरी तेहि सग
एकन तूलै ।
सिय झूलै पिय झूमि झुलावै निरखि निरखि छवि बलि बलि जावै मन भावै कटि लचकनि मचकि
हरषि हरत हिय शूलै ।

जागरि बयस शिरोमणि गारी सिय प्यारी सब राज कुमारी लिये सोज ठाढी चहुँ ओरनि सेवा सुख अनुकूलै।
मगनयनी कलकोकिल बयनी गजगमनी सब रति मद मदनी ज्ञानाअलि सब निमि कुल छवनी छिन छिन छवि लखि फूलै॥

धीरे झूलौ रसिक रस बरसौ।
तुम घनश्याम सिया द्युति दामिनि अरस परस तन परसौ।
नवला नवल रूप रसप्यासी छवि अमृत दै दृग सुख सरसौ॥
ज्ञानाअलि गरजी अरजी सुनि भुज असन धरि नित नव दरसौ।

झूलन झूलै नवल रस रसिया।
श्री नृप नन्दन जनकनन्दनी गौर श्याम मृदु मूरति रसिया॥
तरु तमाल जनु कनक बेलि मिलि भुजबली उरझनि मनबसिया॥
ज्ञानाअलि अभिलाष नई नित कीजिय सिय पिय चरणन बसिया॥

रसिक बिहारी सिय सुकुमारी।
धीरे झुलावो गावो प्यारी को रिझावो लै बलिहारी॥
तुम गुण रूप उजागर नागर नागरि नेह सम्हारी।
सिय मुख चन्द्रचकोर चोरपिय छवि अमृत अधिकारी॥
गोय गोद झूलत रस लम्पट रसिकन हित सुखकारी।
ज्ञानाअलि महचरि यश गावत जागि सुभाग हमारी॥

झमकि झुकि झूकन झूलेरी।
तन गौर श्याम अभिराम राम रमणी छवि खूलैरी।
सजि बसन बिभूषण सुमन माल ललना गण गावत पद रसाल
मुख चन्द्र बिलोकति भइ निहाल दृग कुमुदिनि फूलैरी॥
कमला कल कोकिल बरत गान बिमला बीणागति अति प्रवीण
सुभगा जु सप्तस्वर करि अलाप भुज असन मूलैरी॥
ज्ञानाअलि दम्पति रस बिलास नित कनक भवन कुजन प्रकास
भाविक जन जानत हिय हुलास नित यहि सुख तूलैरी॥

अनोखी रसिक पिय प्यारी।
झुलन चली संग सुकुमारी।
सुरंग पिय पाग मनहारी।
चन्द्रिका सीय शिर धारी।
छबीली लाडिली सारी।
श्याम कटि पीत पटवारी।

देव नर नाग नृप वारी।
सबै निमिवंश उजियारी।
झुलावै झमकि झुकि झारी।
गगन ध्वनि गान रसकारी।
भयो रसरंग अति जारी।
परसपर झूलती नारी।
ज्ञानाअलि निरखि मन भारी।
करौ क्या प्रेमगति न्यारी॥

अबकि सावन सुख सौगुन परसौ पिय प्यारी संग झूलत दरसो।
श्री प्रमोद वनलता निकुंजनि कहि न सिराय माधुरी बरसो॥
सिय दामिनि घनश्याम मनोहर नवल उमंग अंग भुज परसो।
नवला नवल झुलावै गावै मधुर मधुर ध्वनि सातो स्वर सो॥
घन ध्वनि दामिनि दमकि दशौ दिशि पकरि श्याम श्यामा कर करसो।
ज्ञानाअलि पावस सुखमा सुख पिय प्यारी संग निशिदिन सरसो॥

झुलावै झूलै झुकि झेली।
झनन झनन झींगुर झनकारे अति कौतुक केली।
उभड़ि घन घुमड़ि घेरि छाये।
ज्ञानाअलि सावन मनभावन नित नव सुख रेली॥

नवल दोउ झमकि झूमि झूले।
नवल हिंडोल कुञ्ज द्रुम फूले श्री सरयू कूले॥
नवल तन भूषण छवि पावै।
नवल बसन नव नेह परस्पर सखियन सुख मूले॥
नवल नवला बहु संग सोहे।
नखशिख रूप अनूप मोहावन स्वामिनि सम तूले॥
नवल घन चहूँ ओर छाये।
ज्ञानाअलि रस भाव वृष्टि लखि मिटि गइ हिय शूले॥

हिय बिच खट कैरि सजनी निशि दिन पिय की बात।
सावन आवन ह्यौ मन भावन सो दिन बीते जात॥
झुलिहौ झूमि झमकि झुकि पिय संग परसि मनोहर गात।
ज्ञानाअलि अभिलाष मिलन की आइ मिले मुसुकात॥

रसिया ना मानै सजनी झूलत मन न अघाय।
सोवत सजनी अपने भवनवां औचक मोहिं जगाय॥

बन प्रमोद कुंजन कुञ्जन में नित उठि झूलत आय।
ज्ञानाअलि सिय पिय संग झुलिहों अभय निशान बजाय॥

प्यारे दोउ हिलि मिलि झलैं सखी नवल हिंडोर।
सावन सुभग मोहावन राजेत घन गरजत अति शोर॥
दादुर मोर पपीहा बोलत सुनि ललकत मन मोर।
प्रियतम प्राणप्रिया तन हेरत सिय निरखत पिय ओर।
दोउ अंसन भुज धरे परस्पर रति मनमथ चितचोर॥
सीतारमण राम रमणी सिय नेह भरे छवि फूलैं।
ज्ञानाअलि लखि युगल छैल छवि तन मन धन सुधि भूलैं॥

नवल रसिक झूले प्यारी संग लीने।
मनसों मन दृग सों दृग दीने॥
चारुशिला अलि हरषि झुलावे गावें तान नवीने।
बजत मृदंग ताल सारंगी लेत तान स्वर झीने॥
बढ़त उमंग अंग अंग क्षण क्षण पिय प्यारी रंग भीने।
ज्ञानाअलि छवि निरखित ठाढ़ी सो समाज वितकीने॥

झूलत सिया रघुकुल चन्द।
प्रेम भरि अनुराग बाढ़्यो बदत नाना छन्द॥
हास बीचि बिलास उमग्यो शब्द सुखमा कन्द।
पद्मबदनि यह निरखि शोभा देवगण आनन्द॥

झूलत रसिक मणि रघुलाल।
झुण्ड झुंडनि चली भामिनि सोह गती मराल।
देखि झूलत सिया सियबर परी छवि के जाल।
देत झोंका हरषि उर सब निरखि फूलत बाल।
निरखि नयनन परम शोभा पद्मबदनि निहाल॥

आज प्रियतम संग झूलोंगी।
अबकी सखि सावन छवि छावन पिय के हिय फूलोंगी।
नभ घन घमण्ड दामिनि दरसै रिमि झिमि बूंदन बरसै जियरा तरसै
करिहौ सोय तन रसिया रस तूलोंगी।
नव साज समाज सखि सजि कै गृह काज लाज सबही तजिकै मन भावन दावन
कर गहि कै नइ नइ गति खूलोंगी।
सुन्दर सुख सानी सिय बतिया ज्ञानाअलि सुनि हुलसत छतियां मनमोहन जोहन
योग दोऊ गोहन लगि हूलोंगी॥

सावनवां ऐलोरे झलनवा झुलिहौ सजनवां।
सावन ऐलोरे छवि दरशैलो सजनी रिमि झिमि बुन्द बरसै लोरे।
ज्ञानाअलि मुद सरसैलो जिय की जरनि बुझैलो मन भावन सुख मैलो रे।

झुलनवा दीजै थोर धीरे झूलौ झुलनवा।
सिय सुकुमारी वे जनक दुलारी प्यारी तुम रघुबश किशोर।
अधर सुधा रस पीजै पिय प्यारी सुख दीजै लीजै गरवा लगाय पिय शुलनवा मेटे मोर॥
ज्ञानाअलि झूलि झुलावै बहु सदिखन्त्र बजावै कोउ सखि तान सुनावै घन ध्वनि दामिनि शोर॥

आजु रसकेलि मचावोंगी।
इन पिय प्यारे को रस बस करि हिय तपनि बुझावोंगी।
करि नव सप्त शिगार मनोहर अग अंग भूषण सजिकै
गान बजाय लगाय लाल उर सग मचावोगी।
तनु तनु तुम तुम तननननन छुम छुम छुम छुम छुमछननननन
तदियन दिरना तुम तन दिरना गति दरशावोगी।
सुनि सिय बानी सखिन सोहानी हिय हरषानी मन ललचानी।
ज्ञानाअलि यश गाय गाय सिय पिय मन भावोगी।

नटत नटवर नटि नागरिया।
सग सोहै अनोखी नवल बाल गुण गुण रूप उजागरिया।
लखि शरद रैनि छवि छाय रही प्रियतम प्यारी गलबाह गही।
मुख निरखि निरखि हिय हरखि हरखि नृत्यत सखि सागरिया।
मुख मयंक रस पान करै मुसुकान परस्पर प्रान हरै।
जब उघटत सगीत गीत भई रस बस बावरिया।
क्षण क्षण नई नई गति लावे दोउ मिलि गावे स्वरन मिलावै।
ज्ञानाअलि गुण गावे मन भावे पिय प्यारी छवि आगरिया॥

खजन दृगन लेत मन सयनन।
सुख सागर नागर छवि आगर प्रेम विवश कहि कहि मृदु बयनन।
पिय वल्लभा प्राणधन जीवन जा बिनु निशिदिन क्षण पल चयनन।
त्यो चकोर चित चोर वदन शशि पियत सुधा छवि रस भरि नयनन।
जग जीवन जानकी रमण छवि कवि कोविद गावत मति पयनन।
ज्ञानाअलि दोउ छके रूप रस सुख सुखमा अग अग भरि पयनन॥

रसकेलि कलोल अमोल लोल दोउ कनक अजिर नृत्यत रसिया।
अवधेश ललन मिथिलेश लली छवि छैल छबीली मन बसिया॥

सम बयस किशोरी सहचरिया दमकै तन दामिनि द्युति लसिया।
गति गान तान लै सप्त स्वरन उघटत संगीत नइ नइ गंसिया॥
अनुपम मयंक युग मध्य चहूँ दिशि छवि ललना उडूगण दसिया।
ज्ञानाअलि देखत सुख समाज अस को न फंसै यहि रस फंसिया॥

जगजीवन जानकि जान शरद सुखदानी।
बिहरत अशोक बन संग सीय बरदानी।
ज्यों कञ्चनलता तमाल तरुन तरु जानी।
अंसन भुज लपटी बेलि सदा अरुझानी॥
शिर क्रीट चन्द्रिका धरनि मन्द मुसुकानी।
नखशिख भूषण वर बसन निरखि मनमानी।
सुखमा समुद्र सरि उमंगि बही रसखानी।
ज्ञानाअलि पीवत नित तृपा नहिं भानी॥

नृत्यतर सकेलि निधान सखिन संग नीके।
धन जीवन प्राण अधार रसिक जन जी के॥
श्रुति कुण्डल करत कलोल कपोलन पीके।
लखि मुकुट लटक शिर क्रीट अलिन मन बीके॥
अलकावलि अलिमुख कुञ्ज रसिक रस हीके।
रसमत्त भौंह धनु नैन पैन शर ठीके॥
कटि पीताम्बर की कसनि हंगनि संगती के।
लखि लगत कोटि नट नटनि मन्दगति फीके॥
अस नटवर वेष बनाय हरत मन सीके।
ज्ञानाअलि ऐसी कौन करनि त्रय लीके॥

नित नइ नइ केलि कलोल लोल दोउ बन प्रमोद डोले।
रस लम्पट सुखमा सोहन छवि सोहन मन मोहन प्यारी पियगोह मृदु हंसि हंसि बोलै।
चटक चांदनी छटा न थोरी पियमुख शशि सिय रसिक चकोरी अंसन भुजतोलै।
नव सनेह सुख रस की बतिया हाव भाव दृग फेरनि गतिया रसदंतिया खोलै।
ज्ञानाअलि सिय पिय रसिक बिहारी बिहरत शरद रैनि उजियारी सखियन मन मोलै॥

आजु रस रास तैयारी। सुदिन संग सीय सुकुमारी।
मंगल भरि कनक करथारी। कलश कल सुरभिबरबारी।
साजि नव सप्त मनहारी। नवल तन लाल की प्यारी॥
सबै निभिबंश उजियारी। मलोनी मुमुखि छवि भारी॥
यन्त्र तन्त्रादि करतारी। सप्त स्वर सहित लयधारी॥

मूर्छना मुरनि हंसिनारी। निरखि सखि सबै मतवारी।।
ज्ञानाअलि सौज सजि सारी। पिया हित मिलन चलि झारी।।

रसिक रस खानी अब हम जानी।
चितवत ही चित्त चोरि भोरि करि मन मृग गति मद भानी।
मुख सुखमा छवि मदन मोहावन बोलत अमृत बानी।
करि मन मधुप अधर रस पीजै यह मेरे मन मानी।
हाम बिलास राम मण्डल को सुनि मन मुदित जुड़ानी।
ज्ञानाअलि तजि लोक लाज गृह सियवर हाथ बिकानी।।

शरद सुखदानी मेरो छैल गुमानी।
नटवर वेष धरचौ प्यारी संग सकल गुणन की खानी।।
सुन्दर श्याम माधुरी मूरति सिय सुन्दरि पटरानी।
चितवनि हरनि मरनि तन मन धन नहिं राखत कुलकानी।।
उपमा रहित सरस सुखमा छवि देखत मति बौरानी।
बाणी मौन थकित कवि कोविद रूप सुधा मति सानी।।
जुलमी जबर जगत यश जाहिर तिहुँ पुर नाम निशानी।
ज्ञानाअलि जेहि ओर चितै हंसि सो यहि रस लपटानी।।

आयो वसन्त सोहागिनि के हित जाको सोहाग तिहूँ पुर छायो।
और है कौन कहौ जग में जेहि को यश बेद पुराणन गायो।।
सीय सहेलि नवेलि सबै अलबेलि भरी गुण रूप सोहायो।
और कि काह चली सजनी जिन राजकुमारहि नाच नचायो।।
जाकी कटाक्ष बिलास अनोखि पिया चित चोर को चित्त चोरायो।
ज्ञानाअलि मन भावन को गहि आजु सियाजु को भेंट करायो।।

खेलै वसन्त सिया जु पिया संग अंग उमंग महा सुकुमारी।
कोटिन राजकुमार कुमारि दुहूं दिशि भीर भई अति भारी।
केशरि रंग अबीर कुमकुमा धुधि गुलाल छई अंधियारी।
एक सो एक महा रगरी पिचकारिन मारें प्रचारि प्रचारी।
रंग तरंगिनि भावत रंग दुहुँ दल कूल समूल उखारी।
लाज भगी भयमानि अभागिनि गावलहिं गीत रसीली गारी।
भीजि गये पिय के पट पीत सिया जु कि भीजि गई तन सारी।
ज्ञानाअलि सुख सिन्धु परी नहिं सूझ कछूं चहुँ ओर निहारी।।

नवल दोउ खेलत फाग अरे।
रघुनन्दन श्री जनक नन्दनी अंसन बांह धरे।
मन सों मन दृग दृगन लरावत कर सों कर पकरे।
अबिर उड़ावत दोउ मिलि गावत गति स्वर एक करे।
उर लपटावन कर छुटकावत पिय सिय फन्द परे।
ज्ञानाअलि यह युगल माधुरी यकटक तें न टरे॥

प्यारी प्रियतम दृग अलमाने।
उनिदे मनहुँ माझ सरसीरुह रतनारे मदसाने।
क्षण मूंदत क्षण खोलत नैना सखियन रुचि पहिचाने।
सुमन सेज मण्डप सुमनन रचि लखि सिय पिय मनमाने।
अंसन भुजधरि बैठि सेज पर मन्द मन्द मुसुकाने।
ज्ञानाअलि लखि यह दम्पति छवि धन जीवन निज जाने॥

लाड़िलि लाल जगे जग जीवन पिय प्यारी दोऊ छवि जाल।
मनहुँ तमाल तरुन तरु के संग लपटी कनक लता सियबाल॥
छूटी केश अलक अरुझानी बिथरि गई मोतिन मणि माल।
अंसन भुज आलस रसमाते मधुर मधुर बोलत हिय शाल॥
अरस परस मुख चन्द बिलोकत क्या बरणौं चितवति सुख हाल।
ज्ञानाअलि रसिकन जीवन धन अधराधर मधु पियत निहाल॥

पहिरावत पट पीत पिया कटि सियतन गोर श्याम रंग सारी।
अंग अंग भूषण बसन मनोहर सजि कमला बिमलादिक नारी॥
बिछी फरस गद्दी तकिया धरि चौपरि खेलत तन मन वारी॥
भूलि गये दोउ खान पान सुधि याम एक दिन चढ़्यौ पनिहारी।
ज्ञानाअली कलेवा कुञ्जहि चले क्षुधित सखि प्रेम बिचारी॥

युगल चन्द छवि दृगन निहारी।
श्यामा श्याम सिंहासन सुन्दर बैठे सुमन कञ्जकर धारी।
श्याम पीत रंग बसन मनोहर गौर श्याम तन जुल्फैं कारी।
अरुण कञ्ज दृग बाण भौंह धनु चितवनि जुलुम चलनि मतवारी।
विविध हास कोउ गाय मधुर स्वर बजत जन्त्र मृदु नृत्यत नारी।
डेढ़ याम दिन चढ़्यौ कह्यौ अलि रीझि रसिक सिय सजी सवारी॥

चौंसठि आठ सोरहो बत्तिस चारि यूथ सखि न्यारी न्यारी।
चली शिंगार कुञ्ज ज्ञानाअलि युगल नाम जय जयति उचारी॥

आरति सखिन शिंगार सजोरी। पिय प्यारी छवि चन्द चकोरी॥
बैठे सुभग सिंहासन प्रियतम सजल जलद सिय दामिनि कोरी।
बरसत सुधा माधुरी बिहसनि भरि भरि पियत दृगन पुट गोरी।
विविध स्वाद मेवा मन रोचक लिये खडी मणि थार भरोरी।
दाख बदाम छोहारा किस्मिस गरी सरस मिश्री रस बोरी।
पाइ श्याम श्यामा मग शोभित नीकी बनी मनोहर जोरी।
अतर पान दै गाय मधुर स्वर बजहि यन्त्र बहु नृत्य रचोरी।
सुमन माल पहिराय नागरी आरति करि बलि बलि तृण तोरी।
लै आदरस देखावत सहचरि ज्ञानाअलि जय जयति मचोरी॥

प्यारी बीण सुनी पिय कानन।
उठे नवल राजीव विलोचन ज्यो मृग सुनि मृदु तानन।
चले जोहारि सभासद गृह गृह प्रियतम खान प्रियाकर पानन।
करि बरखास सियापुर बनि तन परी चोट घन घोर निशानन।
घतिटका चारि चहूँ युग बीते आइ मिले ज्यो तन प्रिय प्रानन।
बैठे लाल लाडिली के मग घन दामिनि उपमा मद भानन।
कियो निहाल लाल ललनन मिलि विविध हास कोउ करि दृग सानन।
ज्ञानाअलि दम्पति बिलास रस पियतहि बनै मूक कहि जानन॥

रूप माधुरी , गुणकथन, नाम युगल अभिराम।
धाम अवध मिथिला कथा, यह जीवन विश्राम॥

जानकी नौ रत्न माणिक्य

रामसखे विरचित

समान्य परिचय आरम्भ मे श्री मार्कण्डेय सहिता से हरिहर ब्रह्मादि प्रोक्त श्री जानकी जी की स्तुति प्रार्थना है जिसमे प्राय 'रघुवरस्याके सदा संस्थिताम्' श्री जानकी जी का ध्यान है। इसके अनन्तर रामकी दान लीला का वर्णन है। फिर कवितावली है।

डायमण्ड जुबली प्रेस कानपुर से १८९९ मे छपी है। कुल ३७ पृष्ठ है। 'दान लीला के १२ पद है और 'कवितावली' मे २५ कवित्त है।

विषय कृष्णलीला के अनुकरण पर दानलीला का वर्णन है तथा कवितावली मे 'फटिक सिला' पर राम द्वारा सीता का शृगार, सरयू तट पर सीतारमण का कुञ्ज बिहार, ध्यान के पद, रास विलास, धाम, रूप, लीला और नाम की उपासना का सविशेष हृदयहारी मनोमुग्धकारी वर्णन है।

उदाहरण—

आवत पालि ग्राम तै, नन्दन कुँवरि नवीन।
अवधि लाल दधि दान को, रोकिव रसिक प्रवीन॥
बन प्रमोद की गैल बिच, करिये धनुष निवारि।
रोकन की मम युक्त यह, लहु सब सखा विचारि॥
करि धनुईयन वारि अब, बैठे सुर तरु की छाह।
राम सखे दीजै धरम, दै सुख की गलिबाह॥
सुनौ ललन हौ डगर वह, रोकी कैसे आजु।
रघुपति के नर्म सखा, तुम कहियो होइ सुकाज॥
पानन को रघुनाथ को, दयो नृपति यह देस।
याते सब मग कर लगत पुनि या बिपिन विशेस॥
तुम दधि लै आई सखी, लगिहै अब कछु दान।
बैठे हैं रघुवंश मणि, करिये जाय सनमान॥

बिपिन प्रमोद सों बोरि महा ह्वै आवो दही लै बडी अलबेली।
मानत ना डर काहू को नेकहू पाई अचानक आजु अकेली॥
दीजौ हमैं करि नेग तुहैं भावतो चित्त की चोर हौ रूप नवेली।
बात हमारी सुनौ सब कान दै हौ तुम तौ दय जोग सहेली॥

ग्वालिन जोगन तुम त्रिया, तुम रूप जोग उदार।
हमरी जानि जबात सुनि, को हम करौ विचार॥

जानत है तस्कारी पतिनी हम आदि अनादि की काहे को खीजिये।
सुन्दर श्री रघुनाथ जू लाडिले बानिनि की चतुराई न कीजिये॥
तन धन प्राण सबै आगे पिय चाहिये जो कर मे अब लीजिये।
बन प्रमोद की कुञ्जन मे चलि राम सखे रस भावतो पीजिये॥

तुम्हरी मृदु मुसक्यानि मे, हम तो गई बिकाइ।
राम सखे अब बिलगिये, बन प्रमोद सुख पाइ॥

घूम घुमारो गुलाब को बाघरो पीत चमेली की ओढनी झीनी।
कञ्जकी लाल कसै कल कंचुकी नील जुही की सजा पुजु दीनी॥
चम्पे को हार कनेर की चन्द्रिका देखि कै चित्त भई रति हीनी॥
फटक शिला पै राम सखे पिय फूल सिंगार सिया छवि कीनी॥

अवध की सहेली अलबेली नवेली आजु ढूढि ढूढि ढूढै फिर तरु तरु पतान मैं।
व्याकुल बिरह अग बूडी राम स्याम रग मातल अनग सिरमौर बल बतान मैं॥

सरयू के तीर निरखि बैठे रघुवीर भेटे बन कुटीर कुञ्ज कुसुम छतान मैं।
छूटे सिर बार भार राम गये बार बार हरिहरि पुकारती हरी हरी लतान मैं।।
अवध के बिहारी अवतारी अब तान को राम सखे प्यारो दशरथ कुमार है।
सरयू को बासी निवासी ललित कुञ्जन को काछनी को काछे बनमाली सुकुमार है।
सीता रमण सुख भवन धनुष धारी गविन मध्य नटवर सिगार है;
राम का विलासी अविनासी ईग ईगन को कामदा को नाथ सो अनाथ निराधार है।
गो लोक लीला चित्रकूट मे बिराजति सब मध्य जामै प्रमोद बाटिका सुहात है।
बिकटाद्रि गोवर्द्धन सरयू नदी आदि उहाकी सुखमा जेती इहाँ झलकात है।
रामसखे सूझत न महा सठ अज्ञन को जिनकी मति नित कुसगनि मे बिकाति है।
नृत्य चरण अकित भूमि नृत्य राघव जू की मन्दाकिनी तीर तहाँ प्रगट दिखात है।।
मानो बिषै कटक काटि पटकि महीतल नृपति बैराग जीति बिजै हर्षात है।
नटक मयूर कीर कोकिला रटक गान वेली सो बितान तार धुजा फहरात है।
लटकि लटकि लता प्रतिबिम्ब जौ हटकी जल उज्ज्वल लहै धाइसी सुहाति है।
राम सखे घट की स्याम प्रेम चटकी होत देखै फटक शिला भटक मिटि जाति है।।

रामसखे

कृत पदावली

खेमराज श्रीकृष्णदास ने निज वेकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई मे सवत् १९७९ मे मुद्रित कर प्रकाशित कराया। इसमे कुल मिलाकर राम सखे जी के १७५ पदों का सग्रह है, कुल पृष्ठ ५२ हैं। इस संग्रह मे भगवान् राम और भगवती सीता की रसमयी लीलाओ का बडा ही भव्य ध्यान है। भाषा साफ सुथरी है और कही-कही उर्दू-फारसी के शब्दो की भरमार है। इस शाखा के उपासको मे सूफी प्रभाव स्पष्ट है क्योंकि अनेक स्थलो पर सूफी शब्दावली मिलती है। इतना ही नही भाव व्यंजना भी लगभग वैसी ही है। इश्क मजाजी की मासलता और हकीकी की सूक्ष्मता का एक साथ दर्शन होता है। कुछ पदो मे 'पछाही' प्रभाव स्पष्ट है तथा कही-कही मारवाड़ी मिश्रित पञ्जाबी का भी पुट है। लगता है श्रीराम सखे जी बहुश्रुत और बहुज्ञ थे और देश का पर्यटन भी किया था जिससे उन उन स्थानों के प्रभाव उनकी भाषा पर सहज रूप मे परिलक्षित है।

भावना की दृष्टि से यह स्वीकार करना पड़ेगा कि श्री रामसखे जी की सम्बन्ध-भावना सखी भाव की है और बहुत दृढ एव पुष्ट है। राम और सीता के विभिन्न अवसरो के रूप और लीला रस का आस्वादन इनके पदो मे खूब छक कर किया जा सकता है।

उदाहरण—

राघव भोरही जागे नीद भरी अखियन मन भावन।
बैठे उठि फूलन शय्या पर कोटिन काम लजावन।।

मृदु मुसक्यात जम्हात सिया तन झुकि झुकी परत सुहावन।
रामसखे या मधुर रूप लख मो जिय अतिहि जिवावन॥

आली मेरी आँखिन लागि गयौ है।
सुन्दर राजकुमार चितै कछु चेटक डारि दयौ है॥
चलि न सकति डग मगत भूमि पगतन मन विवश भयौ है।
रामसखे उर अवध सांवरो निशिदिन रहत छयौ है॥

नैन में आनि समान्यो मेरे अवध पियारो।
मृदु मुसक्याय छोड़ि जुलफैं मुख चेटक सो पढि डारो॥
कहा करौं कित जांउ सखी री चित ते टरत न टारो।
रामसखे घर लगत दुखद अब भयौ मन छवि मतवारो॥

चुनरी रंगना भिजावो मैं तोरी लैहों बलैयाँ।
वरज्यो मानि अवधेश लाड़िले बार बार परौ पैयाँ॥
कोमल कर जु मुरकि जैहै देखो जिन पकरो मोरी बहियाँ।
रामसखे पिय जान देहु अब खीझै सासु घर महियाँ॥

अहो पिय राम पकरि सिय लीन्हो कटि पट सखियन छीनो।
होरी समै रास मण्डल मे मन भायो सो कीनो॥
मुख सों मसलि गुलाल मैथिली अखियन अंजन दीनो।
रामसखे लखि अवधलाल प्रभु प्यारी के रंग भीनो॥

प्यारे संग होरी खेलत प्यारी।
वन प्रमोद राम मण्डल में रंग मच्यो अतिभारी॥
डारै सिया गुलाल पिया पर पिय छोड़े पिचकारी।
रामसखे लखि यह छवि ऊपर प्राणन ते बलिहारी॥

सिय के सपने की पिय बात चलाई।
नेह भरे नम सखन सुनावत तिय तिमि दीन्ह दिखाई॥
तोरित तन कर कमल फिरावत सेज निकट चलि आई॥
ओढ़े नील झीन सारी शिर काम घटा जनु छाई॥
लम्बे केश छुटे एंड़िन लौ रस वश लेज जम्हाई॥
बीरी बिहंसि दई मो आनन मिलि हिय तपनि बुझाई॥
अति सुकुमारि फूलते कोमल मुख विधु निंदित लुनाई॥
झलक तिलक जावक सी सीज्यौ पान पीक गल जाई॥

कोटि कोटि छवि सिन्धु वारिये जा परत्याई।।
चम्प कला चपलाते अद्भुत नैनन रही रमाई।।
कैसे मिलै प्रसिद्धि प्रिया वह करौ सो जतन बनाई।।
रामसखे कहि कहि हे सीते सुधि बुधि सब बिसराई।।

रामा मो पै मोहनी डारी डगभरित लोन जाई।।
बन प्रमोद की कुञ्ज गलिन मे मोनन मृदु मुसक्याई।।
तलफत नैन रूप मद प्यासे भये जुड़वत मुरझाई।
रामसखे पिय उधर मिलोगी लोक लाज बिलगाई।।

दशरथ जू के श्याम गलोने मुखड़ा टुक दिखाउ रे।
बिन देखे छिन कल न परत है अंखियां रूप पियाउ रे।।
छाड़ि रोष पिय भेटि अंक भरि तन की तपनि बुझाउ रे।
रामसखे सुनि प्राण पियारे जियरा नहि तरसाउ रे।।

ये दोउ चन्द बसो उर मेरे।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दिनी अरुन कमल कर कमलन फेरे।
चन्द्रवती शिर चमर ढुरावति आसपास ललना गन घेरे।।
बैठे मधन कुञ्ज सरयू तट चन्द्रकला तन हंस हंस हेरे।
ललित भुजा दिये अंश परसपर झुक रहे केस कपोलन नेरे।
रामसखे छवि कहि न परति तव पान पीक मुख झुक झुकि गेरे।।

मिलि जावो रामा पियारे।
बन प्रमोद में खड़ी पुकारौ सुनिये रूप उज्यारे।।
सुदर श्याम कमल दल लोचन मो आंखिन के तारे।।
रामसखे जल बिनु मछरी ज्यों तलफत प्राण हमारे।।

अब दशरथ जू कौ लाल होहली मन मेरो छलि ले गयौ।।
मृदु मुसक्याइ छकाइ कै हेली अंखियन मे छवि छै गयौ।।
टूट गेद मिसि कंचुकी हेली अंखियन में छवि छै गयौ।।
महा सुघर नृप सांवरो करि हेली छल झगर मू ले गयौ।।
अधर सुधारस सिन्धु मे हेली बरबश चित्त डुबै गयौ।।
मोती युत शुक नासिका हेली अरु जिय चिबुक चुभै गयौ।।
उलिगन पान खवाइ के हेली चेरी चारु बनै गयौ।।
पीताम्बर के छोर सों हेली मुख मां हांकि रिझै गयौ।।

जुलफन प्राण फंदाय कै हेली दृग शर कठिन गडै गयौ ।।
उर नख छत धनु छाइ ज्यों हेली निज अपनी यश कै गयौ ।।
तब तें कछु भावत नहिं हेली विरह विथा तनु कै गयौ ।।
विकल करी रिपु समर ने हेली हरद वदन वपु ह्वै गयौ ।।
अवध कुँवर की माधुरी हेली कौन देख रसि रै गयौ ।।
कल न परत छिन बिनु मिलै हेली पलक पलक कल्प वितै गयौ ।।
वरिहों अवध पिय उधर कै हेली कुल डर सकल भगै गयौ ।।
रामसखे हिय माँह री हेली लगन बीज हठ बै गयौ ।।

फटिक शिला मंदाकिनि तीरं। विहरत दम्पति रघुपति गीरं।
विरचित पुष्पं सुभग समीरं। गुजत मधुप निकर मधु भीरं।
नील वारिधर सुखद शरीरं। कुसुम समूह विविध मणि गीरं।
जनक सुता छवि निधि गंभीरं। तड़ित वरण राजित सुख सीर।
सुमन विभूषण पद मंजीरं। चन्द्रकला सखि गान सुधीरं।
निवसत माल कुञ्ज तट नीरं। लता वितान ग्रथित घन थीरं।
सहचरि जटित रतन मणि हीरं। गावत नटत हरत मन पीरं।
सुमन पराग गुलाल अवीरं। नृत्य मयूर नाद पिक कीरं।
निवसत षट पद कंज निधि छीरं। विलसत ऋतु पति विरह अधीरं।
जनु रति पति धरि तनु रणधीरं। विश्व विजय हित कसि तूणीरं।
यह छवि घन करि गोप्य अनीरं। रामसखे मन परम कुटीरं।

मिल जेंवत पीतम संग सिया दोउ मंगल मोद बढ़ावे हो।
कोर परसपर देत चन्द्र मुख मन्द मन्द मुसक्यावे हो।
भोजन विविध परोसत विमला कमला विजन डुलावे हो।।
शोभा सिन्धु कही न परै कछु माधुरि कुञ्ज सुहावे हो।।
चन्द्रकला सखि झारि लिये कर सरयू जल अंचवावै हो।
रामसखे प्रभु थोर प्रसाद रह्यौ अवशेष सुपावै हो।।

अचमन करत राम पिय प्यारी।
श्यामा पान लिये कर ठाढ़ी रामा लिये जल झारी।
चन्द्रवती खर्का दर्पण लिये चन्द्रकला सुकुमारी।
सुभगा लिये वागौ पीतम कौ सहचरि लिये सिय सारी।
करि अचमन बैठे सुख आसन सकल जनन सुखकारी।।
रामसखे बलि बल दम्पति छवि सुन्दर बदन निहारी।।

नृत्य राघव मिलन

श्रीराम सखेजी

नृत्य राघव मिलन दोहे, चौपाई, कवित्त मे सवत् १८०४ चैत्र शुक्ल तृतीया को लिखा गया जैसा ग्रन्थ के अन्त मे स्वयं ग्रन्थकार ने लिखा है—

सवत् अष्टादश चतुर शुक्ल मधुर मधु तीज।
भयो नृत्य राघव मिलन उद्भव सब रस बीज॥

इसमे कुल मिलाकर १५० दोहे और १४६ चौपाई तथा २० कवित्त है। इसके दो सस्करण प्राप्त है। प्रथम सस्करण की द्वितीयावृत्ति लखनऊ के मुशी नवलकिशोर के छापेखाने मे दिसम्बर सन् १८९६ मे हुई और एक और सस्करण बम्बई के छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने अप्रैल १८९७ मे लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस मे छपवाकर प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ मे लीला रस की अपेक्षा सिद्धान्त सम्बन्धी मुख्य तत्वो का सन्निवेश ही विशेष रूप से हुआ है। इसमे भक्ति का स्वरूप, शरणागत धर्म, नाम, रूप, गुण, प्रभाव, धाम, परत्व, अवध, प्रमोदवन, माधुर्य लीला, रामावरण, अवधावरण, जीव-ईश्वर सम्बन्ध निरूपण, नर्म सखाओ के रहस्य, रसिक साधको के लक्षण, रसिकों की अनन्य रीति आदि गम्भीर विषयों का वर्णन बडी ही सरल, सरस एव सजीली भाषा मे मिलता है।

कुल मिलाकर यह ग्रन्थ राम रसिकोपासना के सिद्धान्त ग्रन्थों मे ही मुख्य रूप से लिया जा सकता है। इतस्तत लीला के और रूप लालसा मिलनमाधुरी, युगल नृत्य तथा सखाओ सखियो द्वारा शृगार विधान के पद भी मिलते है परन्तु है बहुत कम। विशेषत दिव्य प्रमोद बन, दिव्य अवध, के आवरणो का वर्णन है। भाषा बडी ही सरल निरलकार और साफ है। अर्थ और भाव तक पहुँचने मे पाठक को कही कठिनाई नही होती।

उदाहरण

प्रात समय सिया लाल पुष्प रचित शय्या पे जागे रग महल मे उनीदे अलसात है।
लट पटे पाग पेच अटपटे बैन मृदु उज्ज्वल रस भाव भरे मृदु मुसक्यात है॥
भूषन बसन शिथिल मर्गजी माल धरे उरझे उरहार कच बिथुरे सुहात है।
ढीले अग आलिगण दिये भुजा अशन औ मदन मद छाके नैन झूमत जम्हात है॥

तामधि एक सिंहासन सोहै।
रचित विविध मणि अति मन मोहै।
तापर महा पद्म इक राजै।
दल सहस्र मोतिन मय झाजै।
तापर राजत सिया रघुनन्दन।
अत्सि पुष्प चम्पक मद गंजन।

सिया करैं सोरह शृंगारा। चोरन चित अवधेश कुमारा।
मांग सिन्दूर तेल रचि बेनी। चन्दन खौरि महा सुख देनी॥
पान खाति बोलति मृदु बैना। दमकत दशन हरत प्रभु बैना॥
भूषण जे हिमि रतन जड़ाये। चन्द्रिकादि अंग अंग मन भाये।
मणि मानिक जे पट मैं पोहै। कञ्चन बिनु अंगन अति सोहै॥

कसन किंचुकी घाघरौ इनहिं आदि कछु आनि।
बसन चूंदरी श्याम रंग राम सखे छवि खानि॥

कुञ्चन कवल फूल ऊपर अवध जाके,
शहर महल लौने अमित उदार है।
अद्भुत स्वरूप जाके कर्णिका सिंगार चित्र,
अगर सुगन्ध रंग पाँचौ जग पार है॥
रचित उज्ज्वल वितान बूद लीला रस सार है।
रामसखे मकरन्द भरे भंवर विहारवै करैं
सीताराम सेवा दोऊ निर्विकार है॥
राम को रूप अनूप समुद्र में,
आगरि नाव निवाह नहीं है।
आखिन्ह देखि जु जाति वही सब,
डूबि अथाहन थाह मही है।
फेरि फिरै न फिरावन हार को,
फेरे रहै सो उठाऊ वोही है।
रामसखे मति चाय करौ,
चित्त चुंबक लोह की लीक सही है॥

काम कृपान खुली अलकैं मुख शायक से दृग भौंह कमानैं।
चोट लगै न बचै रण भूतल बीर मुनीस बली भट जानैं॥
गोल कपोलन्ह बीच परै मन घायल माते मनोरथ सानैं।
राममखे मुसक्यान मरोरनि नासिका मोति की पीर निदानैं॥

संगम दिव्य कलोल कलोलन्हि भावती बिलसैं बिलसावैं।
शोभा तरंग बढ़ै सब के मन चाव चढ़ै रिझवार रिझावैं॥
होहि कुतूहल कोशल वीथिन्ह कोमल कोटि सुमेर नवावैं।
रामसखे भीजे रंग बंदन श्री राजा दशरथ लाल भिजावैं॥

सौरभ मौर पराग समीर सों चूर पिये मकरंद भरे से।
नील हरे पियरे सितरंग मैं अंग सुरंग रंगे सुघरे से।।
बोलत बोर झलाझल ओप पै ओपत चोप पै चोप धरे से।
रामसखे रति मौन कि पौरन्हि आय खरे पधरे मधुरे से।।

चन्द्रमा भौन जहाँ परियंक पै सैन निकुञ्ज त्रिखण्ड के ऊपर।
दंपति जानकि राम तहाँ नर्म नीन्द भरे दृग जाइ बधू बर।।
सोवे समेत सुतन्त्र समाज ते मंजरी सबै समान भरी उर।
सेवा विधान श्रीराम सखे करैं प्रीतम राम तिया तन ह्वै कर।।

सुरभि नीर सुरभित सुमन सुरभि भोग ताम्बूल।
रामसखे सेवै युगल मैन कुञ्ज दिन तूल।।
विविध केलि बचनादि सब सबविधि पूजि रिझवारि।
रामसखे नीराजहि सभा भवन पगधारि।।

लगत राम प्रिय प्रान तै तजि न सकति उर त्याइ।
तिय स्वाधीन जुभर्तृका धोवत हरि तेहि पाई।।
कुञ्ज कुञ्ज प्रति राम को ढूढति सरयू तीर।
नारी यह अभिसारिका धरति न नेकहु धीर।।

नित्य रास मण्डल रघुनाथा। सकल त्रियन को करत सनाथा।
तोषत सवन जासु तस भावा। कृपावन्त रघुनाथ सुभावा।
कहुँ नर्म सखन राम सिंगारै। पुनि निज नयनन रूप निहारै।
कहुँ अपनौ सिंगार करावै। राम कान्ति नर्म सखन दिखावै।
इन्है जु आदि ख्याल बहु खेलै। नितहि राम रघुबंसिन भेलै।
यह वर ध्यान ताहि उर लागै। सो सब मत तोई लौ त्यागै।

रसिक लक्षण--

चित्त सन्तोष महा धन लीने। रघुबर की लीलन्ह अति भीने।।
रसिक अनन्य न सो मिलि लोभ। उनके पगन धोई मन छोभै।।
जानि नात निज बारहि बारा। राम समान करै उपचारा।।
सखा सखी द्वै भाव जु राखै। मधुर चरित राम के भाखै।।
विधि निषेध सब कर्म जु त्यागै। रहत सदा रघुपति छवि पागै।।
पूजै नहीं पितर बहु देवा। रामहि की भावै जिय सेवा।।
राखै एक राम विस्वासा। करै न त्रिभुवन दूसरि आसा।।

राम कुटंब कुटंब निज जानै। सपने जग नातौ नहिं ठानै॥
सीतापति कृत जग सब देखै। योते सब जिय सम करि लेखै॥
त्रिजग योजि आदिक जीवन गन। देहि न दुख काहू बच क्रम मन॥
आये हरष गये नहिं शोका। तृण मान देखै ब्रह्मलोका॥
नृप अरु रंक होई किन कोई। रसिक बिना वे त्यागै दोई॥
रसिकन के नित भोजन पावै। रसिकन बिनु भिक्षा चित ल्यावै॥
राखै इक हिम अर्थ गुदरी। जनु बिराग की त्रिया सुन्दरी॥
तुलसी की धारहि गल माला। भक्ति स्वरूपानन्य मराला॥
देहि तिलक निर्मातल चन्दन। हरदी बिन्दु पीत जग बन्दन॥
भृकुटी सन्त सीस पर जन्ता। करै मिही रेखन छविवन्ता॥
बोरि हर्दिका मै धनुशायक। धरे भुजन छापै रघुनायक॥
एक सूत बस्तर रंग पीरा। राखै तन बानौ रघुबीरा॥
राम मन्त्र षड अक्षर काना। करै यही उपदेश प्रधाना॥

दयावान बानी मधुर, त्यागी सहित बिबेक।
लीन्हे निज चैतन्य चित, राम रास व्रत एक॥

कटि कोपीन कमण्डल धारी। बन प्रमोद कल कुञ्जन चारी॥
भनै नृत्य राघव जे बानी। रास रसिकता हिय उफनानी॥
राम रास ग्रन्थन मन ल्याई। सुनै सुनावै प्रेम बढ़ाई॥
मन क्रम वचन राम को ध्याना। करै सु निस दिन परम सुजाना॥
बचन रास के पद उच्चारै। मन करि रास धारना धारै॥
तनकरि रास सिंगार बनावै। लखि सिय राम रूप बलिजावै॥

संवत् अष्टादश चतुर, शुक्ल मधुर मधु तीज।
भयो नृत्य राघव मिलन, उद्भव सब रस बीज॥

ज्ञान दरश वैराग्य रवि, भक्ति नजर जब होइ।
रामसखे रघुपति मिलह, तब निज जिय सुख होइ॥

रसिक अनन्य वहै सुख सानी। राम रूप बिनु लखहि न आनी॥
छवि आसक्ति रहहिं मन माही। क्षण पल राघव बिछुरत नाहीं॥
हेरि क्वऊ सुन्दर नर नारी। राम बियोग करहिं अति भारी॥
वेष नृपति छैलन अमवारी। आवत राम ध्यान छवि भारी॥

सुनि कोकिल कर कूक, मृदु नटनि मयूर निहारि।
रामसखे मन करत झष, मिलन राम छवि बारि॥

अरुण पीत रंग लखि छविकारी। मोहहिं कलि सुधि अवध बिहारी॥
कहुँ विलोकि नग जटित नूपुरन। अवधबालकर रूप चुभत मन॥
सिन्धु सुगन्धि राग सुनि काना। लावत नयनन राम सुजाना॥
लखि श्रावण घन तड़ित शरद शशि। रह रघुनन्दन विरह चित गशि॥
देखि कुसुम वसन्त ऋतु शोभा। छावत राम प्रेम उर गोभा॥
रसिक अनन्यन कर यह रीती। तेहि उर लगहि ऐनि अति प्रीती॥
सो सुर पूज्य योनि कोऊ जिय। पाइय जासु जूठ तृप्ति हिय॥
ताकर जूठिन कर जु प्रतापा। करहिं मुक्ति जिय बिनु तप जापा॥

रसिकन कर जूठन प्रबल, आप करी रघुनाथ।
शबरी के फल जूठ भषि, त्यागि मुनिन कर साथ॥

अद्भुत रत्न पुलिन सरयू तट। झरत तहाँ द्युति सुधा सोम बट॥
नटत राम तहा नित्य बिहारी। लीन्हे संग सिया सुकुमारी॥
कोटिन सखी सखा नृप घेरे। लिये यन्त्र गावहिं प्रभु नेरे॥
रत्नागिरि तहँ करत उज्यारी। कोटि चन्द्र द्युति तापर वारी॥
हरित पीत सित श्याम सुरंगा। फूले लतन फूल बहु रंगा॥
चम्पक बकुल कदम्ब अशोका। मोहत लगत माधुरी वोका॥
तिन महँ सिया मान अति करही। राम मनाइ अंक पुनि धरहि॥

हरिचन्दन सन्तान बहु, पारिजात मन्दार।
रामसखे इन तरुन की, कुञ्जै लसति अपार॥

अन्तर ध्यान होहिं क्षण मे हरि। ढूंढि लैहिं सिय तबहिं प्रेमकरि॥
अन्तर ध्यान रास महँ प्यारो। लहहिं सखी सु भक्ति करि चारो॥
वहि रंगा अति रंगा प्रेमा। पराभक्ति रसिकन सुख क्षेमा॥
कबहुँ सखी पूजहिं मन लाई। राम वेष सखि कोउ बनाई॥
क्रीट शीश धनुही कर धारहि। तन मन प्राण निरखि छवि वारहिं॥
चमर छत्र व्यजनादिक ढोरहिं। करि प्रणाम हाथन पुनि जोरहिं॥
वहिरंगा यह भक्ति दिखाई। अतिरंगा अब कहत बुझाई॥
कबहूँ सखी ध्यान अति ठानहिं। नयनन मूदि राम हिय आनहिं॥
अतिरंगा यह भक्ति बखानी। प्रेमा और भनत रस सानी॥
कबहुँ सखी ढूंढति मिलि पुञ्जन। शरद रैनि सरयू कर कुञ्जन॥

बूड़ी राम वियोग हृद, ढूढति व्याकुल अंग।
रामसखे छवि बावरी, बेधी शरन अनंग॥

कबहुँ फूल शय्यन सब हेरहिं। कहि कहि राम पिपासुख टेरहिं॥
कहुँ गहि गहि बूझहिं व्यागन सन। राम वियोग नहीं सुधि बुधि तन॥
डसहिन व्याल रामतिय जानी। झूमति फिरहिं प्रेम रस सानी॥
कोऊ अति बिकल प्रेम बश नारी। बोली अस मैं राम बिहारी॥
मैं नृप के मणि आंगन चारी। मैं भुशुंडि संग भुजा पसारी॥
मैं कठोर शंकर धनु तोरी। मैं सिय संग कीन्ही गठजोरी॥
मैं रघुपति प्रमोद वन वासी। मैं नटवर वर राम बिलासी॥
प्रेमाभक्ति ललित यह गाई। पराभक्ति सुनियें सुखदाई॥
कोउ तिय कहहिं मिलत सुनि गाना। सब मिलि गाइय राम सुजाना॥
तब सब मिलि सरयू तट गावा। करि करि नृत्य रूप दृग छावा॥
रघुनन्दन तब तत्क्षण आये। युवती सकल प्राण से पाये॥
लिये ललित धनुही कर तीरा। जनु अद्भुत कोउ काम शरीरा॥
राम धनुप माधुर्य अपारा। देखि काम निज धनुप बिसारा॥
रतन कीट घूघुर युत अलके। पान खात लखि लगत न पलके॥
कोउ सजनी आसन करि गारी। बैठारत पिय अवध बिहारी॥
कोउ तिय कहि अस भौंहन तानहिं। हम तुम्हरी गुमराई जानहि॥
सिया करहिं सोरह शृंगारा। रोचन चित अवधेश कुमारा॥
मग सिन्दूर तैल रचित बेनी। चन्दन खौर महा सुख देनी॥
पान खाति बोलति मृदु बयननि। दमकत दशन हरति प्रभु नयननि॥
भूषण जे हिम रतन जड़ाये। चन्द्रिकादि अंग अंग मन भाये॥
मणि माणिक जो पटमहँ पोहे। कञ्चन बिनु अंगनि अति सोहे॥

कमनि कंचुकी घांघरो, इन्हें आदि कछु आनि।
बसन चूंदरी श्याम रंग, राम सखे छवि खानि॥

फूलमाल मोतिन के गजरा। बलया करण लसत दृग कजरा॥
मुख उर अतर गुलाब लगाये। गुंजत भ्रमर सुरभि अति पाये॥
मेंहदी हाथ पगन मा हौरी। देखि देखि भई रति अतिबोरी॥
यह सिय छवि कछु बरणि न जाई। तापर प्रभु नित रहत लुभाई॥
सोरहु करहिं शृंगार श्याम घन। मोहन हित अति सिय दामिनि मन॥
जुल्फन तैल खौर सिर चन्दन। मुकुटादिक भूषण दृग अंजन॥
बीरा मुख मणि माणिक हारा। चुपरै अंग सुगन्धि उदारा॥
फूल गूंथि अंग अंगन पहरें। मोतिन माल उठत छवि लहरें॥
कछनी कसन इजार सुरंगा। बसन पीत पट ओढन अंगा॥

अरुण हरित रंग धनुकर सोहहिं। स्वर्ण पंख विचित्र शर मोहहिं॥
भनेहुँ महा बैकुण्ठ सवन पर। तापर गोपुर मध्य अवध बर॥
अवध अवध की अवधि जो बरणी। लबधि प्रेम करि ताकर धरणी॥
तहँ सरयू मणि घाटन छाई। कहि न जात अद्भुत रुचि राई॥
फूले जल थल कमल अनन्ता। बन प्रमोद नित रहत वसन्ता॥
गुजत भ्रमर कोकिला बोलत। नटत मयूर काम जनु खोलत॥
बिनु देखे यह राज लुनाई। पल पल कलप समान विहाई॥
जब लगि तुम विहरहु खेटक बन। तब लगि हम अति विकल रहहिं मन॥
क्षण क्षण लखहिं झरोखन जाई। सन्ध्या की आवनि सुखदाई॥

नयननि ते नहिं होहु तुम, न्यारो क्षण पर लाल।
रामसखे यह बीती, करहिं सकल मृदु बाल॥

नटहि राम अरु सिया परस्पर। मोर हंस गति लेत गतिनबर॥
सोहत राम सखिन मधि प्यारे। मनहुँ तड़ित अग बिच घन तारे॥
बीण मृदग मुरलिका आदिक। वाजन सखिन बजावहिं स्वादिक॥
गये राम पुनि मोर सुहायो। प्रथम भोग मधुपर्क लगायो॥
पुनि सखियन अस्नान करावा। गोदन ले शृंगार बनावा॥
कोउ कर धूप दीप कोउ रचही। कोउ हिमथार भोग मृदु सचही॥
कोउ सरयू जल कर अंचवावन। कोउ ताम्बूल देहिं शशि आनन॥
कोउ आरती करहिं अति प्रेमा। लखि प्रभु रूप मनावहिं क्षेमा॥
पिय सन्मुख ह्वै बांधति निव्या। मिलन हेतु नवबधू सइव्या॥
एक रीति आठहु पटरानी। मिलन चहति प्रभु सौ रति मानी॥
अटकै तहँ घटिका ह्वै चारी। नारि सबै समप्रेम निहारी॥
जाइय अस समझी यह बाता। लखहि न कोउ काहू पहँ जाता॥

नर्म सखा

जे रघुकुल नृप सखा कहावहिं। नृप चरित्र तिनके मनभावहिं॥
रासादिक मृगयादिक रंगा। रहहिं सदा दोउन के संगा॥
राम तुल्य ऐश्वर्य राज सुख। यद्यपि जियत विलोकि राम मुख॥
कहुँ सजि कै गज पर चढ़ि हर्षहिं। प्रभु की गोद बइठि रस वर्षहिं॥
कहूँ मानिनी तियन मनावहि। करि बसीठि प्रभु कहुँ जु मिलावहिं॥
कहुँ रति दान तियन प्रभु देहीं। कहुँ व्यजनादिक टहल जु लेहीं॥
जानि नात निज बारहिं बारा। राम समान करहिं उपचारा॥
सखा सखी ह्वै भाव ज राखहिं। मधर चरित्र राम करि भाषहिं॥

विधि निषेध सब कर्मजु त्यागे। रहत सदा रघुपति छवि पागे॥
कहुँ आपुहि रति पति रति पोषहि। धरि तियन तन अति प्रभु कहँ तोषहि॥
कहुँ नि तियन आपुरस बोरत। राम ठानि प्रभु जो चित चोरत॥
कहुँ रघुपति मग करि गलबाही। नृत्यत रग महल के माही॥
सिय जो करति केलि प्रभु के मग। चुम्बन मिलन आदि जेते रग॥
प्रभु अरु आपु परस्पर रूपा। पिये नित्य डूबे रस कूपा॥
यह सुख कहँ जो प्रापति होई। अस जग जन कोटिन महँ कोई॥
वैष्णव धर्म जन्म बहु करई। तब यह मारग कहँ अनुसरई॥
तुलसी कर धारहि गल माला। भक्ति स्वरूपानन्य मराला॥
देहि तिलक निरमायल चन्दन। हरदी विन्दु पीत जगबन्दन॥
भृकुटी अन्त शीश पर्यन्ता॥ करहि मिही रेखन छवि वन्ता॥

दयाबान बाणी मधुर त्यागी सहित विवेक।
लीन्हे निज चैतन्य चित राम राम ब्रत एक॥

सुत दारा धन राज्य सुख मगन जगत जिय मन्द।
राम रास लखि रसिक जन लहत परम आनन्द॥

राघव सग इक सेज रमन नृप सखा प्रिये अति।
तहँ देखत मृदु रूप बढति रघुनाथ मिलन रति॥

बन प्रमोद रस राम छके रस छन्दन सिर्जत॥
जिय ईश्वर निज रूप पाय नित बदत द्वैतमत॥

प्रभु ह्वै अदृष्ट जल कूप तिनके हित प्रकटे निकट।
सब रसिक मुकुट हरितन अघट राम सखे रघुकुल प्रकट॥

अरे दिवाना कहा न माना झूठ भुलाना है पछिताना।
बिरादराना मोहब्बत ताना गोपुर जाना नही समाना॥
राम न जाना भजि शैताना फिरि आना पार न पाना।
प्रेम लुभाना जो कछु जाना नही ठिकाना बे भगवाना॥

श्री सीतायन

श्री रामप्रियाशरण प्रेमकली

स्वामी रामप्रियाशरणजी 'प्रेमकली' का लिखा 'सीतायन' ग्रन्थ के दो काण्ड मिलते है। बालकाण्ड और मधुर माल काण्ड। पहला काण्ड सितम्बर १८९७ मे और दूसरा काण्ड अक्तूबर मे श्री छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बईवाले ने लखनऊ प्रिंटिग प्रेस मे छपाकर प्रकाशित किया।

बालकाण्ड मे सीता-उर्मिला श्रुतिकीर्ति माण्डवी के जन्म का वर्णन है तथा दैसवज्ञों द्वारा इनके आदि शक्ति जगज्जननी रूप का तत्त्व-विवेचन है। इसमे नित्य युगल रूप का बड़ा ही भव्य एव मनोहारी वर्णन है साथ ही श्रीराम और सीता का वास्तविक एव तात्त्विक स्वरूप का ध्यान है। दिव्यधाम, अयोध्या तथा उसमे कनक भवन का रहस्यमय नित्य रूप का ध्यान है और नारद द्वारा जनक को इनके प्रति सबध में भविष्यवाणियाँ है।

रहस्य प्रमोदवन श्री जानकी घाट अयोध्या मे 'सीतायन' की हस्तलिखित प्रति प्राप्त है जिसमे—बालकाण्ड, मधुर काण्ड, जयमाल काण्ड, रसमाल काण्ड, सुखमाल काण्ड, रसाल काण्ड और चन्द्रिका काण्ड—ये सात काण्ड हैं और क्रमश प्रत्येक काण्ड मे ४१, ३९, १२०, ५५, ३०-२८, ४—इस प्रकार कुल मिलाकर ३१७ पन्ने या ६३४ पृष्ठ है। 'सीतायन' रसिकोपासना का एक प्रधान आकर ग्रन्थ माना जाता है और उसकी इस साधना मे बड़ी प्रतिष्ठा है।

'सीतायन' के 'मधुर बालकाण्ड' मे प्रेमकलीजी ने आत्म परिचय दिया है जो इस प्रकार है—

प्रिया शरण गुरु भावना अरु निज भाव समेत।
युगल नायिका करि कहौ प्राप्ति भाव के हेत॥
नेह कली आचार्य मम प्रेम लली मम रूप।
युगल सुनयना की सुता अद्भुत युगल स्वरूप॥
वय सन्धिनि मधुराननी परम मनोहर अंग।
गौर बरण सिय कुञ्ज मे रहत सदा सिय संग॥
मधुर भावना युगल की अरु शृंगार रस रीति।
सो सब वर्णन करत हौ अति प्रसन्न अति प्रीति॥
द्वितीय मधुरता मे कहब सीता जन्म प्रसंग।
जवन हेतु जेहि दिन भयो शिशु चरित्र बहुरग॥
बहुरि तेहि दिन जन्म है उर्मिलादि सुकुमारि।
तिन सब को वर्णन करब सुन्दर चरित बिचारि॥

षष्ट अष्ट पोडश दल बिमला। कमलाकर सिंहासन अमला।
षष्ट अष्ट पोडश मजरि है। चहुँदिशि राजति आनन्द भरिहै॥
तेहि के मध्य सिया अलबेली। अद्भुत राजति रूप नवेली॥
श्याम केश मस्तक भरि के है। सूक्ष्म सघन मणि मोति गुहे है॥
भाल बिशाल भृकुटि वर बाकी। काम धनुष छवि हरत हरांकी॥

कञ्चन मणि मय थार लसत कर आरती।
अमित वेष धरि नाचति गावति भारती॥
वेद न पावत पार नेति कहि कहि रहि गये।
नृप को भाग सराहि मनहिं प्रमुदित भये॥

सघन श्याम चिक्कन कुटिल मस्तक भरि शुठि बार।
जननी निरखत चन्द्र मुख बार बार बलिहार॥

छमछम छननन पगन ते नूपुर बजत अनन्द।
जनक सुनयना सुत्त नवित शिशु लीला करु सीय।
जो यह छवि निरखत नयन चारि मुक्ति अनयीय॥
वेद विदित जो तत्त्व यह जनक सुता सोइ चार।
रानी देखहि छवि मगन सब दिशि सुरति बिसारि॥
प्रिया शरण श्री जनक के अजिर सहित सिय आदि।
ज्यहि हिय नैनन मे बसै ब्रह्मात्मक सुख बादि॥
जेहि सीता के अश ते अमित रमा रति होत।
अमित उमा शारद शची तेहि तन की उद्योत॥
रहति सदा पुनि टहल मे क्षण क्षण भृकुटि निहारि।
जेहि समय जस रुचि लखति तेहि क्षण कौन प्रचार॥
मूल प्रकृति जेहि अश है जग जेहि भृकुटि बिलाश।
विधि हरिहर जेहि गुण लिये रचिपालत पुनि नाश॥
जिनके चरण सरोज के अकन ते अवतार।
मीनादिक सब रूप हैं सिय के अमित बिहार॥
गोद लै चूम्बति दुलारति भाव होत आपरनि।
चुटकि ध्वनि सुनि नचति अजिर सो सकल सुख अनुशरनि॥
कबहुँ लखि प्रतिबिम्ब नाचति कबहुँ चलि गिरि अरनि।
परस्पर खेलति कुवरि सब किलकि झुकि पुनि डरनि॥
श्री राधा आल्हादि शक्तिनी ज्यहि श्रुति गावै।
कोटिन रति कह मोहि राम आचार्य कहावै॥
सो चन्द्रिका ते होत रूप गुण शील अमित छवि।
विमल अग गौरांग देखि ज्यहि लजत बाल रवि॥
नन्द नन्दन के सग मे विविध रास रचना रची।
ब्रज गोपी सब सग मे सोइ रमा शारद शची॥

बाल बिहार

नखसिख मञ्जु मनोहर ताई। कहि न जाइ अंगन रुचिराई॥
बिहरति महल सकल मन भावति। कबहूँ हसि हसि ताल बजावति॥
कबहुँ परस्पर नाच नाचवति। कबहुँ मधुर स्वर मंगल गावति॥
कबहुँ परस्पर बचन उचारति। कबहुँ मुकुर लै बदन निहारति॥

लखि छवि मगन होइ पुनि जाहीं। मुकुर हाथ से त्यागति नाहीं॥
प्रतिबिम्बहिं पूंछत तुम को हौ। इतै कहाँ ते आनि बसौ हौ॥
तुम केहि की पुत्री सुकुमारी। नखसिख मञ्जु महा छवि भारी॥
को तब तात कवन तव माता। मोसन कहहू सत्य सब बाता॥
छवि छवि निज प्रतिबिम्ब भुलानी। तेहि छन आइ सुनयना रानी॥
सिय चेतन्य भइ मातु निहारी। यह तो है प्रतिबिम्ब हमारी॥
मैं भूली अपनी परिछाहीं। यह तो अपर नारि कोउ नाहीं॥

यहि विधि अमित विहार सुख, करति रहति दिन रैन।
जननी लखि प्रमुदित रहनि, अति छवि अति सुख ऐन॥
सकल सुता निमि बंश की, सिय की रुचिहिं निहारि।
सब समाज मिलि गइं हरषि, महली राम बिहारि॥

जस इत कुंअरि मनोहर राजै। तस उत कुंअर महा छवि छाजै॥
सब प्रकार सुन्दर चहुँ ओरा। अति प्रसन्न लखि मानस मोरा॥
तिन लखि छवि भइ प्रेम अधीरा। कस क्यों मन उपजी अति पीरा॥
जब लगि अधरन राम चुमइहै। तब लगि सुख कोइ यतन न पइहै॥
कोइ के अरुण चूनरी राजै। छवि की खानि मनोहर भ्राजै॥
सिय निज महिमा प्रकट देखाई। सो महि कहत एक नहिं आई॥
लखी राम सिय अद्भुत रूपा। वरणि न जाय सो बात अनूपा॥
तब राजा बहु बिनय जनाई। सिय सन्तुष्ट भई सुख पाई॥
पुनि राजा निज प्रश्न सुनाई। कहिय बात सब मोहिं बुझाई॥
सब तें परे पुरुष को अहई। का तेहि नाम कहाँ सो रहई॥
केहि के रचित भवन दशचारी। केहि महँ लीन होत जग सारी॥
सुनि पितु बचन परम हर्षाई। बोली सीता बचन सोहाई॥
सो सम्बाद सुन्दरी तन्त्रा। सीता की बर बाणि विचित्रा॥
तुम को नित्य पिता हम जानी। हमको पुत्री तुमहुँ बखानी॥
सबसे परे पुरुष श्री रामा। श्याम स्वरूप महा सुख धामा॥
हम ते उनते नहिं कछु भेदा। रूप भेद पुनि तत्त्व अभेदा॥

जहँ दोऊ बिराजही तौन धाम सुनु तात।
प्रकृति पार गोलोक है तेहि मधि पुर विख्यात॥
नाम अयोध्या भनत श्रुति ब्रह्मा बिष्णु शिव ध्यान।
उमा रमा ब्रह्माणि तेहि निशि दिन करत बखान॥

अब सुनु राम ध्यान मन लाई। श्रवण करत अघ पुंज नशाई॥
बन अशोक सरयू तट सोहै। रचना सकल काम रति मोहै॥
कंचन भूमि खचित मणि नाना। सत चित आनन्द मय अस्थाना॥
कल्प वृक्ष तहँ परम सोहावन। मूल तले मणि महल सो पावन॥
ताके मध्य बेदिका राजै। चिन्तामणि की कान्ति बिराजै॥
सिंहासन मणि मय अति सो है। गज मुक्ता झालर लटको है॥

अयोध्या

राम अनादि सीता अनादि अवध अनादी।
तुम्हरी पुरी अनादि सकल कह बेद के बादी॥
दोउ राय अनादि अवध मिथिला की गादी।
चतुर्वेद षट शास्त्र पुराणादिक प्रतिपादी॥
तुम राजा सब जानतहू तुम्हरे गृह को बात सब।
अपरनि को तब लखि परे तुम्हरी कृपा कटाक्ष जब॥
लीला सकल अनादि जर्वाह यश रुचि तस करही।
ताकहँ आविर्भाव कहत श्रुति वाक्य न डरही॥
सिया राम पर रूप भक्त संग करहि बिहारा।
भक्तन के वै श्याम गौर युग शरण अधारा॥
सिया उर्मिला नेह अरु प्रेमा। अष्टयाम एक संग सनेमा॥

श्री काष्ठ जिह्वा स्वामी के कुछ लीथो मे छपे ग्रन्थो का पता लगा है जिनका इस 'रसिक सम्प्रदाय' मे विशेष आदर है—

१. **श्री जानकी मंगल** —श्री जानकी जी के रूप का ध्यान
२. **श्री राम मंगल** — श्री राम जी के रूप का ध्यान; पुन नाम, रूप, लीला, और धाम की दिव्यता पर विचार
३. **भूषण रहस्य** — भगवान् राम और भगवती सीता के शरीर पर सुशोभित विविध शृंगार और आभूषणो का विन्यास
४. **अश्विनीकुमार बिन्दु**
५. **हनुमत बिन्दु**
६. **श्याम लगन**
७. **श्याम सुधा**
८. **जानकी बिन्दु**
९. **कृष्ण सहस्र परिचया**

इन नौ ग्रन्थों के अतिरिक्त भी श्री काष्ठ जिह्वा स्वामी लिखित और लीथो मे छपे कुछ और ग्रन्थ भी मिले हैं—जैसे,

गया बिन्दु, शिसा-व्याख्या (संस्कृत), सांख्य तरंग और वैराग्य प्रदीप।

वृहद् उपासना रहस्य

श्री प्रेमलताजी

श्री सीतारामजी दोनों एक ही हैं। देखने में दो भासते हैं। केवल भक्तों के हितार्थ हमेशा उभय रूप धारण किये रहते हैं, परस्पर सम्बन्ध दोनों मे जल, तरंग; गिरा; अर्थ; सुमन, सुगन्ध, रसोई, स्वाद; बिम्ब, प्रति, मनी, मोल, देह, देही, सेस, सेसी की नाई है।

गर्व करो रघुनन्दन जानि मन माहि।
अपनी मूरति देखौ सिय की छाहि॥

श्री सीतारामजी दोनों एक हैं और इनके चरित्र तर्क्य है। भाविक लोग कहते हैं कि हे श्री राम लला जी, आप श्री सिया जू के चेरे हैं, इस माधुर्य रस सानी बानी को सुनि मन्द मन्द मुसिकाते मन भाते, बोलते, भाविकों के वशीभूत हो रहे हैं। भाववश्य भगवान्, सुख निधान करुणा भवन। इस ग्रन्थ मे तो निरे भाव ही भाव भरे हैं। भाविकों के ग्रन्थो मे अभाव की बात ही नही होती। भगवत के आश्चर्यजन्य चरित्र भागवतों की ही बानी मे मिलेगे अन्यत्र नही। भागवत प्रभु के संग हमेशा विहार करनेवाले हैं। जहाँ वेद-वेदान्ती शास्त्र विद्याभिमानियो की स्वप्न मे भी गति नही, तहाँ अन्तःपुर मे सखी रूप मे भागवत श्री सीतारामजी की देहली नित्य सेवा करते हैं और नित्य लीला मे भी दासादि रूप धरि-धरि प्रभु को परमानन्द देते हैं।

चारु शिला हनुमान पुनि, शम्भु सुशीला आलि।
दोउ तन ते सिय राम पद, सेवहि आयसु पालि॥
दास सखा बहिरंग ते, अन्तर पतनी भाव।
आत्म समर्पी भक्ति करि, मिले प्रभुहि सहचाव॥

नाम प्रसंग

अपर नाम सब विबुध गण, राम नाम सुर राज।
जापक उर अमरावती, राजत सहित समाज॥
अपर नाम अवतार सब, राम नाम सिय राम।
जापक उर श्री जनकपुर, विहरहि जहँ वशु याम॥
कोटिन साधन साधिये, कोटिन जन्म सुधारि।
राम नाम की रटन सम, सुखद न कहत पुरारि॥

रूप प्रसंग

एकै पुरुष राम सब नारी। जहां लगि दृष्टि परै तनु धारी॥
सब महँ करै रमन सोइ रामा। आतम राम परचौ तेहिनामा॥
हम सब सिय की शक्ति स्वरूपा। सब के पति सोइ राम अनूपा॥
मिथ्या पुरुष सकल हम भाई। भीतर सिय की शक्ति समाई॥
यह विवेक जिन्हि के उर होई। आतम ज्ञानी जानहु सोई॥

सिया अलिनि की को कहै, सुख सुहाग अनुराग।
विधि हरिहर लखि थकि रहे, जानि छोट निज भाग॥
बहुरि त्रिपाद विभूति ये, श्री, भू, लीला, धाम।
अवलोकहु रमनीक अति, अति विस्तरित ललाम॥
विश्व विलास निकुञ्ज अब, अवलोकहु यहि ओर।
नाटक होत जथार्थ जहँ, अति विचित्र चितचोर॥
नित्यानित्य पगार बहु, नूतन छन छन माझ।
उपजत विनसत लखि परै, जिमि जग भोर सु साझ॥

विद्या माया सिय बलराखै। निज बल बुद्धि अविद्या भाखै॥
दोउ माया सिय निज प्रगटाई। लीला हेतु प्रकृति बिलगाई॥
निज निज दल दोउ विरचि सुमाया। करहि चरित बहु जात न गाया॥
नराकार यक तन इक नारी। बनी उभय दोउ दलनि मझारी॥
लीलाहित आपहि दुइ रूपा। बनी नारि यक पुरुष अनूपा॥
सो जड माया पुरुष न नारी। प्राकृत जो नाना तन धारी॥
तेहि जड़ बन महँ विद्या माया। पैठि बनी सोइ निजहि भुलाया॥
जड़ महँ बैठि सुजड़नि निहारी। मोती चेतन सक्ति बिचारी॥
सनमुख रही विमुख भइ सोई। जड़ सग मिलि चेतनता खोई॥

हमहम करि दुख महत अति, विवस मोह मद सार।
भोगहि निज कृत कर्म फल, फसि जड़ माया जार॥

विद्या माया कर दल जोई। सियहि भजत सब सनमुख होई॥
विमुख अविद्या दल दुख रूपा। भयेउ त्यागि सिय चरन अनूपा॥
चढ़हि स्वर्ग कहुँ नरकनि परही। सिय पद विमुख विपुल तन धरही॥

जयति जयति सर्वेश्वरी, जन रक्षक सुखदानि।
जय समर्थ अह्लादिनी, सक्ति सील गुन खानि॥

जयति स्वतन्त्र सकल घट वासिनि। जयति सुमुखि अवलोकहु दासिनि॥

जयति नाम तव सब सुख दाता। जन्म मरन नासन दुख त्राता॥
जयति परम परमारथ रूपा। जयति चरित तव अकथ अनूपा॥
छमहु देवि अपराध हमारे। कीन्ह मोह वस जो अघ भारे॥
अब करु कृपा स्वामिनी सोई। कबहूँ हमरे मोह न होई॥
जयति परम पावन सुख मूला। जयति हरन संसृति भ्रम सूला॥
जय सरनागत वत्सल भामिनि। विश्व रूप चेतन बहुनामिनि॥
राम ब्रह्म की प्रान अधारा। जय जन पालक हरन विकारा॥

जयति शान्ति सुखमा सदन, क्षमा सील सर्वज्ञ।
जयति भक्ति प्रद शक्ति पर, सरल स्वभाव कृतज्ञ॥

जयति सखी गन मध्य विहारिनि। जयति सुकीरति जग विस्तारिनि॥
जय मद मोह कोह भ्रम हरनी। अमरन सरन दरन जन जरनी॥
पुरुष भाव उर धरि अग्याता। बिसरेऊ हम तव पद जलजाता॥
जग करता पालक संहरता। बने रहे हमही धरि नरता॥
अब करि कृपा सरूप लखावा। जानेउ अकथ अनूप प्रभावा॥
यह छवि बसै सदा हमरे मन। अस कहि परे चरन पुनि तिहुँ जन॥
परम कृपालय सिय मुसिकानी। बोली सरल मनोहर बानी॥
तुम्ह अतिशय प्रिय तिहुँ जन मोरे। मम महिमा जनि भूलेऊ भोरे॥
जो कछु भौमा तुमहिं सुनाई। जानेउ सत्य सु बात सदाई॥
सनमुख जो पावहिं कवनिउं तन। भजहिं मोहिं धरि सखी भाव मन॥
मम भूषण चन्द्रिका अनूपा। धारहिं ते सब मोर सरूपा॥
बिन्दु चन्द्रिका मुद्रा धारी। पावहिं मोहिं निश्चय नर नारी॥

राम पुरुष यक बाम सब, रमण करै सब संग।
मोर निकट निवसत सु जिमि, बिम्ब श्याम शुचि रंग॥

तन छाया इव कबहुँ न तजही। अस विचारि सनमुख मोहिं भजहीं॥
जहाँ देह तहँ छाया रहही। देह बिना छायहि को लहही॥
छाया पुरुष मोर जो रामू। रमन करों तेहि संग बसु जामू॥
छनहुँ न तजत मोहिं मैं तेही। उभय एक जिमि छाया देही॥
जब चाहों तब श्याम सरूपा। प्रगटों पुरुषाकार अनूपा॥
करों चरित तेहि संग मिलि नाना। भक्ति हित आनन्द निधाना॥
लीला ललित सगुन सुखकारी। पढ़ि सुनि पावहिं जन मोहि झारी॥
सगुन उपासक युगल सरूपा। ध्यावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

दशरथ सुत राम सिया, जनक की दुलारी।
नखसिख सोभा अपार, लाजत लखि कोटि मार॥
बरनत छबि बार बार, सारदा उहारी।
भूषन मनि जाल माल, लसत विविध जटित लाल।
नैन कञ्ज ललित माल, तिलक मोद कारी॥
गौर वरन सियाराम, सुभग अग मेघ स्याम।
पीत वसन उत ललाम, इत सुनील सारी॥
राजत सुख गुन निधाम, सेवति पद विपुल बाम,
सीता कर कमल राम, धनुष बान धारी॥
सुर नर मुनि धरत ध्यान, कीरति कल करत गान,
प्रान के सुप्रान ब्रह्म, ब्रह्म के अधारी॥
सरन पाल अति उदार, हरन हेतु भूमिभार,
करत चरित विविध सार, वदत वेद चारी॥
'प्रेम लता' सोच त्यागि, युगल चरन कमल पागि,
जपिसु नाम जीह जागि, दमन दोष भारी॥

धाम प्रसंग

गऊ लोक के मध्य सो, अति विस्तरित ललाम।
निवसि जहा विहरत सदा, अलिनि सहित सियराम॥

नहि तहँ कर्म धर्म तप ध्याना। कुजोग जग्य नहि जप तप ग्याना॥
पूजा पाठ न जादू टोना। तीरथ वरत न साधन सोना॥
जनम मरन नहि रोग वियोगा। नहि तहँ पाप पुण्य कर भोगा॥
अहकार कामादि विकारा। नहि तहँ प्राकृत विषय विहारा॥
हठ सठता अविचार न रोषू। कपट दम्भ पाखण्ड न दोषू॥
नाना मत न सठता वेषू। राग विराग न ईर्षा द्वेषू॥
जाति बरन नहिं आश्रम चारी। वेद पुरान न इन्दु तमारी॥
पञ्च तत्व उरमिनि खट मन्दा। अष्ट प्रकृति नहि कोउ दुख द्वन्दा॥
सकल विकार रहित सो धामू। सब लोकनि ते पार ललामू॥
तेहि महँ केवल केलि प्रधाना। सिय सियबर कर कहहि सुजाना॥

अवलोकहि बड़ भागिनी, ललना गन समुदाय।
निवसि सग बसुजाम सुख, तिन्हिकर बरनि न जाय॥

अनन्द अकथ अनूप निकाई। धाम प्रभाव बरनि नहि जाई॥
कोटिन भवन विसाल सुहाये। जगमगात नहि जात सुगाये॥

राजहिं ललना गन तिन्हि माहीं। वृन्द वृन्द सिय की भुज छाहीं॥
जब जब करत चरित प्रभु नाना। भक्तनि हित सिय राम सुजाना॥
तब तब ते धरि रूप अनूपा। प्रगटहिं संग सुरुचि अनुरूपा॥
गुरु पितु मातु बन्धु परिवारा। बनहिं सखा दासादि अपारा॥
लीला करहिं अमित तन धारी। ललना सिय पिय सुरुचि निहारी॥
खग मृग भूषन बसन सुवासन। हय गज धेनु रथादि सुखासन॥
भवन भण्डार सुपलंग बिछौना। चमर छत्र मनि मानिक सौना॥

लीला केरि विभूति जो, सब सिय परिकर रूप।
सत चेतन आनन्द मय, त्रिगुनातीत अनूप॥

जेहि विधि रहहिं मुदित सियरामा। सोइ सब अलिगन करहिं सुकामा॥
सियपिय कृपा अलिनि के बीचा। सकल समर्थन जानहिं नीचा॥
जहँ जस योग तहाँ तस रूपा। धरि साधहिं प्रभु काज अनूपा॥
करि कारज पुनि आलिनि अंगा। धरि बिहरहिं सुख दम्पति संगा॥
पुरुष एक जहँ केवल रामू। अपर सकल तिय गन गुन धामू॥
नित्य विभूति धाम साकेता। नित्य बिहार न लखहिं अचेता॥
बिहरहिं जहाँ संग सिय रामा। तहँ नहिं अपर पुरुष कर कामा॥
भूषन बसन सेज सुख सामा। सब चेतन अलि रूप ललामा॥
विविध रूप धरि श्री सिय आली। सेवहिं प्रभुहिं प्रेम प्रतिपाली॥

कनक भवन विख्यात जग, राजहिं जहँ सियराम।
तेहि की उपमा योग नहिं, अखिल लोक सुरधाम॥

अलिनि सहित सिय राम कृपाला। करत चरित तेहि माँहि रसाला॥
महल मध्य सुन्दर सर सोहत। निर्मल नीर घाट मन मोहत॥
सावकास चहुँदिसि फुलवारी। लगी ललित बहु भाँति सम्हारी॥
विपुल कुंज सुख पुंजनि पूरे। मनि दीपक बहु राजत रूरे॥
बिछे पलंग बहु घले हिंडोरे। कुंज कुंज प्रति मोद न थोरे॥
मनिमय चित्र विचित्र अपारा। शोभित भीतिनि विविध प्रकारा॥
जेहि महलनि सियराम निवासा। अकथ तहाँ कर भोग विलासा॥
सेवहिं चरन अमित वर वामा। कहौ प्रधाननि केर सु नामा॥
श्रुति कीरति मांडवि उरमीला। कौसिक कमला विमला सीला॥

चन्द्रकला श्री लछिमना, चारुसिला - ससिभाल।
हेमा - छेमा - जामुनी, मदनकला - रसमाल॥

प्रीतिलता श्री युगल विहारिनि। दुग्धवती - सुभगा - सुखकारिनि॥
ग्यान कला - कोविदा - कृपानी। सगुना - सरस्वती - मुदकानी॥

विस्वमोहिनी - मथुरा मीरा। प्रेमप्रभा सु द्वारिका - धीरा॥
ये सब जूथेस्वरी सयानी। सेवहि दम्पति पद प्रन ठानी॥
कनक भवन के चहुँ दिसि घेरे। इन्ह के सदन सुशोभित नेरे॥
सबके भवननि सुख अनुकूले। भरेउ विपुल प्रद मोद अतूले॥
कुज कुज प्रति अली अपारनि। जूथेस्वरी सुजूथ हजारिनि॥
राजहि गाजहि पुर चहुँ फेरे। कचन भवन बने सब केरे॥
सन्तादिक आदिक बन नाना। सोहत सुभग न जात बखाना॥
फूले फर हरे लहराही। विहरहि ललना गनितिन्हि माही॥

उपासक प्रसंग

युगलोपासक

युगल उपासक चरण की, जे शिर धारहि धूरि।
तिन्हि कहँ दशहू दिशि कुशल, नशहि अमंगल भूरि॥

युगल उपासक आनन्द रासी। श्री सियराम स्वरूप विलासी॥
कर्म धर्म साधन सुखकारी। करहि युगल सम्बन्ध विचारी॥
बहुमत बादी पन्थनि बारे। विपुल भरे जग झगरत हारे॥
युगल उपासक दुर्लभ भाई। जिन्हि उरनि वसत सिय रघुराई॥
युगल उपासक चरण सु सेवा। कोटि काम धुक सम सुख देवा॥
जिन्हि के मन दम्पति सियरामा। बसहि निरन्तर सब सुखधामा॥
तिन्हि कर सग रग मिवकाई। कोटि कल्पतरु सम सुखदाई॥
त्रिगुणातीत बचन वर करणी। युगल उपासक की श्रुति बरणी॥
युगल उपासक कर उपदेशा। जन्म मरण भ्रम हरण कलेशा॥
युगल उपासक जो गुरु करही। सो सम् सो जन श्रम बिनु भव निधि तरही॥

मन क्रम बचन विकार तजि, सेवहि जे सियराम।
तिन्हि की सेवा करहि जे, पावहि ते मन काम॥

उपासना

पुरुष एक रघुपति अपर, जड़ चेतन सब जीव।
नारि रूप यह ज्ञाना दृढ, भयेऊ कृपा सिय पीव॥

नरतनु पाइहु आतम ज्ञाना। तजहि न सज्जन जीव सुजाना॥
नारि पुरुष कवनिऊ तनु धरही। तिय स्वरूप निज सो न विसरही॥
जिन्हि पर कृपा करहि भगवाना। तिन्हे लखावहि आतम ज्ञाना॥
युगल रूप सेवा अधिकारा। पावहि जिन्हि तिय भाव सुप्यारा॥

युगल उपासक मन क्रम बयना। सेवहिं चरण निरखि छवि अयना॥
वरणों तिन्हि के कछुक सुलक्षन। सकल यथारथ कछु प्रतिपक्षन॥
श्री सियराम युगल अनुरागी। होत उपासक जन बड़ भागी॥
युगल भावना रस मन रंगा। भूलि न करहिं बिजातिनि संगा॥
युगल भाव वर्द्धक जा गाथा। पढ़हिं सुनहिं भजि सिय रघुनाथा॥

युगल चरण की आश इक, युगल धाम महं बास।
रटहिं रटावहिं नाम नित, युगल हरण भव त्रास॥

जग प्रपच तें काम न राखत। युगल रहस्य सुधा रस चाखत॥
करहिं सजातिनि सग निचन्ता। रटहिं बैठि ननु नाम इकन्ता॥
कामादिक मद दम्भ विकारा। त्यागि भजहिं सियराम उदारा॥
इष्ट स्वरूप नाम गुण धामा। जानहिं सबके भेद ललामा॥
युगल सुभाव ध्यान गुण गाना। करहिं सदा उर आतम ज्ञाना॥
आठऊ याम भरे अहलादा। रहहिं पाय निज इष्ट प्रसादा॥
जो कोउ करै सु प्रश्न उपासक। युगल भाव सम्बन्ध प्रकाशक॥
यथा शक्ति तेहि बोध करावहि। प्रभु प्रिय हेरि न तत्त्व दुरावहि॥

पीत बसन कण्ठी युगल, पीत सु तिलक लिलार।
बिन्दु चन्द्रिका मुद्रिका, सहित नाम युग सार॥

पुरुष भावना जो हिय धारे। दास सखादि तदपि प्रभु प्यारे॥
गुप्त बिहार न देखन आवहि। हठ वश परेउ दूरि पछितावहि॥
हनुमदादि शिव धरि अलि रूपा। निरखहि गुप्त रहस्य अनूपा॥
अस विचारि जे चतुर उपासी। हठ तजि धरहि भाव उर दासी॥
तन तें दास सखादिक भावा। राखहि उर निय भाव सुहावा॥
हनुमत सम नहिं कोउ प्रभु प्यारे। दास सखादि भावना वारे॥

चारुशिला हनुमान सोइ, शिवसु सुशीला बाम।
चन्द्रकला श्री भरत पुनि, लखन लक्ष्मिना नाम॥

देखउ ग्रन्थ खोजि सब भाई। जीव मात्र निय पति रघुराई॥

तत सुख बिनु न उपासना, बिनु उपासना जीव।
बन्धन दे छूटत नहीं, मिलत न श्री सिय पीव॥

प्रभुहि मिलन हित भाव सु नारी। धरि उर सेइय जनक दुलारी॥
तर्क वितर्क न यहि महं कीजे। युगल सरूप सेइ सुख लीजै॥
पति पत्नी कर भाव प्रधाना। रस शृंगार केर सब जाना।'

जो निज उर यह भाव सुधारहि। तन दे दास सखादि उचारहि॥
ते प्रभु प्रिय कछु संशय नाही। आवत जात सु महलनि माही॥
कारण करन सकल रस केरे। रसाधीश शृंगार बडेरे॥

सुखदाई श्री सम्पदा, रामदेव सिय इष्ट।
पति पत्नी सम्बन्ध शुचि, जेहि महँ प्रद सु अभीष्ट॥

पंचसंस्कार प्रसंग

बिनु व्याही जिमि कन्या क्वारी। जानहु सहज खसम की नारी॥
जब वह करै व्याह एक साथा। अरपि अपन पौ जेहि के हाथा॥
होइ एक पति जब तेहि खासा। तब मिथ्या पति होई निराशा॥
तिमि जग जन मनमुखी विलासी। सब देवनि के बने उपासी॥
सबकी पूजा अस्तुति बन्दन। करत मन्द तजि सिय रघुनन्दन॥
प्रभु सम्बन्ध हीन तिमि नाना। भजन भाव रति भगति सु ध्याना॥
जब लगि भजत न सिय रघुराई। गुरुमुख होइ अंग वेष सजाई॥
सब देवनि की परिहरि आशा। करत न जब लगि प्रभु विश्वासा॥
तब लगि राम मिलन अति दूरी। वेष विहीन सु भगति अधूरी॥
राम भगति बिनु लख चौरासी। मिटति न पावत शुभगति खाशी॥

अष्टयाम भावना प्रसंग

संबंध का महत्त्व

बात्सल्य शृंगार वा, सान्ति सख्य अरु दास।
पाँचहु रसिक सुभाव सह, सेवहि प्रभु पिदव खास॥

बिनु सम्बन्ध स्वरूप न जानै। केहि विधि इष्ट सु सेवा ठाने॥
नाम स्वरूप - सेवा - अधिकारा। भाव - परापति सुख आधारा॥
मातु - पिता - भगिनी-प्रिय - भ्राता। बस - विचार - महत्त्व सु-नाता॥
रस - अनन्यता - इष्ट - भावना। रीति - रहस्य - प्रबोध - पावना॥
अस्थाई - निज ये सब भेदा। जाने बिन न मिटत उर खेदा॥
ये चौबीस सूत्र सुखदाई। इन्ह के भेद भाव बहुताई॥
सम्बन्धनि महं ये सब बानी। लिखी ललित नहिं जाइ बखानी॥
जो सम्बन्ध लेइ सो जाने। रसिक अनन्य भाव सुख माने॥

श्री वैष्णव सम्बन्ध बिनु, प्रभु सेवा अधिकार।
सपनेहु पावत नहीं, करै कोटि उपचार॥

बिनु सम्बन्ध लिये तनु जोई। छूटै तो प्रभु लहहि न सोई॥
बिनु सम्बन्ध सुज्ञान विचारा। व्यर्थ यथा गणिका शृंगारा॥
लवण बिना बर व्यंजन जैसे। बिनु सम्बन्ध सु वैष्णव तैसे॥
बिनु सुगन्ध के सुमन नवीना। तिमि वैष्णव सम्बन्ध विहीना॥
बिनु सम्बन्ध भजन व्रत कर्मा। होत न वैष्णव कहँ प्रद नर्मा॥
बिन सम्बन्ध सु वैष्णव कच्चा। वेष बनाय न प्रभु रंग रच्चा॥
वेष प्रताप त्रिलोकनि माही। पूजे जात सु भक्त कहांही॥
बिनु सम्बन्ध न स्वामी सेवा। पावहि वैष्णव सब सुख देवा॥
बिनु गौने की ब्याही नारी। पति बिनु पिहर वहै दुखियारी॥
तिमि थी वैष्णव वेष सु धारी। बिन सम्बन्ध न मिलत खरारी॥
पांचौ मर्यादा भक्तिरस भीना। लहहि न जग सम्बन्ध विहीना॥

निज निज रस के ज्ञातनि, खोजि लेइ सम्बन्ध।
सेवा करि मन वचन क्रम, नशै हिये को अन्ध॥

जो अनन्य एकै रस केरे। मन वच क्रम नियवर पद चेरे॥
युगल नामरत गत मद माया। हेतु रहित जीवनि पर दाया॥
ऐसे रसिकनि के पद सोई। भली भाँति सम्बन्ध सु लेई॥
गऊ लोक बिच थी साकेता। नगर अनूपम सोह सचेता॥
कोटिनि भवन विपुल विस्तारा। रचना अद्भुत अकथ अपारा॥
गलिनि गलिनि विरजा की धारे। कल्पतरुनि की लगी कतारे॥
चली बजार लतनि करिछाये। पुरवासी सुचि सुभग सुहाये॥
चहुँदिशि विविध विटप अमराई। विपुल जलाशय वरणि न जाई॥
विपुल विहार सु अस्थल सोहै। जिनहि देखि सुर मुनि मन मोहै॥
कनक भवन तेहि पुर बिच राजै। कोटिनि भानु तेज लखि लाजै॥
अति उतंग बहु केतु पताका। फहरत निरखि सुरनि मन थाका॥
ग्यान विराग कर्म करतूती। चलति न जहँ रस केलि विभूती॥

विविधि रंगकी जटित मणि, परे झरोखनि जाल।
कलश कंगूरा अमित शुचि, सोभित सुखद विशाल॥

बाहिर महलिन की रुचि राई। अद्भुत अकथ कहहुँ किमि गाई॥
भीतर कुंज निकुंज अनूपा। बने खचित मणि विविधि सरूपा॥
बिछे पलंग बहु चले हिंडोरे। कुंज कुंज प्रति मोद न थोरे॥
चौवारिनि चित्राम सुहाये। मणि माणिक मय जांय न गाये॥
परदनि की अनुपम रचनाई। देखत बनै बरणि नहिं जाई॥

मखमलादि मृदु पाट पटोरे। बिछे लेन चित बरबस चोरे॥
जोना ललित न जात बखाने। लघु विशाल सुन्दर सोपाने॥
दीपक मणिन केर बहु भ्राजै। भेरि संख धुनि नौवत बाजै॥
समय समय अनुकूल अगारा। शोभित सुखद विचित्र उदारा॥
जब जेहि कुंज जहाँ रुचि होई। तब तहँ सुख विहरहिं प्रभु सोई॥
चन्द्रकला श्री चारु सुशीला। यूथेश्वरी उभय मन मीला॥
चन्द्रकला श्री भरत सुजाना। चारुशिला जानहु हनुमाना॥

कोटिनि यूथ सु अलिनि के, इन्हकर भुज बल पाय।
विहरहिं सुख साकेत महँ, युगल चरण उरलाय॥

जहँ देखौ तहँ ललनहि ललना। सेवहि दम्पति त्यागहि पलना॥
निज निज कुंजनि यूथ बनाई। वर्णहि मुदित सिय पिय यश गाई॥
कुंज कुंज महँ सिय रघुराई। निवसहि यक यक ढिग सुखदाई॥
सुनि न रसिक उर अचरज मानहु। सिया अलिनि एकै करि जानहु॥

विलग विलग सुख देत प्रभु, आलिनि रुचि अनुसार।
जानहिं अलि हमरहि भवन, राजहि दोउ सरकार॥

कृपा खानि श्री जानकी, दया सिन्धु रघुनाथ।
बड़ भागिनि आली सकल, विहरहिं सम्पति साथ॥

समय विलोकि सुदम्पति जागे। नयन चहूँ प्रेमालस पागे॥
बारहि बार लेत अगड़ाई। खोलत मूदत चख सुखदाई॥
ढाँकत मुख दोउ कहुँ पट टारी। देखहिं आलिनि नयन उघारी॥
अरुझि अरुझि सोवहि कहुँ जागहि। लखि छवि अली सराहनि भागहि॥
जयति जयति कहि परदा टारी। गई कहति ढिग बलि बलिहारी॥
करि बिनती ललि लाल उठाये। तिहूँ दिशि तकिया दे बैठाये॥
अलसानी छवि नयन निहारी। भई मुदित आरती उतारी॥
मंगल थार दिखाय निछावरि। कीन सुमणि गण पट प्रमोद भरि॥
उरझेउ लट भूषण सुरझाये। आलिनि अनिर्वाच्य सुख पाये॥
लेत उबासी दोउ अलसाने। पुनि लखि लखिनि ओर मुसिकाने॥
हास बिलास होत सुखकारी। आलस बिगत भये पिय प्यारी॥
लखहिं परस्पर छवि पिय प्यारी। चिबुक निकर धरि गर भुज डारी॥
कबहुँ परस्पर सिय पिय दोऊ। करहिं शृंगार लखहिं सब कोऊ॥
येहि विधि कीन्ह शृंगार सुहावा। दर्पण लैकर आलि दिखावा॥
रीझहिं निज निज रूप निहारी। उभय परस्पर गर भुज डारी॥

कुंज कुंज महं परमानन्दा। उमगत जात जहाँ दोउ चन्दा॥
ग्यान कला यहि कुंज मझारी। अधिकारिनि सिय पिय की प्यारी॥
धाय आइ चरणनि लपटानी। आपुहि अति बड भागिनि जानी॥
तब श्री प्रीतिलता सुखदाई। सयन कुंज महं चली लिवाई॥
सयन कुंज महं सादर जाई। पौढ़ए सेज सिया रघुराई॥
स्यामल गौर मनोहर जोरी। सुन्दर सुखद सुवयस किसोरी॥
अवलोकहि अलिगन चहुं ओरी। जनु जुग चन्दहि निकर चकोरी॥

मधुर मुरब्बा खाय कछु, सुचि जल अचवन कीन्ह।
प्रेमलता अलि बिहसि मुख, बीरी निज कर दीन्ह॥

केलि कुंज गवने अलि साथा। चली पाय सुख सिय रघुनाथा॥

युगल प्रिया अधिकारिनी, कुंज हिंडोर सु माँहि।
समय जानि पठई अली, प्रमुदित दम्पति पाँहि॥

चले हिंडोर कुंज हरषाई। लगी संग ललना समुदाई॥

पावस ऋतु धरि विविधि तन, सेवत प्रभु सुख कन्द।
यह रहस्य जानहि रसिक, कोउ कोउ हृदय अमन्द॥

कबहुं परस्पर झूलत दोऊ। उपमा योग न त्रिभुवन कोऊ॥
बाढ़त पेंग डरपि सिय प्यारी। लपटहि पिय अंग गर भुज डारी॥
फहरत पट भूषण रव करही। मुक्तनि हार टूटि महि परही॥
छूटी अलकें दोउ दिशि कारी। लहरहि ललित सु लागहि प्यारी॥
निरखहि अली परम बड भागिनि। दम्पति चरण कमल अनुरागिनि॥
कबहूँ प्रीतम सियहि झूलावत। लखि नखसिख छवि अति सुख पावत॥
कबहुं चमर कहुँ बिजन डुरावत। कबहुं नचत पिय सिय गुण गावत॥

रामकुंज

सुभग सिंहासन सिय रघुवीरा। बैठे सहित सजनि की भीरा॥
रामारम्भ सु आयसु पाई। कीन्ह नाइ शिर अलि समुदाई॥

कमला - विमला - लक्ष्मना, कृपा - कौशिकी बाल।
अधो उवारा - जामनी, वागमती - शशिभाल॥

गुह्य

रसिकनि ते मागा कर जोरी। सुनहु कृपाल विनय यह मोरी॥
गुप्त केलि दम्पति जो करहीं। यहि कर ध्यान सिवादिक धर ही॥

रति शालादिक युगल विहारा। दूसर यह सम्बन्ध उदारा॥
कृपापात्र बिनु ये जनि भाखौ। मन्त्र समान गुप्त करि राखौ॥
विहरहि अलिनि मग बशुयामा। कृपासिन्धु दम्पति सियरामा॥
कुञ्जनि कुञ्जनि वननि सु बागनि। बिहरत हृदय भरे अनुरागनि॥
येक नारि ब्रत प्रभु उर माही। रहत गुप्त बहु जानत नाही॥

विश्वरूप प्रभु कुञ्ज सब, कुञ्ज रूप ससार।
विहरत श्री सियराम जहँ, सेवत जीव अपार॥
रटहि नाम तिय भाव उर, धरि दृढ सुजन ललाम।
चिन्तहि चरित प्रपज तजि, गावहि ते सियराम॥

रघुराज-विलास

श्री रघुराजसिंह जी

महाराज

नवलकिशोर प्रेस द्वारा १९२४ मे मुद्रित और प्रकाशित।

इसमे, कृष्ण भगवान् और राम के झूलन, प्रेम कहानी, होली के पद हैं। अन्तिम भाग मे प्रेमपरक विनय के कुछ भजन हैं।

उदाहरण—

आली सरयू के तीर गडो हिंडालना झूलत सीताराम।
मन्द - मन्द बरसत घन बुदन।
झरत मनहुँ कलिका नव कुदन॥
हरित बरन आराम छनें छन दिशनि दिशनि दीपति दामिनियाँ॥
झमकि झुलाय रही कामिनिया।
पिय छवि दृग आराम॥
श्री रघुराज शोक सब विगरो।
पूरण पयो मनोरथ सिगरो॥
आनन्द आठो याम॥

झूलत कुजन भीजि रहे दोउ।
प्रिय मृदु बैननि मोहि गई सिय,
सिय मृदु बैननि मोहि रहे सोउ॥
सिय झझकनि हरि करनि सभारनि,
सिय के कर पकरत बिहसत आउ।

श्री रघुराज छकी सब सखियाँ,
अंखियां में नहिं पलक करे कोउ ॥

प्यारी हो आजु सखि रंग - महल में झूलें कनक हिंडोरें।
चहुँकनि उमड़ि घुमडि घन बरषत।
गाय गाय सावन सखि हरषत मंजुल मोरवन शोरें।
फहरत अरुन बसन छवि छहरत।
लचकत लंक मचत रंग माचत लागत पवन झकोरें ॥
श्री रघुराज सुहावन सावन।
सरस सनेह सरस सरसावन जनक किशोरी अवध किशोरें ॥

आवत भीजत होऊ हों।
सरयू तीर कदम्ब झुलन हित सखि सब कोऊ हों।
बरसत मन्द मन्द घनन बुंदन चुवत अरुण पट हों।
वै पटुका लै ओट करत कर वै गंचल तट हों।
छहरि छहरि छिनि छन छन छन छवि पुनि पुनि दुरनि दिशानन हों।
मनु अघात नहिं लखि लखि सिय रघुनन्दन आनन हों ॥
सुख सरसावन सावन साझ सखी सब सावन गावें हों।
मोर शोर चहुँ ओर सुहावन सिय हुलसावें हों।
कोशल राज अनोख लाड़िलो जनक लाड़िली जोरी हों।
बसहिं कृपण जन मनहिं सदा यह आशा मोरी हों ॥

रघुबर कैसी है तेरी नजरिया।
एकहु बार परति जेहिं ऊपर रहत न तनहिं खबरिया ॥
हे अवधेश - लला बनरा बनि डोलहु डगर डगरिया।
श्री रघुराज जनकपुर- नारी मांहे झांकि झंझरिया ॥

लला तुम होहु न आंखिन ओट।
एक पलक बिन दरश कलप सम लगत कुलिश सी चोट ॥
पीर पराई जानत हो नहिं यह सुभाव है खोट।
श्री रघुराज बिदेह- लली - पिय तजहु निठुरता कोट ॥

मेरो मन राम लला-सों अटको।
अब तौ बरबस जाय मिलोंगी कोऊ कितेको हटको ॥
श्याम - सरूप नैन रतनारे कुटिल अलक मुख लटको।
लखि रघुराजहिं आजु लाज को टूटि गयो री फटको ॥

आली सियावर कैसा सलोना।
कोटि मदन - मूरति न्यौछावरि दै दै मुखी चलि भाल दिठौना।
मोर डरत जिय डगर नगर महँ कोऊ सखी करि देइ न टोना॥
हौं तो जाइ ललकि गर लगिहों रैहों न देइ जो मोहि भरि सोना।
कहर परी यह जनक-शहर-महँ छूटचोरी खान-पान निशि सोना॥
श्री रघुराज मौर वारे पर अब तो हमहि फकीरनि होना॥

सखि आज अनूपम वेष वन्यो अवधेश - लला मिथिलेश-लली।
दोउ नैनन सैनन चैन करैं रति मैन लजावत शोभ भली॥
अंगराग रंगे अनुराग रंगे शिर चन्द्रिका पाग धरैं विमली।
मुसक्यात बतात अघात न आनन्द कंज से पानि मे कंज-कली॥
तनु केसरि नीर हनी पिचकी गुरु ग्रीषम ताप हरैं सफली।
रघुराज विराजत राज-लला बलि जात विलोकति मंजु अली॥

रघुवर खेलत सिय संग होरी।
सरयू तीर कुंज सुख पुंजन
भूषित मुखित करोरिन गोरी॥
परम रमनीय बन कलित कंचन भवन
बहुत छनछन विविध पवन सुमनोहरो।
कुन्द मुचुकुन्द बहु वृन्द आनन्द कर,
मन्द कर नन्द बन तरुन कुसुमित थरो॥
पुहुमि बहु पुहुम सुपराग - पूरित पृथुल,
झरत कल नल सकल सलिल रंग केसरी।
नदत कल कीर कोकिल निकर मोद कर,
सरयू तट करत शीतल सकल सीकरो॥

वीण डफ वेणु मंजीर मिरदंग,
मुरचंग सारंग तहँ बजत बहु बाजने।
यूवति अनुराग भरि राग, बहु रागती,
बागती बाग महँ विविधि सुख साजने॥
चलत चामीकरन चारु पिचकारि,
केसरि मच्यो कीच मउलीच बहु रंगमें।
नचति जति जति सुगति युवति तति,
रति महित मेलि सुगुलाल रघुलाल सुउमंगमें॥

कुंज बिच सखि कहूँ सखिन बिच कुंज कहुँ,
सखिन बिच सीय कहुँ सीय बिच राम है।
मनहुँ कहुँ जलद बिच दामिनी दमकती,
दामिनी बीच कहुँ दिपत घन श्याम है॥
चूमती पिय - वदन घूमती मदमती,
झूमती हरि भजन निदरि सुर-सुन्दरी।
छीनि पिय कर कटक वटक कर धारि,
पहिरावती नेहवश अगुलिन मुदरी॥
झुकहि झझकहि झपहि जकहि जुमकहि जमहि,
लखहि ललकहि लुकहि हँसहि हुलसहि सही।
तकहि तरकहि दुरहि थिरहि थिरकहि थरहि,
धरहि धावहि धरहि रोरिकहि नहि कही॥
लपटि कहुँ झपटि कहुँ रपटि बहु निपट हटि,
जनक-तनया सहित करत सुविहार है।
मध्य सखि मगलहि निरखि रघुनन्दनहि,
बारही बार रघुराज बलिहार है॥

आली मेरो रघुवर करत सोहाग।
ले कुसुमन बनमाल बनावत विहरत मो सग लाग॥
मो प्रतिबिम्ब विलोकि मुकुर महँ तजत तासु अनुराग।
अस रघुराज प्राण प्यारे सों रुसव परम अभाग॥

विलसति रघुवर आलि वसन्ते।
शीतल मन्द सुगन्धि - समीरित सरयू तट दिनान्ते॥
अमल कपोले कुण्डल लोले विलसत आभा पूरे।
मनसिज केतु बिम्ब इव मनसिज मुकुरत लेन विदूरे॥
कनकासने पीतपट राजित नव - नीरद - मदहारी।
कनक गिराविव मरकत शृग तदुपरि तिमिरविदारी॥
जनक सुता-वदनद्युति - पूरित पांडर वदन - बिहारी।
रघुवर वदन - नील - विभया हरितामा जनक कुमारी॥
पवन प्रशादति सूक्ष्म-सलिल - कण पूरितननुरतिकामम्।
ज्ञान वसन्तागमसरयूरिव जलैः प्रसिचति रामम्॥
परमविशाल रसाल कुसुमकृत कुंजे मधुकर गुंजे।
सुखयति रघुराजा श्री रघुराजं सखिग- समूह - सुखपुंजे॥

भजन रत्नावली

श्री रामनारायणदास

अयोध्या निवासी श्री प० रामनारायणदास के रचे भजनों का यह सुवृहद् संग्रह उनके अनुज श्री माधवदास ने लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस में मुद्रित कराकर झोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बई वाले द्वारा दिसम्बर १८९९ में प्रकाशित करवाया। इस संग्रह में विभिन्न समयों और लीलाओं के पद हैं जो सर्वथा राग-रागनियों में गाये हैं। ग्रन्थ के अन्तिम भाग में शृंगार रस की उपासना के कुछ विशिष्ट पद हैं जिनसे यह पता चलता है कि श्री रामनारायणदास एक बहुत ऊंची निष्ठा के साधक थे और शृंगार-साधना में इनका गहरा प्रवेश था। भाषा में कहीं भी पाण्डित्याडम्बर नहीं है, न व्यर्थ का आडम्बर ही। भाषा बड़ी चटकीली, भावपूर्ण, सशक्त और प्रभावोत्पादनी है। राग-रागनियों का अच्छा ज्ञान है। मधुर रस का सुन्दर अनुभव है। भाव-राज्य में सरल विचरण करनेवाले अनुभवी सन्तों में प० रामनारायणदास जी का स्थान अन्यतम है। स्मरण रखने की बात यह है कि आपमें कहीं भी अनावश्यक शृंगार-प्रदर्शन का भाव नहीं आया है। जो कुछ है सहज है, सुन्दर है, सुमधुर है अतएव सुस्वाद्य है। उदाहरण —

भजन रौनावली

जैसी श्री जनकराज लाडिली ललित भ्राजे कोटि रति लखि लाजे रूप कीसी माई है।
तैसे घनश्याम राम सुघट सुशील धाम लाजे लखि कोटि काम उपमा न पाई है॥
रूप से अनूप जोउ वय से विशेष साउ कुल में कुलीन दाउ सखि सुखधाम है।
राम नारायण कहि सखि न विचारा सहि दुलहिनी लाय कहि दूलह श्री राम है॥

प्रभु मैं अनाथ तव शरणे सनाथ भया दीजे दीनानाथ भक्ति सुन्दर उदार है।
दिन प्रति सत साथ राहि दीजे श्रीयानाथ मागों वर जोरि हाथ दया के आगार है॥
मोहि न भरोसो हाथ ते भरोसो रघुनाथ अहो जगन्नाथ प्रभु तेरोई अधार है।
अनेक अनाथ प्रभु नाथ से सनाथ भए कैसे न सनाथ होउ नारायण नाथ है॥

सीता का रूप

रति मद दवनी कदंब तरुणि बिच साहत सिय सजनी।
लख शिख सोभ शृंगार अनूपम माह श्याम बनी॥
कुसुम कलीवर मंडित कुसला बीच अरुणी मणि बनी।
चन्द्रिक कलित शाम पर सुन्दर शोभा सुभग बनी॥
बेंदी ललित ललाट लसत अति चन्दन खोर बनी।
भृगुटि काम का दृढ़ नेजधार कज्जल ललित बनी॥
कनक किंकिणी जड़ित मनि युत श्रवण फूल सजनी।
ललित कपोल लसत अलकावर मानहु छौन फनी॥

राम का रूप

स्मर मद दमन कदब कुवर बिच सखी सियावर सोहै।
नख शिख लौं अंग अनूप माधुरी लखि मुनि मन मोहै॥
रुचिर चौतनी चमक शीस महु कुसुम कली गोहै।
चिक्कन कच घुघवारे लगत वर अलिगन मिलि सोहै॥
केशर तिलक कलित अति भाले कुटिल शुभग भौहैं।
मानहुं काम कां दंड सहित वर हाटक शरसोहैं॥
कुंडल कलित जड़ाउ करण युग नासा मणि सोहै।
रदन कुन्द अरुणाधर पल्लव हास्य मधुर माहैं॥
उर बर कनक माल राजत अति मणि मुक्ता पोहै।
भुज युग अंगत जड़ित धूत सुन्दर कर धनुशर सोहैं॥
नाभी गहर गभीर उपर वर मालपदिक सोहै।
कटि पट पीत कनक किंकिणि युत लखि रतिपति मोहै॥

झुकि झुकि झमकि कदब विटप तर सखि सिया बर झूले।
जन दुख दमनी मन प्रिय पूरणी श्री सरयू कूले॥
बन प्रमोद उर मोद देत सखि नाना तरु फूले।
चन्दन चम्पक कुंद चमेली लखि रतिपति भूले॥
गुला बांस गुलाब कदब सुगंधे सुर तरु नहि तूले।
उमड़ि उमड़ि घन गरजन सुन्दर चरपत अनुकूले॥
मणिन जड़ित वर कनक हिडोले झूलत मन फूले।
कुसुम सिंगार कलित श्री सिय पिय हसत अधर मूले॥
गाय झुलावे झमकि झुकि सजनी लखि मुनि मन डूले।
उर आनद भरी सब सजनी सुधि बुधि सब भूले॥
को वर्णे छबि छबि पर सजनी नहिं त्रिभुवन तूले।
रामनारायण स्वामि श्यामरो सब के मन कूले॥

शरद ऋतु जान के सारी।
रच्यो सुख रास प्रभु प्यारी॥
धरे मणि मोति की माला।
सोहैं संग सुदरी बाला॥
नचत बर नागरी राजे।
मधुर धुनि नूपुरे बाजे॥

टेरत बर तान को प्यारे।।
गावत स्वर सुदरी न्यारे।
घुमरि घुमि लेत है घुमरी।
सुधी जब व्याह की सुमरी।
भरी आनन्द मे प्यारी
पकड़ कर राम की सारी।।
मिले सियराम अँकवारी।
नारायण राम बलिहारी।।

नटत श्री रामसिया मिली जोरी।
धवल सिगार धरे प्रभु प्यारी सोहे सखी बीच सुदर जोरी।।
धवल निशापति सोहे शरद की धवल कांति चहुं दिशि झलकोरी।।
छुम छुम छुम पग पैंजनिया बाजे ताता थेई थेई बोलत सखियोंरी।
ताल ताल मृदग मिलावे आलीगन मधुर मधुर स्वर गावे किशोंरी।।
हाग विलाग भई बग भामिनी देह सुधी बिसरी सब कोरी।।
पिया भुज सोहे सीय अंक पर सीय भुज सोहे पिय अंक भलोंरी।
रामनारायण के प्रभु रगिया रग भीनी सुन्दर सखियोंरी।।

राधो सिय खेलत होरी।
इत रघुनाथ सखा लिये अनुजन उत मिथिलेश किशोरी।
केशर कीच मची छत ऊपर रग बरसै चहु ओंरी।।
चलो सखि देखन सोरी।।
मुख भीजो सिय जनक नंदिनी चदन केसर घोरी।
रीझ रीझ दृग आजि लाल के लियो पीताबर छोरी।।
किये सब सुधि बुधि भोरी।।
फगुवा दियो है सकल मन भावन ठाढे युगल कर जोरी।
बंदन करत सकल जग बंदन चंदन भाल लगोंरी।।
हंसी सब सखि मुख मोरी।
राम जानकी ध्यान बसो हिय गौर श्याम बरजोरी।।
रामदास दंपति छवि ऊपर निरखि बदन तृण तोरी।
दृगन से क्षण न टरोंरी।।

हम चाकर रघुनाथ कुंवर के।
यम के दूत निकट नहिं आवें द्वादश तिलक देखि यम डरपे।।
गुरु के बचन ज्ञान दृढ राखो सुमरन भजन सिया रघुबर को।।

तुमहि याचि प्रभु और न याचो नहिं आश्रित कोउ नारी नर को।
अग्रदास स्वामी पटा लिखायो दसरथ सुत के कर का॥

शृंगार प्रदीप

श्री हरिहरप्रसाद

सच्चिदानन्दकन्द परब्रह्म परमेश्वर श्री दशरथनन्दन भगवान् श्री रामचन्द्र जी तथा श्रीमती जनकसुता जगज्जननी श्री जानकी महारानी का शृंगार मनोहर दोहे, कवित्त, सवैये एवं पदों में वर्णन किया है। लेखक ने स्वयं अपने को श्री जानकी का कृपापात्र होना स्वीकार किया है। मुंशी नवलकिशोर के छापेखाने में सन् १८८६ ई० में लिथो में यह छपी। इसकी एक खंडित प्रति प्राप्त है जिसमें कुल ११६ पृष्ठ मिलते हैं। संभव है यह पुस्तक कुछ और बड़ी हो और अधिक पद उसमें हों। अस्तु। इसमें एक बहुत बड़ी विशेषता है कि लेखक ने दोहे और पद का क्रम रखा है और इसमें लक्ष्य करने योग्य बात यह है कि लेखक ने दोहे में तत्त्व की बात अत्यन्त सांकेतिक रूप में कह दी है और पद में उसी भावों को विस्तारित किया है। दोहे बहुत ही चुस्त भाषा में हैं। थोड़े से शब्दों में अधिक-से-अधिक भाव भरने की क्षमता अपूर्व है। दोहे जितने ही सांकेतिक हैं, पद उतने ही व्याख्यात्मक और विवरणात्मक। कुल मिलाकर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि शब्दों में चित्रांकण करने की शक्ति विलक्षण है और जहाँ जहाँ श्री जानकी जी के रूप, गुण, वय, शृंगार, लीला, स्वभाव का वर्णन आया है, वहाँ 'कवि का हृदय भावों से भर आता है। श्री जानकी जी की कृपा का प्रसाद कवि को प्राप्त है यह शृंगार प्रदीप' से स्पष्ट है। उदाहरण—

इत कलगी उत चन्द्रिका कुंडल तरिवन कान।
सिय सिय वल्लभ सो सदा बसो हिये बिच आन॥

बसो यह सिय रघुवर का ध्यान।
श्यामल गोर किशोर वयस दोउ जे जानहु की जान॥
लटकत लट लहरत श्रुति कुंडल गहनन की झमकान।
आपुस में हँसि हँसि के दाऊ खात खिआवत पान॥
जहँ बसत नित महँ महँ महकत लहरत लता बितान।
बिहरत दोउ तेहि सुमन बाग में अलि काकिल करगान॥
वहि रहस्य सुख रसिका कैसे जानि सकै अज्ञान।
देवहु की जहँ भाँति पहुँचत नहिं थकि गये वेद पुरान॥

बिहरत गलबाहीं दिये सिय रघुनन्दन भोर।
चहु दिशि ते घेरे फिरत केकी भवर चकोर॥

नक मुक्ता लहरैं इतै उत नथ मोती हाल।
बिहरत गलबाही दिये निरखहु झाकी हाल॥
जिनके अंग प्रसंत तें भूषित भूषण होत।
होत सुगन्ध सुगन्ध यूत पोतो मोती होत॥
शोभा हू शोभा लहत जिनके अंग प्रसंग।
बिधि हरिहर बाणी रमा उमा होंहि लखि दंड॥
तिन सिय सिय वल्लभ चरण बार बार शशिनाथ।
चरण धूरि परिकर युगल नयनन माझ लगाय॥
देव सुधा सागर घरचा पद मुक्ता हित जाय।
भाग्य सरिस लहि निज भणित पातहु दियो मिलाय॥
बिधि हरिहर जाकहं जपत रहत त्यागि सब काम।
सो रघुबर मन महं सदा सिय को सुमिरत नाम॥

सिय जू रानिन में महरानी और गर्भ रौतानी।
चितवत भौंह खड़ी कर जोरे इन्द्रानी ब्रह्मानी॥
गौरा पान लगावत रचि रचि रमा खवावत आनी।
आठौ सिद्धि खड़ी कर जोरे नवनिधि मनहुं बिकानी॥
कोटिन ब्रह्माडन की प्रभुता रोम रोम अरुझानी॥
जो माया एकै घटि पर सबहि पियावत पानी।
सोउ चाहत जाकी करुणा को बार बार सनमानी॥
जा बिनु पातौहिलि न सकत जो सब घट माह समानी।
सत जनन की इष्ट देवता राम प्रिया जग जानी॥

श्री बन मनहीं मन में भावत।
कहत न बनत बनत वह देखत कोउ सुकृती रस पावत॥
रंग रंगीले फूल सियामय मधुकर प्रेम बढावत।
भासत देखि कुंज को अंतर सिया चली जनु आवत॥
कबहु केसरिया कबहू चुनरी कबहु नील लहरावत।
कबहु गुलाली महकत पट छवि कुंजन में दरशावत॥
जेहि कारण जप तप का साधत घर तजि मूड़ मुड़ावत।
याको देखत सोई देवता अनायास उर छावत॥

जोति सिया तड़िता वरण मेघ वरण जय राम।
जै सिय रति मद नाशिनी जै रति पति जित साम॥

जयति श्री जानकी राम जोरी।
जगमग तनु गर तन जनु विमल नखत गत बदन पर वारियें शशि करोरी।।
शरद नभ श्याम श्री राम मुनि मन अगमन मनहरन जोनिसी सीय गौरी।।
दोउ मिलि राम की रामता बनि गई जहां कलिकाल की नहिं झकोरी।।
भई बड़ि भीर रघुवीर छवि लखन को झांकि झांकहिं तिया तिनकतोरी।
बरत महताब पर परत पांखी यथा प्रेम बश होय रही देह भोरी।।
तहा सिय मानुकी का दशामे कहों देव मे भयल गिग यठ गोरी।
रीति व्यवहार तव कोक है कोक रै थकित गनि देखि शशि जनु चकोरी।।

जगमग सिय मडप मे मंगल मचि रहयो।
मंगल पुरुष आपुइ जनु इहा नचि रहयो।।
सोरह विधि शृंगार मदन मन मे कहे।
अनायास ते सिय अंगन मे सजि रहे।।
अंगन की उज्जवलता सों शृंगार है।
नित नयो साजै ऐसो याको विचार है।।
शृंग नाम अभिमान सो जामे नित्य बढ़।
जेहि साजत अंगन मे दूनो रंग चढ़।।
आपुहि मह मह महकत सिय जु को अंग है।।
गन्ध लगावनि हारि मनहिं मे दंग है।।
नील कमल मे सिय दृग आपुइ अंजिर है।।
अंजन साजिन के मन तव लजि रजि रहे।
नित चिक्कन कच सिय के पिय के सनेह भरे।
आलिन तेल लगावति मन संदेह परे।।
सिय अधरन पर लाली मानहुं पीक है।
सखि कह पी कहुते यह लाली नीक है।।
अधरन ओठन तर रहि होहु उदास हो।
सोई ऊंचो जा मे अमिय को बासहो।।
सिय पांयन की लाली लहलह लहकत है।
नाउन लिये महावर लखि लखि अहकत है।।
सियतन पावन उज्ज्वल गंग तरंग से।
तिनको मज्जन केवल जनकी उमंग से।।

आन न यहि सम ताते आनन नाम है।
सिय मुख ही मे अर्थ बनत अभिराम है।।

माया के सब तजे हमनि मे समाय रहे।
राम मे धीर पुरुष हू जामे लोभाय रहे।।
राम धरे धनुबाण मुरति सिय भौंहन मे।
औ मूरति सिय जू के नयन रिसोहन में।।
कानन मे सिय जू के राम लोभाय रहे।
लोग कहत गये कानन ते बउराय रहे।।
देव नजरि जहं हार तिनहं का नाम की।
चूक सुधारहि सज्जन पतित गुलाम की।।
झूलत रंग हिडोरना दम्पति भरे उमंग।
मेरु शृंग राजत मनो घन दामिनि यक संग।।

अवध बाग जग नंदन तह ऊंचो श्री खंड।
कनक हिडोला तहं पर्यो जामे कंचन दंड।।
जग मग रत्न अनेकन बग बग कंचन पीठ।
नाद बिन्दु मंडल लसै जहं पहुचत नहि दीठ।।
तापर सिय बर राजत जैसे दामिनि वंत।
दोउ दिशि प्रेम झुलावत राजत सुखद कंत।।
राग समय मंडल बंध्यो झरन लगे रस बुंद।
रोम रोम रस भीनत मिटे ताप दुख दुन्द।।
दोउ परस्पर अमिय से बनि रहे गरके हार।
सुमनन की वरषा भई गरजन की बलिहार।।
वह कंकण वह शिर पटा वह मोतिन की माल।
इन्द्र धनुष मंडल बना पीतरित खरु लाल।।
श्रवण पुनर्वसु चौकड़ा नित सावन हि जनाव।
देखि मोर मन हरषत पहुंची जड़ित जड़ाव।।
या जोड़ी पर वारों अपने तन धन प्रान।
पूरण मंडल मचि रह्यो बाजत देव निशान।।

सांख्य योग वेदांत को छांड़ि छांड़ि सब जंग।
चरण शरण सिय ह्वै रहहु करि मन माह उमंग।।

सियाराम चरण चन्द्रिका

कविराज लछिमन

सियाराम चरण चन्द्रिका : जैन प्रेस लखनऊ से सेठ छोटे लाल लक्ष्मीचंद बम्बई वाले ने मार्च सन् १९१८ में मुद्रित करा कर प्रकाशित किया। इसमें राम और सीता जी के चरण कमलों का बहुत ही भाव पूर्वक ध्यान है। विशुद्ध काव्य की दृष्टि से यह ग्रंथ उल्लेख्य है।

उदाहरण—

जुगल मुरग जोग बल के कला में तल भूपन भुअन सारदा के अवतार में।
लछिमन नखन बहाली मज मोती लर तरल तरंगे गंग अमृत अगार में॥
राव रामचन्द्र मैथिली के चरणाम्बुज पे वर ही प्रभा जो दान कीरति प्रचार में।
विज्जु घन भार में न सिंधु वार पार में न रतन अपार में न पारस पहार में॥

देव बधूटी लवा बरसे परी किन्नरी मोज में मंगल गावें।
त्यों लछिराम सची सुभ सारदा भाल विसाल पराग लगावें॥
ना गल लीन री देवि दिगंग ना नेक प्रणाम अभै वर पावे।
मैथिली श्री रघुनन्दन के पद कंज प्रभा भरे पूजन आवे॥

रामचन्द्र चरणाम्बुज त्रिभुअनपाल।
हरन जुगा जुग जन के ज्वर जय जाल॥
श्री रघुवर चरणाम्बुज आनंद कंद।
ध्यान करत जन जीते जग जम फंद॥
सिअ चरणाम्बुज गोरे गज मणि मंच।
पारग चितामणि छवि जारत रंच॥
रामचन्द्र चरणाम्बुज गज रथ राम।
बरसत नृप सिरही रे मुकुट प्रकाम॥
रामचन्द्र पद पावन भावन मास।
बरसत जन बन अमृत अचल अवास॥

श्रीरामचन्द्र विलास

श्रीनवलसिंह 'श्रीशरण' युगल अलि कृत

एक खंडित हस्तलिखित प्रति श्री हनमत् निवास में महात्मा रामकिशोर शरण जी महाराज के निजी पुस्तकालय में प्राप्त है। उमा-महेश्वर संवाद में सम्पूर्ण पोथी है—प्रथम अध्याय में राम की बारात का वर्णन है—भगवान राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ संपूर्ण मिथिला में हाथी पर

बैठ कर सब को सुख देते हैं। वहाँ सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियों को लेकर यह शोभा विमान में बैठे देखते हैं। और फिर पुरवासियों से मिल कर जाते हैं। मिथिला की रमणियों ने आरती की, हार पहनाये। उन्हें भी नेग निछावर दी जाती है। दूसरे अध्याय में वधू-प्रवेश का वर्णन है। इसमें 'मुख दिखाई' का प्रसंग बड़ा ही मधुर है। विवाहोत्तर देवपूजन का वर्णन तीसरे अध्याय में है। ककन छोड़ने की लीला तथा मत्स्य वेधन लीला का वर्णन चौथे में है। मत्स्य-वेधन में श्री जानकी जी के हाथ में मछली की डोरी है और राम जी के हाथ में धनुष। रामजी वेधना चाहते हैं पर सीता जी की कुशलता से मछली बच जाती है। पंचम अध्याय में विलास खंड है—इसमें राम और सीता के सम्भोग विलास का बड़ा ही मनोहारी वर्णन है। छठे अध्याय में 'चौठारी' का वर्णन है—जहाँ राम सीता का द्यूत वर्णन है। सातवें अध्याय में श्री राम जानकी की काम-क्रीड़ा का वर्णन है। आठवें में महारानी सभी सखी देवांगनाओं के साथ जल-क्रीड़ा करती हैं। नवें अध्याय में राम सीता का माधुर्य विहार है। दशवें अध्याय में सीताजी का पाक वर्णन बड़े विस्तार से वर्णित है। ग्यारहवें अध्याय में परस्पर उपायनोपहार भेंट पत्र विलेखन का प्रसंग है। बारहवें में श्री राम-जानकी का पुनः मिथिला गमन है।

सवत् १९०७ शालिवाहन १७६८ में झाँसी में यह ग्रन्थ लिखा गया।

उरझे पियपिय नह जाने री।
रूपरासि पियप्रिय गुन द्वादेसी रसिक मनेही नृपति लाल री॥
रदछद रद सुगउ करधारी प्रीति विवस रस सिंधु चाल री।
युगल अली जीवो तुव पति रसभागी दृग निधि विसाल री॥

सखि री मोको भलनि नहिं पिय प्यारी।
केलि निकुंज ललित सज्जा पर प्रिय तमाल ढिग कनक लता री॥
आलबाल सखिजन मंजुल मन फली ललित साखा सभुजा री।
युगल अली सुमनोरथ फूलवर फलत फलत सुरहत सदा री॥

मेज हिंडोरो सोवत पिय प्यारी।
गावत गीत अलापत नागरि रूप राशि जोवन मतवारी॥
मृदु सुकुमारि अंग गोदा पर पान करत माधुर्य सुधा री॥
चमरा विजन मारछल काऊ रूप प्रशंसा कर कोई नारी।
चहु दिसि ठाढ़ीन राजकन्या सबन दंपति रूप महा री॥

आजु री पिय छवि अधिक बनी।
निज कर श्री नृप लाल सिंगारी अंग अंग सोभा अति ही जनी॥
मुक्ता माल सुमन वेणी रुचि सीस चंद्रिका रचित मनी।
बेंदी भाल बनि श्रुति भूषण जटित विविध विधि हीर कनी॥

छूटी अलक कपाल उरोजन जनु सिव सीस सुराज फनी।
नथ मुक्ता अधरो पर राजत मनहु सुधाकन कीर चुनी॥
स्याम बरन कचुकी कलित छवि गल भूषण सुषमा सु तनी।
भुज सुकुमार सोहाय आभरण ललित मुद्रिका जटिल पनी।
लहँगा सुभग किंकिनी कटि मे कटक सुहसक ललित ध्वनी।
युगल अली सीता अग सुख मानिसि बागर हिय नेन सनी॥

भावनामृत-कादम्बिनी

श्री युगलमञ्जरी जी

हस्तलिखित प्रति, श्री हनुमत् निवास मे सुरक्षित—यह रस भावना का सुन्दर ग्रथ है। पन्ना ५५। साहित्य की दृष्टि स यह ग्रथ अद्वितीय है। भाषा बडी ही रसमयी रसभरी है—

प्रेम विवस हियरे लगत जिया लेतु चुराय।
हँसि हँसि रसवति आकरत भरया सिगार सुराय॥
कल कपोल कुण्डल हलक अलक झलक छवि देत।
ललकि ललकि हिय सो लगत पलक चित्त हरि लेत॥
झूमि झूमि झुकि झुकि परत दिये अस भुजमाल।
हँसि हेरत चित चोरही कब देखिहैं सिय लाल॥
अलकैं उरझी चद मुख दृग कपोल लसि पीक।
अजन अजिन रदसुपट सिय पिय अलिथ बदीक॥
अलसाते सुदृग मदन सुभाते बैन॥
उठे सुहाते सेज पर कब देखिहैं अलि नैन॥
करि करि चितन सेज सुख बिनई जाम सुरीठि।
तिनको अलि कल परत कम सदै बसिये पिय पीठि॥

उरझी अलकैं कुडलन हार हीय उरझानि।
अग अग उरझे दोऊ उरझी छवि हिय आनि॥
सुरझावन लागी अली उरझि गए सब अग।
यार झूमि उरझे सदा रसिक हीय दृग सग॥

भली बनी छबि आज की नही कही कछु जात।
मुनि जन तिय करि देति हैं, नारिन की का बात॥
छोडि जुलुफ गल बाहि दै हिय गजमुक्ता हार।
दीरघ दृग घायल करत श्री नृपराज कुमार॥

स्वामी श्रीसीतारामशरणजी

श्रीरूपकलाजी

स्वामी श्रीसियारामशरणजी

स्वामी रामप्रसादजी

सीतावल्लभ लाल की सुछबि बिलोकिय तीय।
हँसि हेरत हिय गो लगत भरे नेह कमनीय॥

सुखद सेज पर राजही सेवत सखी समाज।
गौर स्याम सुखमा अयन रसिक सिरोमणि राज॥

समय-रस-वर्धिनी

श्री सियाअली कृत

एक हस्तलिखित प्रति खुले पन्नों में हनुमत् निवास में प्राप्त है। कुल ९५ पन्ने है। कुल ग्रन्थ कवित्त सवैयो मे है। आरम्भ मे नाम माहात्म्य है। फिर मिथिला माहात्म्य है। तदनन्तर है श्री सीता जी की छवि का वर्णन।

उदाहरण

मोहत नील निचोलनि पै घन अन्तर मे दुति ज्यो चपला की।
गाथ अनेक अमोल नगे जिनि छीनि लई छवि चन्द्रकला की॥
प्रेम सखी मुक्तागन रव छले रे लर बिरची कमला की।
दृष्टि हटी न चली सिया के उरहार बिलोकत राम लला की॥

इसके अनन्तर लीला और धाम का वर्णन है। तदनन्तर सीताराम के सयोग का वर्णन है—

प्रात लाल जागे सिया सग रति पागे अग अग छवि पै अनग कोटि वारे है।
रतन पर्जक पर अक धरे प्यारी निधि रक ज्यो निसक छिन होत नहि न्यारे है॥
छूटे बार भार वनमाला उरहार जूटे बार बार घूमे रसमत्त दृग तारे है।
घूमि घूमि जात अलसात ओ जम्हात दोऊ मन्द मुसकात राम सखे प्राणप्यारे है॥
छूटे केश पानपीक मण्डित कपोलन पै लटपट पाग पेच अटपटे वागे है।
मगजी माल वक्ष कुमकुम लपटाय स्वच्छ अग अग डोलियो अनग रग पागे है।
भाल पद जावक सौ अकित पिय अवधि लाल रामसखे नई बाल सग अनुरागे है॥

नित्य रासलीला

श्री सियाअली

श्री हनुमत् निवास मे पत्राकार प्रति हस्तलिखित, कुल ८१ पन्ने। कवित्त दोहे चौपाइयो मे—आरम्भ मे श्री अयोध्या की शोभा का बडा ही भव्य मनोहर वर्णन। नाना प्रकार के फूलो, फलो, वृक्ष-लताओ, पक्षियो का बड़ा ही सजीव चित्रण। तदनन्तर महल का महान् मगलमय स्वरूप वर्णन, तथा कुञ्जादिको की शोभा विस्तार। फिर युगल मिलन—

सुमन मंज सियालाल रंगीले
करत केलि रस रूप उजारे।
कर कमलन गण्डन दोउ धारे
पीवत रस पिया राजदुलारे।
रंग ललित रंगन पर राजत
पुनि सुकलित कमलन कर वारे।
चूमि रहे दोउ अंग मनोहर
जिमि मधुकर सरोज मतवारे।
विहसि विहसि कछु कहत छबीले
सिया अली अलि सो छवि धारे॥

देखा आली सोभा अतिसे बनी री।
रतन मनिन्ह जुत जड़ित सिंघासन
तापर जुगल किसोर रागिनी भीजे
अंग सिन्द सुखश्रम ते जनु रवि बाल
सुअभित घणी री।
हीरन मे सिर कीट चन्द्रिका मोतिन की छवि अमित तणी री।
अलकन लोल, कपोलन ऊपर नासा बेसर अलक जणी री।
रद तमोल दुति मैन वार वहु सो छवि कवि को कहत भणी री।
श्रम जल बिन्दु विराजत मुख पर सिया अली अति सुख सो घणी री॥
पीत स्याम औ अरुन कमल पर छलकत स्याम की आसकणी री।

सीतावर राम रवन नटवर वरवेश धरन
जुवती मन मोद करन निरखो सखि सो री।
अंगन्ह दुकूल कसै दामिनि द्युति अति सुलसै
भाल तिलक भृकुटि मंद अतुलित छवि त्योरी।
चिकन सुनि चिकुरि माह जूही सुमनन सुचाहि
अधर अरुनतर कपाल धारी दृग बारी।
कुण्डल मृदु श्रुति अमोल झूमत नासिनि सुलोल
सुन्दर सुकुमार अंग चन्दन सुचि खोरी।
नैन अमल अरि सुमेन विहंसत कछु कहत बैन
छवि समुद्र मनो तरग नासा मनिहि लोरी।
धारे भुज अंग ललन नीदत गति हंस चलन
सिया मुख ससि दृग चकोर दृग सो दृग जोरी।

सोभित भामिनि सु साथ पिय उर घन तड़ित गात
जिमि भुअग रहि दुराय चन्दन अग कारी।
भौह कुटिल लसि अपार बिन्दा सुखमा की सार
मुख सुचन्द्र मानिनि मन लाल करि झोरी।।
खजन दृग जोरि हैसत जोवन मद जोर कसत
अगण प्रति रग लखाय प्रीतम चित चोरी।।
वेणी सुमनन अपार गुही अलिगन सभार
राखे पीठी दुराय नागिणीपतियो री।
क्रीट जडित मनिन्ह चारु मोती मानिक सुपार
झके सिर सुचन्द्रिका जु उरझे दृग गारी।।
सोभा ससि जुगल वदन नव सिख सुखमा की सदन
लाभे रति काम कोटि अगन प्रति दोरी।।
बाजत रव बिन मृदग नाचत मनि अति सुगन्ध
गावत नव भरम रग ललना वहुं ओरी।।
राजत नृप राज सदन वन प्रमाद सघन कुञ्ज
लीला ललित करनि काम रूप सा धरोरी।।
मागत सिया अलि सुदान लुब्ध मधुप इव सुजान
बसो सहित भामिनी सुकमल नेन मोरी।।

इसमे जल-विहार का वर्णन बडा ही रसमिक्त है।

दम्पति रुख अति पाइकै चारु शीला हरि बोल।
चन्द्रकलादिक हेरितन करिय गान दुई गाल।।
एक दिसि स्याम सब अलिनि युत एक दिसि सिय सग बाल।
लागे छीनन वारि कर अति सुप्रेम दोउ लाल।।
नाना भेद फुहार मे छीचि राम सिय बाल।
मुखन लेह जल मेलि मुख बडी प्रेम छवि।।
छूटि अग अंग वसन छिपि यौवन दृग हहरा जाल।
सहि न सकत प्रिय विकल मन लपटि लपटि उरझात त।।
विवस अक भुज मेलिकै मुख सो मुख हसि मेलि।
चचरीक जिमि जलज महँ करत विविध रस केलि।।

लाल अग वर स्वाद सुजागी
पिउ पिउ स्याम कहन सा लागी।

रच्छद करि गण्डन भुज भारे
मुरति केलि सखि गावहि न्यारे ॥
जिमि कचन गिरि मेघ सुहाई
तिमि सुलाल पिया उर में छिपाई ॥

जे० बदी १, सवत् १९२९

श्यामसखे की पदावली

गोस्वामी श्री श्यामसखे के ८४५ पदो का यह बृहत् संग्रह कनक भवन अयोध्या से श्री लक्ष्मीशरण रामसनेही जी से सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बई वालो ने प्राप्त कर लखनऊ प्रिटिंग प्रेस से सन् १८३८ ई० मे छपवा कर प्रकाशित किया। युगल सरकार सीताराम के रूप रस एवं लीला-विलास के पदो का यह सग्रह अपने ढग का अकेला है। भाषा मे कही-कही पजाबीपन है और कही-कही भोजपुरी का पुट भी मिलता है। ध्यान देने की बात है कि श्यामसखे जी न केवल रसिक भक्त हैं, परन्तु एक सधे हुए गायक भी हैं। समस्त राग और उनकी रागिनियो का इतना अच्छा भावपूर्ण उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। भाषा मे बहाव है और कही-कही उर्दू फारसी के शब्द भी आये हैं, जो बहुत प्यारे लगते हैं। सम्पूर्ण रामलीला इसमे आ गई है और सीताराम के मिलन, झूलन, दरस परस और विरह का जैसा मनोहारी वर्णन श्यामसखे जी ने प्रस्तुत किया है और ऐसे भव्य रूप मे कि वह अन्यत्र मिलने का नही।

अस्तु, इस विशाल ग्रन्थ से कुछ उदाहरण देने का लोभ-सवरण करना कठिन है—

सिय पिय आजु सरस रस भीना।
सुफल मनोरथ भयो हमारो जगो जानकी ये बर दीन्हा।
दरसन हित लालच उर बाढी भई है बिकल लखि रूप नगीना।
श्याम सखे बिरहिन मन मोहन बसहि दृग सिय राम नवीना ॥

चलु देखु सखी तन सावर को।
सिर मौर धरे सिय को बनरो।
श्रुति कुण्डल डोल कपोलन को।
छवि नासा मोतिन की लहरो।
चित खैंचि गहे मिथिला पुर को।
तिरछी चितवन दृग हे कजरो।
बिसरे नहि श्याम सखे जिय सो।
कर कंकन मोह हिये गजरो ॥

चित्रकूट चलु हे सखी फटक सिला के ओर।
श्यामसखे निज सखिन ले बिहरे राजकिशोर।
चित्रकूट चम्पक लता चामीकर तरु छांह।
चन्द्रकला विहरे धरे श्याम सखे गलबाह।
चित्रकूट कलि काम तरु काम कामदा देत।
राम धामदा सेइये श्याम सखे यहि हेत।
चित्रकूट बन बाग मे चारि भुजा ब्रह्मेश।
श्याम सखे सखि रूप धरि सेवहि राम नरेस॥

रघुवर कैसे बिसरिहो बतियाँ।
कब तो होय सांझ घरवाती मेरी तो लागि सुरतियाँ।
नदिया तीर भई जो बाते रस बस भीजी मतियाँ।
श्याम सखे सैयाँ श्याम सलोने तोको लगैहो छतियाँ॥

रघुवर आए नवल बनि नारी।
करि सिगार सुघर बनिता की सिर पर गागरि भारी।
बीते रात कहत घर घर मे ज्यो जल पियनिहारी।
श्याम सखे सैया रसिक बहादुर करत विहार बिहारी॥

नयन बिच छाय रहो राघो जी के नैन।
लाली निरखि छकी मन आली सब तन मे मद फैलि रहो।
श्याम करत घायल निसु वासर सीतल सिसिर दै रहो।
श्याम सखे बांकी चितवनिया पर हूँ बिनु मोल बिकै रहो॥

चित चोरे प्यारे राघो की रसीली बतियाँ।
टेढ़ी भौंह जुल्फ पर टोपी निरखत भूलि गई मतियाँ॥
नहि भावै घर को सुख सम्पति नहि भावै पिय संग रतियाँ।
श्यामसखे दिन राति सैया को अस मन होइ लगावो छतियाँ॥

हमारे मन सियवर के रस रंगी।
जब से सियवर के रस राती तब से भई चित चंगी।
धसनि फुलेल हंसनि जुवती संग फीको लागति सगी॥
श्याम सखे बिनु देखे माधुरी जोवन जात उमंगी॥

निरदई श्याम से नैन लगी जल भरन भूलि गई गागरिया।
टेढ़ी शिर पाग लटै बगरे तन सावर गावत रागरिया॥

मोहि देखि भभूत चलाइ दिया तब से चित चैन न नागरिया।
इत छैल के छौ रस ते न छकी भारी डर है उत सासुरिया।
इतहू मे गई उतहू मे गई बदनामी लई शिर सागरिया॥
पिय नेह के कारन छाड़ि दियो सारे घर लाज उजागरिया।
बदनामी उठाइ के श्याम सखे रसिया मे मिली गरे लागरिया॥

पनिघट पर हमको मोहि लई दशरथ के प्यारे सांवरिया।
जल भरत धरत कटि करकि गई सरेखत सारी सरकि गई निरखत छवि।
घूघट उघरि गई चित चंचल ज्यो भई बावरिया।
फिर संभरत धरि धरि शीश घडा मन मोहन वालन नजर पड़ा।
दृग लागत चोंगुन चाह बढ़ा सुधि भूलि गई घर गावरिया।
धरि खीचि लई पिय पीत पटा मानो दामिनि क संग मेघ घटा।
बिन मोल बिकी हम श्याम सखे पिय के संग दीन्ही भावरिया॥

ठाकुर मे मेरो ध्यान लगोरी।
ठाकुर दशरथ लाल हमारे ठकुराइनि मिथिलेश किशोरी।
बेठे कुञ्ज धरे गल बहिया चन्द्रकला विमला चहुँ ओरी।
श्याम सखे दम्पति छवि निरखत पिय प्यारी की सुन्दर जोरी॥

मेरो मन बावर भई आली।
निरखि निरखि नैनन की कटा छटा।
जुल्फ जाल खौर भाल मुक्तन के गरे माल आसपास बालचाल मे नटा।
दीन्हे गर बाह बाह गरजू तट कदम छाह खेलत कर कमल सखी माधुरी लटा लटा।
रसिकन सोय धरत ध्यान जीवन धन प्रान मान श्यामसखे पपिहा पिय मे घटा॥

लला छवि भामिनि आज करी।
टेढी पाग सुरुख रंग जामा जुल्फनि पेंच परी।
छडी गुलाब लिये कर गजरा कुञ्जन मांह खरी।
श्यामसखे पिय भेट भई है हंसि उर मालधरी॥

रसिक सिरोमनि राम।
बिहरे संग लीन्हे बाम।
चन्द्रकला किसला बिमला सखि राजति पिय चहुँ ओर।
कनक लता के मध्य जुगल जनु दामिन के संग मोर॥

झुकि रही अलकै लट काम। बन किशोर जहं गलम लगे है गावत अलिगन गीत।
शुक दादुर पिक हंस चन्द्रिका पिय प्यारी रस रीत।

गजरा मोहैं अभिराम।
कोई मुख पान खिलावत भावत कोई आदरस देखाय।
कोइ सखि करति गुलाब फुहारे कोइ कर धरि उर लाय।

अंखियन मारे छवि धाम।
धिधिकट धुधुकट मृदग बजावत कोई सारिगम गति तान।
कोइ पट खैंचत सैन दिखावत कोइ कर रति उत्थान कोइ श्रम पोंछे तन घाम।
रसिकन हित पिय करत रहग रग पूरन रस सिंगार।
यह रग जान शंभ् सनकादिक सिय पिय राम विहार।

निज उर धारे सखे श्याम।
आवै गलबांह धरे हो प्यारी जी की छवि रसमाते।
प्यारी की लट कुण्डल अरुझाने सरुझन कोन करे।

जगे अंखियन रसमाते।
फूल उड़ावत गेद खेलावत सो सुख कहि न परे।
पगनि धीरे धीरे घर जाते।
श्यामसखे यह युगल माधुरी मन अभिलाख करे तनक मोहि तन मुसुकाते।

चलु सखि पौढ़े राजकिशोर।
कनक भवन के ललित कुञ्ज मे दुति दामिनि छवि जोर।
जनक लली चरनन पर लोटत रस बस करि घन घोर।
महलन मे मञ्जरी अलापे मधुरी तानन सोर॥
श्यामसखे सखि पीत पिताम्बर लै आई बड़े भोर॥

सांवली छवि बनि आई है।
अधर बिम्ब फल मधुर सुधाकर सुख रस सरसाई है॥
मांग मोतिन सो छाई है।
राहु मदन जुग मीन पीन शशि मिलन सोहाई है॥
दशन दाड़िम सरसाई है।
पान पीक अलकै कपोल कण्ठा रुचि राई है॥
कंचुकी ललित लगाई है॥
अंगिया भरे सनेह गेह प्रीतम फलदाई है॥
सकल सोभा अधिकाई है।
श्याम सखे ममुकात मिली पिय के गरे लाई है॥

कगवा बोले मीठी बनिया अचरा डोले रे मोरी।
गगन मंदिल चढ़ि डारिया लगे हों बिनु पनिहारी की गोरी॥
पंच पकवान पिया को जेवे हो अन्दिया चारो मेज डसैहो।
श्याम सखे ले मेज सुतैहों हिलि मिलि करिहो रे भौरी॥

चूनर मोरी भीजे हो राज।
रिमि झिमि बुंद परत चूनर पर सासु ननद की लाज।
श्यामसखे तुमरे रंग बस भई अब घर की नहि काज॥

मन बसि गई सरूप निहारे।
बाबा हो मोरि ब्याह करा दे रघुबर राज दुलारे।
मोरा जीवन गों अरुझानो सरुझत नहीं सभारे।
श्यामसखे मेरी ब्याह करा दे पंजि कै लोक बिचारे॥

पिय बिनु सखी नींद न भावंदा।
छन आंगन छन गैल अथाई छन जुग जामिनि जावंदा।
शीतल शशि कर निकर हुतासन जलद मनहुं बरसावंदा।
श्यामसखे कद वा दिन आवे भेटो पिया गरे लावंदा॥

सजन संग सोइया रे राती आली रे बिरह भरी सारी रात।
बन प्रमोद जहँ सीतल छहियां फूली रही जल जात॥
सेज सोहावन रस उपजावन पुरवैया सरसात।
फूलन के नख सिख लों गहना पहिराये भरि गात॥
श्यामसखे सैया अवध रंगीले हंसि हंसि पूछत बात॥

श्याम बिनु नीको न लागत धाम।
दिन दिन देह भई दुबरी सी रट लागी सियाराम॥
कब मिलिहै पिय बाल सनेही बीते युग सम जाम।
श्याम सखे मोहि भेट करा दे ताकी होंगी बाम॥

लाल मोहिं आस तेहारी हो।
सुनिए कोशल चन्द के एक अरज हमारी हो।
तुम जल निधि हम सरिता हैं तुम पति हम नारी हो।
तुम बासर हम राति है तुम चन्द हम चकोरी हो॥
तुम नायक हम नायका गठ बन्धन जोरी हो।
नात बात तुमसे भली जग नेह लवारी हो॥
श्याम सखे अपनाइए सब चूक बिसारी हो॥

संवलिया कैसे धरो जिय धीर।
बिनु देखे तोरि सांवलि सूरति अंखिया ढरकत नीर।
हम तुमरे जिय हम तुम जाने सासु ननंद बेपीर।
छन छन देखत रस उपजावत बिछुरत बिकल शरीर।
श्याम सखे को दरद मिटावै बिनु बालमु रघुवीर॥

किन बिलमायो री।

बारी बयस सखी कोंपति रहति दुख अमित मदन कर जरत झरत मद अंगियां अंग भिजायो री।

मास असाढ बूद बरसावन सावन सब सखि झूल झुलावन।
भादों रैनि भयावन सखि री हियरा मोर डेरावन।
आसि बन कमल कली बिन सायो री वे।
कातिक दिनकर अरघ मनावति अगहन मांग बढाइ बिलखि पिय बिनु गुनि गुनि मन श्यामसखे मोरी अंगिया जोर जनायो आयो गरवां मोरे लायो री वे।

सैया संगे ससुरा मे रहब पियारी।
नैहरा के पांचों यार भये बैरी।
जो भी न रहा सो ननंद बिगारी।
छोड़ दियो संग की पचीसो सखिया पिया पिया लागी है रटन हमारी।
श्यामसखे हम भइ है सुहागिनी फिरि नहिं पिसब नैहर जत सारी॥

चढ़ियो न जाय मोसे सैयाँकी अटरिया।
दश औ पाँच थान का लहंगा बीस पाँच लागे मोतिन की नरिया।
बड़ी दूर पिया केर अटरिया।
कसकि कसकि उठे कमर हमरिया।
श्यामसखे जिय हुलसि हुलसि रहे रस बस सैयां जी जोरि हो मै यरिया॥

अटरिया कैसे के चढ़ि जाउं।
तीनि महल को लाल अटरिया सैयां सेज लजाउं।
पाँच सखी मेरे बैर परी है पांचे देखि डेराउं।
श्याम सखे मै तो बारी सुहागिनि ठाढी भई पछिताउं॥

सुधि आइ गई सैयां सपन बारे।
बौरी सी फिरो अंगनवारे।
दिन अंधिआर रानि उजिआरी देवरा बोलावे भवनवां रे।
श्याम सखे रहे गगन मन्दिर में काहे को कियो गवनवा रे॥

ढरकि गई रे मारि बारी उमरिया।
बारी बयस परदेस सिधाय तब से न लीन्ही खबरिया।
कबहुं न डीठि बलमु ग लाई कबहू न माई अटरिया।
लै चलु श्याममखे जहं बालमु फिरि मनिहो तोरि निहोरिया॥

श्री सीताराम-शृंगार रस

श्री महाराजदास जी

श्री जानकी घाट अयोध्यापुरी के महन्त महावीर दास जी उपनाम जनमहाराज ने 'महा-रामायण' के आधार पर श्री सीताराम के शृंगार का वर्णन दोहे-चौपाइयों में किया है। यह छोटी-सी पुस्तिका राजपाली प्रेस, मुट्ठीगञ्ज, इलाहाबाद से सन् १९१५ ई० में छपी। आरम्भ में भगवान् राम और भगवती सीता का परत्व-वर्णन है। इसके अनन्तर युगल सरकार के चरणचिह्नों का वर्णन है। तब दिव्य साकेत धाम और उसमें दिव्यलीला-विहार का वर्णन है। अन्त में दो घनाक्षरियों में प्रणय निवेदन है। उदाहरण—

दिव्य अयोध्या

बिरजा तट इक नगर सुहावन।
परम रम्य पावन मन भावन॥
दिव्य अयोध्या ताकर नामा।
दम्पति धीश जहा सियरामा॥
द्वादश दुर्ग बने अति सुन्दर।
एक मध्य जो परम मनोहर॥
विद्रुप चौखठ तडित केवारा।
इन्द्र नीलमणि जगमग द्वारा॥
कनन मणि मय भीति सुहाई।
कहौ कवनि विधि वरनि न जाई॥
कीट चन्द्रिका परम प्रकासा।
जहं नहि रवि शशि करहि निवासा॥
अति सुगन्ध मन्दिर शुचि शाला।
जहा फैन सम सेज रसाला॥
हरित लाल मणि जगमग झलकै।
अगणित राम सिया • छवि छलकै॥
ताहँ मणि मोतिन की झालरि।
जगमगाति आगन द्युति लालरि॥

स्वेत हरित सिन्धु रमणि सोहैं।
आगन छवि लखि सुर मुनि मोहैं॥
उत्तर कौशिल्या अज नन्दन।
प्राची दिशि हनुमत करैं बन्दन॥
दक्षिण लखन उर्मिला स्वामी।
करशर धनुष युगल अनुगामी॥

भरथ शत्रुहन परम शचि, माडवि पग अनुरूप।
श्रुतिकीरति शृगार मय, सेवहि रघुकुल भूप॥

कामियो को नारि जिमि तृपित को वारि जिमि भौरन को प्यार जिमि फूलन कतार हो।
पकज को भानु जिमि मुनिन का ज्ञान जिमि रकन निधान पिक ऋतु सुविहार हो॥
सुत जिमि मातन को नेह गोत नातन का हग मन भावै जिमि मानस किनार हो।
जन महाराज कर जोरि कहै बार बार तिमि प्रिय लागो सिय कोशिला कुमार हो॥
दीपक पतग जिमि राग है कुरग जिमि मणि है भुजग घृतपावक अहार हो।
नीर हूँ को क्षीर जिमि प्राण को शरीर जिमि नैन को पलक मोर घन रव प्यार हो॥
चातक को स्वाति जल पातक को पाप भल सती शिव पित रति भावै जिमि मार हो।
जन महाराज कर जोरि कहै बार बार तिमि प्रिय लागो सिया कोशिला कुमार हो॥

जैसे भौरा सुमन रस, तैसे सन्त सुजान।
राम सिया रस माधुरी, करे निरन्तर पान॥
रमा उमा ब्रह्मानिया, सिया चरन की आस।
जाके बग सब देव है, कृपा कटाक्ष निवास॥

श्री राम प्रेम मंजरी

प्रेममञ्जरी विलास

श्री जानकी घाट अयोध्या के श्री गुरु हुजूरी जी महाराज के प्रधान शिष्य श्री महावीरदास उपनाम श्री महाराजदास जी के रचे हुए श्री सीतारामोत्सव विहार के पदो का यह सग्रह प० श्री रामवल्लभाशरण जी की अनुमति से देशोपकारक यन्त्रालय मे सन् १९०७ ई० मे छप कर प्रकाशित हुआ। आरम्भ मे श्री गुरु वन्दना है, तत्पश्चात् श्री गोस्वामी जी की वन्दना, श्री सरयू जी की वन्दना, अन्तर्गृही की परिक्रमा, श्री सरयू जी की बधाई, श्री हनुमत् जन्म बधाई, फिर श्री सीताराम युगल सरकार का ध्यान और लीला-रस का आस्वादन-वर्णन है।

सिया छबि नयना सुखकारी।
देखि रूप रति मन मारी।
मुख मंडल बहु राकाशशि छबि उपमा कबि हारी।
सिर पर केश अमित अलि शोभा नागिन लटकारी॥
गौर अरुण शुभ अंग मनोहर अरुण चरण नारी।
अरुण ललाट चंद्रिका बेनी उदित तिमिर हारी॥
भूषण बसन अंग में जगमग नील पट्टसारी।
कंठा कंठ मनिन उर गजरा दामिनी झलकारी॥
उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता राम प्रिया प्यारी।
दास महाराज युगल पद बंदौ मोसे पतित तारी॥

अब देख अली सियाराम लला मनि मंदिर में मन मोद भरै।
छबि आनन्द कंदकला झलकै चहुं ओर प्रकाश बिलास करै॥
सजनी सजि आजु समाज बनो फुल दूलह दुलही देखि तरै।
महाराज सुदास के प्रान इहै दृग में दोउ मूरति प्रेम करै॥

आली निरखहु छबि अब प्रेम पिया।
जाके बदन मयन गत शोभा चितवन में चित अमल किया॥
जाको सत सुरेश सम बैठक सिंहासन पर बाम सिया।
जाको यश गावत सुरनर मुनि कबि कोविद शिवनाम लिया॥

सज्जन संमति चकोर चित राम सिया रस रूप।
जैसे चन्दाशरद की शोभा अमित अनूप॥

कमल नयन खंजन दृग अंजन पीत बसन तूला।
अलि सब रामसिया मुख हेरत निमिष निमिष शूला॥
अवधपुरी कुंजन की शोभा सुमन मनिन झूला।
रतन कनक मणिमय रच्यो नगन जड़ित चहुं ओर॥
राम सिया प्रतिबिम्ब छबिलेत सबन चित चोर।
दास महाराज युगल छबि नख सिख दरस नयन खूला॥

निरखत सखि झूलन की छबि।
रतन जड़ित मनि मय जगमग दुति मनहुं इन्दु के अटा॥
तामें शोभितराम सियाजु सरंग बसन अंग छटा।
सावन लता हरितद्रुम पल्लव उमड़ि घुमड़ि घन घटा।
बरसत मेघ चहुं दिसि रिमि झिमि दादुर पपीहा रटा॥

सावन सुख आनन्द भयो है उमगि नीर सरि नटा।
दास महाराज युगल छबि चितवनि प्रेम अमिय रस सटा॥

युगल छबि आज बनी बाकी।
अरुण चरण फल सुखमा की॥
शरद रैन भइ इदु प्रकाशित अमृत मय छाकी।
मुकुल बरण सब असन बसन है कमलनयन जाकी॥
बैठे सुघर रसीले रसिया निरपु अली झाकी।
घेरि लिये चहुदिशि मे मनि गन जैस चद्र चकोर ताकी।
बाजत ताल मृदग सितार। सुरमुनि गावत जश जाकी।
दास महाराज हृदय सुख छाया राम सिया दोउ फल पाकी॥

सजि साज समाज युगल रसिया।
बैठे कनक भवन मे शोभित दरसन करत नयन बसिया॥
भूषण बसन बिचित्र अग मे क्रीट कनक मनि सिर लसिया।
कमलानन दृग जुल्फ अली सम मानो पीवत झुकि झुकि रस रसिया।
गान करत अवलोकि पिया सुख दास महाराज रसिक फसिया॥

सखि आये कुअर अलबेला।
देखु देखु छबि परम प्रकाशित यही नयनन कर मेला।
कैसो रूप अनूप है सजनी कोटि मदन मद हेला।
अवध छैल दोउ बीर बाकुरा तुरिहै धनुष करि खेला।
दास महाराज निरखि किन लीजै दान अमर पद देला॥
सिया जी सैन दियो सखियन को लहु ललन को घेरी।
काजर करि चुनरी पहिराई नाच नचाइ को तान दई मिर्दग तर ताल परी।
लखन लाल जी का चन्द्रकलादिक पकड लियो बरजोरी।
कमल नैन मुख निरखत सजनी हसि हसि बात करी गले पर बाह धरी॥
भूषन बसन रग मे भीज्यो भीज गयो तन गोरी।
दास महाराज सुमन सुर बरसत रग मे रग करी गुमान मे आप मरी॥
नैना रग मे भरी॥

युगलोत्कंठ प्रकाशिका

जयपुर चन्देली के श्रीसीतारामशरण 'शुभशीला' जी

श्री राजकिशोरी वर शरण (परमानन्द जी) ने श्री रहस्यप्रमोद भवन जयपुर मदिर, अयोध्या से दूसरी बार संवत् १९९४ मे प्रकाशित कराया। प्रथम सस्करण मे यह पुस्तक श्री सीता-

रामशरण भगवान प्रसाद जी ने 'रसिक उरहार' नाम से छपवाया था। वस्तुत इसमे 'विनयमाला' और 'रसिक उरहार' दोनो ही सम्मिलित है। 'युगलोत्कठ प्रकाशिका' मे आरभ मे दोहे है और बाद मे गेय पद।

विषय--आरभ मे परिकरियो सहित श्री स्वामिनी जी की वदना है। रस से भरे दोहे बड ही भावमय हैं। सपूर्णग्रथ बहुत ही प्रभावोत्पादक है। लीला रस के वस्तुत आस्वादन एव अनुभव मे ओतप्रात है। विरह ऐसी तीव्रता वेदना और उसका ऐसा निश्चल वर्णन अन्यत्र नही मिल सकता। कृष्ण भक्त कवियो मे जो स्थान घनानद का है, रामभक्त कवियो मे वही स्थान जयपुर चदेली का है।

उदाहरण--

परिकरि युत श्री स्वामिनी, सुख बिवर्धनी साथ।
हमको दीजे सुख सदा, अब गहि लीजे हाथ॥

पद पकज देखे बिना, बृथा जन्म जग जात।
सीतावर जुत मिलहु अब, छिन पल कलप बिहात॥

हे सीते नृप नन्दिनी, हे रघुराज कुमार।
तुम बिनु व्याकुल चित रहत, रही न नेकु सम्हार॥

असन बसन कुल कान तजि, सब से भई उदास।
बिरह अग्नि बाढत भई, तापै पवन उसास॥

ताहू पर घृत परत है, टपकत नयनन नीर।
बुझत नही बाढत अधिक, को जानै यह पीर॥

गृह बाहर बन मे फिरू, कहू न चित ठहराय।
जह तह जिय घबरात है, अब दुख सहो न जाय॥

नैन मूदि कबहू रहौ, बैठी गृह एकत।
मूरति को अनुभव करौ, खोले फिर बिलपत॥

तापर फिर लीला रचित, चित अवलम्बन हेत।
प्रिय प्रीतम की काति वह, कछु सीतल कर देत॥

तदपि चित्त माने नही, बिरह ज्वाल के जोर।
घन बिजुली सम दर्श दो, श्यामल गौर किशोर॥

बदन माधुरी गर्ज रव, बचनामृत जुत पीर।
बिरह अग्नि बूझे जबहि, मिलन वर्ष हो नीर॥

हे बिधु बदनी जानकी! हे सीतावर श्याम!
कब दिखाइहो बिधु बदन, पद पकज अभिराम॥

दृग चकोर मन भ्रमर है, रसना चातक नाम।
कब देखे प्रीतम प्रिया, सुख बिलास के धाम।।

कबहु कि वह दिन होयगो, प्रिय प्रीतम के संग।
भाव सहित अवलोकिहौ, जिमि चकोर परसंग।।

पद पंकज की माधुरी, मन मधुकर है लीन।
मिलन बिना व्याकुल रहत, बिरह व्यथा तन छीन।।

हे श्री सीते स्वामिनी! रसना रटत सुनाम।
चातक सम गति हा रही, सुनिये करुणा धाम।।

दृगन छबीली छबि बसी, जल समुद्र जिमि मीन।
ताहि बिलग मति कीजिए, हो तुम परम प्रबीन।।

बिथा होत जिमि मीन के, बिछुरे प्रीतम नीर।
वैसी गति मम देखि कै, कृपा करहु रघुवीर।।

देखत जग में मधुरता, सुन्दरि सुन्दर रूप।
तन व्याकुल ह्वै जात बिनु, देखे रूप अनूप।।

रूप अनूप दिखाय के, कीजै नैन सनाथ।
अछत नाथ अस क्यों करो, देउ प्रिया को साथ।।

सुनि कोकिल की कुहुक मृदु, उठत हिये में हूक।
सिसिक सिसिक कर मीजती क्षमा करो अब चूक।।

हम तो सब औगुन भरी,तुम हौ गुण की खानि।
गुनन आपने रीझिये, बिरदा बलि उर आनि।।

नटत मयूरी देखि कै, बिरह सतावै मोय।
केकि कंठ तन की सुदुति, लखि-भ्रम मन भ्रम होय।।

कब भ्रम तुम यह मेटिहौ हे नृप राज किशोर।
गलबाही दीन्हे लखै, गौर श्याम चित चोर।।

देखत नृप तनया जगत, प्राकृत राजकुमार।
मिलिहो हममें कबहुं अस, जस लौकिक ब्योहार।।

सब जग अपने मित्र युत, सुख भोगत दिन रैन।
हमको दुख दिन प्रति अधिक छिन पल कबहुं न चैन।।

हे सीते करुणाअयन, जतन बन नहि एक।
केवल कृपा कटाक्ष को चातक की सी टेक।।

स्वाति-बूंद पिय युत मिलन मेरे जी की आग।
पूरण कबहू कीजियो, जबलौ घट में स्वांग।।

और कृपा कर दीजियो, जब लग तन में प्रान।
प्राण नाथ जुत नाम तव, रटै छोड़ि अभिमान।।

चातक रटि घटि जाव भल, घटै न मेरो नेह।
चरण कमल मकरन्द की दृढ़ भौंरी करि लेह।।

बिरह तपावै मोहि ज्यों बाढ़े, अधिक सनेह।
जैसे कुन्दन के तपै, निरमल होवै देह।।

काम क्रोध मद लोभ ये, जग में करे सनेह।
तव सनेह के रिपु अहै नेकु न परगे देह।।

अरुण प्रीति छवि घटाकी, अटा बिलोकी जाय।
अंसुवन झर बरसन लगी, तन सब दई भिजाय।।

भई शिथिल नहि चल सक, शीतल स्वांस समीर।
तन कंपाय व्याकुल करी, बेगि मिलो रघुबीर।।

बहु विधि भूषण नग जड़ित, देखि चढ़त है पीर।
कब पहिरैहौ निज करन, सुन्दर श्याम सरीर।।

बसन अमौलिक देखि के, मन न धरत है धीर।
प्रिय प्रीतम के योग यह, मणिन जड़ित है चीर।।

रुचि रुचि बसन सम्हार तन, कब पहिनैहों पीय।
कोमल पुहुपहुं ते अधिक, तन सुन्दर कमनीय।।

अंग सुगंध बहु विधि धरे, मणिन पात्र रमणीय।
पिय प्यारी के उर लगै, सुफल होय तब जीय।।

राज साज साहित्य जुत, सब परिकर लिय संग।
निशि दिन बिहरेगे कबहुं, महलनि कुंज अभंग।।

बन बिनोद क्रीड़ा ललित, साझ सबेरे बाग।
कब देखेंगे नैन यह, जगिहै हमरो भाग।।

फूल बाटिका महल की बिहरत युगल किशोर।
कबहुं कि यह छबि देखि हौ,मनहारी चित चोर।।

जल विहार सरयू सलिल, करत सखी जुत लाल।
कब देखे झीने बसन, चिपट रहे छबि जाल।।

कबहुं परस्पर प्रीति बस, अरस परस शृंगार।
करत देखिहौं प्राण पति, लहसनि कुंज मझार॥

रचि सिंगार दोऊ खड़े, दै हित सो गलबांहि।
कोटि रतन तब वारिहै, तन मन से बलि जांहि॥

कब देखौ वह माधुरी, जनक लाड़िली संग।
प्रीतम हित बतिया करत, उर अति मोद उमंग॥

सुरति विहार बहार की, बातें अलिन समाज।
सुनि सकोच दृग लाड़िली, देखहि बदन सलाज॥

कबहुं कि वह दिन होयगो, जनक लली के पास।
चेरी ह्वै नेरी रहौं, लैहौं अंग सुबास॥

कब लखि है नख माधुरी, पद पंकज दृग मोर।
जिन ससि को तरसत रहैं, मुनि गन भये चकोर॥

सरद रैनि की चांदनी, बिहरत युगल किशोर।
नृत्य सहित दंपति लखैं, सखि मंडलि चहु ओर॥

करैं मान जब लाड़िली, प्रीति बिवश तुम संग।
कब मनाय सिय स्वामिनी, आन बटाऊं रंग॥

मुरक चलन तिरछी नजर, पिय तन चितवत नैन।
कब सुनिहौं निज कान सों प्यारे प्रीतम बैन॥

बहुरि मान को छोड़ि कै, प्रीतम उर उमगाय।
मिलत देखिहैं नैन यह, जन्म सुफल हो जाय॥

राम अमित मुख स्वेद कन, प्यारी तन झलकंत।
करिहौं कब पंखा पवन, हरिहौं श्रम हुलसंत॥

सैन कुंज पुनि गवन करि, करिहो सखिन निहाल।
सो छबि कब हम देखिहौं, प्रीतम संग रसाल॥

मिल विलसत प्रीतम प्रिया, फंसे रूप छबि जाल।
तन मन से अंगन रमे, प्रेम छके रस चाल॥

बातें केलि कलान की, शील सकुचि दृग लाज।
कब देखोगी दृगन हम, रस बस रस के काज॥

रस माते रस पान कर, रस राते तब नैन।
रस छाके रसकेलि मैं, नैन मते छबि मैन॥

नैनन लखि छकि है कबै, मैन छकी दृग मैन।
नैना पल लागै नहीं, मुख से बनै न बैन॥

कब हम देखौ लाड़िली, छकी छबीली कांत।
मिथिल बदन भूषण बसन, पिया केलि सुरतात॥

भूषण बसन सम्हारि है, सुन्दरि सकल सुदेश।
पलक पीक कज्जल अधर, यह छबि लखै हमेश॥

हे करुणाकर जानकी, राम जानकी जान।
सब परिकर की जान तुम, हे मम जीवन प्रान॥

कब दिखाइहो महल सुख, पय पीवन रुचि मग।
श्री महराज किशोर युत, सयन समय की सग॥

अलिगन पान कराय के, सयन करत सुख दैन।
प्रीतम सग पौढ़ी महल, सखि छबि छकिहै नैन॥

लाल लाड़िली छबि छकें, जागे महलनि कुज।
कब यह छबि मैं देखिहौं, जगि है भाग सपुज॥

मिलन सुधि कीजे हो मोरी।
कसकत हिये वियोग निहारे, रैन दिवस सुनि बोरी॥
छिन-पल-कल नहि परत सखी री, सिय स्वामिन बिन मोरी।
सुभ शीला की जीवन धन है, मिलि मिथिलेश किशोरी॥

जगे आली पिया प्रेम रस भीने।
नयनन नेह खुमारी झुमति, प्रिया अस भुज दीन्हे॥
रास नृत्य छबि सुख के भोगी, दृगन मैन छबि लीन्हे॥
सुखमा अंग अपारी झलकत, रतिपति की छबि छीनें।
सुभशीला सिय अलक सम्हारति, नेह शिथिल तन कीन्हें॥

प्रात समय आन सखी मधुरतान गावै।
प्यारी प्रीतम सुजान जगे दर्श पावै॥
राम श्रमित छबि निहारि वारि फेरि जावै।
तन मन की तपन मेटि उर मे सुख ल्यावै॥
आरति सुनि श्रवन नयन लली लाल जागे।
घुर्मित लोचन विशाल प्रिया प्रेम पागे॥

बिथिरित दोउ कच कपोल भूषण उरझाने।
नयनन छबि रति विशाल मोद मे समाने।
रास श्रमित अग शिथिल पुनि पुनि अलसावें।
प्रिया कंध अस मेलि फिर फिर झुकि जावे॥
देखति शोभा अपार उर सुख उपजावै।
अधरामृत पान करन सिय ज़ सकुचावै॥
कहत बयन प्रिया सयन नयन मे बतावै।
टुक लाज करो समझि धरो परिकरगण आवै॥
शरद रैन उत्सव मे विविधि आज आये।
ते सब सुखमा विलास देखत छबि छाये॥
तिनकी तन नयन सयन करे उते झाकों।
सुभ शीला ललित प्रेम दृष्टि इतै ताकों॥

राम श्रमित भये लाल, रैन मेन जागे।
प्रिया केलि सुखमा मे लोचन अति पागे॥
थकित केलि श्रमित अंग यद्यपि नहि हारे।
मयन ऐन जंग करन सूर वीर मारे॥
परिकर गण विविध आज भाति भाति आये।
तिनके कछु बेन सुनत मन मे सकुचाये॥
प्रिया अंस मेलि कंध ममनद झुकि बैठे।
मानहु रति कामजीत विजय भवन पैठे॥
सहचरि गण सकल आये दर्श नैन पाये।
देखति छबि शिथिल अयन नयन मे लगाये॥
नयन ललित लज्जित की सुखमा कवि कों कहे।
जानत सोई रसिक अली जिनके उर मोद वहै॥
सरिता उर घुमड़ि बाहिर को आवत है।
नयनन के मध्य मनहु दृग जामी दर्सत है॥
दृगन नीर प्रेम छयो मोद मैन भाई है।
सुभशीला करि प्रणाम पास अलि आई है॥

कनक भवन राजत पिय प्यारी।
पहिरे ललित बसन, सु बसन्ती, सिय पिय मोह भरा री।
परिकरि गण सब समय रूप है, बाग बसन्त फुलारी।
ललनन के तन चंप कली से, लसत भूषणन डारी॥

मदन मनोरथ केलि अनेकन अलि नव गुंज तमारी।
हास बिलास मुकुन्द कली सम, दौडि मदन मनकारी॥
ललित तमाल बदन सिय सुखकर, करि कमलन गलबाही।
मनहु तमाल लता बेली द्रुम, लिपटहि नेह भराही॥

आली हरो चित श्याम सलोना।
अद्भुत रूप अनूप सकल विधि, कोशलेश सुत सुजन खिलौना॥
जिय अकुलाय लखे बिन यह छवि, पितु गुरु जन डर निरखि सकौं ना॥
हिय हुलसत प्रिय मीत मिलन को, अवध कुवर बिन कोइ को होना॥
सचराचर व्यापक सुखदाई, राम राम मम श्याम समौना।
कृपाशील जस प्यारो छबीलो, गुन बल भूल हुआ है न होना॥

वैष्णव-विनोद

श्री वैष्णवदास

काशी-निवासी बाबू कामेश्वर प्रसाद के सुपुत्र बाबू गया प्रसाद उपनाम वैष्णवदास के रचे हुए कुछ प्रेम-प्रधान पदो का सग्रह भारत जीवन प्रेस (काशी) से सन् १९०३ ई० मे छपा। इसमे राधाकृष्ण और सीताराम के प्रणय-विलास एव लीला-विहार के १०५ पद हैं, जो अत्यन्त भावपूर्ण एवं मधुर है।

उदाहरण--

हिंडोला झूलै सिय रघुराई।
मनिन जडित सुन्दर सिंहासन रेसम डोर लगाई॥
कदम की डार डार की झूला सरजू तीर सुहाई।
चातक मोर पपीहा कुहके कीरहु यह धुनि लाई।
सीताराम कहहु मेरे प्यारे जाते बिपति नसाई॥
स्याम घटा नभ ऊपर छाई दामिनि चमक दिखाई।
नान्ही नान्ही बूद परत कचुकि पर पौन चलत पुरवाई॥
राग मलार अलापत सुन्दरि ढोल मृदग बजाई।
देव विमान चढे हरखित मन सुमन बृष्टि झरलाई॥
मेघ स्याम सम बदन राम को सोभा कहि नहि जाई।
वैष्णव दास पाइ आयसु को पुष्प माल पहिराई॥

बृहत् पद-विनोद

रसदेव कवि

लक्ष्मीनारायण प्रेस (मुरादाबाद) से छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बईवाले ने मुद्रित कराकर सन् १९०८ ई० में प्रकाशित किया। यह ग्रंथ भी विशुद्ध काव्य की दृष्टि से सर्वथा आदरणीय है।

उदाहरण--

देख सखि सुभग छबि जानकी रवन की।
श्याम अभिराम तन काम तरु मनहु महि नील नीरद निरखि निखिल निज गवन की॥
क्रीट शिर ललित कल कलित कुंडल जुगल ललित दिनकर मनहु अमित द्युति श्रवन की।
पीत केसरि तिलक भाल भाजित विमल मनहु शशि बीच पथदेव गुरु गवन की॥
अलक आनन परी अमित झलकत कुटिल मनहु शशि घेरि जुग राहु रचि भवन की॥
लसत उरमाल मणि पीत पट कटि कसे मनहु घनजोति घन मिलत रुख पवन की॥
बाहु आजान कुल कमल रघुवंश मणि चारु सर चाप करत कनि मृग ठवन की।
कनक नग जडित आसीन आसन रुचिर देखि रसदेव सतकाम मन भवन की॥

मंजु मूरति मृदुल मोहिनी मन बसी।
क्रीट शिर पै ललित श्रवन कुंडल कलित फलित शुभ भाल पै तिलक केसरि लसी॥
लसत पट पीत कटि कमल लट फसत मुख पियत जनु पन्नगी सुधा शशि मेघसी।
देखि अभिराम छबिधाम की धाम वसु मलत रसदेव सत काम के मख मसी॥

देखु सखि आजु छबि जानकी जानकी।
वदन सोभा सदन कुंद कलिकादन कदन लखि करत मति मदन के मान की॥
अंग भूषन जडित मंग पूषन तडित देव झूखन अडित विपुल फल दान की।
बास परजंक कलधाम रघुवंश मणि दास रसदेव मोहि आस नहि आनकी॥

देखो श्री रघुवीर की आखे।
श्याम सेत बिच अरुन कंज सम जनु बैठ्यौ बटोरि अलि पाखे॥
चितवनि चलनि पलनि पलकन की मीन मनोज खंज मृग माखे।
दीरघ जुगल कुटिल भृगुटी अहि जनु रसदेव लौटि रस चाखै॥

देखु री छबि अधिक बनी है।
गोल कपोल लोल कुंडल कल बोल ठोल अनमोल जनी ह।
भूषन बिन दूषन पूषन जनु मंजु मयूषन जडित कनी है॥
दसन दमक दरसत बिहसनि मे जन घन मे घनजोति घनी है।
मुख मयंक पर लट लटकत जनु पियत सुधा रस सरस फनी है॥

दृग दीरघ मित स्याम पूतरी उपमा छवि कवि कौन गनी है।
जनु अलि युगल कमल दल ऊपर पर पोंछत मकरन्द मनी है।
हरि मूरति मंजुल मनोज लखि सखि नख शिख रस देव मनी है॥

सिय की बेंदी अजब बनी री।
गुवरणा पर विरंचि संचित रचि चित्र विचित्र कनी री॥
कीधौ शशि पूरणा विकसित नभ दूनी दाह घनी री।
कीधौ प्रातकाल रवि कांस्य पूरण जोति जनी री॥
कीधौ अरुन जलज के भीतर झालरि जलज तनी री।
कीधौ महि सुत के ग्रह माथे राजित साजि अनी री॥
कीधौ कम्पा म सम्पा फणि की अहि छोड़ि मनी री।
छवि मनोज मंजुल निरखत यह कवि रसदेव मनी री॥

देखु री छवि राम लला की।
लटकें लट भुजंग मुख पर जनु पियत सुधारस चन्द्र कला की॥
कनक कीट कुंडल कानन पर दिज दुति देखि दबी चपला की।
शोभा सदन वदन की देखत मदन कोटि रस देव भला की॥

छवि मन राम लला की खटकै।
तिलक विशाल भाल केशरि को घुघुवारी लट लटकै॥
पीत वसन की कछनी काछे आछे चरचित अतकै।
शोभा लखि रसदेव छकित भे मनसिज कोटि न भटकै॥

कहा लाल गुलाल लगाए लाल।
सुख सौतिन के संग मे रसाल॥
राति रहे किस घात मे झूठी बात करत परभात काल।
छूटी अलक पलक अलसानी झलक रही छवि छलक आल॥
काजर अधर पीक पलकन पर जावक केसरि तिलक भाल।
भूलो वगन वगन कहा कीनो दसन दाग वर लागे गाल॥
बरबस झपटि लपटि काहू को उर उपटे विन गुनके भाल।
आयो इत रसदेव सांवरो लखि बानिक सब मे निहाल॥

झूलत रघुवर जनक दुलारी।
परम पुनीत पुलिन सरयू की प्रफुलित लता मुदित बन झारी॥
मणि गण जड़ित गढ़ित पटुली यत खम्भ युगल मंजुल अधिकारी।
राजत रसिक शिरोमणि दम्पति आभा अमित अनूपम भारी॥

ओनए नए नील नीरद नभ मन्द मधुर गरजत जलधारी।
दमकत दामिनि दुति दशहु दिश चातक मारवा कीर पुकारी॥
युवती यूथ जुरी जाहिर जग चतुरी जाय झुलावत सारी।
छवि रसदेव देखि दोउन की कोटि मदन तन मन धन वारी॥

झूलत लाल लली सग अलिया।
करत खडी मिगरी दिश वलिया॥
कचन कलित हिडोल ललित कल कुज बलित सरयू तट थलिया।
बरसत घन दरसत दामिनि दुति सरसत जल हरषत सरि चलिया॥
सीतल सीर समीर धीर बर गध गभीर खिली तरु कलिया।
लखि रसदेव उमग आनद को अवध शहर की गलिया गलिया॥

कारी कारी रे बदरिया कारी कारी लागै रे।
निज अंधियारी सारी दामिनि उघारी बारी बारी रे उमरिया बारी बारी पागै रे॥
मोरवा पुकारी हारी झिल्ली झनकारी भारी झारी रे डगरिया डारी डारी बागै रे।
अवध बिहारी रसदेव उरवारी ठारी थारी रे मुरतिया प्यारी प्यारी जागै रे॥

विनय-चालीसी

श्री रूपसरस जी

श्री सियाशरण जी महाराज मधुकरिया जी के आज्ञानुसार श्री राजकिशोरीवरशरण जी (परमानन्द जी) ने टीका कर के ओरियेंटल प्रेस (अयोध्या जी) मे ई० सन् १९३२ मे छपवाया।

इसमे कुल ४० दोहे है। रूपलता जी का दासी भाव है। इसी भाव मे भावित होकर आपने ये अनमोल दोहे लिखे है। भाषा बडी सुथरी और भावमयी है।

उदाहरण--

रघुबर प्यारी लाडली लाडलि प्यारे राम।
कनक भवन की कुज मे विहरत है सुखधाम॥

गलबहिया कब देखिहौं इन नयनन सियराम।
कोटि चन्द्र छवि जगमगी लज्जित को टिनकाम॥

रग रगीली लाडली रग रगीलो लाल।
रग रगीली अलिन मे कब देखौ सियलाल॥

हे सीते नृप नदिनी, हे प्रीतम चितचोर।
नवल वधू की वीटिका, लीजे नवल किशोर॥

हग बीरी रघुवर लई, सिय मुख पकज दीन।
सिया लीन कर कज मे, प्रीतम मुख धरि दीन॥
निरखि सहचरी युगल छबि, बार बार बलिहार।
करत निछावर विविध विधि, गज मोतिन के हार॥

झूलन बिहार-संग्रहावली

श्री कृपानिवास जी

श्री रसिक निवास जी, श्री रसिक अली जी, श्री रामसखे जी, श्री रसभामिनी जी, श्री रसिक बिहारिणी जी, श्री युगलप्रिया जी, श्री सरयू सखी जी आदि रसिकोपासको के झूलन सबधी पदो का यह सग्रह बम्बईवाले सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने डायमड जुबली प्रेस (कानपुर) से सन् १८९८ ई० मे छपवा कर प्रकाशित कराया। सग्रहकर्ता है टीकमगढ के श्री लछिमनदास भडारी। वे लिखते है कि 'श्री परम उपासक श्री रसिकाधिराज सत शिरोमणि श्री १०८ श्री गोमतीदास जी के आज्ञानसार' उन्होने यह सग्रह प्रस्तुत किया। जो हो, यह सग्रह कई दृष्टियो से परम उपयोगी है, क्योकि एक ही स्थान पर एक ही विषय पर अनेक रसिकोपासको के भजनो का तुलनात्मक अध्ययन भाषा और भाव की दृष्टि से सहज ही सभाव्य है। कई स्थानो पर लगता है केवल परपरा का निर्वाह हो रहा है; परन्तु अधिकाश पद हृदय से निकले हुए भावो की भव्य अभिव्यजना मे सर्वथा समर्थ सिद्ध हुए है। ऐसा प्रतीत होता है। इन्होने सीताराम-विहार की दिव्य लीलाओ का साक्षात्कार किया था और आनन्द विभोर हो कर प्रेमावेश की मधुमयी रसदशा मे इन पदो का निर्माण किया था। अस्तु :

सावन आयो मन भावन को गरलावन मोहि दीजै।
पावस पाये प्रान पियारे प्यार अधिक सुख कीजै।
कृपा निवास श्री राम रसिक को अधरामृत रस पीजै॥

जनकपुर तीज सुहावन आई।
झूलत साजि सवारि सखा जन पाय मनोज बनाई॥
पावस मेघ झरै रगवारी झिमरिम झिमरिम झरलाई।
अरुन बरन तन लपट सुहाये उपमा समन बिहाई॥
चहु दिस पूज पूज बनि नागर रग रग छबि छाई।
जनु छबि अंकुर प्रगट धरनि ते लतन बितान तनाई॥
उमग झुलावत मंगल गावत राग मलार जमाई।
बिबिधि पवन की बहन अलिन की गज समूज सुहाई॥
बिबिधि संधार बढत साथनी बेसम सग सहाई।
रीझत जापर जनक लाडली निज कर देत बुलाई॥

लहरैं ललित लेन वै सधनि हास विनोद उम्हाई।
समै सुहावनि सावन तरुन ते हरित भूमि बिगसाई॥

सिया वल्लभ लाल झूलत हो जहा रामराम सीता लाल।
लाल कंचन खंभ सुदर ललित डाडीलाल।
लाल भूषन अंग झलकत लसत चीर सुलाल।
लाल दोउ के वदन सोभा अधर बीरी लाल।
लाल सखियां लाल गावत गावनि सब झुलावति लाल।
मोर हंस चकोर कोयल भनत बानी लाल॥
लाल रोझन लाल ऊपर परस्पर गब लाल।
कृपा निवास गुलाल जो निरख नेन निहाल॥

ए दोउ झूलै रंग हिंडोरै।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दनी चितवन मै चितचोरै॥
नान्ही नान्ही बूद पवन पुरवाईये सब थोरें थोरै।
हरी भरी भूमि घटा झुमि आई सरयू लेत हिलोरै॥
बानी विमल सखी सब गावै अपने अपने ठोरै।
नागरि नाम लिवावत पिय को हसत सिया मुख मोरै॥
हय दल गय दल रथ दल पैदल कोट बन्यो चहु ओरै।
उपबन माझ बिहंगम बोले कोयल मोर चकोरै॥
बाजे बजन लगे चहु दिस सो मनों सघन घन घोरै।
निरतत नटी नटी लघु मोहन ताता थेई तान जो तोरै॥

हिंडोरै झूलत सिया जू प्यारे।
परम मनोहर खंभ कनके मानौ मदन सवारे॥
रतन जटित सुभ डाढ़ी सुदरि छवि पटली मनि हारे।
तापै राजत राम जानकी लेत मधुर सुहुलारे॥
चितवन दोउ चित चोर परस्पर आनंद रस बिसतारे।
समै सुहावन सोभा परमित कोटि मैन रतिवारे॥
'रूपलता' सखि गहै झूलनो निरखत सुमति बिसारे।
कबहुंकि चेतन होय झुलावत रस छाकी मतवारे॥
वर्षत वारिधि लगत सुहावन छूटत प्रीत फुहारे।
भीजत जे बड़ भाग्य सराहत प्यारी चनं अधारे॥
जो सुख उमग्यो का कहि वरनौ चिनमय केलि विहारे।
कृपानिवास विलास विलोकत लोचन परम सुखारे॥

नवल पिय प्यारी जू रहस झुलावै।
सुरति सिंघासन नह नवल दोउ खभ खरी छवि पावै॥
अंग अनंग उमंग ओट रस रमत विनोद उपावै।
मदन मनोरथ घटा छई अरिचाह चपल वर्षावै॥
सकुनालंकृत तलप मुखर वर दादुर समै जनावै।
कृपानिवास प्रसाद उपासिक देखि नैन लड़ावै॥

कीनै बसन मधि लसत दुति कल कनक मर्कत मणि मनी।
जनु जानि रजनी मिली गजनी सरद बादर चांदनी॥
श्री राम बाम सु अंग मिलकै सुभग साभा यो लसी।
जनु काम पावस श्याम घन मे तड़ित चचल रस बसी॥

सभ पुलन पावनि सरित वर जहा झूमि सावर झर झरै।
जनु भूमि इन्द्र सुफाग खेलत सियावर पर रग भरै॥
नव नृप नृप निज बलिजन बहु और लखन लड़ावहीं।
जनु भक्ति भगवत की सुकीरत वेद श्रुति गव गावहीं॥

झुकि झपटि झोरे देत सखिया झमकि झाई जल लसै।
जनु मदन रति सर केलि अवस चपल कौति कर सरसै॥
दुम सघन वन फूले सुमन जहा सकुन मगल धुनि करै।
जन निगम छंद अमंद बानी दंपस उच्चरै॥

लै तान नवल सुजान कबहौं प्रान प्रमदा बारही।
रस जानि निज कृति जानकी वर रूप दृगनि निहारही॥
यह झूलनौ सुखरास परम बिलास पावसि रितु कह्यौ।
फूलि आस कृपा निवास की नित चरन पंकज लगि रह्यौ॥

झुलावत राम रसिक पटरानी।
नह नाह को निरख नागरी नेन मे मुस्कयानी॥
कर गहि डोरि चकी दृगन की चितवनि चन्द लुभानी।
कृपानिवास विलास मगन प्यारी प्रीतम के हित दानी॥

मिल झूलत सीया राम दोउ रसरंग हिडोरे आजु भलै।
अरुन वसनतन भूषन झलकति सुमन सहित मनहार गलै॥
चतुर सिखावति नाम सिया लै स्याम आवै मुद लाज टलै।
मुख मोर हसै पिय ओर लखै पट घूघट मे दृग ओर चलै॥

स्याम गौर रंग एक भयो मनो प्रेम गिधु छबि गंग लै।
यो केल परम सुख छाय रह्यो नव कंज नवल रस नेह डलै॥
यक प्रीत बादरी गरज उठी झर ज्यौर बन्यो अलि प्रान थलै॥
सखियां कल कोकिल मोर मना रस गान सुने रति राज छलै॥
चहुं ओर समाज विराज रह्यौ मनो मोद बाग सुख फूल फलै।
अति नेह हुलास बिलास बढ़्यौ लखि कृपानिवास के नैन खुलै॥

सिया स्वन हिडोरै झूलै पिय जू के संग।
प्यारो नेह जनावू कर डोरि झूलावै गावत प्यारी गुन परम उमंग॥
कोई सरस हिलोरो पिया करत निहोरो मन रावरे हाथ तनत रत तरंग।
प्रिया रीझ भीज दृग सैन दई अलि चतुर गभारि मिलाये अंग॥
रस केलि रले सखि नैन पले देखि लुभाने अमित अनंग।
रस प्रीत डरी सुख यह भारी कृपानिवास हुलास अभंग॥

सिया रहसि हिडोरने आज झूलै छे।
दोउ गरबाही महलन छांही छबि रंग अगद फूलै छे॥
सुरति झाटलाल गैहै सुहावनि मनरा फेलन भूलै छै।
कृपानिवास सिया पिय सोभा देखि सखी जन फूलै छै॥

आज रस भीने प्यारे झूलत डोल।
कर सों कर दृग सों दृग सब मे हंस हस बोलै दोउ रस भरे बोल॥
फाग मेस अनुराग उघारत सुघर सुघट पट उट पट खोल।
कृपानिवासी हली मन दीन्हो जानकी बर कर थिर नित ओल॥

इन नई रीति निहारि बाढ़्यौ अलिन उर आनन्द।
दृग कंज प्रफुलित लाल के निरखत सिया॥
मुख चन्द प्यारी बदन जलजात छबि मकरंद अलि पिय नैन।
रसपान करत न टरत छिन छाये छके दिन रैन॥

हिय हार उरझे दुहुन के त्यौ अली झोंका देत॥
सुरझै न झोकनि झपटि लपटी नवल पिय रस लेत॥
लखि श्रमित सम झूलन पिया प्यारी लई भरि अंक।
लै गोद पिय झूलन लगे लखि छके वदन मयंक॥

सनमुख सरस झूलन लगे अति झमक झोंटा देत।
प्यारी पिया उर कंठ लिपटी अली सो रस लेत॥

इक अली युगपट ग्रन्थ दै शिर मौर मौरी धराय।
वे ब्याहता बन लगी ललना मोद हिय सरसाय॥

आंदोल केलि निकुंज यहि विधि झूले सिय रघुलाल।
पुनि चित्र बन मन मुदित गमने रूप निधि सुखजाल॥
कोटिन अलीगण संग शोभित रूप गुण की मूरि।
जिनको निरखि रति लाजत अपर उपमा कूरि॥

हिंडोरै झूलत सिय ठकुरानी।
श्रुत कीरत उर्मिला माडवी रूप शील गुन खानी॥
मचा हिंडोला नाम शिवावति चतुर सखी मुसकानी।
सिय जू सकुच रही नहिं बोली अग्रअली मनमानी॥

सिय झूलत हिंडोरै पिय संग बनी।
सरजू तीर सोम वट छाही संग सखी नव नेह सनी॥
पहिरे बसन सुरंग सुगंधी भूषन जड़ित सुरंग मनी।
गावत ताल रंगीली तानन रस मालिन बलहारी मनी॥

झूलत सिय पिय आज हिंडोरे।
घन गरजत बिजली अति चमकत बरसत रिमझिम बोलत मोरै॥
ज्यों ज्यों प्रीतम रमक बढ़ावत सिय डरपत पकरत पट छोरै।
रसमालिन बिमलादि सखी सब नाचत थेइ थेइ तानन तोरै।

हिंडोरै झूलत सिय प्यारी॥
सरजू तीर हिंडोल कुंज बिच सुरतरु को डारी॥
प्रीतम रमक बढावत गावत करि अलाप चारी।
डरपत लली दमन रस लागहिं हंसत सखी सारी॥
बैठी पिय भरि अंकलीन सिय बड़े प्रमोद भारी।
रसमालिन यह रस बिनोद लखि रति पति बलहारी॥

हिंडोरै झूलत जुगल किशोर।
श्याम गौर मन हरन ललन दोउ अंग अंग अति चितचोर॥
भूषन बसन सरस रस छबि लख उमगत जोबन जोर।
चखत पान परस्पर दोऊ निरखत दृग की कोर॥
हंस हंसि अली मदित मन गावै झोंका दे दुहुं ओर।
रसमालिन छबि निरख दुहुंन की वारिय काम करोर॥

हिंडोरे झूलत भर अनुराग।
सिय जू के भीजे सुरग चूनरी सुभगराम सिर पाग॥
गावत राग मलार परस्पर छबि छहरत बनबाग।
विश्वनाथ मुख निरखत हरखत सरसत सरस सुहाग॥

धीरे धीरे झूलो लाल सिया सुकुमारी।
रूप रसीली रस मय मूरति सखियन प्रान अधारी॥
चन्द बदन मृग सावक नैनी दसन अधर अरुनारी।
कंपति तन श्रम बिन्दु विराजत सरजू सखी बलिहारी॥
रंग महल मध्य पिया प्यारी दोऊ झूलैं चहुँदिस सखि ठाड़ी गावत मलारैं।
विद्रुम पटली राजै दामिनि की छवि लाजै श्याम अंग घटा में रस की फुहारैं॥
उड़त बसन सिरकेस छूट रहे ललित कपोलहि परहि न सम्हारैं।
सरजू स आजु स्वामिनी सुरंग भरि नैन विलोक सखी तन मन वारैं॥

प्यारी संग झूलत पीतम प्यारों।
मृदु मुसक्यावत मोद बढ़ावत नव जोबन मतवारों॥
रिमि झिमि रिम झिम मेहा बरसत गरजत बादर कारो।
सरजू सदी सिय पिय छवि निरखत जीवन प्रान हमारो॥

झूलत सिया राजिव नैन।
रतन जड़ित हिंडोरना सखि राम सुख के अैन॥
स्याम अंग पर गौर झलकत दामनी घन गैन।
मैथिली रघुवीर सोभा निरख लाजत मैन॥

नाम पियको लेहु नारि ज्यों सखिन मन चैन।
श्री जानकी नहि लेत मुख तै देत लोचन गैन॥
श्री जानकी नहि लेत मुख तै देत लोचन सैन॥
परस्पर झूलत झुलावत बदन मधुरे बैन।
अवधि पुर निज केलि दम्पति अग्र आनन दैन॥

झूलत राम राजिव नैन।
जनकजा मन मुख विराजै नड़ित ज्यों घन गैन॥
हृदे झूलत मनहि फूलत रसहि पोखत मैन।
लाल के उर लागि राजित निरख रेखा अैन॥
परस्पर अनुराग दोऊ बदन मधरे बैन।
जालर घन निरख बनिता अग्र उर मुख दैन॥

सियाराम पचीसी

मदारी लाल वैश्य (सहादतगंज, पुराना चौतरा लखनऊ) द्वारा किए हुए इस संग्रह को सेठ छोटे लाल लक्ष्मीचन्द (बम्बई वाले) ने रामा प्रिंटिंग प्रेस (फैजाबाद) से अक्टूबर सन् १९०६ ई० में मुद्रित करा कर प्रकाशित किया। इसमें 'सिया सोने की अगूठी', 'राम सावरो (नीलम) नगीना है।' इसी भाग पर पच्चीस कवित्त-सवैये हैं जो बड़े ही मनमोहक और गेय हैं। प्रतीत होता है, इस समस्या की पूर्ति स्वयं श्री मदारी लाल ने की है और एक ही प्रसंग पर ये पच्चीस कवित्त-सवैये बड़े ही प्यारे लगते हैं। भाषा साफ सुथरी प्रवाहमयी और प्रभावोत्पादिनी है। स्वरूप का ध्यान मन को बरबस आकृष्ट कर लेता है।

उदाहरण—

इतै मृग अंक मुख उतै मृगराज लंक,
इतै गजराज गति उतै मद मीना है।
तै नैन खंजनीन उतै खंजनीत,
इतै उतै खंजनीन हीना है॥
इतै प्रेम पूरन है उतै प्रेम पूरन है,
इतै उतै दोऊ लखि मेघा गति दीना है॥
लपन गगन बानी गिरा देखि गिरै सिया,
सोने की अगूठी राम नीलम नगीना है॥

नैना अनियारे मृग खञ्जन से न्यारे,
देव शोभा के पिटारे सुठि मानो जग मीना है।
कम्बु सो ग्रीव दंत दाडिम लजाने,
नासिका सी कीर शब्द कोकिला प्रवीना है।
हरिहू सकाने कटि पेख भुजदण्ड मानो,
माधो बखाने मेष करिवर को छीना है।
मेरे मन आली सुन आपहू बिचारि सिया,
सोने की अगूठी राम सावरो नगीना है॥

ऐरी सुन आली आज देखे हैं कुवर द्वै,
आये फूल लेन तहा दरस आज कीना है।
आई जा घरी से सुधि भूलत ना एको छिन,
कैसे करू वीर मेरो चित्त चोरि लीना है॥
बाणी सकुचानी आली किमि कहै रूप,
गाती को छाती हुलसाती ज्यो बारि बीच मीना है।

मुदित मदारी कहै उपमा सब वारूं सिया,
सोने की अगूठी राम नीलम नगीना है॥
कंज से नयन रभा तरु से बिशाल जघ,
नाल से उताल भुज दड लव लीना है॥
शुक तुड नासिका मरालन की गति छीना,
कोकिला की बाणी भई बाणी पर छीना है॥
केहरि सो कटि वृप कध सो सुभग,
कध काम फर फद भृग द्रग भृग दीना है॥
कहै रामलाल जोडी रुचि रुचि बनी सिया,
सोने की अगूठी राम नीलम नगीना है॥

भजन, रसमाल

श्री वेकटेश्वर प्रेस से छपा श्री हरिचरणदास जी के ग्रथ मे सीताराम के शृगार विहार एव विविध लीलाओ के पद साधना और साहित्य दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। श्री हरिचरण दासजी ने ग्रथ के अन्त मे अपना परिचय दिया है—

राज्य है मझवली जग जाहिर सुखली तपा।
मौजे पैकवली पवहारी जी को धाम है॥
श्री स्वामी सीता आदि रामदास महराज।
जिन्ह के निशिवासर सियाराम ही सो काम है॥
तिनके लघु शिष्य हरिचरणदास पास नित।
कसबे गोपालपुर जीले सरनाम है॥
रानी हरियालि जी के मदिर महथ एह।
'भजन रस माल' कहि लही सुख आज है॥

सवत् १९४७ के भाद्रपद कृष्ण १० रविवार को श्री हरिचरणदास जी ने यह ग्रंथ पूरा किया—

सवत् मुनि[७] श्रुति[२] अक[९] शशि[१],
कृष्ण भाद्रपद मास,
तिथि दिग[१०] रवि दिन रोहिणी,
किए चरण हरिदास॥

इसमे झूलन विवाह, सरयूतट विहार, होली, वाटिका विहार, जलविहार, कनक भवन-विहार के गेय पदो का खासा अच्छा संग्रह एक साथ मिल जाता है। सभी पदो पर राग-रागिनियो मे नाम दिये हुए है।

झूलत झूलन अवध रंगीले।
पहिरे हरित वसन वर भूषण कोटि मुकुट झमकीले।
कहि न सकत छवि शेष गणेशहु शारद की मति हीले॥
अति सुख साजि झुलावति सिय सखि सोभित तन पट नीले।
जन हरिचरण युगल जोरी यह मोरे हिय मो वसीले॥

देखु छवि झूलन की सखी त्रिण तोरि के।
श्याम तन राम घन सुभग दामिनि सिया झूलन दोउ गरजु तट हँसत मुख मोरि के।
मंजु मणिखंभ सु विचित्र पटु लीं जड़ित हरित वपु वसन नग लेत चित चोरि के।
देत अति झोक नहि रुकत पीनम प्रिया कहत हरिचरण मोहि चितव दृग कोरि के॥

राम सिया के झुलावे सखि झुलना।
कटि अतलस के लहगा पहिरे सारी सुरंग रंग तुलना।
हलकन हार हुमेल निलरिया सिर सेंदुर कर फुलना॥
कजरी गावै तान सुनावै श्री सरजू जिके कुलना।
जन हरि चरण रहस सावन के निशिदिन छवि एह भुलना॥

झूलत सिया संग प्राण पियारे।
रवि शत कोटि कीट दुति निरखत वदन मयंक शरद छवि हारे।
कुंडल झलक अलक लटकन वर अलि अवली जनु करत जो हारे॥
भाल विशाल तिलक गोरोचन नैन मऊ सरमिज रतनारे।
नासा मणि सोभित अधरन पर गले बैजंती माल सँवारे॥
कटि किंकिनि पटपीत मनोहर कर कमलन धनु सायक धारे॥
मंद हसनि रति मार विमोहनि चितवनि चोरित हृदय हमारे॥
भावन घन घमंड चहुदिसि ते गरजत मेघ घटा अतिकारे।
जन हरिचरण झुलन झाँकी पर तन मन धन सखिया सब वारे॥

आजु सियावर झूलन झूले।
सावन अधिक सुहावन पावन छवि छावन सरि कूले॥
वकुल कदंब तमाल देवतरु वन प्रमोद सब फूले।
कोकिल नाद गान सहचरि को सुनि धुनि मुनि मन भूले॥
लालन साथ सखा सब बनि ठनि सिया सखी सम तूले।
दे गलबांह नाह प्यारी दोउ उमगि राजरस मूले॥
मणिमय खंभ डोर रेसम की हेम रचित सुख डोले।
जन हरिचरण विलोकत अनुदिन भुवन भाग जेहि खूले॥

आज राम ब्याह सुनि पुर नभ जै जैति धुनि साजि के विमान देव देखबे को आयो।
मणिन मै वितार रच्यौ हरित वेणु पत्र खच्या मानिक तह खम्ह सच्या अद्भुत छबि छायो॥
बैठे चारो कुमार कुल गुर दोउ श्रुति उचार रीति सहित दान मान सुनि जन गुन गायो।
मागे रुचि जाहि जोइ दीन्हो नृप ताहि सोइ लीन्हे कर चवर हरीचरण शरण पायो॥

राघो जी के उनीदे नैना।
लट पट पाग अलक मुख विथुरे बोलत कल बल बैना।
मोतिन भाल गले बिच हलकै झलकै छवि दिन रैना॥
ठुमुकि ठुमुकि पग धरत धरनि पर गति लखि लाजत मैना।
जन हरिचरण कमल मुख धोवत सो सुख शेष कहै ना॥

मोरे मन मे बसो नृप लाल लली।
इत रघुनाथ श्याम सरसीरुह उत सीता चपा कि कली॥
सोभित सखा सहित रघुनदन उत राजति सिया सग अली।
क्रीट मुकुट कुडल श्रुति गाहे सिया कि चन्द्रिका विधु भली॥

सरद सोहाई निहारो निशि नीको।
केदली मंडप मध्य सिंहासन लपत भानु छबि फीको।
तेहि रजनी अवधेश कुवर वर सोभित सग लिए सीको॥
सुरभी छीर विलोकि विमल विधु वरपत पास अमी को।
जन हरिचरण निरखि जोरी युग हरखि मोद अति जीको॥

आलि री आज चलो श्री अवध नगर नृप कुवर खेलै जह फाग।
पहिरे वसन वसती जामा पटुकन मोती लाग॥
कर पिचकारी निहारि नैन भरि सुफल करौ निज भाग॥
मणिमय मुकुट मनोहर माथे गाले पान सुराग।
केशर खोर भाल श्रुति कुडल लखत मदन तन जाग॥
सुनि होरी गोरी सब बनि ठनि चलि अग साजि सुहाग।
जन हरिचरण फाग सरजू तट निरखत अति अनुराग॥

नचाये हरि फाग नृप खोरी।
सग सखा रिपु वदन भरत अरु लखन रग झोरी।
पकडि अली मिथिलेश लली के मोतिन लर तोरी॥
यह सुनि सिद्धि कुंवरि सखि सुदरि प्रभु पटुका छोरी।
जन हरिचरण दोउ दल रसवस लखत जुगल जोरी॥

देखि के सुन्दर स्याम धाम नृप दसरथ को कोटि शतकाम मद सोभा को सटको।
कीट मुकुट कुंडल वनमाल हार मुकुटन को किंकिनी ललाम दाम नुपूर पग लटको।
ऐसो निकाई हरिचरण हिय छाई आज मुख की लुनाई शशि कोटि छबि छटको।
धाई पुरनारी कुल रीति को बिसारी वारी प्यारी पियनि रखत जग दुटे लाज फटको॥

रामप्रिया-विलास

भाव की रसमग्नता एव सम्बन्ध की अनन्यता का सुदर मधुर निदर्शन। राग रागिनियो पर ध्यान विशेष है और लक्ष्य है गेयता। परन्तु कुछ पद बडे ही सजीले और प्रभावपूर्ण है। भाषा टकसाली है, प्रवाहमयी।

राधो प्यारे आज खेले होरी किशोरी संग।
कुकुम अगर कपूर अरगजा मृगमद कीच मचोरी अबिरा की धूर-उडावत गावत धूम मची चहु ओरी॥
प्यारो परम प्रवीण प्यार सो पकरि मली मुख रोरी मानहु जलद अक गहि दामिनि लरि शशिसो रग वृष्टि करोरी।
राम प्रिया दोउ निरखि परस्पर हसि झिझके मुख मोरी जनु खजन जुरि जुरत परस्पर बिज्जु छटा लखि भाजि चलो री॥

बिजन गोलैहो पुष्प मालिनि मनैहो,
वस्त्र भूषण पन्हैहो नीकी पलक बिछैहो मैं।
बीरिह लगैहो पग पकज दबैहो,
चारु चामर चलैहो दासी रावरी कहै हो मैं॥
अनत न जैहो न तु दीनता सुनैहो निज रामप्रिया
सीम काहू और पैन नैहो मैं।
राजन के राज महाराज राघवेन्द्र राम
आपकी कहाय अबकाहू की न ह्वै हौ मैं॥

मैं दरश लोभानी कोऊ जतन बतावै कोय।
इश्क दशा कोऊ आशिक जानै जो रंग रातो होय॥
अलख अगोचर सेज पिया की क्योकर मिलना होय।
रामप्रिया को रघुकुल भूषन राह देखैया होय॥

भक्त-प्रमोदिनी

अयोध्या-निवासी पं० रामलोटन मिश्र रचित 'भक्त प्रमोदिनी' परम प्रेमाभक्ति के रस म पगे पदो का संग्रह है। आफताब प्रिंटिग प्रेस (फैजाबाद) से १९२२ ई० मे छपा।

दृगन बिच बसि गयो राज कुमार।
जिया मानत नाहीं ए तरिसि रहे दोऊ नैन दरस बिना कैसो करो दसरथ के लाल वै
तो रघुबन्शी दिलदार।।
अलक झलक घूघुर वाले चिकनारे कारे दृग रतनारे प्यारे कोटि काम वारी डोरो
लौटन के जीवन अधारे सुकुमारे बारे सन्तन प्राण अधार।।

प्रभू मैं बटिया जोहों तोर। अब रही आश एक तोर।
लागे अषाढ़ मेघ नभ छाये पिया मोर नही हाल पठाए।
पपिहा पिउ पिउ शोर मचाए कृपा करो दशरथ के छोर सावन में सखि झूले हिंडोला,
गावत गीत प्रेम रस बोरा सुनि सुनि देत बिरह झकझोरा रघुपति हरी बिपत्ति सब
मोर।

भादो मास रैन अंधियारी गरजत घन बरसत अति बारी।
कोउ न सुने यह बिथा हमारी देखो दयानिधि अपनी ओर।।
लागे कुआर शरद ऋतु आई चले पथिक सुन्दर मग पाई।
ऐहैं कब पिया गले लपटाई लौटन कहत दोउ कर जोर।।

रहब कैसे नगरी तोरी रे सांवलिया।
दोहा प्रीति करी सुख लहन को इत उत दोउ बन जाय।
निठुराई प्रभु मत करो दीनी सुरत भुलाय।।
लगब केहि कगरी।

करम कुटिल की फेर पड़ी, चलत न कोई उपाय।
तुम चाहो पल मे बनै झपबो सब मिट जाय।
हीय भाग अगर हारे मैं सेवक तुम स्वामी हो सुनिये कोशल राज।
अब तो निबाहै बनेगी।
बांह गहे की लाज।
फिकिर मेरी सगरी तोरि रे गवलिया।
अवध नगर सरयू नदी संतन को दरबार।
सिय राम तहां बसत नित लौटन के रखवार।
अवध की डगरी बसब सावलिया।।

सीताराम-नखशिख-वर्णन

प्रेमसखी-कृत

सीता और राम के नख-शिख का यह वर्णन विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। शब्दो मे चित्र खीचने की कला मे प्रेम सखी को अपूर्व सफलता मिली है। लीला विनोद का अन्तिम अश, जहा सखियो न राम को लहगा चोली पहना कर स्त्री-वेश मे सजाया है और सीता जी के पास गौने मे आई नई वहू के रूप मे प्रस्तुत किया है वह दृश्य दर्शनीय है। कुल मिला कर इस ग्रथ को मात्र साहित्यिक दृष्टि से, रग की दृष्टि से, परम सग्रहणीय एव आदरणीय माना जायेगा।

कैधौ पारिजात के सुमन की ये पाखुरी है जावक सजाग अनुराग रस भीनी है।
जग चतुराई की कुसलताई पाई तब सुखमा समूह का विभाग विधि कीन्ही है॥
पति को अतन जानि रति कज ढिग आनि पच बान बानन की गासी धरि दीन्ही है।
विधि हर मेरे दग भालन की भाग थली प्रेम सखी सिया पद आगुरी नवीनी है॥

है युग खम्भ ए कचन के पलना पग झूलन आए सिगार है।
प्रेम सखी मन डोरी तनी गति हगन की सी झुलायत मार है॥
गावती गीत अली बिछिया रघुनन्दन नेह नचावत हार है।
पीन सुढार बनी चिकनी ये विराजत जानुकि जानु उदार है॥

नीलम नीली कसी ससी है मध्य कचन के तन जाति केधौ सिगार पाति साजी है।
आई स्याम ताई की निकाई सब सिमिटि कै जाहि देखि देखि रोम रोम पिय राजी है॥
झीनि दरसात है विशाल छवि सरसात रूप सुधासर मे सवार सी विराजी है।
प्रेम सखी मेरी जान सुखमा समूह राजी गुन गन राजी धौ सिया की रोम राजी है॥

प्रेम सखी सुखमा सरने उमडी छवि चारु तरग भली है।
प्रेम प्रभा ह्वै त्रिवा दरसै जिन पै परि डीठि हलीन चली है॥
देखे व नैनहि जात कही पिय के चित की विश्राम थली है।
धारे मनोहर रूप अली परमादिकि धौ सिय की त्रिवली है॥

वोरी रग नील है किशोरी जू के गोरे गात छवि सरसात देखि कचुकी सुहाई है।
नगन जटित बूटी चारु जर तारिन की असित निसा मे ज्यो नखत छवि छाई है॥
रुचिर वनी है नेह सो धेन सनी है जामे सुखमा घनी है प्रेम सखी मन भाई है।
उरज नवीन तरु चारी है विहारी दृग मृग फादिवे को प्यारी जारी सी लगाई है॥

प्रेम वसुधा से सिय अधर सुधा से वैन ललित सुधा से प्रिय अधिक सुधा से है॥
सहज हंसो है अनखो है न कदापि होत बिबा से अरुन है कमल मोद वासे है।
माधुरी अनूप जाने प्रीतम के मन नैन रहत निरतन जो पियत पिया से है।
देखि देखि प्रेम सखी वारने करत प्रान जनम अनेक के अखिल अघ नासे है॥

नैन अनिआरे तारे पुंडरीक पान सारे सिय पूतरीन पै द्विरेफ गनवारे है।
कछु कजरारे सील सागर सुधा सुधारे वरुनी विशाल धारे जोर छोर वार हैं॥
दीन पै सनेह वारे प्रीतम के प्रान प्यारे उपमा न पावत विरचि रचि हारे है।
मीन मृग खजन बनाए विधि प्रेम सखी वारि वन व्योम बसै लज्जित विचारे है॥

वा अनियारी विलोकनि की छवि गाइबे को विधि की बुधिहीन है।
प्रेम सखी मिथिलेश सुता की कटाक्ष के कोर भए गुन तीन है॥
मीचु समान दशानन की सुर धेनु समानि सु पालत दीन है।
रूप सुधा की तरंगिनी सो निशिद्योस जहा हरि को मन मीन है॥

अमल कपोल पर तिरे सो बदाने कौन देखै वनि आवत तरौनन समेत है।
ढके नील सारी सो किनारी जरतारी कार अलकै वलित ह्वै अधिक छवि देत हे॥
तरनि तनूजा विध् व्याल लघु लागे मोहि उपमा न दीन्ही प्रेम सखी एहि हेत है।
एई बड़ भागी जाहि सिय छवि प्रिय लागी परम अभागी जे अनत चित देत है॥

मेचक सघन सुकुमार हे सेवार हैं ते सिया ज के सीस के विराज विशाल वार।
मोर पखवार तमधार मरकत तार पन्नग कुमार रचे कोटि कोटि करतार।
उपमा के हेत प्रेम सखी बुधिवान प्रभु करत रहत नित नए नए उपचार।
मोर पच्छ डारे त्वच पन्नग नवीन धारे मन म न आवै तौ बनावै विधि बार बार॥

झीनी हू ते झीनी हे नवीनी नित नित होत नील रग सारी प्यारी सुधा सो सुधारी है।
सब सुखकारी जापै मेघ माला वारि डारी दामिनी सी चहुधा किनारी जरतारी है॥
भागन की भाग ऐसी सुखमा सोहाग ऐसी सिया जू कृपा कै जाहि निज तन धारी है।
उपमा न आवै तो बतावै कैसी प्रेम सखी देखि देखि होत वार वार बलिहारी है॥

राजिव नैन के नेनन की छवि जानत नैन विलोकि भये धनि।
तैसे विसाल बडी वरुनी दृग सुदरता सखि आई सबै बनि॥
प्रेम सखी जिनकी सुखमा जुग कोटि लो शेश न आपु सकै गनि।
मीन मृगा अरु खजन वापु रे दै उपमा बदनाम करौ जनि॥

नामी की निकाई जाति कौन पहु गाई जाते उपजै विरंचि जो पसारे जग जाल है।
रूप सुधा वापि सी विराजत गभीर धीर रोमन की राजी जापै सूक्ष्म से बाल है॥
त्रिबली निसेनी सी अधिक सुख देनी श्रेनी हमन की आवत विचित्र मनी माल है।
प्रेम सखी मेरी जान सुदृढ़ बनायो यह पादप सिगार को ललित आल बाल है॥

जंघा जानु युगल विलोकि रघुवीर जू की उपमा को विरंचि विरंचि पछितात है।
कदली के खम्भ जे बनाए बहुतेर ते तौ मानि लघु आपुको कम्पत पात पात है॥

मत्त गजराजन के कीन्ह सुंडा दंड फेर वापुरे लजाय कै निकारि दए दांत है।
विधि सों न आवै तौ बनावै कैसे प्रेम सखी इनकी समान मोहि एई दरसात है॥

प्रेम सखी तरु सबै फूलन के भारन सों लता बेली अरुझानी भूमि झुकि आई है।
विविधि बहत वात सीतल सुगन्ध मन्द कुहु कुहु बोलै कारी कोकिला सुहाई है॥
अलिनी अलिन सग नलिनी निकुजनि मे मत्त मधुपान फिरै दशौ दिशा धाई है।
जनक सुता के अंग भुज दीन्हे रघुनाथ तिन बन बीथिन मे रमत सदाई है॥
गोर श्याम अंग रति कोटिन अनंग सग जाकी छवि देखि होत लज्जित बिचारे है।
चद कैसा भाग भाग भृकुटी कमान ऐसी नासिका सुहाई नैन जोर छोर वारे है॥
आठ अरुणारे तेसे कुंद से दसन प्यारे ललित कपोलन पै कच घुघुरारे है।
अंस भुज धारे दोऊ नील पीत पट धारे प्रेम सखी राम सिया जीवन हमारे है॥

कचन की गजरी बिछिया तुम को लहगो अंगिया पहिराइ हौ।
कचुकी साजु खवाइ घिरी पहिराय चुरी अवतस बनाइहौ॥
मांग सवारि के प्रेम सखी सिर सेंदुर दै फिर अंक लगाइहौ।
दे तिय को छबि सुन्दर जू हम लाडिली जू के अजूरि नचाइ हो॥

जावक लगायो जल जात ऐसे पायन मे बिछिया कलित ह्वै अधिक छबि छाई है।
घूमि रह्यो घेर वारो लहगो सवज रग नील जरतारी सारी कचुकी सुहाई है॥
प्रेम सखी अंग अंग भूषण विविध साजि वहू वहू कहत वधूटी गहि ल्याई है।
सुभगा सखी सिया जू के तुरत हजूरि कियो नवल बधूटी एक सासुरे ते आई है॥

फूल-बंगला

श्रीमोदलताजी

श्री मोदलता जी द्वारा सपादित यह छोटा सा ग्रथ 'फूल बगला' भगवान राम और भगवती जानकी के फूल शृगार एव युगल विलास के पदो का एक सग्रह है। इस संग्रह मे सब प्रकार की सरस रचनाएं है।

सजि सुमन शृगार, दोऊ सोहै भरे प्यार, छाई शोभा की बहार फुलबंगला मे।
दोउ कर भुज डोर, हेरै दृग पट डारप्रेमी-जन-बलिहार-फुलबंगला मे॥
मन्द मुसकै निहार करै हिया आरस परस-रस वर्षो अपार फुलबगला मे।
झाकी बाकी मजेदार, गावे गुणी यत्र धार होत सुमन न्योछार फुलबगला मे।
धन्य स्वामिनी हमार-धन्य राघो सरकार मोद नाचे जय जयकार फूलबंगला में।

रंगे मोरे नयना युगल शोभा।
श्याम गौर मिलि अनुपम झाकी मनहुं मेघ संग तड़ित दुरैना।
अरस-परस गलबाही दीन्हे लसत मनोहर मृदु मुसकैना॥
कीट चन्द्रिका नासा मणि नथ डोलत कुंडल कर्ण फुलैना।
'मंजुलता' नव-जित स्वामिनि देखत भाव बखान बनैना॥

बिन देखे नयनवा न माने हो।
जब से लखी दृग माधुरी मूरति रूप सुधा रस चमकाने हो।
मुख सरोज मकरन्द पान करि जन मधुकर मन मस्ताने हो॥
जिमि शशि ओर चकोर विलोकत रूप सुधा रस चमकाने हो।
अहह सुजान राम प्रिय तुम बिनु कौन मौन मन की जाने हो॥

नैनन की बलिहारी हो श्री प्रिया जी।
भाव भरे रस भरे है मनोहर मुद-प्रद अवध-विहारी हो॥
चितवनि चपल चतुर चित चोरत, मुरनि-ढुरनि अति प्यारी हो।
अंजन बिनही सोहावन बानि, वर्षा बन सुखवारी हो॥
पगे प्रेम प्रीतम सुजान नित, नवल रसिक विहारी हो।
हेमलता उपमान वारि सब, अनमिष रही निहारी हो॥

ये दोऊ चन्द बसो उर मेरो।
दसरथ सुत श्री जनक नन्दिनी अरुण कमल कर कमलन फेरो॥
बैठे कनक सिंहासन ऊपर, आस पास ललना गण घेरो।
ललित भुजा दिये अंस परसपर, झुकि रही केस कपोलन नेरो॥
चन्द्रावलि सिर चौर डुलावति, चन्द्रकला तन हंसि हंसि हेरो।
राम सखे छवि कहि न पड़त जब, पान पीक मुख झुकि-झुकि गेरो॥

श्याम अंग बसन सुरंग सोहै संग बंधु नाचत तुरग चाल चलन चलांकी है।
कंकन करन रस रंग मणी माल उर भाल में तिलक मंजु मौर शिर ढांकी है॥
चन्दन मुख मन्द मन्द हंसनि आनन्द भरी नैन अरबिन्द छबि फन्द मनसा की है।
झांकी जेहि झाकी यह बांकी रही ताकी कह राम दुलहा की वर बाकी बनी झांकी है॥

वाणिद बरन बपु बिज्जु सो बसन बन्यो बाण बाणा सन बंत बाहु वीरता की है।
बिबिध बिभूषन विशाल बनमाल बनी बाम में विराजती त्यों बेटी बसुधा की है॥
बिधु सो बदन वर बारिज विलोचन है विहसनि बड़ी बाधा बिदरनि बांकी है।
बसै रस रंग के बनज बंधि बोध बीच विश्व बीर राम की विमल बांकी झांकी है॥

गौना तड़िता के तन बसन समान घन
घनश्याम तन पट द्युति तड़िता की है।
माना कल नील कंज शील पुंज सिया,
नैन लाल कंजहू ते मंजु आखे रसिया की है।
पैखे रंग रंग मणी शोभा दोऊ दोहुन की,
मद मुसक्यान मोद प्रीति मनि छाकी है।
तीनौ लोक झाकी बुधि कतहू न झाकी
अस राघव सिया की जस बाकी बर झाकी है॥

जुगल किशोर गौर श्यामल सनेह सने,
ललित सुबाहु कल कठन कसे रहे।
केलि के उछाह छवि छाके दोऊ दोहुन के
लूटत आनन्द लीला लोभित लगे रहे॥
फेरत विलोचन विलोल त्यों विनोद
माते राते रंग रंग मणि हेरत हसे रहे।
आनद के कद दोऊ चद रघुनद सिय
सरस हमारे हिया कमल बसे रहे॥

सीताराम संयोग पदावली

परमभक्त श्री बैजनाथ कुरमी

श्री बैजनाथ जी रामावत-सम्प्रदाय मे एक परम प्रवीण भक्त माने जाते है। इन्होने रामचरित मानस की टिप्पणी लिखी तथा गोस्वामी तुलसी दास जी के समस्त ग्रथो का भावार्थ लिखा। ये स्वय मानस के एक सफल कथावाचक थे। सीताराम सयोग पदावली की प्रति पीले रफ कागज पर लीथो मे, जुलाई सन् १८८० ई० की मुशी नवल किशोर (लखनऊ) के छापेखाने से, छपी प्राप्त है। आरभ मे श्री श्री जानकी के जन्म की मगल बधाइयाँ है तब श्री रामजी के जन्म की बधाइया है। तब सक्षेप मे रामकथा है और राम तथा सीता के रूपमाधुर्य का अलग-अलग वर्णन के पश्चात् इनके विवाह का पूरे विस्तार एव सरसता से वर्णन है। फिर युगल स्वरूप के नाना-वध शृंगार विहार एव लीला विलास के पद है जो अनुभव और साधना से परिप्लुत है।

झूलत सीय झुलावत नारी।
कनक जटित मणि रुचिर पालने शोभित आगन रूप उज्यारी।
कर कमलन सजि रुचिर पहुंचि या पगन पहुंचिया रुनुझुनुकारी।
सुखमा सदन वदन आनन्द निधि जननी निरखि जात बलिहारी॥

छबि देखि मगन रघुनन्दन की मिथिला पुर की सब कामिनियां।
श्रुति कुंडल लोल छुटी अलकें मुख चन्द्र मनों गिन यामिनियां॥
शिर कंचन क्रीट त्रिखंड धरे बन माल गरे कुंजर मनियां।
घनश्याम शरीर पै वारि धरी पट पीतमनो थिर दामिनियां॥
कटि तून शरासन बाण धरे गति कौन कहै मुख धामिनियां।
लखि सुंदर रूप शिखानख लौं सब मोहि गईं गज गामिनियां॥
मन आनन्द देह विहाल भइ यह बात कहै सब भामिनियां।
अब बैजनाथ संयोग बन्यो वर योगि मिल्यो सिय स्वामिनियां॥

राम बना जग अजब सलोना।
तस नहिं सुना दीख नहिं नैनन ज्यों न है नहिं आगे हु होना।
श्याम अनूप भूप लालन को रूप समान विरंचि रचोना।
भूलिनि लखि मुख चंद माधुरी कामिनि देह गेह सुधि होना॥
औसर आजु राज मंदिर मे लेवै लाभ लाज धरि कोना।
सो पछिताइ खाइ बिष मरिहै खोलि नयन लखिलेवे रि जो ना।
मैं भरि अंक सफल तन करिहौ उमगो मैं न लाज उर झोना॥
बैजनाथ सीता बल्लभ पै निश्चय आजु पतिव्रत खोना॥

राम बना कछु कै गयो टोना।
जब ते लखी सखी वह मूरति मूरति हिय से जात अजोना।
भय न लाज उर मैं न महाबल नेह उमंगत हो सर होना॥
पैन कटाक्ष चुभी नैनन में दिन नहिं चैन रैन नहि सोना॥
छूटि धीर दृग नीर कपोलन खोलि बोल कछु बोलि सकी ना॥
टूटि बहत कुल कानि तीर तरु प्रेम प्रवाह रुकै रोकी ना॥
मैं भरि नैन खोलि घूघट पट करिहौ देह सुगंधित सोना।
बैजनाथ जानकीनाथ के हाथ बिकात लोक सकुचोना॥

देख सखी छबि राम बने की।
कंचन मौर खौर चंदन शिर जगमग द्युति मणि माल घने की॥
पग जावक कंकण कर राजत भूषण सकल सुदेश ठने की।
बैजनाथ कहि कौन सकै गति मृदु कटि पर पट पीत तने की॥

राज कुंवर बना राम सखारी।
मन भावत कहि जात न मोसन अलबेली छवि आजु लखीरी॥

जामा जर कस मौर बिराजत पीत बसन मृदुलंक छबीरी।
कहत बचन सखि प्रेम विवस ह्वै बैजनाथ सुनि सब हरषी री॥

रघुवर रूप देखि मन भावत।
सुन्दर श्याम सरोज बदन पर मदन अनेक देखि बलि जावत॥
चंदन खौरि मौर शिर ऊपर कुंडल श्रवण अलक झलकावत।
मणि माला छबि पदक ज्योति उर कटक पीत देखि सकुचावत॥
पीत बसन कटि तड़ित विनिंदित चलनि मत्त मातंग लजावत।
पान खाति मुसक्याति माधुरी दृग चितवति उर कहर जनावत॥
बैजनाथ मोहि सुधि नर हत तन मन बस याम राम गुण गावत॥

राघो जी बना सलोना भाई।
सुन्दर बदन मदन लखि लाजत उपमा किमि कहि जाई॥
चंदन खौरि मौर शिर शोभित अलक कपोलन छाई।
बिहसनि मधुर फेरि दृग चितवनि लखि चित लेत चोराई॥
कुंडल श्रवण ललित कंठावलि कुंजर मणि छवि छाई।
पीत बसन अंग लसनि मनोहर आकत दृग न समाई॥
कमल चरण पर अमल महा उर नखन मधुर अरुणाई।
निरखि निरखि अंग अंग माधुरी बैजनाथ बलिजाई॥

श्याम सुन्दर रघुनाथ बने की।
छबि लखि मन न अघात री माई॥
निरखत ललकि पलक नहि लागत देह विवश होइ जात री माई।
आठौ याम श्याम रंग भीनी का मन कछू सुहात री माई।
बैजनाथ भूली सब सुधि बुधि दृग माधुरि पगि जात री माई॥

तेरी छबि ने हमारो मन लीन्हे।
सुनिये जी राज कुमार सहज लाज कुलवंती बाला गरुजन लाज अपार।
निरखत तव मुख चन्द्र माधुरी तन गति रहि न संभार।
चंद्र चकोर मोर घन चातक रजनी बद अधार॥
यदि गति मे तरनारि जनकपुर मन करि लेव विचार।
परत न चैन रैन दिन हमरे नयन बहत जल धार॥
बैजनाथ रघुनंदन तुमही जीवन प्राण अधार॥

होरी आजु राम सिय फाग रचेरी।
बन प्रमोद फूल फूल विटप सब दल भारन भरि जात लचेरी।

गुल्म लता चहुं ओर विविध विधि महि चित्रित मणि हेमखचेरी।
धवल धाम बहु बरण मनोहर कनक कोरि नग पीत गचेरी।
तामधि लाल लली राजत रसि मदन विलोकत छबि सकुचेरी।
नवल सखी अलबेलि प्रिया प्रिय राज कुंवर लिये छैल जचेरी।
मोद उमंगि उछाह भरे सब जयति जयति दुहु ओर मचेरी।
बीन मृदंग ताल डफ बाजत नृत्यकार बहु भाति नचेरी।
बैजनाथ मुनि मोहित जग भयो सुर-नर-मुनि नहि एक बचेरी॥

हिंडोरे झूलत सिय प्यारी।
रंगभवन मधि लाल झुलावत गावत गुण नारी।
रंग के झूलन छबिकारी॥
अली कली सो खिलो गीली निरखत छबि भारी।
रंगके भूषण अंग धारी रंग गान करि बाध रंगीली॥
नट तन वालनारी रंगीली घटा सो घनकारी॥
गरजि घुमड़ि चपला चमकत सखि मोर शोर भारी रंगीली झूलन सुखकारी।
बैजनाथ दोउ लाल झुलन की छवि पर बलिहारी॥

हिंडोरे माई झूलत युगल किशोर।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दनी अरस परस भुज जोर॥
शीश मुकुट मणि माल हलन की पलन चलन चित चोर।
सुखमा सर युग कमल नयन लखि कुंडल जनुरवि भोर।
मन्द हसन तन लसन विभूषण बसन कसन जर कोर।
जनु घन तडित विलास विविधि लखि सखि दृग चकित मयोर॥
भालतिलक लखि झलक अलक की पलक सहत नहिं कोर।
ज्यों जस को तस हवै रस की वश हाय फंस्यो मन मोर॥
नील पीत पट अद्भुत राजत श्याम वपुष ढिग मोर॥
वारों मैं बैजनाथ यहि छबि पर रति युत काम करोर॥

हिंडोरे माई झूलत दशरथ लाल।
सोह बाम दिशि जनक नंदनी कनक लता ज्यों तमाल॥
शीश सुभग मणि मुकुट विराजत माहत तिलक सुभाल।
विथुरी अलक कपोलन राजत कुंडल श्रवण विशाल।
पान खात मुसक्यात परस्पर चितवनि करत निहाल।
दै गल बांह लेत जब झोंका उरझि जात मणि माल॥

श्याम गौर दोउ अंग मनोहर पीत बसन ढिक लाल।
बैजनाथ छबि लखि बलिहारी सखि गावत दै ताल॥

लाल बिन कैसे मन धीर धरै।
बिन देखे मुख श्याम की शोभा नैनन नीर झरै।
होइ प्रभात बदन कब देखौं जियरा कल न परै॥
बैजनाथ कोउ श्याम मिलावै उरकी तपनि हरै॥

मोहि इस्क पीर गम्भीर और नहिं भावै।
बिन देखे छबि रघुबीर धीर नहिं आवै।
तन श्याम सजल घन तड़ित पीत पट धारी।
मुख मदन बदन पर मदन कोटि बलिहारी।
शिर मुकुट पुरट मणि जटित तिलक द्युति जागै।
लखि ललक अलक की झलक पलक नहिं लागै।
श्रुति कुंडल नैन बिशाल कछुक कजरारो शुचि बिद्रुम बिंब अधरपर वारी।
भुज भूषण सहित बिशाल बान धनुधारी कटि कसे तूण पट रुचिर मदन छबिहारी।
मुख चन्द मधुर मुसक्यानि बिरह शर मारे।
अब बैजनाथ बलि जाउं दरश दियो प्यारे॥

चित चाह लगी रघुनंदन की।
कछु मोहि न भावत री सखिया।
गति सूरति आश चकोर भई मुख चन्द अनूप जही लखिया।
छबि देखि पगी नव नेह जगी सब लाज भगी जग को रखिया।
अवगाहन ते बिलगात नही तन श्याम पयोनिधि ते अंखिया।
तन कंप उठै बुधि मोरि भई धन देखि यथा अहि को भखिया।
अब बैजनाथ नहिं छूटि सकै मन जाय फंस्यो मधु को मखिया॥

राम सिय आजु बने परभात।
शीश मुकुट इत ललित चन्द्रिका कुंडल श्रवण सुहात॥
चूनर संग बसन पीताम्बर शोभित श्यामल गात।
बैजनाथ छबि कहि न परत हे रति शत मदन लजात॥

राम सिय सैन शाल अलसात।
आलस भरे उनीदे नैना झूमत झुकि झुकि जात॥
चन्द सरिस द्रउ मुख की शोभा कमल मनहुं कुम्हिलात।
बैजनाथ छबि कहं लै बखानौ लखि रति मदन लजात॥

हरषित दोउ यक संग रहेरी।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दनी अरस परस पर बाह गहेरी।
को हर गौरि नेह इत साचो रूप सिन्धु रति काम बहेरी।
बैजनाथ द्वउ तन की सुखमा छबि सिंगार जनु प्रेम गहेरी॥

बिगत निशा प्रातकाल जागे सखि लाल सघन व्योम तिमिर जाल अरुण प्रभा नाशी।
फूले बहु कमल ताल भागे बहु भ्रमर माल उडगण द्युति छीन हाल चकई पिय प्यासी॥
राजत मुख सेज भौन आलस वश सिया रोन उपमा रति मार कौन निरखत छबि दासी।
झुमसत पुनि मिलत पदक चिक्कन मृदु छुटि अलक बिलुलित मुख चन्द झलक किधौ मदन फासी

शोवन मुख विमल वारि पोछत मृदु वसन वारि मगल मय भोग धारि अलिगण चहुपासी।
उबटन मंजन सुकारि अशुक भूषण सवारि धारत धन प्राण नारि दरश आश प्यासी।
नील पीत श्याम गौर जरकस युत जलज छोर कुडल घन भान मोर मुकुट प्रभा खासी।
बैजनाथ सहित क्षेम धारे इमि नेह नेम जनु सिंगार सहित प्रेम पावन सुखमा सी॥

हमारी दिशि हेरो प्यारे पीतम लाल।
तन हारी लखि रूप को रचना मन हारी तेरी चाल॥
मुख लखि हरष विवश दियो अबला तन मन धन सब काल।
चाहत निशि दिन रूप माधुरी चितवनि निरखि निहाल॥
मेहर प्याय कहर ना चहिये गहि भुज चहि प्रतिपाल।
बैजनाथ दृग प्यास दरश की छबि रघुनद विशाल॥

रगीले द्वउ राजत रग भरे।
श्याम गौर अभिराम मनोहर छबि मिलि होत हरे॥
दशरथ सुत अरु जनक नंदनी अशन बाह धरे।
मरकत फटिक तमाल की चदा घन जनु तडित अरे॥
जनु ह्वै रूप एक ह्वै बैठे हरि तिय गिति निदरे।
बैजनाथ निरखत नित अलिया निशि दिन पल न परे॥

तिहारी छवि चाहत नयन पिये।
चद चकोर मोर घन दामिनि जल ज्यो मीन जिये॥
श्रवण सुयश मुख गान चरित की चाहत रूप हिये।
बैजनाथ गति एक रावरी नहि कछु चाह बिये॥
राम तेरी माधुरी प्यारी मो दृग लखि न अघाय।
चातक त्रिपित जल पाय॥
अंबुज नयन बैन रस भीने जब हेरत मुसक्याय॥

यक टक रही दारु पुतरी ज्यो देश दशा बिसराय।
परत न चैन रैन दिन मोको कब उर मिलिये धाय॥
निहारी छवि देखि सावरे मन मेरे नहि कलरे।
निशि वासर मोहि और न भावत कौन करी छल रे॥
चाहत पान माधुरी मुख की नयन रहि तपल रे।
बैजनाथ प्यारे लालन ऊपर वारि पियो जल रे॥

लखौरी आज राजत सिय सग राम।
दिव्य कनक मणि जटित सिहासन आसन सुख को धाम।
शीश फीट इत ललित चद्रिका वदन उभय सुख धाम॥
कुडल वीर बलाक अधर पर त्यो बेसरि दिशि वाम।
बेदी भाल तिलक मग मद को कुसुम युगल गल दाम॥
वैजती वन माल पदिक पर चद हार अभिराम।
कनक वलय केयूर मुद्रिका भुज भूषण बहु नाम॥
नूपुर पग मजीर पीत पट तट चूनर रग श्याम।
पिय छवि नील जलद लखि लाजत तडित वरण सी वाम।
बैजनाथ यह देखि माधुरी वारो मे रति शत काम॥

श्रीरामविलास

ठाकुर मथुरा प्रसाद सिह (चोगडवा, जिला बस्ती) का लिखा यह ४० पृष्ठो का ग्रंथ दोहे-चोपाइयो मे 'रामचरित मानस' का लघु सस्करण कहा जा सकता है। इसमे सरल सुबोध दोहे-चौपाइयो मे राम का चरित्र अकित है। सवत् १९६४ की चैत्र रामनवमी को यह ग्रथ लिखना आरम्भ हुआ। राम की बारात का वर्णन बडा ही हृदयग्राही है। इस ग्रथ की सब से बडी विशेषता इस बात मे है कि जनकपुर मे श्रीराम के विवाह के समय जानकी की सखियो के साथ जो हास-परिहास होता है, वह बडा ही सजीव और आकर्षक है। श्रीराम और श्री जानकी का नख-शिख वर्णन भी कम मनोहारी नही है।

श्री सम्वत उनइस सै, चौसठि चइत सुमास।
राम जन्म तिथि राम गुण, वरणौ सहित हुलास॥
राम बरात समूह, पै कछु गिनती करत कवि।
डेढ कोटि गज जूह, तीस कोटि बर बाजि है॥
कोटि पचीस उदार, जगमगात, है पालकी।
बहुरि भार बरदार, सात कोटि पच्चीस लख॥

श्री राम जी का नखशिख वर्णन

पदतल अरुण सुमृदुल अति, कोमल वारिज फीक।
अरु गुलाब नहि बाल रवि, सखमा केर थलीक॥

सकल सुचिन्ह विराजत नीका। दहिने पद ऊधर स्वसतीका॥
अष्ट कोन अरु रभा विराजे। हल मुसल अहिमर पट भ्राजे॥
वारिज स्यदन पवि जौ रूपा। सुर तरु अकुस ध्वजा अनूपा॥
मुकुट चक्र सिहासन अहई। जम सुदड जमदड को दहई॥
छत्र चौर नर अरु जै माला। ये चौबिस दहिने पद थाला॥
पुनि बाये पद रेखा बरणी। सरज सरिता गोपद धरणी॥
कलसा केतु जम्बुफल लसई। अर्ध चन्द्र दर लखि जिय फसई॥
पुनि पटकोन और त्रेकोना। गदा जीवनरु बिदु सलोना॥

सक्ती सुधा मुकुट कल, त्रिवली झख समि पूर।
बीन बगि धनु तून पुनि, हस चद्रिका रुर॥
ये अडतालिस चिन्ह नित, बसत रामपद माहि।
मथुरा सुजनन के सदा, सुख सुभदायक आहि॥

येइ येइ रेखा सियपद माही। दाहिन बाम भेद पै आही॥
सोहत काम कुर्म पद पृष्ठा। नूपुरादि भूषन छवि श्रीष्ठा॥
कल अगुलिन अगुठन नख जोती। पकज दलामनि जनु मोती॥
दुहू पद जावक कलित सवारे। रचना देखि बिरचि जू हारे॥
सोहत उभै कमल पद त्राना। लाल मदन के जीह समाना॥
लसत कडा युग गुल्फ जान अति। जघ केदली तरु किमानुहति॥
केहरि कटि सम लक सुहाई। किकिणि मजु रुचिर अधिकाई॥
सुभग बिराजति पीअरी धौती। निदति सिसुरवि तडित की जौती॥

राजत नाभी सर त्रिवलि, सीढी रोम गे बाल।
उर मक्तामणि भाल जन, उडि बहु आव मराल॥

हृदै पदिक कल भृगु पद रेखा। उर श्रीबत्स सरुचिर अलेखा॥
दोउ भुज कलित बिसाल सुहाई। अगदादि भूषन छवि छाई॥
कनक सुमणि पहुची करमाही। रेख बिचित्र बरनि नहि जाही॥
अगुलिनि अगुठन नख दुति रूरी। मुदरी लेइ चोरि चितशूरी॥
याही कर धनु बान बिराजै। सुरन सुखद असुरन दुख साजै॥
लसत जनेव स्याम तनु बाका। जनु घन पर दामिनि सुभ आका॥

जरद जटित अति माहहि जामा। रतन खिचन बहु लसत ललामा॥
पीत कछोटवारि कासा। छोरन माहि लागि मणि मासा॥

वृषभ कंध सम कंध कल, मंजु कम्बु सम ग्रीव।
सरद इन्दु की मद हरण, आनन सुखमा सींव।
अधर अरुण रद औलि मृदु, हसनि हरत जन चित।
जनु विद्रुम सु विमान सुर, सभा सुमन वर्षत्ति॥

चिबुक सुहन नासिका सुहाई। लसत बुलाक विचित्र बनाई॥
कल कपाल वरणा केहि भांती। काम सेन समि जोति लजाई॥
श्रवनन सुभग सकुंडल डोलहि। परसत गाल लेत मन मोलहि॥
सोहत जुगल नैन छवि पीना। लाजहि कंज खंज मृग मीना॥
अस छवि नहि त्रैलोक के बीचहि। चितवनि चारु सुधा जनु सींचहि॥
उभै भौंह सोभा अधिकाई। मदन धनुष सम बरनि न जाई॥
भ्राजत तिलक विशाल सुमोली। केस निरखि लाजति अलि औली॥
बिबिधि सुगंध अलक गह बारी। बायस पर गम सुभग न थोरी॥

पियरी पाग विचित्र रचि, तेहि पर मणि मै मौर।
अधिक सुहाई छवि निरखि, विधिहू की मति हौर॥
अनु जन युत रघुनंदनहि, निरखि निरखि सब नारि।
मधुरी मूरति उरमिनी, प्रेम विवश भई झारि॥

जनकपुर में सखी के साथ हाव विलास

चंचल चखन दरश अतुराई। सखिन समेत राम पहं आई॥
लखि ननदोइन मय सुख कैसे। तलफत मीन नीर लहि जैसे॥
पुनि किमि भई मुदित सब नारी। जिमि चकोरि राकेस निहारी॥
तब प्रभु कैकरधरि सिधि बाकी। करि भृकुटी मुख अंचल ढांकी॥
बोली सुनिये राज कुमारा। बडे तसकर चित्त चोरन हारा॥

चित्त हमार चोराय कै, आयो मासु के तीर।
सिद्धि केर इमि बचन सुनि, बोले श्री रघुबीर॥
भामिनि उलटी बात जनि, कहु निज औगुन मोय।
मम आगमन सुजानि कै, तुमहि लुकाने जोय॥

बहुरि रसिक पति पद सिर नाई। कहौ कथा रसिकन सुखदाई॥
जे नेवंत मिथिला पति केरी। आई राजकुमारि घनेरी॥
अति निरूपन अंग सु बसनू। भूषन सकल सजे जिस फंसनू॥

सब के उर अभिलाष अभंगा। बोलब हंसब राम के संगा॥
जेहि परि जाकहं ध्रुव अनुरागा। ताकहं मिलत बिलम्ब न लागा॥
तिनहूं सकल सुनी यह बाता। सिद्धि सदन आये चहु भ्राता॥
आई बेगि निकर हरषाई। आदर सिद्धि कीन सचुपाई॥
रघुबर रूप निहारन लागी। नयन प्रेम जल चल सुख पागी॥
कोउ कल जंघ सुदेखति धोती। कटि किंकिणि लखि प्रमुदित होती॥
कोउ नाभी उर बाहु निहारी। जामा लगत कन्हावरि डारी॥
अधर सुबीरी अरुण सुहाई। बाल दिनेश प्रभा जनु छाई॥
काम म्यान ते किधौं निकारी। सिकली कीन धरी तरवारी॥
चिबुक सुहनु थल सुदर गालू। कोउ देखति नासा छबि जालू॥
कोउ जोहति नयनन की शोभा। जिनहिं बिलोकि मदन मन छोभा॥
सुधा गरल बारुनी समाना। श्याम सेत रतनार सुहाना॥
राम बिलोचन जेहि दिशि करहीं। भरत जियत झुकि झुकि सो परहीं॥
भौंह चाप जनु मनमिज केरा। चितवनि शायक तिन्ह घनेरा॥
लागी जुवतिन के उर घाऊ। दरद करत अति सहि नहि जाऊ॥

देखति कोऊ ललाट की, सुखमा तिलक सुरूर।
कोउ अवलोकति अलकश्रुति, कुंडल छबि रह पूर॥
श्री रघुनंदन छैल नृप, चितवत जिन की ओर।
तेहि सुधि नहि घरबार की, जिमि मदान्ध जन भोर॥
रसिक शिरोमणि राम, नवल प्रीति अभिलाष अति।
जस जिनके उर जाम, रहा लालसा तवन रुचि॥
राउर मूरति नीर सम, हम सब के मन मीन।
किमि जीहैं बिरही बनी, भाषौ परम प्रबीन॥
सिरजे रहे बकि मनहिं अस, जब गौनब ससुरारि।
करब कतल मिथिला तियन, प्रीति पड़गते मारि॥
बनिता जानि अबध्य हम, सब बिधि राजकुमार।
सो तुम कानि न लेमहू, कीन्हेउ मन सुखसार॥

मारचो चखन बिसिख विषवारे। भृकुटी चाप चढ़ाय के प्यारे॥
जग बीड़ा कुल सीवं प्रसंगा। ये सब होहिं क्षणक महं ध्वंसा॥
लागि प्रीति जो क्रम मनवानी। सो नहिं छूटे शारंग पानी॥
जैसे जल लहि सनरजु गांठू। अरु जिमि नवै न उकठ कु काठू॥
तिमि कबहूं छूटै नहिं नेहा। सरबस जाय जाय बरु देहा॥

ऊंच नीच चाहै जेहि पाही। लागै प्रीति सो अति प्रिय आही॥
तेहि देखे बिनु राजकुमारा। तरग न जाय कोटि उपचारा॥
यदपि रयन दिन मीत सरूपा। अवसि टिकै उर सुखद अनूपा॥

तद्यपि तरसत रहत चख, जुगल यार बिनु देखि।
जिमि चकोर राकेश के, जोहेहि सुखी विशेषि॥
जानि सील कुल केर बहु, धर्म जाय नृप ढोट।
पै मूरति निज यार की, होय न नैनन ओट॥

बाचा शालरु परबस रहई। पै बियोग नहि यार सो लहई॥
बहु बिधि दुख सहि जाय शरीरा। नहि सहि जाय यार की पीरा॥
निज प्रीतम बिछुरत सुख जेते। भौमहं दुख सम लागत तेते॥
यद्यपि हम अविवेकी नारी। जानि हीन सब भांति गंवारी॥

राम का उत्तर

मोसम प्रीति करे जो प्रानी। जानि अजान कहूं विधि आनी॥
चख पूतरि सम भामिनी, जोगबहुं मे तहि काहि।
अवगुण एक न देखहूं, देखौ गुण तेहि पाहि॥
मम इमि बानि है लाड़ली, जानै नेही हार।
न तु मोहि लहहि न मनुज करि, बहु बिधि के उपचार॥
जिन जिन प्रेमी केर जग, सनियत बड़ि मर्याद।
सोधहु तिन तिन माहि जो, है यक यक अपवाद॥

बहु दुख सहि दिन करते कंजा। लखहु बिचारि प्रीति किये पुजा॥
पै नहि करुणा करत दिनेश्। प्रेमिहि जारत परे कलेशू॥
पुनि लखु तरसत रहत चकोरा। चितवत शशि मग प्रीति न थोरा॥
ताहि जोहि मानत निज छेमा। बिधु मन नेकु न गड़ी सो प्रेमा॥
प्रीति किये अति मणि ते नागू। बिछुरत तेहि सहसा न त्यागू॥
पै न प्रीति सो मणि के धंसई। दिन प्रति उदित होय नहि झसई॥
चातक मोर जलद पर भारी। करत प्रीति सिधि राजकुमारी॥
नेकु न घन तेहि नेह बिचारै। ऊपर ते पवि पाहन डारै॥

अरु झंख जल बस दिवस निसि, रहति न कबहूं भिन्न।
मीन केर इमि देखि रति, नीर के मन नहिं खिन्न॥
लखु प्यारी दीपक सिखहिं, देखि सु सलभ लोभाय।
कूदि जरत कृषानु के, लेसहु दरद न आय॥

इमि बहु प्रीति मान है प्यारी। चलनि पोच हिय लखहु विचारी॥
एक तौ एक पर त्यागत देहा। एक न चितवत निरदै गेहा॥
हे सिधि आदिक राजकुमारी। ऐसन है नहि नेह हमारी॥
अपने प्रीति मान जन सगा। तजौ न क्षण भरि प्रीति अभगा॥
प्यारी मम प्रीतम के काऊ। खर्व जानि अभिमान देखाऊ॥
करो ताहि अतिनि कर बिशाला। जाते नावहि शिव बिधि माला॥
अरु सजनी सब भुवनन माही। सबहिन ते अरचावो ताही॥
कह तक बरणौ तासु बडाई। हमही ताको सीस नवाई॥

निज वहिके तन मे तनिक, मर्म न टिकवो फूर।
कबहु सनेह न तजौ तेहि, करै जो कोटि कसूर॥
राजकाज तिहु भुवन के, सम्पति सकल जु आहि।
अनुज तनय सिय देह निज, मोकह तम प्रिय नाहि॥

जस प्रिय लागत सहज सनेही। मानहु बचन कहौ सति एही॥
बिबिध शरीर धरौ जेहि लागी। कानन कानन बागहु जागी॥
दुःख सहो सिर ऊपर कीना। पै परि हरौ न आपन मीता॥
गजगणिका अरु जमन जटाई। अजामील गेवरी कपिराई॥
रिक्षप पौनज तमचर राऊ। ये सब जानहि मोर सुभाऊ॥
जो निज बाट बटोरि सकल थल। सो बाधे मम चरण नेह भल॥
अटौ मे सेवक इव तेहि सगा। सजनी यह मम बानि अभगा॥
मोसे नेह जोरि जो फेरी। आस करै दूजे सुर केरी॥

बहु बिनती वह जन करै, तौ न जाउ तेहि तीर।
येह बानि मम कठिन है, कह मथुरा रघुबीर॥

रहे सु ग्रन्थ यह राम बिलासू। रसिक जनन कह परम सुपासू॥

रम्य पदावली

इस सुबृहद् ग्रथ की एक खण्डित प्रति मिली है। लेखक कश्चित् 'कोविद' कवि है। इसमे भगवान श्री राम और श्री जानकी जी के परस्पर अरम परम, मिलन, हास विलास, झूला और होली की लीलाओ के पद है। लगभग चार सौ पद इस सग्रह मे है।

रघुवर विहरत वीथिनि वीथिनि यूथिनि वन प्रमोद मुद तावत।
रग विरंग रंग लै सगन बजत मृदग न गावत॥
तिरहुति पति दुहिता बनिता कहु घेरि घेरि बिलगावत।
काबू करि बाबू भरतादिक फौरन फाग मगावत॥

लाल लाल संग लाल बाल लखि सोभ समूह सजावत।
मंदार द्रुम सुमन सार महदार सुमन बरसावत॥
विहंसि विहंसि रस रसिक शिरोमनि होरि होरि कहि धावत।
चाहत जानि प्रसाद समय कवि कोविद मुद मन भावत॥

होरी गोरी भई भोरी।
रघुनंदन अरु जनक नंदनी अनुशासन सब दोरी।
रंग गगरि वह बाय धाय धरि सबहि विहसि बरजोरी बोरी।
गान विधान नवीन धाहिनी प्रिय तर करमिलि जोरी।
कोविद कवि छवि बादन अद्भुत सुनि जय धुनि चहु ओरी शोरी॥

हिंडोरा झूलत राज किशोर।
गरजै गगन मेघ मधुरी धुनि दामिनि करत अजोर।
श्याम घटा बग पांति विराजै पवन चलत झकझोर॥
बंसी बेन सितार सारंगी राग को सुर एक ठोर।
ढोल मृदंग मजीरा महुरि धुन उपजत घनघोर॥
गावत सुर नर नारि सुहावन सावन उठत अडोर।
निरखत सुर बर बधू पुलकितन राम नयन की कोर॥
अति आनन्द उभय पुरवासी लखत राम की वोर।
कोविद राम सिया को झूलन कंज मधुप मन मोर॥

झूलत उमंग भरे पिय पिय सिय संग रे।
रतन जड़ित मै बनो हिंडोला प्रमुदित रंग करे॥
युगल खंभ विचित्र सोहै मोतिन लाल भरे।
हरित लतान वितान चारु तर केकी कूक करे।
कोविद कवि छबि निरखि हरखि हिय मुद आनंद भरे॥

सैयां सावन झूलन झूलो।
सेवन घन चाहत धन मित लखि सखि बनि रितु अनुकूलो॥
धीर समीर तीर सरजू को नीर सुरभि फुल फूलो॥
कोविद सुर तरु तरमनि झूलो।
गुनि गन गुन सम तूलो॥

भक्त मनरंजनी

प्रेम सखी-कृत

श्री प्रेमसखी की "भक्तमन रजनी" यथा नाम तथा गुण है। अनेकानेक राग-रागिनियो मे प्रेम के मधुर रस मे पगे पदो का यह सुदर सुबृहद् सग्रह वास्तव मे भक्तो के मन को प्रेमाह्लाद मे परिप्लुत कर देने मे समर्थ है। सन् १९०१ ई० मे जैन प्रेम (लखनऊ) से सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने छपवा कर प्रकाशित किया।

चचल चपल चाल चलत सुहाई रे।
चचल अनोखी बाल चलत मधुर मद॥
लचक लचक जात कामिन लजाई रे।
चचल नयन खज भृकुटी कमान तान।
मुख की चमक चारु चन्द्रमा लजाई रे॥
रसिक बिहारी रामचन्द्र को मिलन हेत।
धावत धरा के धाय नागर कुमारी रे॥
चमकि चमकि चख प्रेम को सुधारस।
मधुर मधुर रस पियत अघाई रे॥
प्रेम सखि देख प्रेम चन्द्रावलि बीर ऐसे।
सोलहो सिगार कर राम को रिझाई रे॥

महारासोत्सव अर्थात् सीताराम रहस्य

यह श्री हनुमत्संहिता का अवधी गद्य मे अनुवाद श्री अम्बिका प्रसाद दैवज्ञ ('अवध मंडलान्तर्गत जिला उन्नाव तहसील हसनगज औरामी ग्राम निवासी') का गद्य मे मिलनेवाला इस संप्रदाय का एक विलक्षण एव परमोपयोगी ग्रथ है। गद्य का नमूना हम नीचे दे रहे है। परन्तु, अनुवाद मे बीच-बीच मे कही कही सार रूप मे दो एक दोहे भी आ गए है। भाषा लड़खडाती हुई परन्तु सशक्त है और भावाभिव्यक्ति मे सफल। लखनऊ प्रिटिग प्रेस से सन् १९०४ ई० मे छपी।

कोई स्त्री अपने प्यारे को नमस्कार करती है कोई मद मे अपने पियारे पर रिस करती है फिर ज्ञान भये प्रसन्न करे खातिर जैसे पतिव्रता लडाई को दूर करती है तैसे।

कोई सखी सकेत कुज के बीच मे जाय कै तहा नही देखती है तब अपने प्यारे सखा को बढी रिस से रिसवावती है।

कोई सखी कुजवन मे जायकै तहा अपने प्यारे को देखि कै विरह की आगि में जरती जो देह है ताको उत्कंठा स्त्री की नाय लपिटि कै बुझावती है।

कोई स्त्री फूलो के मालो को गुहती है अपने प्यारे के लिए चरित्र गावती है कोई सखी फूलों की सेज सजाती है जैसे वस्त्रों की सेज बनावने वाली—

दोहा

माला फूलों के कोई गुहति चरित पिय गाय।
काई सज बनावती जिमि बस्त्रन की नाय॥

काई स्त्री अपने प्यारे को छन भरि छाती से नहीं छोडती है अपने प्राणन ते परम पियार रक्षा योग्य जैसे स्वाधीन भर्तिका अर्थात् अपने ही वश अपना स्वामी।

काई स्त्री अपने पति की इच्छा करन वाली आनद से जल्दी जाती भई कुज ते और कुज मे घुसती भई जैस आनन्द से अभिसारिका स्त्री (अभिसारिका उसका नाम जौनि एकात मे लाज छोडि कै) अपन पति के तीर जाती ह। यथा हित्वा लज्जाभयेश्रिष्ठामवेनमदनेन या अभिसार- यतकात सा भवदभिसारिकेति।

कोई मानिनी सखी का नमंता करि कै बशि करि लेने भये भली यतन से प्रेम की हचूटी बाणी से ऐसी बाणी बालते भय।

हाव भाव के प्रभाव के जानने वाली काई सखी राघव जी के आगे मुस्क्याती है।

सखियो के नाम

उज्ज्वला कावनी चित्रा चित्ररेखा सुधामुखी हसी प्रशसा कमला बिशदाक्षी सुदशका।

चद्रानना चद्रकलामाधर्यशालिनी बरा कर्पूराकी वरारोहा ई गोरह १६ स्त्री रसोत्सुका है।

तीने कमल के पत्रो पर १६ सारह सखी शोभती है मुनियो मे सरिष्ट है अगस्त्य जी तिनके नाम सुनहु।

शोभना शुभदा शाता सतोषा सुखदा सती चारुस्मिता चारुरूपा चार्वगी चारुलोचना।

हेमा क्षेमा क्षेमदात्री धात्री धीरा धराई सखी वहु विधि की सेवा मे युक्त रात्रि मे श्री मैथिली रघुनदन जी को सेवती है।

क्षीरोद्भावा भद्ररूपा मद्रचारु मद्रदा भावबर्जिता बिद्युल्लता पद्मनेत्रा पावनी हसगामिनी।

रमणीया प्रेमदात्री कुकुमागी रसोत्सुका यहा यतनी बारह सखी कमल के बाहर दलो पर बसती है।

महार्हा मालवी माल्या कामदा काममोहिनी रति क्षिती नतिवती प्रेमदा कुशला कला।

लीला यतनी बारह सखी उपदलन मे बसती है यई सब जनी श्री रामचन्द्र जी को सेवन करती है बडे प्रेम मे बूडती है आनन्द म युक्त श्री राघव जी का देखती है।

फिरि आठ दल के बीच मे बहु विधि के सुहागो मे भरी कुजो मे ठाढी सखिया नित्य ही राघव जी की सेवा करने मे युक्त दोहा।

फिरि बसुदल के बीच मे बहुविधि साजि सुहाग।
कवज मे ठाढी सिखहि हरि सेवन मन लाग॥

पहिले वेष कुज मे नम्रता करिकै श्री सीतारामं जी बैठते भये तहा बिलासिनी नाम सखी मैथिली जी रघुनन्दन जी दूनौ जनेन को दर्पिकै।

जल्दी वस्त्र कुचुकी दुपट्टादि सीता जी को औ जामा दुशालादि राघव जी को औ गहन बुलाक कठादिको मे और मालो करिकै भक्ति ते दूनो जनो के अनूप रूप बनावती भई।

फिरि दूनौ सीतारामं जी मालती कुज को जाते भये जहा (सागानद) नाम सखी रहती है तेहि की सेवा के मनगते प्रेम करिकै सीतारामं जी दूनो जन परम आनन्द को प्राप्त भये।

फिरि श्री राघव जी सीता जी के सहित ('केलि कुज') के बीच मे जाते भये जहा नित्य ही (वृन्दासखी) नित्यानन्द मे बूडती है।

तहा आनन्द करिकै विहरत है केलि के कुतूहल से काम केलि करिकै सीता जी राघव जी को प्रसन्न करती भई।

तब फिरि मन के रमावन वाला (सुखद) नामकुज का देखि कै दूनौ जने परम आनन्द मे प्राप्त भये जहा (नित्या) नाम सखी शोभती है।

फिरि हिडोलक कुज मे बारम्बार घूमते है तहा (प्रेम प्रदर्शिनी) नाम सखी बसती है तौनि स्त्री श्री रघुनन्दन जी का मनारथ पूरण करती भई।

सुन्दर डोलना कुज मे प्यारी सीता जी के सहित श्री राघव जी जाते भये जहा (वसत-रगिनी) नाम सखी परम आनन्द से भरी बसती है।

बसन्त ऋतु मे परम चित्र विचित्र फूलो करिकै लपेटित कोयल भवरो के झुडो से प्रसन्न कामदेव के बढावन वाला भोजन कुज मे मैथिली जी और सखियो करिकै सहित श्री राघव जी जाते भये तहा (सदानुमोदिनी) नाम सखी आनन्द ते भोजन छ रस के औ छप्पन ५६ प्रकार के भक्ष्य भोज्य चोख्य लेहय तथा मालपुआ जलेबी लड्डू खाज। खुरमा खीरपिर कै भोजन भगे सेवई मलाई पूरी बरा मुगारै मिथौरी मिही रोटी घी मे भीजी इत्यादि भोजन कटहर तोरई परवर इत्यादि तरकारी अदरख आम अवरा इत्यादि अचार किलहा गलका करौदादि खटाई आम धनि-यादिको की चटनी इत्यादिको के बनाय कै श्री सीतारामचन्द्र जी को तृप्त करती भई।

शयन करने वाला चारु नाम कुज का भगवान राघव जी नर्मा से जो करिकै सहित देखिकै बडे आनन्द को प्राप्त भये।

जहा साक्षाल्लक्ष्मी वाली मदनमजरी नाम सखी स्थित ह्वै कै तहा सीता जी के सहित रामचन्द्र जी शयन करते भये तब शयन मे स्थित राघव जी को देखिकै प्रेम करिकै जगावती भई।

अष्टदल के उपकोनो मे बेरी औ वृक्ष शोभित है माधवी चपा मल्लिका पुन्नागचमेली।

लौग लतिका अवरा तुलसी परम चित्र विचित्रै सब सुगन्धो मे भरी सब फूलो मे फूली है।

जिनके फूल बडे मीठे सवाद वाले पाता अमृत से मीठे तिनकी शरणागत मे शोभित है जहा हसने मे आनिदित। गावती है नाचती है श्री सीता राम जी को देखती है हे अगस्त्य जी तिनके नाम सुनहु हृदय मे धारण करहु। वीणावती सखी वीणा का हाथे मे लीन्हे औ सुगधिका स्त्री बंशी का हाथे मे पकरे कविला सखी विलास करिकै सहित औ शोभ सखी सब शोभावो से भरी। मुख से

मानौ स्वरन भाव निषाद ऋषभ गाधार पर्ज मध्यम धैवत पचम ए स्वरन को धारण करिकै सुख के देने वाली सती ('खजनाक्षी') खजन की चाल के समान चचल आखो वाली रसोवा की मजरी रूपी खजरी का हाथ मे लिये। गान कला गीतो की कला जानने वाली सखी हाथ मे मीठे स्वर वाला मृदग लिये सारग लोचनी सखी बड आनद करिकै सारगी का बजावती है। सुखदामिनी नाम सखी छुवने के सुख देनेवाली सुख के मडलो मे जटित सब सखिया सब नवो रसो के जानने वाली श्री रघुनन्दन जी के राधिका (यह रूप कृदती 'राध साध ससिद्धौ' धातु का है) सेवन मे लगी। सरिष्ठ बार कमल की गुजरियो के दानो मे जटित सखिया स्थित महाचित्र बिचित्र मणियो स पवित्र मदिर मे चद्रमा सूर्य अगिनि के करोरि तेज को ठगने वाले चिनामणि के मन के मोहन करने वाले मे ।। तहा मत्रो करि कै मल से रहित पवित्र सिहासन शोभित है सैकरन स्वर्णो से पूजनीय सुदरे नरम केवल ठगने मे प्राप्त होय कै गुरु की बाणी ते पार जाने मे स्वगम्य रूपवाले मे। महित ओकार सब बीजो सब मत्रो मे लपेटित जैसे मणियो के समूहो से युक्त ऐसे सिहासन के बीच मे श्री रघुनन्दन जी शोभित है। तेहि मे पैठनी भई कमल की पखुरियो के समान आखो वाली लबी लबी दूतो बाहे प्रसन्न मुखो वाली तपाय सोने के समान गहना से जडी जोनी सखी के जान की जीवन श्री रघुनन्दन पियारे है। आपस मे चित्रन के जानने वाल दूनो जने आलिगन करत भये हसने की वाणी से हृदयो मे स्नान करते है रहस का आनन्द और सब सुख कै आनद देने वाले घर्षणा ते रहित ऐसे रामेश्वर श्री राघव जी को नमस्कार है।

प्रभया रामचद्रस्य सीतायाश्चप्रभावत
सदा प्रकाशतेत्यर्थस्थूल परमपावन
यद्धयात्व निमिषार्धेनरसिका याति तत्पदम्।

भावना अष्टयाम

अथवा

श्री सीताराम मानसी पूजा

श्री सीतारामशरण रामरसरंगमणि जी

[श्री सीतारामशरण रामरसरग मणिजी श्री अयोध्यावासी ने श्री सीताराम रसिक जनो के सुखार्थ रचना किया उसी को श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद जी के स्नेही श्री दुर्गा प्रसाद जी सवत् १९६१ मे चन्द्रप्रभा प्रेस (काशी) मे छपवा कर श्री सीतारामानुरागियो के हेतु सुलभ किया।

गद्य मे मगला आरती से शयन तक की मानवी सेवा का बडा ही भव्य मनोहारी वर्णन।]

ध्यान

राजत रत्न सिहासन मध्य सियायुत श्यामल राम सुजाना।
छबि सु लच्छन लाल लिए छबि जासु छपाकर कोटि समाना।।
श्री भरतौ भरतानुज चौर चलावत दक्षिण वाम विधाना।
मारुत मारुत लाल करे रसरगमणी कर यो उर ध्याना।।

बैदेही सहितं सुर द्रुमतले हैमे महामण्डपे,
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने संस्थितम्।
अग्रे वाचयति प्रभंजनसुते तत्त्वं मुनीन्द्रैः परम,
व्याख्यातं भरतादिभिः परिवृतं रामम्भजे श्यामलम्॥

तब श्री राम रस रंग बिहारी जू शयन करते भए।
बाम भाग श्री रसिक राज बल्लभा जी शयन करती भई।
श्री भक्ति भक्त दोनों दिव्य विग्रहों की चरण सेवा करने लगे।
तदुपरि श्री युगल के नयन पंकजों को निद्रा से मुद्रित देखि सहित
समाज श्री भक्तिपरानुरक्ति जू
श्री युगल कृपाल जू को शोभा मन मे धरि मन्द पदों से
बाहिर निकसि के कपाट बन्द कर देती भई।
और सहित समाज शयनशाला के आवरण भवन मे बिराज
कै झीने स्वर से बिहाग राग मे श्री युगल यश गाने लगी।
तदनन्तर शयन करि कै स्वप्नावस्था मे श्री सीताराम चन्द्र जू
के समीप प्राप्त भई सेवानुरागी साधक भी श्री भक्ति
पद पंकजों को साष्टांग प्रणाम करि,
उनके नीचे दक्षिण में शयन करि स्वप्न में श्री सीतारामचन्द्र जू
के समीप प्राप्त भया और सुख सिंधु मे मग्न भया।

परिशिष्ट

[क]

महावाणी

रस शृंगार अनूप है तुलवे को कोउ नाहि।
तुलवे को कोउ नाहि सोइ अधिकारी जग मे।
काचन कामिनि देखि हलाहल जानत तन मे।
यावत जग के भोग रोग सम त्यागेउ द्वन्दा।
पिय प्यारी रस सिन्धु मगन नित रहत अनन्दा।
नही अंग अंग गन्त के सर लायक जगमाहि रस॥

कृपानिवास श्री राम प्रिया की कृपा अगम सब सुगम हमारे।
नित्य निकुंज विहार करो रति रंग रंगी रहो लाड़िली गोरी॥
प्रीतम प्रान सुजान के सग दिये गलबाह बसो हिय मोरी।
श्री चन्द्रकलादि अली गुनआगरि नागरि रूप लखे तृन तोरी।
ईश मनाय अशीशे गवै कि बनी रहे नित्य किशोर किशोरी॥

सखिन बिच नृत्यत युगल किशोर।
विपिन प्रमोद सरोजा तट पर दिव्यभूमि चमकति चहुं ओर।
चक्राकार रास मडल रचि राग रागिनी के कल शोर॥
चन्द्रकला विमलादि रगीली, वीणा मृदग लिये कर जोर।
चारु शीला सुभगा हेमा लिए, मुरली मुचंग चित्तरी जोर॥
चन्द्रा चन्द्रवती मिलि गावति, धेमा स्वरहि भरत रसबोर।
मदन कला करताल बजावत, सारंगी नन्दा टकोर।
पिय शिर सुभग सकीट विराजै, चन्द्रिका सीता के शिर रोर॥
चन्द्रहार प्यारी उर चमकत, पिय उर मोतिन माल उजोर।
कोटि कोटि रतिकाम विमोचन, नटवर वेष श्याम अरु गोर॥
रूप माधुरी कहि न परत है, अंग अंग छवि कै उठत हिलोर।
कर से कर दोऊ मिलि धारे, नयनन शैन चलत दुहुं ओर।
कबहे अधर रस पियत परस्पर, रस मतवारे दोउ चितचोर॥

प्यारी हाव पियाचित करषत, पिय के भाव प्यारी निज ओर।
दोउ रस सिन्धु मगन रस लम्पट, अग्रअली नहिं चाहत मोर।।

देखो सखि अति अनन्द रास रच्यो रामचन्द्र,
रजनी छबि छिटकि रही सरद चांदनी।।
बहु साखे मंडलाकार नृत्यगान स्वर संभार,
नृत्यत रघुनन्दन मिथिलेश नन्दनी।।
कंचन मणि लसत भूमि नृत्यत पद चपल घूमि।
नूपुर छननन छमक छमक छन्दनी।।
कमला विमलादि तान रागा अनुगादि गान।
करहिं राग रागिनी कला कलिन्दनी।।
चन्द्रकला वीणा मुचग धुनि मृदंग मधुर।
अपर सखि सीतार तार तर तरगनी।।
ताधिग-धिग ताधिग-धिग, ताधिन्ता ताधिन्ता।
धिकिट धिकिट धिधिकिट धिधिकट प्रबन्धनी।।
उघटत सगीत राग, ताल मूर्छानदि ग्राम।
हाव भाव पानि मुरनि नैन खंजनी।।
श्री रामचरण युत समाज मेरे हिय मे विराज।
यह विहार नित अखण्ड रसिक मन्डनी।।

सरद पून बिमल चन्द बिमल मही अनन्द कन्द।
रामचन्द्र राम रच्यो देखन सघी धाई।।
सरयू पूलिन बिमल कूल फूले बहु रग फूल।
कमल चम्प केतकी कदम्ब सुरभि छाई।।
बोलहि सारो मयूर कोकिला मराल कीर।
गुजहि अलि सकल राग रागिनी बनाई।।
किन्नरी अप्सरा गान मूर्छन स्वर ताल तान।
धरहिं भूमि तरुन लतन नीर गगन जाई।।
बाजहि मृदंग जंग मारंगी तमूर।
चंग वीण बेणु आदिक स्वर ताल गति सुहाई।।
युग युग सखि विच विच एक मध्य रामनिरतन,
संगीत तांडवी सुगंध गति अनेक लाई।।
गावहिं षट राग राम रागिनी स्वर ताल ग्राम।
सब धरि सखि रूप राम रास हेतु आई।।

जानकी रघुनन्दन मन भावनि भये रैन।
ब्रह्म श्री रामचरण सर्व जीव परमानन्द पाई॥

आज सखी लखु राम मंडल मे नृत्यत हैं रस रंग भरे।
बन अशोक सम भूमि खचित मणि रवि सम अमित प्रकाश करे॥
श्री रघुनन्दन जनक नन्दनी अभित मदन तबि अंग धरे।
क्रीट मुकुट चन्द्रिका मनोहर भूषन अंग अंग नगन जरे॥
कुंडल मकर हार मोतिन के बैजन्ती बनमाल गरे।
नासा मणि झूलत अधरन पर केसर चन्दन खौर करे।
मोतिन माग भरी बरबेनी कुटिल अलक जनु भ्रमर खरे॥
मणि कंकन पहुंची कर चूरी बाज् बंद जराऊ जरे।
नील पीत पट लसत दुहुन तन श्याम गौर मिलि लगत हरे॥
किंकिन मुखर अरुण कर पल्लव पग नूपुर झनकार करे।
थेइ थेइ करत भरत स्वर अलिगन निरतत पिया संग अनन्द भरे॥
वजत मृदंग ढोलक सारंगी झांझ मजीरा वीन वरे॥
जग् जग् सखिन बीच रघुनन्दन करसों कर धर लसत खरे।
कर मंडल निरतत सखियन संग निरखि मदन बहु मूरुछि परे॥
पूर रह्यो वन मंडल सोरम अचर सचर चर अचर करे।
सुर मुनि अगम सुगम रसिकन को रस माला यह ध्यान धरे॥

रसिक दोऊ नूतन रंग भरे।
बिपिन अशोक राम मंडल विच जनक लली रघुलाल हरे॥
अमित रूप धरि करि कछु चेटक जुग जुग तिय मधि श्याम अरे।
क्रीट मुकुट की लटकि चन्द्रिका झुकनि मदन पद दूर करे॥
मोतिन हार जुगल उर राजत कुन्द मालती माल गरे।
पग नूपुर मंजीर मधुर धुनि कंकन किंकिनि मुखर तरे॥
मुरज मजीरा ढोल सारंगी अरु मुरली के टेर करे॥
विविध ताल संगीत अलापत ततथेइ ततथेइ कहत खरे॥
कबहुं मधुर मुस्काय के दम्पति निरखति छबि भुज अंश धरे॥
कबहुं सुरति करि ब्याह समय की फिरति भांवरी रसिक वरे।
यह रस रास महा सुख सागर द्वादश योजन लो सवरे॥
रस माला भरि पूरि रही बन जग कोइ बुन्द प्रकाश करे॥

आज जनक दुलारी रस रंगन भरी।
चम्पा के बरन वारी वसन सुरंग वारी बदन मयंक वारी रूप अगरी॥
अरुण अधर वारी बोलनि मधुर वारी तिरछी चितवनि सर मारति खरी।
वेसर सुपास वारी मुक्त मृनाल वारी उरज उतंग वारी मदन जरी॥
मोतिन के हार वारी मध्य भाग छीन वारी।
जघन गंभीर वारी भावन भरी।
गमन मराल वारी नूपुर झनकार वारी रसमाला उर वारी मोह्यो मनरी॥

सांवरे सलोने जू झमकि झुकि आवेरे।
शरद की रैन पिया अधिक सोहावेरे॥
मंद मुसुकाये प्यारी जू के गलबाह दिये उंचे स्वर तान ले मधुर स्वर गावरे॥
रास मंडल अली संग लली करधरि छम छम छननन नूपुर बजाव रे॥
कटि लचकनि ग्रीव मुरनि धुरनि नैन कुंडल अलक मनि क्रीट झलकावरे।
नवल बिहारी प्रिया लली संग रसवस अली संग लता कुंज मन ललचाव रे॥

प्यारी जू के चंद्रिका मे चन्दहुं लजायो रे।
नीलतम घन उड़गन चहुं दिशि मोहै जुग मुत नागिनी अमिय रस पायो रे।
भौहन की टेढ़ी तिरछी नैन की सान लखि वेसरि हलनहुं में चितहुं चोरायो रे।
उरज उतंशहं, की कंचुकी की चमकनि हारहूं हमेलन की अलनि रमायो रे।
नवल बिहारी पिया स्वामिनी की निवी लखि मदन के रसवस कममस छायो रे॥

कर धरि पिया नटे पिया मुख हेरि हेरि।
चहुं दिशि अलिगन छमछम छमकत मंद मुसुकनि मे मदन रस भेरि भेरि॥
फहरत बसन सुगंधन छहरत मोती माल टुटत सखिन के टेरि टेरि॥
उरज गहत कर अधर चूमत जब पूछत रसीली बात अली मुख फेरि फेरि।
नवल बिहारी प्रिया घूवट मिप निहुकत पिया रस लहत बांधत वन्द वेरि वेरि॥

सारद विधु चय विजित वरानन विधु कर निकर सुहासम्।
मदन चाप जित भृकुटि कुटिल तिल सुमन मुक्त धृत नाशम्॥
चारु चिवुक दर ग्रीव मनोहर स्वधर विम्ब प्रतिभासम्।
मुकुर कपोल चिकुर चय चुम्बित नयन सरोज विलासम्॥
जनक सुता कर धृत परि नृत्यति ललित कंठ कृत गानम्।
पद नूपुर रव रंजित दश दिशिउर्चा रत ताल प्रमाणम्॥
पश्य मुदा रघुनन्दन मतिशय चित्त चमत्कृत वेषम्।

जनक सुता रंजन रतिपति मद गंजन मंगमशेषम्॥
'श्री रसिक' भणित सीतापति गीतं ललित पदावलि नीतम्।
सज्जन श्रुनि सुख प्रद मिद मद्भुत मंचित ताल विनीतम्॥

युगल छवि देखे नयन सिरात।
जन सुषमा सर मध्य लसत दोऊ नील पीत जल जात॥
वदन किधौं छवि नगर वसत जहं सम्मति विविध लखात।
चोरि लेत चित को जब मृदु हंसि करत परस्पर बात॥
कबहुं बैठि चौसर खेलत दोउ हार जीत पक्षपात।
रूप भरी गुण भरी चतुराई संग सखिन की ब्रात॥
विहरत कनक भवन गृह आंगन कबहुं अटन चढ़ि जात।
देखत फिरत रसिक अरी तह तहं जह जहं प्रिय दोउ जात॥

सजीवन जीवन युगल किशोर।
रैन ऐन मद नैन चैन चय चखत चतुर चितचोर॥
हंसत हंसावत होश जोश विन बोस लेत रस बोर।
सुधि बुधि विशद विहाय छाय छवि होय रहे चन्द चकोर॥
आस पास सहचरी सोहागिनि सिखवहिं मदन मरोर।
श्री युगल अनन्य अली रसिया दोउ उरझि रहे निशि भोर॥

दृगन भरि छवि लखु सीय रघुबीर।
कनक भवन राजत प्रिया प्रियतम श्यामल गौर शरीर॥
अंग अंग नव रंग रंगे वर, लसत सुरंगी चीर।
फूल छड़ी प्यारी कर राजत पिय कर शुचि धनुतीर॥
नजर बाग अनुराग लाग फल नटत मोर मनकीर।
नर देही सुमिरन बैदेही हेतु वदन मुनि धीर॥
हृदय पत्र लेखनी प्रीति करु तत्व मसी मुदनीर।
श्री जानकी वर दम्पती छवि भम्पति लिखले सखी तसवीर॥

सीया जू के दृग छवि नित नवीन।
अंजन मिस रंजन मन पिय लखि श्याम सु डेरा कीन॥
गौर अंग अरुणाम्बर झीनहु कहि न सकत अति झीन।
छिन छिन छटा घटा रस बरसत चित्त चातक रसलीन॥
नित संयोग वियोग न सपनेहुं निज मुद खुद लैलीन।
कृपा साध्य गुरु जुगल विहारिनि जानहिं रसिक प्रवीन॥

प्रिया जू के नेह भरे दोउ नैन।
अंजन युत रंजन मनरंजन अलिगन के सुख दैन॥
खंजन मोर मीन पंकज दल दुरि बन कोउ जल सैन।
रती कहैं मैं अहौं रती भरि मैन कहै मम मैन॥
उमा रमा ब्रह्मानि आदि सब तौली सुमति तु लैन।
श्री मिथिलेश कुमारि प्यारि पिय उपमा तो कहु है न॥
जेहि दिशि हंसि दरसत सरसत मुद बरसत बरनि व नैन।
जुगल विहारिनि जानत प्रीतम जे निरखत दिन रैन॥

किशोरी ज के अनुपम रसमय बैन।
सुधा सुधाकर शुक पिक हूं नहिं कोकिल ह सम हैन॥
मन्द हंसनि रद लसनि अधर छवि फसनि प्रिया प्रद चैन।
अंग अंग छवि फवि कवि दवि मति सारद वरनि सकैन॥
करत विहार अपार पिया संग कनक भवन सुख दैन।
श्री जुगल विहारिनि भरि उमग सखि सेवति है दिन रैन॥

मद छाकी छबीली गहि प्रीतम को रग बोरे री।
मंद विहंसि मुख मोरि फेरि दृग झकझोरनि चित चोरे री॥
छीनि लई करते पिचकारी मुख भांड़त वर जोरे री।
रसिक अली राघव कर जोरत गहि रहि अंक न छोरे री॥

रघुनन्दन खेलत होरी।
विपुल सखिन जुत जनक नन्दिनी बनेउ सखा हरि ओर।
फाग मची बहु बाजन गानन होत शोर चहुं ओर॥
लसै सब सुन्दर जोरी।
कुम कुम की चमची सरयू तट लाल भई जल धार।
वर्षहि रंग देवतिय नाचहि काहु पट न संभार॥
अंग सब रगन बोरी।
राम सखन ललकारि अग्र बढ़ेउ एत सखियन करि जोर।
भरत शत्रुहन लखन लाल को धरि लाई निज ओर॥
करहिं मन भावत सोरी।
भूषन वसन उतारि लीन्ह सब निज भूषन पहिराई।
श्री राम चरन सखि छाड दीन्ह तब गीय की जीत कहाई॥
भई जय जनक किशोरी॥

परि मेरो श्याम सनेही मेरे वस अनुराग री।
अधरामृत दै गल भुज मेलों खेलोंगी संग फाग री॥
कुचनि गुलाल लाल पर डारों उरझों मनमथ जाग री॥
नैनन की मैनन मे छिरकों प्रकट करों सब लाग री॥
पिय के शीश ओढ़ाउब चून्दरि मै जू धरों शीर पाग री।
लाल नचावों आपने आगे मै गावों हंसि राग री॥
जोड जोइ कह्यो कियो सिय प्यारी भारी भरी है सुहाग री॥
श्री कृपानिवास महा सुख निरखत सखियां सराहत भाग री॥

श्याम मुख रंग की बून्द ढरी।
मानहुं काम कसौटी उपर कंचन की कस परी॥
अलकैं चुवैं मनहुं घन माला रस अनुराग भरी।
श्री कृपानिवास अलीगण अंखिया सीयवर रूप अरी॥

श्याम मुख लाल गुलाल लगी।
नील कमल जनु प्रकट प्रात रवि अरुण किरन जगमगी॥
अलकैंघूमि आई मुख उपर केसर रंग रंगी।
षट् पद वधू आय अम्बुज लौ अरुण पराग पगी।
रूप अनूप विलोकत आली नेह सनेह सकी।
दम्पति अली रूप निधि सीते पीय अति रूप पगी॥

सइयां जाने न पैहौ डारो न मो पर रंग।
श्री मिथिलेश लली की अली सब आनि जुरी एक संग॥
मुनि सकुचाय रमाय दृगन दृग बोलत वचन उमंग।
काह करेगी विपुल नारि लगि जावो हमारे अंग॥
कंठ लगाय भिजाय भिजे रंग बढ्यो परस्पर जंग।
श्री युगल प्रिया यह फाग अनोखी लखि रति पति मद भंग॥

निसि दिन तरसे नयन मां री आली श्याम बिना।
जब सुधि आवत श्याम सुन्दर की हिय के मरोरे मदन मां री॥
श्री दशरथ नन्दन प्राण पती को बिन देखे न चयन मां री।
श्री युगल अनन्य अली बिरहिनियां चाहत अब ही मिलन मां री॥

जेहि दिन पिय से मिलन वां हो राम सोइ सुभ दिनवां॥
मिलन उछाह अथाह माह मुख चाह बढ़त छिन छिनवां हो रामा॥

सरल सुभाव जाउ बलिहारो विलमायो प्रभु किनवां हो रामा।
पलक कलप सम बीतत मीत विन व्यर्थ अहै जग जिनवा हो रामा॥
सरन भरोस एक सतगुरु प्रद हो सब साधन निवा हो रामा।
जुगल विहारिनि बिरह मरज हरि देहु दरस सुख छिनवा हो रामा॥

बैठे युगल बिहारी री सजनी दिये गलवाही।
पान बिरा पिय प्यारी मुख पिय देत पिया मुख प्यारी री॥
पान खात बतरात परस्पर हसि हंसि अलक सवारी री॥
कबहु परस्पर मुख चूमत हैं पीवत अधर सुधारी री।
कबहु लटक पिय प्यारी ऊपर पिय उपर मिय प्यारी री॥
कबहु बलैया लेत परस्पर राई लोन उतारी री।
यह रस मोद निरखि सुख अह निसि होत पलक नहि न्यारी री॥

फूल बंगला

बंगला फूल मध्य दोउ बैठे मोहत श्यामा श्याम।
अरुन बसन प्यारी तन राजत प्रीतम पीत ललाम॥
जाही जूही ललित चमेली सेवति बैला दाम।
झम झम परत गुलाब फुहारे घनन घनन घनश्याम।
निरखि प्रिया अनुपम छबि प्रीतम नवल रूप अभिराम॥
कहत बनत नहि कहो कहा सखि ये कामहु के काम।
प्रीतम देखि प्रिया सुन्दरता कहत मनहि मन राम॥
हम तो बिके सदा इनके कर बिना मोल के दाम।
रहो दोउ आनन्द परस्पर श्री जानकि वर सुखधाम॥

युगल ललन नव छबि शृगारो।
फूल सेज चादनी सुफूलन फूल पाग सिर धारे।
जामा फूल फूल ही पटुका फूल पेच गलहारे॥
फूल कंचुकी चूनरि फूलन फूल माग झलकारे।
फूल माल दोउ गरे बिराजत कोटि चन्द्र उजियारे।
मानो फूल सिन्धु मे खेलत रति मनोज द्वै तारे॥
फूल शृंगार देखि प्रिय प्रीतम सखिया प्रान बिसारे।
श्री जानकी वर की भूरि सजीवनि वाह कहत बलिहारे॥

रथ चढ़ि चले सरयू तीर।
रसिकनी मिथिलेश नन्दिनी रसिक श्री रघुवीर॥
प्रथम मास अषाढ़ पावस बहत त्रिविध समीर।
उमड़ि घुमड़ि घमंड घन धनि व्यापि रही गंभीर॥
श्याम गौर सुरंग अंग सुपहिरि कुसुमी चीर।
जड़े भूषण नगन के छबि देखु मन करि थीर॥
हरित भूमि विभाग कंचन जटित मनि गन हीर।
हरित द्रुम सघनावली खग मधुर बोलत कीर॥
सहचरी गन अमित चहु निशि गान तान सुधीर।
युगल प्रिया सु उतरि रथ ते पूजि मानस नीर॥

उमड़ि घुमड़ि आई बादर कारी।
दशरथ नंदन जनक लली जू बैठे सखिन सग महल अटारी॥
कुसुमी बसन युगल तन राजत जगमगात भूषण उजियारी।
अलकैं बिथुरि रही मुख ऊपर मुकुट चंद्रिका लटक सवारी॥
चंद्रावती मृदंग टंकोरति चंद्रा तानपूर करतारी।
चंद्रकला जू बीन बजावति गावत उमंग भरे पिय प्यारी॥
अधिक प्रवाह बढ्यो सरयू को भरे प्रमोद विलोकत वारी।
युगल प्रिया रसिकन के संपति अगम निरखि रति पति बलिहारी॥

रसिक दोऊ झूलत सरयू तीर।
रघुनन्दन अरु जनक नन्दिनी श्यामल गौर शरीर॥
राजत छबि मैं रतन हिंडोरा तापर बोलत कीर।
गावहिं छबि अवलोकि प्रेम भरि चहुंदिशि सखिन की भीर॥
बाजत बीन मृदंग उपंग मृदंग ताल अति धीर।
जुगलप्रिया अति सुख वषत जब लेत तान गंभीर॥

किशोरी संग झूलत नवल किशोर।
दशरथ नन्दन जनक नन्दिनी सुन्दर श्यामल गौर॥
सरयू तीर सुखद प्रमोद बन विश्व भूमि शिरमौर।
ता मधि मणिमय रचित हिंडोरा लसत हेम मय डोर॥
चन्द्रकला सखि हरषि झुलावति विमला ढोरति चौर।
जुगल प्रिया यह मधुर केलि लखि सुधि बुधि सब भई भोर॥

झूलै प्यारी झुलावै प्यारो।
मधुर मधुर कर कंज मंजु गहि रेशम रजु सुकुमारो।
नैनन निरखि नवेली विधु मुख मन्द हंसनि नृपवारो॥
उरझि रहे अंग अंग रंग रस सुरझनि अगम निहारो।
श्री युगल अनन्य अली दोउ नेहिन ऊपर सर्वस वारो॥

पिय लागो सावन मास आम यह मेरी।
चलि झूलै विमल हिंगोर गले भुज गेरी॥
भये हरित वरन वर भूमि सोहावन लागे।
फूलै फलै विपिन प्रमोद मोद मय बागै॥
गुजत मधुकर करि शोर मोर मन रागै।
भल समय सुखद अवलोकि निठुर पन त्यागै॥
शुक चातक कोयल हस कोकिला टेरी।
सुनि प्राण प्रिया वर वैन नैन लखि प्यारी॥
गहि अंक रंग ज्यों सुघन मोद लहि भारी।
चलो मेरी जीवन जीवन सकल सुखकारी॥
श्री चन्द्र कलादिक सखी साज सवारी।

आयो सर्यू वर तीर घटा घन घेरी।
विद्रुम नग मनि रचि हेम अनूपम झूला॥
तेहि बैठे सिय महबूब खब अनुकूला।
सखि झुकि झुकि झमकि झुलाय पाय प्रिय दूला॥
नभ बिबुध वधु बहु हरषि बरषि रही फूला।
सुख कन्द मन्द मुसुकाय सिया तन हेरी॥
पट पीत नील फहराय लपटि अरुझानी।
सुरझावत सिय पिय विहंसि नही सुरझानी॥
दोउ नील पीत मिली हरित रंग प्रगटानी।
सखि गावे हरे हरे गीत हेरि सुख मानी॥
प्रीतम तमाल तरु प्रीतिलता लपटेरी।
पिय लागो सावन मास आस यह मेरी॥

सब तजि होइहौं महल उपासी।
स्वर्ग मुक्ति बैकुन्ठ विसारौ होय गुरु पद की दासी॥

सद्गुरु वचन महारस मानौ परौ न भ्रम की फांसी।
सेज विहार राम रस लूटौ त्यागि वियोग उदासी॥
युगल विहार भावना करिहौ भटकौ न तीरथ काशी।
और ठौर उझकौ नहिं नयनन राम सिया छबि प्यासी॥
गुरु प्रसाद भई रसिक छाप अब नाहिन बटु सन्यासी।
भाव कुभाव धरे कोइ मन मे कोइ करे उपहासी॥
लोक लाज कुल मान बड़ाई आश त्रास सब नाशी।
कृपानिवास कृपा करी सीय जू करिहौ युगल खवासी॥

करि सोरहो शृंगार पिया घर जाना ही हौगा।
रति बिछिया प्रेमा सुमहावर चमकत प्रभा अपार॥
धृत सनेह तदीय सु नूपुर मधु मदीय मदकार।
उरु पर साटी सोइ धारो कर मनसिज उदगार॥
मान किंकिनी कटि में सोहै प्रणय उरस्थल हार।
कुच पर राग अनुराग कंठमणि महाभाव नथ प्यार।
रुढ़ सिन्दूर अधिरुढ़ सु कज्जल सौभागिनी शुभकार॥
मोहन मोदन कर्णफूल धरु जो सोहाग विस्तार।
शीश फूल मादन मनमथ सम शीश उपर सुठिधार।
यामें नित्य विलास सहस्रधा केलि अपरम्पार।
रति स्थायी की यह सीमा प्रबल अमित रसदार॥
यहि विधि करि शृंगार मनोहर प्रीतम मन बसकार॥
व्यक्त यौवना तू अति सुन्दर गर्वीली गतिधार॥
रमकि झमकि के पिय संग मिलि के देहिं सुरति सुखसार॥
तब तों सौभागिनी तू पिय के ह्वै जैहो गलेहार॥
तू वे वे तूं ऐक्य होय के फिर नहिं द्वैत प्रचार।
यथा अम्बु निधि मिलि के सरिता द्वै नहिं एकाकार॥
शिव शुक सनक शेष श्रुति हनुमत औ मुनि रसिक उदार।
यह उपासना रस समुद्र में मज्जत सांझ सकार॥
बिनु निहेंतुकी कृपा सीय की यामें नहिं अधिकार।
यह रसमोद बिना रस वेत्ता जानत नाहिं गंवार॥

अनुक्रमणिका

अ

अंग-सौरभ—२९
अंगिरा—१०१
अंगुरीय—२८
अंशावतार—९०, ९४
अकुल वीरतन्त्र—४९, ५६, ५७, ५८, ६०, ६१
अगस्त्य—१०७, १११,
अगस्त्य रामायण—१६६
अगस्त्य-संहिता—१२६, १५९, १८०
अग्निचक्र—५९
अग्नितत्त्व—४९
अग्रस्वामी—१२५, १२७ १३१, १३३, १३६, १३९
अघोरघण्ट—६३
अजात—४७
अजातरति—१०
अणिमादिकसिद्धि—६३
अणुभाष्य—८
अतिदेश—३०
अतिशून्य—६६
अत्रि—१०१
अथर्ववेद—९८
अद्वय वज्रसंग्रह—४६
अद्वयस्थिति—३५, ४६
अद्वैत कवि—१७२
अद्वैत ज्ञान—६०
अधीरा—२५
अध्यात्मरामायण—१८०
अनंगवज्र—६५
अनाहत चक्र—५९
अनिरुद्ध—९०, ९२
अनुकूल नायक—२६
अनुताप—३०
अनुभाव—१८, १९, ८०, १४७
अनुराग—१६, १८, ३१
अन्तर्यामी—८९
अन्तः सम्मिलन—३७
अन्तियल्किदास—९०
अन्दाल—१०३, १६२
अपदेश—३०
अपलाप—३०
अपस्मार—२९
अप्रकट लीला—३४
अप्राकृत लीला—७३
अप्राणिजन्म—३१
अभिजल्प—३२
अभिसार—८२
अभिसारिका—२५
अभ्युदय—१००
अमरवारुणी—५२
अमरौली—५३, ६२, ६३
अमितार्था—२६
अमृत भांड—८७९
अयोध्या नित्यरामस्थली—११०
अरुण—२८, २९
अर्चना—७८
अर्चावतार—८९
अर्थपञ्चक—२, ११३
अर्द्धनारीश्वर—३६
अवजल्प—३२
अवतारवाद—८९
अवधूतमार्ग—५६
अवधूतिका—४५
अवधूती नाड़ी—६६
अवलोकितेश्वर मैत्रेय—३८
अव्यर्थकालता—८०
अष्टमञ्जरी—८३
अष्टसखी—८२

असंग—४१
असूया—२९
अहंकार भाव—९३
आगमसार—४३
आचार—५८
आचार्य शुक्ल—१०१
आजल्प—३२
आत्म-निवेदन—७८
आत्मनिक्षेप—१०४
आत्मपान या अस्मिता—६४
आत्मरति—४
आत्माराम—४
आदिनाथ—४९
आदिरामायण—१६५
आद्य—२७
आनन्द भैरव—७१
आनन्द रामायण—११४, १६४
आनन्द वार्त्ता—८८
आस्सक्योर रिलिजसकल्ट—४६
आरोप तत्त्व—७४
आलम्बन विभाव—२६
आलवार—४, ५, ६, १०२, १०५, १६२
आलस्य—२६
आलोकितेश्वर—४०
आवेशावतार—८९, ९०, ९१, १८४
आशाबंध—१७, ८०
आज्ञाचक्र—५९
आज्ञाभाव—८१

इ

इच्छा-शक्ति—१४५
इड़ा—३६, ४३, ४५, ५१
इण्डिया आफिस—१६५
इण्डियन एंटिक्वेरी—९७
इण्डियन थेइज्म—९७
इण्डियन फिलासफी—३९
इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथीक्स—१०१
इन्द्र—९८
इन्द्रिय—६१
इपिग्राफिका इंडिका—९७
इस्लाम धर्म—८९
इक्ष्वाकु—९७
ईरान—६८
ईक्षण-कला—१७७

उ

उग्रता—२९
उच्चाटन—४२
उज्जल्प—३२
उज्ज्वल नीलमणि—२२, २३, २४
उज्ज्वल भक्तिरस—११३
उत्कण्ठा—३१
उत्कण्ठिता—२५
उत्तमा—२५
उत्तररामचरित—१६९
उत्तरीय स्खलन—३०
उदार राघव—१६९
उद्दीपन विभाव—३०, ११३, १५७
उद्भास्वर—३०
उद्वेग—३३
उन्मनी अवस्था—४४
उन्माद—२९, ३३
उपपति—२, १६३
उपपति भाव—१७५
उपादान—८८
उपाय—३६, ४४, ४५, ७३
उपाय सूर्य—६६
उपासक परिस्मृति—८१
उपासना त्रय सिद्धान्त—१८३
उपासना शक्ति—१०८
उपास्य परिस्मृति—८१
उपेन्द्र—२९
उमा—३६
उर्मिला—१६४, १६९
उलटबासियाँ—७६
उष्णीश—२८
उष्णीशकमल—५०, ६६

ऋ

ऋग्वेद—९७, ९८, १००
ऋणात्मक-धनात्मक—४६, ४७

ए

एकता—४७

ओ

ओटो श्रेडर—१४६
औत्सुक्य—२९

क

कनिष्ठा—२५
कपाल कुण्डला—६३
कपाल वनिता—६१
कपिल—२९
कबरी—२८
कबीर—५४, ५५, ६८, ६९
करमाबाई—७१
करुणा—२८, २९, ४४, ४५, ४६
कर्बुर—२८
कर्ममुद्रा—४७
कलहांतरिता—२५
कल्पावतार—९०
कश्यप—४०
कल्याण कल्पद्रुम—१३०
कानूपा या कानपा—६१
कापालिक—५३, ६१, ६२
कापालिक साधना—६४
काम—१६, ७३, ७४
काम कला—४६
काम कला विलास—४६
कामरूप—५६, ७९
कामानुगा—१५, १६
कामिल बुल्के—११४, १६५
काय व्यूह—७९
काया योग—६८
काया शोधन—३७
कारण देह—८५
कारणार्णवशायी—९०
कार्पण्यम्—१०४
कालिदास—१०२
क्रियाशक्ति—९०, १४५,
कीर्त्तन—७८
कुचनीस देश—७१
कुण्डलिनी—५९, ६०, ६७
कुण्डलिनी योग मूलक साधना—५६, ५९
कुमारदास—१६९
कुब्जा—७९, १६४
कुलक्षेत्र—५६
कुरुक्षेत्र—१६४
कुल और अकुल—५६
कुलतन्त्र—५७
कुलशेखर अलवार—१०२, १०३, १०५, १६२
कुलार्णव तन्त्र—४३
कुसुंभराग—३१
कृच्छाचार—६७
कृष्णदास कविराज—१७३
कृष्णदास गोस्वामी—७१
कृष्ण प्रसादजी—८०
कृष्णभक्त प्रसादजा—८०
कृष्णभक्ति आधार—२६
कृष्ण भावनामृत—१०
कृष्णरति—२७
कृष्णावत मधुर उपासना—६
कृष्णावत सम्प्रदाय—१०६
कृष्णेन्द्रिय तर्पण—७४
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा—७४
कृष्णोपनिषद्—१०३
केयूर—२८
केलिपद्म—२८
केवल—४७, ८०
केशवर्द्धन—२८
केश संस्कन—३०
क्लेशघ्नी—१५
कैकेयी—१०८, १७०
कैलास—५९
कैवल्य रूप—६३
कौमार—२७
कौल—५४, ६०
कौलाचार—४२, ६०
कौलोपनिषद्—५८
कौशल्या—१०८
कौशाम्बी—३९

ख

खण्डिता—२५
खेचरी भांड—८७

खेचरी मुद्रा—५१, ५२
ख्रीस्तीय धर्मसमाज—८९

ग

गरुड़ पुराण—१०७
गायत्री—१०७
गालवाश्रम—१३५, १३६
ग्लानि—२८
गीत गोविन्द—१८५
गीता—२, ५०, ९७
गीतावली—६, ११६
गुण कीर्त्तन—३३
गुण मञ्जरी—७९
गुणावतार—९०, ९३
गुप्तचन्द्रपुर—७२
गुह्यसमाज तन्त्र—३९
गुह्य-साधना—६, ३९, ४१, ४२, ४६, ४७, ४९
गोरा अन्दाल—४
गोपा—७१
गोपालभट्ट गोस्वामी—७१, ७९
गोपिकाभाव—१५२
गोपीनाथ कविराज—४१, ८७
गोप्तृत्व वरणम्—१०४
गोरख—५२
गोरख सिद्धान्त संग्रह—५१
गोरखनाथ—५६, ६७, ६८
गोरक्ष पद्धति—५१, ५२
गोरक्ष विजय—५०, ५१
गोलोक—२५, २६, १५३, १५४, १५५
गोविन्द लीलामृत—१०
गोस्वामी तुलसीदास—११५, ११७, १३३
गौड़ीय वैष्णव—८, १०, १७३
गौड़ीय सम्प्रदाय—१०७
गौणी रति—२०, २१
गौतमीय तन्त्र—१६
गौरांग देव—१०
गौरी प्रिया—७१

घ

घूर्णा—२९
घृत स्नेह—१७, ३१
घोसुण्डी—९७

च

चण्डालिनी कन्या—७१
चण्डिकायतन—१६८
चण्डीदास—७१, ७४, ७६
चतुर्व्यूह—९७
चतुष्क—२८
चतुष्की—१८
चन्द्रकला—११०
चन्द्रगुप्त—३८
चन्द्रधर शर्मा—३९
चन्द्रनाड़ी—४५
चन्द्रावली—८२
चर्याचर्य विनिश्चय—६१
चल-अचल—४६
चान्द्र रामायण—१६६
चापल्य—२६
चार्वाक—७०
चिज्जगत्—२२, २३, २४, २५
चित्तवज्र—४१
चित्रकूट—१५१, १५२, १५३, १५५, १६५
चित्रकूट माहात्म्य—११४, १६५
चित्रजल्प—३२
चित्सत्त्व—२३
चित्सुखी—३०
चिन्मय राज्य—८८, ९१
चैतन्य—६,
चौरासी सिद्ध—४९

ज

जगद्दल विहार—४०
जड़-जगत्—२२, २४
जड़ता—३३
जनकपुर—१६६
जयदेव—७१, १८५
जनरल आव दि रायल एसियाटिक सोसायटी—९७
जरास्थ संहिता—१०५
ज्वलित सात्त्विकभाव—१९, ३०
जातरति—१०

जानकी गीतम्—१५९
जानकीस्तवराज—१५९
जानकी हरण—१६९
जालधर गिरि—६६
जालंधर नाथ—६१
जीव कोटि—९१
जीव गोस्वामी—७, ८, २३, २४, ७१, ७८, ७९, १३७, १७३
जीव शक्ति—६०, ७२
जे० एस्० एम्० हूपर—५
जैकौबी—९६
जैवधर्म—२२

ड

डाक्टर ग्रियर्सन—१२१

त

तन्त्रालोक—५६
तजकी रतुल फुकरा—१२७
तटस्थलक्षण—७
तटस्था शक्ति—७२
तत्तद्भावेच्छामयी—१६
तत्त्वसग्रह—३९
तत्सुखी—३०
तथागत—३९
तदेकात्मरूप—८९, ९१
तनु मोटन—२६
तपसीजी की छावनी—१२२
तर्कशास्त्र—४०
तक्षशिला—९७
ताण्डव नृत्य—६४, १४७
तारक मन्त्र—१४३
तिरुविरुत्तम—१०
त्रिकायवादी महायानी बौद्ध—८९
त्रिकोण चक्र—५९
त्रिपिटक—३९
त्रिपुटी भग—३४
तुडबन्ध—२८
तुलसी—११६
तुलसी की गुह्य साधना—११५
तैत्तिरीयोपनिषद्—७७, ९८, १००

थ

थेरवादी—३८

द

दण्डकारण्य—१०४
दमिडोपनिषद—५
दर्शनी—७०
दशम द्वार—५१
दक्षिण नायक—२६
दक्षिणाचार—४२, ६०
दादू दयाल—५४, ६९
दाम्पत्य भाव—१०६
दास्य भाव—१०६
दास्य रति—१६,
द्वारका—११०
दिव्य देह—२४, ५३
दिव्य प्रेम—७०, ७३, ७४
दिव्य बोधि सत्त्व—४१
दिव्य भाव—४२, ७२
दिव्य लीला—७२
दिव्य सभोग—९
दिव्य साकेत धाम—४
दिव्य साधक—६०
दिव्य सौदर्य—७४
दिव्यीकरण—७२, ७४
दिव्योन्माद—३२
दीपंकर बुद्ध—४०
दीप्त सात्विक भाव—१९
दुरत रामायण—१६६
दुष्टवध—२७
देवकन्या—७१
देवरामायण—१६६
देवी भागवत—५८, ६३
द्वेषजन्य रागात्मिका—७८
दैवज्ञ—२६
दौमोडीपाद—६१

ध

धनात्मक महासुख—४६
धर्मकर—४०

धर्मकाय--४१
धर्मपाल--३८
धर्ममुद्रा--४७
धर्ममेघ--४४
धात्रेयी--२६
धारिणी--४२
धीर ललित--२६
धीर शान्त--२६
धीरा--२५
धीराधीरा--२५
धीरोदात्त--२६
धीरोद्धत--२६
ध्रुव--४७
ध्यायित सात्विक भाव--१९, ३०
धृति--२९
धृष्टनायक--२६

न

नन्द--८०
नवधा भक्ति--१६६
नागार्जुन--४१
नाथपथ--३७, ६८
नाथ सम्प्रदाय--६१, ६२, ६३, ६५
नाथसिद्ध--६८
नाम-भाव--८१
नान्द पाञ्चरामत्र--१४, १०२
नारायण वाटिका--९७
नारीतत्त्व--४५, ४६
नालदा--३८
निज गुरु--१२१
निजेन्द्रिय तर्पण--७४
निजेन्द्रिय प्रीति इच्छा--७४
नित्य गोलोक--२४
नित्य चिन्मय राज्य--८८
नित्य देश--७२
नित्यधाम--७९
नित्य लीला--३३, ७३, ८७, ८८
नित्य वृन्दावन--८, ७३
नित्य सहचरी--२५
निम्बार्क--६
निम्बार्क सम्प्रदाय--८, १०७
निर्गुण भक्तियोग--१४
निर्गुण शिव--६३
निर्देश--३०
निर्माणकाय--८९
निर्वाण--४७, ६७
निर्वेद--२९
निःसत्व--१९
नीवीविस्रंसन--३०
नीलाम्बर सम्प्रदाय--७०
नीलाम्बरी साधना--५६
नीलिमा राग--१८, ३१
नीली राग--३१
नूपुर--२८
नृसिंह--२९
नृसिंह पुराण--१८०
नेह प्रकाश--१३७
नैयायिक रुद्र वाचस्पति--१८५
नरात्म--५३

प

पच काल--१०५
पच पवित्र--५६, ६४, ६७
पच मकार--४२, ४३, ५६
पचम पुरुषार्थ--८०
पच विध मुख्यारति--२०
पच संस्कार--१३९
पचामृत--६३
पचाश्रय--७६
पद्म-पुराण--९, १०४, १८०, १८१, १८२
परकीय मधुररस--२३, २४
परकीया भाव--२४, ६९, ७०, ७१
परकीया रति--७१, ८१
परत्व--१
परम पद--६९
परम प्रेम एव परानुरक्ति--९९
परम प्रेष्ठासखी--२५
परम शिव--५९, ६०, ६३, ७६
परमसत्य--६७, ७६
परम सुदर--७६
परम हस--१००

परवशी भाव—३१
परव्योम—२५, ९०
पराकाष्ठा श्वास भाव—८१
परात्परदिव्य प्रेम—७५
पराभक्ति—३
परार्था रति—२०
परावस्थ—९०
परावृति—४१
पराशर—११९
परिचारिका—२६, ३२
परिजल्प— ३२
पशु भाव—४२, ७५
पांच रात्र—११, १४, ९७
पांडर—२८, ५०
पक्षधर मिश्र (जग्दवकवि)—१६८
पाद सेवा—७८
पारद—५३
पारमार्थिक सत्य—६५
पारमित्यानय—४०
पारस्कर गृह्य सूत्र—९८
पाल्यदासी भाव—८१, ८२
पिंगला—३६, ४३, ४५, ५१, १४
पिंड—५५
पिप्पलाद मुनि—१४८
पीठमर्दक—२६
पुनीत—४७
पुरश्चरण—४२
पुराण संहिता—१५७
पुरातत्त्वानुसंधानी समिति—१२०, १२७
पुरान्स इन दि लाइट ऑव माडर्न साइंस—९
पुरुष और प्रकृति—२३
पुरुष तत्त्व—४५, ४६
पुरुष सूक्त—१००
पुरुषावतार—९०, ९२
पुष्टिमार्ग—१०, १२
पूर्व राग—३३
प्रकट लीला—३४
प्रगल्भा नायिका—२५
प्रजल्प—३२
प्रणय—१, १६
प्रणव तनु—५३
प्रति जल्प—३२
प्रतीप—१९
प्रद्युम्न जी—९०, ९२
प्रपंच—५७, ५८
प्रपत्तिवाद—५
प्रमात्मिका शक्ति—१०८
प्रवास—३३
प्रसन्नराघवम्—१६८
प्रसाधन—२७, २८
प्रज्ञा—३६, ४४, ४५, ५३, ७३
प्रज्ञाचन्द्र—६६
प्राकृत—२६
प्राकृतदेह—८५
प्राकृत लीला—७३
प्राणसखी—२५
प्राणायाम—५१
प्रातिभासिक—७२
प्रियता रति—२०, २३
प्रोतिरति—२०
प्रीति-संदर्भ—२३, २४
प्रेमदेह—८७
प्रेमपंचक—४६
प्रेमलताजी—११९
प्रेम वैचित्र्य—३१, ३३
प्रेम साधना—७०, ७६, ७७
प्रेमाभक्ति—३, ८०
प्रेमास्पद—७६, ९९
प्रेयस—२९
प्रोषित भर्तृका—२५
प्रौढा भक्ति—३

फ

फाहियान—३८

ब

बंग-साहित्य-परिचय—७१
बलदेव उपाध्याय—४०
बलदेव विद्याभूषण—१७३
बुद्ध—६५
बुद्धभद्र—३८
बुद्धितत्त्व—१०१

बुलर—९६
बोधिचित्त—४४, ४८, ५०
बोधिमत्त्व—६५
बौद्ध दर्शन—८०
बौद्ध वज्रयानी—६१
बौद्ध सहजिया—३७, ३८, ७१, ११८
बौद्ध साधक—६७
ब्रह्मधाम—२५
ब्रह्मपुराण—१०१
ब्रह्मयामल—१८०
ब्रह्मवैवर्त्त पुराण—२२, १०६
ब्रह्म शक्ति—५८
ब्रह्म सम्बन्ध—१२
ब्रह्म संहिता—२२, १५७
ब्रह्माण्ड—५५
ब्रह्माण्ड पुराण—१४५

भ

भक्तमाल—१३५, १३६
भक्तिरसामृत सिंधु—२२, ८०
भक्ति-सदर्भ—७
भक्त्यावेश—८९
भगवदाकर्षिणी—१५
भगवद्गुण दर्पण—१३७
भरद्वाज संहिता—१००
भवभूति—६१, ६३, ५६, १०२, १६८
भ्रमर दूत—१८५
भाडारकर—९७, १०२
भागभद्र—९७
भागवत—७२, १०६
भागवत धर्म—१०१
भागवतामृतकर्णिका—९३
भावचूडामणि—६१
भावदेह—१०, ११, ८५, ८६, ८७
भावमार्ग—८६
भावयोग—७९
भावसाधना—८७
भुसुडि रामायण—१४५, १६६

म

मंजरी देह—९, ११, ७९, ८३, ८४
मजिष्ठ राग—३१
मजुल रामायण—१६६
मंजुश्री—३८
मत्रजप—५५
मत्र तनु—५३
मत्रनय—४०
मत्रयान—४०
मत्रयोग—४२
मत्र रामायण—१०२
मत्र साधना—८५
मथरा—१७०
मति—२८
मत्स्येन्द्र नाथ—४९, ५६
मत्स्योदर कौल—५६
मथुरादासजी—१३०
मद—२९
मदन—६१, ६२
मधुर भाव—४८, ५३, १३५, १३६
मधुर रस—२२, २३, ३२, ३४, १३६, १७७
मधुराचार्य—१३७, १३९, १६३, १७१, १७३, १७५, १७६, १७९
मधुरा रति—१६, २१, २३, ३२
मधुस्नेह—१७, ३१
मध्यमा—२५
मध्व—६
मन वृन्दावन—७२
मन्वन्तर—६८, ९३
मरीचि—१०१
मर्यादा पुरुषोत्तम—९५
मर्यादावादी दास्य भाव—११७
महत्कौल—५६
महत्तत्त्व—९०, ९३
महाकवि हनुमान—१६६
महाकारण देह—८५
महातारा—४०
महानाटक—१६७
महाभारत—९९, १०१, १०२, १०३
महाभाव—१६, १८, ३०, ३१
महामुद्रा—४४, ४७
महामेरु गिरि—६६

महायान—३८, ४०
महायान सूत्रालंकार—४१
महारामायण—१२७, १४४, १६५
महावाणी—८
महाविष्णु—१०२, १०५
महावीर चरित—१६९,
महाशभु महिता—१५६, १८०
महाशून्य—६६
महासधिक—३९
महासदाशिव महिता—१५७
महासुख—३७, ४४, ४७, ४८, ६४, ६६, ६७
माडवी—१६४
मातृकुक्षि—५९
मादन—३१, ७२, ७३
माधव—२९
माधुर्य केलिकादम्बिनी—१७१, १७२
माध्वीक रस—१११
मान—१६, १७, १८, २५, ३१, ३३
मानवीय सौदर्य—७४
मान शून्यता—८०
मानुषी तनु—३९
माया शक्ति—७२
मायिक विश्व—२४
मारण-मोहन—४२
मालती माधव—६१, ६३, ६४
मिथुन—३५
मिथुन योग—४२, ४७
मिथुन योगाभ्यास—५
मीरा—४, ७१
मुख्यारति—२०
मुग्धा नायिका—२५, १६५
मुण्डकोपनिषद्—८७
मुरली—२९
मूलाधार—२१, ३७, ५०
मूलाधार चक्र—५९
मृणाल—६६
मृति—२८, ३३
मेखला योगिनी—६१
मेरुगिरि—६१, ६६
मेरुतत्र—४३
मैन्द रामायण—१६६
मैकनिकल—९७
मैत्रविश्रम्भ—१८, ३१
मैत्रेय—४१
मैथिली कल्याण—१६९
मैथिली महोपनिषद्—१४६
मैथुन—४६
मोट्टायित—३०
मोदन—७२
मोह—२९
मोहपाश—६०
मोक्षकार गुप्त—४०
मोक्षलघुता कृत—१५
मौलाना रसीद—१२७

य

यशोदा—८०
युगनद्ध—३५, ४५, ४६
युगबद्ध मूर्त्ति—५६
युगल—३५
युगलविनोद विहारी शरण—१४४
युगलानद शरण—१७३, १८२, १८३
युगावतार—९०, ९४
यूथभाव—८१
यूथेश्वरी—१४८
योग—५९
योगसाधना—६४
योगसूत्र—४८
योगिनी तत्र—४३
यौवन—३०

र

रघुवश महाकाव्य—१०२
रघुनाथदास गोस्वामी—८, ७१, ७९
रक्तिमा राग—१८, ३१
रति—३, १६, २८
रति मजरी—७९
रति विलास पद्धति—७३
रत्नमाल—२८
रत्याभासज—२९
रस—४८, ५५, ११०
रस और रति—७२

रसतत्त्व—४९
रसना प्राणवायु—६६
रसराज—३
रस-रूप-तत्त्व—२१
रसायन—४८
रसार्णव—५३
रसार्णव सुधाकर—३३
रसिक प्रकाश भक्तमाल—१३९
रसिक बिहारी शरण—१२५
रसिक भक्तमाल—१३९
रसिक सम्प्रदाय—११९, १३९, १६३, १६६
रसेश्वर दर्शन—४८
राग—७, १६, १८, ३१, ३५
रागवर्त्म चन्द्रिका—७९
रागमयी भक्ति—१, ७, ११
रागात्मिका भक्ति—७८, ७९,
रागानुगा भक्ति—२, ७, १५, १६, ७८, ७९
राघव—३०
राजगृह—३९
राजदन्त—५१
राजयोग—४२, ५५
राजाभोज—६६
राजाराम पाल—४०
राजा लक्ष्मण सेन—७१
राधा—२५, ७९
राधावल्लभ—८१
राधावल्लभीय—६
रामकथा—११३, १६५
रामगीत गोविन्द—१८५
रामचरणदास—१२९, १७३, १७९, १८२
रामचरित मानस—९२, ११६, १९२
राम जानकी विलास—१६६
राम तापनी उपनिषद्—१०२, १४२
रामदास गौड—१६५, १६६
राम नवरत्न सार संग्रह—१२९, १५६, १७९
राम पटल—१८५
राम रहस्योपनिषद्—१४६
रामलिंगामृत—१७२
रामानंद—६
रामानन्द स्वामी—१२३, ११५, १२५, १२९, १८४
रामानुजाचार्य—५,६,१०२,१०६,१२२,१२३
रामायण चम्पू—१६६
रामायण मणि रत्न—१६६
रामायण महामाला—१६६
रामावत सम्प्रदाय—६, ३७, ९५, १०६ ११८, १४०, १५१
रामी—७६
रामोपासना—९९, १०१, ११९, १४१, १५६
राय रामानन्द—७१
राम—२७, ७२
राम पंचाध्यायी—१०१, १४७, १७०
रुचिभक्ति—१, ८
रुक्षसात्त्विक भाव—१९
रूढ महाभाव—३१
रूप—२७, ८२
रूपकला—६
रूप गोस्वामी—७, १५, २७, ७९
रूप भाव—८१, ८२
रूप मंजरी—७९
रूप लीला—७३, ७५
रौद्र—२९

ल

लययोग—४२
ललना प्राणवायु—६५
ललित मान—१८
लक्ष्मी हीरा—७१
लालारस—२९
लावण्य मंजरी—७९
लिंगनी—२६
लीला—१२, ३०, ७२
लीलारस—४
लीलावतार—९०, ९३
लीला विलास—७२, ७३, ७९, ९९, ११४, १५१, १६६, १६७
लीलाविलासी सखी भाव—११७
लोकनाथ गोस्वामी—७१
लोक संवृति सत्य—६५
लोमश रामायण—१६६
लोमश संहिता—११०, ११३, १४६
लोहित विन्दु—५०

व

वंक नाल—५१
वज्र—६२
वज्रकाय—४८
वज्रधर—६१, ६६, ६७
वज्रयान—३८, ४०, ४४, ४७, ५३, ६५
वज्रयानी—६२, ६३, ६४, ६५
वज्रसत्त्व—४७, ६६, ६
वजौली—५०, ५३, ६३
वृन्दादेवी—२६
वन वृन्दावन—७२, ७३, १५५
वनस्रज—२८
वन्दन—७८
वय—२७
वयस भाव—८१
वलय—२८
वल्लभ—६
वल्लभाचार्य—१०७
वसिष्ठ—१०१, ११९
वसिष्ठ-अरुन्धती-सवाद—१६६
वसिष्ठ-सहिता—१५५
वशीकरण—४२
वसन—२८
वाग्वज्र—४१
वाचस्पति—४८
वाचिक अनुभाव—३०
वाच्य—२६
वाण भट्ट—६१
वात्सल्य—१६, २०, २३, २९
वामाचार—४२, ६०
वायु पुराण—१०२
वाराह पुराण—१८०
वारुणीपान—५२
वाल्मीकि—१०१, ११३, १२७, १७२, १७६
वाल्मीकि सहिता—१५०
वाल्मीकीय रामायण—१६३, १७३, १७४
वासक सज्जा—२५
वासभाव—८१
वासर—२९
वासुदेव—९१, ९७
विच्छित्ति—३०
विजय तंत्र—४३
विजल्प—३२
विदिशा—९७
विद्यापति—७१
विद्वेषण—४२
विधि-निषेध—१, २, १७७
विन्टरनीज—४१
विन्दु—५१
विपाक-विमर्द—४७
विप्रलब्धा—२५
विप्रलम्भ विस्फूर्ति—३१
विभाव—१८
विभु—८१
विरजा नदी—२४, ११३
विराट् पुरुष—१००
विलाप—३०, ३३
विलाप कुसुमाजलि—८
विलास—३०
विवर्त्त विलास—७१
विशुद्ध चक्र—२१
विशुद्धरति—७५
विशुद्ध रस—७५
विशुद्धाख्य चक्र—५९
विशेषक (तिलक)—२८
विशेष रति—७५
विश्रम्भ—१८, ३१
विश्वनाथ चक्रवर्त्ती—२४, ७८,७९
विश्वम्भरोपनिषद्—१२८, १४३
विश्वस्त—२९
विश्वामित्र—१६९
विषयावलम्बन—२
विषाद—२९
विष्णु—१६९
विष्णुपुराण—१७८
विसृष्टार्थी—२६
वीभत्स—२८, २९
वीर—२८, २९
वीर भाव—४२
वृन्दावनेश्वर—८२, १८४
वृहत् कौशल खड—११३, १७०
वृहत् गौतमीय तंत्र—२२

वृहत् भागवतामृत—८
वृहत् सदाशिव संहिता—१५७
वृहदारण्यक—९९
वृहस्पति—१०१, १४३, १५०
वेणु—२८
वेदव्यास—९०, १०७, १७०
वेदाचार—४२, ६०
वेलुल्लवादी—३९
वैकुंठ—२५
वैजयन्ती—२८
वैदिक मणि सदर्भ—१३७
वैधीभक्ति—१,१५,७८,८०
वैन्दवदेह—५२
वैभवावतार—९०, ९४
वैवर्ण्य—२९
वैष्णव फेथ एंड मुवमेंट—२४
वैष्णवधर्म रत्नाकर—१२३
वैष्णव सहजिया—३७, ७०, ७३, ११८
वैष्णवाचार—४२, ६०
वोपदेव—१२३
व्यभिचारी भाव—१८, २०, ११३
व्यष्टि विराट्—९०
व्याधि—२९
व्यूह—८९
व्योपदेश—३०
व्रजदेवी पिंगला—७१
व्रजनिधि ग्रथावली—११५
व्रजभाव—७८, ८१
व्रजरस—२६
व्रजलीला—३४
व्रज वनिता—२५
व्रजवासी भाव—२८
व्रीडा—२८

श

शंकराचार्य—६३
शंखिनी—५१
शक्ति और शिव—५६
शक्तिनाथ—६४
शठकोपमुनि—१०६, १६२
शठकोपाचार्य—१०३
शठनायक—२६
शठाग्मिुनि—१०
शतपथ ब्राह्मण—१०५
शबरी—१६६
शशिभूषणदास गुप्त—४६
शाक्तदेह—५३
शाक्तसाधक—५७, ६७
शाण्डिल्य मुनि—१०, १४३
शान्तरति—१६, ५०
शान्तिरस—८१
शारदातिलक—१०२
शिव-शक्ति— २१, ३५, ४७, ६७, ६९,
शिव सहिता—५९, १०७, ११३, १४६, १४९
शीत—१९
शीलभद्र—३८
शुकदेवजी—११९, १२६, १२७, १५३
शुक सहिता—१५१, १५२, १५५
शुद्ध तत्त्व—१६
शुद्ध सत्त्व—८०
शुद्धाद्वैत मार्तण्ड—१०७
शुद्धाभक्ति—१५
शुभदायिनी—१५
शून्यता—४४, ४५, ४६, ४८, ५३, ६५
शून्यवाद—६५
शृगार—२८
शृगारभावना—६
शृगाररस—३, २३, ३२, १०८, ११०
शेष—२७
शैवकालिकमार्ग—६१
शैवाचार—४२, ६०
शोक—२९
शोण—२९
श्यामा नाइन—७०
श्रम—२८
श्रवण—७०
श्रवण रामायण—१६६
श्री कील्हस्वामी—१३६, १३७
श्रीकृष्ण—९०
श्रीकृष्ण त्रिपाद विभूति—२४
श्रीकृष्ण सन्दर्भ—२४

श्री गोविन्द भाष्य--८
श्री निवास आचार्य--१०, ११
श्री पद्म--६१
श्री पर्वत--६१
श्रीमद्भागवत पुराण-- १५, २२, ९४, ९९, १०७, १११, १४७, १७०, १७३
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण--९९, १३९, १६३, १७३, १७४, १७९
श्रीराम--९०
श्री रामतत्त्वप्रकाश--१७७, १७९
श्रीरामतत्त्व भास्कर--१८३
श्री रामतापिनी--१२६
श्री राम नवरत्न--१८१
श्री राममन्त्र--१२६
श्री राम विजय सुधाकर--१२६
श्री राम स्तवराज--११९, १५८, १५९
श्री रूपकलाजी--१३५, १३६
श्री विष्णु पुराण--९७
श्री व्रज निधि--११२
श्री सम्प्रदाय--१२७, १३९, १६२
श्री सुन्दरमणि सन्दर्भ--१३७, १६३, १७३
श्रुतिकीर्ति--१६४
श्वेत--२८, २९

ष

षट्चक्र--५९
षड् ऐश्वर्य--९१
षडक्षर मन्त्रराज--१३९, १४३, १५०

स

संकर्षण--९०, ९२, ९७
संकल्प कल्पद्रुम--८५
संकीर्ण--३४
संक्लेश--४५
सचारी भाव--२०
संजल्प--३२
संत साधना--५३
संधिनी शक्ति--२, ७२
सभोग काम--४१
संभोग शृंगार--३२
सवित् शक्ति--२, ७२
संवृति--४५
सवृत रामायण--१६६
सस्थान भोग--४१
संस्पर्श--३३
सखा भाव--८१
सखी--२६
सखी भाव--७८, ७९, ८१, ११७, १६५
सखी भेद--२५, ७८
सख्य--७८
सख्य रति--१६, २०, ३१
सख्य विश्रम्भ--१८
सगुण शिव--६३
सच्चा--४७
सत्य भामा--१६४
सत्योपाख्यान--११३, ११४, १६९, १७०
सत्त्व--१९
सत्त्वाभासज--१९
सदाशिव--३६, ६९, ९०
सदाशिव सहिता--१२५, १४४, १५६
सनत्कुमार तन्त्र--९, ८१
सनत्कुमार सहिता--१८०
सनातन गोस्वामी--८, ७१, ७९, १७३
समञ्जस-पूर्वराग--३३
समञ्जसा-उभय निष्ठारति--३०, ७५
समय मुद्रा--४७
समरस--३५, ४६, ५९
समर्था--३०, ७५
समष्टि विराट्--९०
समुत्कण्ठा--१७, ८०
सम्बन्ध रूपा--१५, १६, ८०
सम्बन्धानुगा--१५, १६
सम्बन्धभाव--८१
सम्भोगेच्छामयी--१६
सम्मोहन तन्त्र--२२
सरहपा--५५
सरहपाद--४४
सर्वदर्शनसंग्रह--४८
सर्वशून्य--६६
सहज--५५, ५६, ६०, ६१, ७२
सहज काय--४१, ४८
सहजगान--७४

सहजियामार्ग—५६, ६९
सहजयानी—६४, ६५
सहज समाधि—५४, ६८
सहज साधना—५, ३५, ६७, ६८, ६९, ७५
सहजानन्द—४७, ६४, ६७
सहजिया—३६, ६९, ७३, ७४, ७५
सहजिया वैष्णव साधना—५६
सहजोलिका—५६
सहजौली—५३, ६२
सहस्रगीति—१०३, १०६, १६२
सहस्रार—३७, ५०, ५१, ५९, ६७
साख्य कारण देह—८५
साकल्यमल्ल—१६९
साकेत—११०, ११२, १५४, १५५, १८१
साठी—७१
सात्वतधर्म—१०१
सात्त्विक भाव—१८, १९, ११३
सात्त्विकाभास—१९
साधक देह—९, १०, ११, ८५
साधक भक्त—१८
साधक स्थिति—७६
साधन - भक्ति—८०
साधना—२६
साधनात्मक बोधि चित्तत्त्व—४४
साधनाभिनिवेशजा—८०
सान्द्रात्माप्रेम—८०
सान्द्रानन्द विशेषात्मा—१५
सामरस्य—६४, १०९
सायण माधव—४८
सार्वभौम—७१
साक्षात्-शक्ति—१४५
सिद्ध देह—९, १०, ११, ६३, ७२, ७८, ७९
सिद्ध भक्त—१८, २६
सिद्ध मार्ग—५६
सिद्ध सम्प्रदाय—४८
सिद्धान्त सग्रह—५७
सिद्धस्थिति—७६
सिद्धान्तमुक्तावली—१०
सिद्धामृत—५६
सिद्धान्ताचार—४२, ६०
सिद्धान्त रत्नावली—८
सिद्धैक वीरतन्त्र—४०
सिलवन लेवी—४१
सीतोपनिषद्—१२९, १४४, १४५
सीता-सावित्री—९८
सुखराज—६४
सुखावती—४७
सुजल्प—३२
सुतीक्ष्ण—१०२
सुन्दरी साधना—६८
सुप्ति—२८
सुब्रह्म रामायण—१६६
सुमित्रा उपासना शक्ति—१०८
सुमंत्र —३१
सुवर्चस रामायण— १६६
सुषुप्ति—५८
सुषुम्ना—३६, ४५, ५१, ६३, ६६, ६९
सूद्दीप्त—१९
सूफीसाधक—६८
सूरदास—१०१
सूर्य नाडी—४५
सूर्य चन्द्र सिद्धान्त—४९
सूर्य चन्द्रस्त्री-पुरुषभाव—५२
सूक्ष्म देह—८५
सोऽहम्—६१
सोलह मुख्य यूथेश्वरी—११०
सौन्दर्य लहरी—६३
सौदामिनी—६१
सौर्य रामायण—१६६
सौलभ्य—१
सौहार्द रामायण—१६६
स्तम्भन—४२
स्थायी भाव—१९, २३, २८, ३२, ८७, ११३
स्थविरवादी—३९
स्थूल देह—८५
स्निग्धसात्त्विकभाव—१९
स्नेहजन्य रागात्मिका भक्ति—७९
स्मरण—७८
स्मित—२९
स्मृति—२९, ३२
स्वकीया—२५

स्वप्न—५८
स्वभाव—८५, ८६
स्वभावज
स्वभाव देह—८६
स्वमुखी—३०
स्वयं दूती—२६
स्वयं भगवान्—९१
स्वरूप देह—६८
स्वरूप लक्षण—७
स्वरूप लीला—७३, ७५
स्वाश्रयतया शक्ति—७२
स्वांश रूप—८९, ९१
स्वाधिष्ठान चक्र—५९

ह

हंस—१००
हंसविलास—९४
हंस सन्देश (हंसदूत)—१८५
हजारीप्रसाद द्विवेदी—६९, १७७
हठयोग—३७, ४२, ५५, ६८
हठयोग-प्रदीपिका—४९, ५२, ६२, ६३
हनुमत्संहिता—२, १११, ११३, १३६, १८०
हनुमन्नाटक—११३, १६६, १८०
हरप्रसाद शास्त्री—६१
हरिभक्ति रसामृत सिन्धु—७, १३
हरिवंश—९९
हर्वर्टवान गूथर—४५
हर्ष—२९
हर्षचरित—६१
हर्षवर्द्धन—३८
हार—२८
हारीत स्मृति—१२६
हाव—३०
हास—२९
हास्य—२९
हितहरिवंश—६
हिन्दुत्व—१६५, १६६
हिरण्यगर्भ भगवान्—१५३, १५७
हिरण्यगर्भ संहिता—१८०
हिलियोगस—९७
हीनयान—३८
हुएनसांग—३८
हेरुक् भगवान्—६१
हेला—३०
हेवज तन्त्र—४५, ४७

क्ष

क्षान्ति—१७
क्षेत्र—२९
क्षेपण—१९

ज्ञ

ज्ञान वज्र—४१
ज्ञान शक्ति—९०, १०८
ज्ञान—४४
ज्ञानावेश—८९, ९१